ओ३म्

सामवेद

(सरल हिन्दी-अनुवाद-सहित)

अनुवादक तथा सम्पादक

श्री वीरेन्द्र शास्त्री एम० ए०, काव्यतीर्थ

प्राप्ति स्थान -

वैदिक भक्ति साधन आश्रम

आर्यनगर, रोहतक-१२४००१

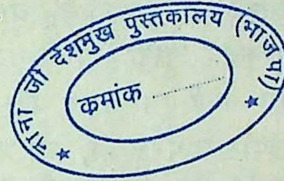




सामवेद संहिता

(पूर्वार्ध तथा उत्तरार्द्ध दोनों भाग)

सरल हिन्दी-अनुवाद-सहित



अनुवादक तथा सम्पादक

साहित्याचार्य **श्री वीरेन्द्र शास्त्री एम०ए०**, काव्यतीर्थ
सी-८१७, महानगर, लखनऊ-२२६००६

प्राप्ति स्थान—

वैदिक भक्ति साधन आश्रम, आर्यनगर, रोहतक-१२४००१

भाद्रपद सं० २०५१ वि०
४ सितम्बर १९९४ ई०
दयानन्दाब्द १७०
वेदसंवत् १,९६,०८,५३,०९४

मूल्य =५०-००

ओ३म्

नम्र-निवेदन

मन्त्र संख्या की दृष्टि से सबसे छोटा होते हुए भी, ईश्वर की उपासना की दृष्टि से सामवेद सब से अधिक महत्त्व-पूर्ण है संस्कृतज्ञ विद्वानों के लिए इसके भरतस्वामी, माधव, सायण आदि के भाष्य हैं। हिन्दी-भाषियों के लिये स्वामी तुलसीराम जी तथा श्री जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार के हिन्दी अनुवाद हैं। उनके होते हुए भी यह आवश्यकता अनुभव की जा रही है कि मध्यम श्रेणी के साधारण-जनों के लिये, केवल हिन्दी जानने वालों के लिये किसानों तथा मजदूरों के लिये, महिलाओं तथा बालकों के लिये कोई ऐसा सरल हिन्दी अनुवाद होना चाहिये जो उपासना-काण्ड होने के कारण केवल ईश्वर-उपासना-परक हो, जो भक्तिरस से परिपूर्ण हो और जिसका भक्त उपासक प्रतिदिन नियम से उसी प्रकार, बल्कि उससे भी अधिक श्रद्धा और प्रेम के साथ, पाठ और स्वाध्याय कर सकें जिस प्रकार वे आजकल रामायण, महाभारत, गीता, उपनिषद् आदि का पाठ किया करते हैं। इसी दृष्टि से प्रस्तुत प्रयत्न किया गया है।

एक ही वेद मन्त्र के सब प्रकार के अर्थ निकालना और समझ लेना संस्कृतज्ञ विद्वानों का ही काम है। उनके लिये तो भाष्य वर्तमान ही हैं। मन्त्रों के तीन प्रकार के अर्थ रखने की दृष्टि से वस्तुतः कोई भी भाष्य पूर्ण नहीं है। और कोई भाष्य पूर्ण हो भी कैसे सकता है? अपूर्ण मानव का किया हुआ भाष्य भी अपूर्ण ही होगा। अनन्त परमात्मा का अनन्त ज्ञान वेद सान्त मानव के सान्त ज्ञान का विषय कैसे बन सकता है? सर्वज्ञ परमात्मा का पूर्ण-ज्ञान वेद रूपी काव्य अपने मूल रूप में—वैदिक भाषा में ही पूर्ण रह सकता है और उस भाषा को जानने वाले ही उसको अधिक से अधिक समझ भी सकते हैं। किसी भी भाषा में अल्पज्ञ मानव का किया हुआ उसका अनुवाद कभी भी 'पूर्ण' नहीं हो सकता। कोई भी विकृत अवैदिक भाषा पूर्ण परमात्मा के पूर्ण भावों को पूर्णतया व्यक्त करने में अशक्त है और रहेगी, साथ ही किसी अनुवाद द्वारा उन मन्त्रों में वर्णित भावों को पर्णतया हृदयङ्गम भी नहीं किया जा सकता। अतः वैदिकधर्मियों को वैदिक भाषा का ज्ञान अवश्य प्राप्त करना चाहिए।

सामवेद का यह प्रस्तुत सरल हिन्दी अनुवाद हिन्दी में अन्वय सहित पदानुवाद तथा भावानुवाद है जिसे सर्वसाधारण के लिये उपयोगी बनाने का यत्न किया गया है। पाठकों को यह सदा ध्यान में रखना चाहिये कि मन्त्रों का पूरा अर्थ तथा पूरी व्याख्या अनुवाद में दिये गये अर्थ की अपेक्षा कहीं अधिक विस्तृत और व्यापक है।

विभिन्न भाष्यों तथा अनुवादों के गुण दोष विवेचन का कार्य विद्वान समालोचकों का है। फिर भी इतना निर्विवाद है कि सामवेद का केवल उपासना-काण्ड परक आध्यात्मिक अर्थ अभी

तक किसी भाष्य अथवा अनुवाद में नहीं है। कुछ साधारण वग के वेद प्रेमियों का आग्रह तो यहाँ तक था कि बिना मन्त्र के, केवल सरल तथा सस्ता हिन्दी अनुवाद ही प्रकाशित किया जावे, किन्तु उनके विचार से सहमत होना आवश्यक नहीं। अपूर्ण भाषा में अपूर्ण मानवकृत अपूर्ण अनुवाद पूर्ण भाषा में पूण परमेश्वर-कृत पूर्ण संहिता-मन्त्रों के साथ ही उचित तथा शोभायुक्त हा सकता है।

इस संस्करण में मन्त्रों पर उदात्त आदि स्वर चिह्न नहीं दिये गये हैं और मन्त्रों के शब्द भी कोष्ठक में अनुवाद के साथ नही दिये गये हैं, क्योंकि ऐसा करने से पुस्तक का कलेवर तथा मूल्य अधिक बढ़ जाता (वैसे भी स्वर आदि विद्वानों के ही काम की वस्तु हैं, सर्वसाधारण के काम के नहीं)। इसके लिये क्षमा प्रार्थना है। किन्तु इस अनुवाद की निम्नलिखित विशेषतायें भी हैं :—

(१) इसमें सामवेद के अब तक प्रकाशित सभी संकरणों का उपयोग किया गया है।

(२) मन्त्र-पाठ अधिक से अधिक शुद्ध रूप में दिया है।

(३) ऋषि, देवता, छन्द, स्वर अच्छे प्रकार से दिये गये हैं।

(४) अधिकांश मन्त्रों के साथ उनका विशेष कर्मकाण्ड में विनियोग भी बताया गया है।

(५) सामवेद के साम-गान करने वाले ऋषियों का नाम भी यथासम्भव मन्त्रों के साथ दिया गया है।

(६) मन्त्र बड़े टाइप में स्पष्ट दिये गये हैं।

(७) प्रारम्भ में मन्त्रों, दशतियों, अध्यायों प्रपाठकों आदि का विभाग स्पष्टतया तालिकायें देकर समझाया है।

(८) समस्त प्राचीन भाष्यों के ईश्वर-उपासना-परक अर्थों के भावों का उपयोग किया गया है।

इस प्रयास के पश्चात् यथासमय अन्य वेदों के भी अनुवाद प्रकाशित करने की अभिलाषा है। आशा है भगवान इसमें सहायक होंगे।

काशी
जून १९८९ ई०

वैदिक साहित्य का सेवक—
वीरेन्द्र शास्त्रीः एम० ए०
साहित्याचार्य

प्रकाशकों का धन्यवाद

परमपिता परमात्मा की असीम अनुकम्पा से सामवेद का भाष्य लेखक-स्वामी वीरेन्द्रमुनि जी शास्त्री, एम० ए० साहित्याचार्य द्वारा प्रणीत का यह अगला संस्करण वेदपाठियों के आग्रह और प्राप्त दान से पुन: प्रकाशित हुआ है। यह ७ सितम्बर, १९९४ को डॉ० चन्द्रदेव जी वानप्रस्थी के निर्वाण दिवस के ऊपर सामवेद के पवित्र यज्ञ के द्वारा उनके सुपुत्र मेजर धर्मचन्द के करकमलों से विमोचन किया जा रहा है। इस कार्य में जवाहर नगर, दिल्ली की वेदपाठी देवियों के आग्रह पर माता रामचमेली जी के प्रयत्न से और भ्राता सोमआश्रित जी (भ्राता ला० लोकनाथ जी) की प्रेरणा से श्रीमती खुशां देवी ने अपनी माता जी का नाम अमर करने के लिए और अपने स्वर्गीय पति की पवित्र कमाई को वेदपाठी देवी और देवताओं के लिए इतनी धनराशि प्रदान की है। मेरे आग्रह पर श्री धर्मचन्द बत्तरा तथा उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सुशीला देवी ने अपने पुत्रों व्यास ऋषि, अनुपम तथ प्रकाशवीर बत्तरा को प्रेरणा देकर अपने पूज्य पिता श्री देवदत्त जी बत्तरा और अपनी माता जी के नाम से १०,००० (दस हजार) रुपया दान दिया। बत्तरा परिवार महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज का अनन्य भक्त है। आर्यसमाज आदर्श नगर दिल्ली में श्री महावीर बत्तरा और श्री कृष्णगोपाल बत्तरा तन-मन-धन से सेवा कर रहे हैं।

परमात्मा इन सब दानी महानुभावों को धर्म में अधिक प्रेरणा दें। बहिन रामचमेली जी, श्री रमेश जी चौधरी, प्रदीप बजाज तथा श्रीमती रामदेवी जी को स्वास्थ्य तथा नीरोगता प्रदान करें। श्रीमती विजयलक्ष्मी जी खन्ना अपनी माता ब्रह्मलीन रामप्यारी जी का और पिता श्री सोम आश्रित जी का आशीर्वाद प्राप्त करती रहें।

आजकल कागज और छपाई का सामान इतना मंहगा है कि यह वेदभाष्य असली मूल्य पर साठ ६०/- रु० में पड़ता है। दानियों के पवित्र सहयोग से इसकी केवल ५० रुपये कीमत रखी है। इसे पढ़िये और चिन्तन करिये।

भवदीय

ओम् आश्रित (लखपति शास्त्री)

अधिष्ठाता

वैदिक भक्ति साधन आश्रम

आर्यनगर, रोहतक

सामवेद के प्रकाशन में दानियों का धन्यवाद

१. श्रीमती खुशां देवी धर्मपत्नी स्वर्गीय श्री हिम्मतराम छाबड़ा, आश्रम, रोहतक	=१०,०००
२. स्वर्गीय श्रीमती कुंवर बाई माता खुशां देवी	=१०,०००
३. व्यास ऋषि बत्तरा तथा अनुपम बत्तरा, आदर्श नगर, दिल्ली	=७,५००
४. श्री रमेशचन्द्र चौधरी, सैक्टर ९ रोहिणी, दिल्ली	=२,५००
५. श्री प्रकाशवीर बत्तरा, आदर्श नगर, दिल्ली	=२,५००
६. श्रीमती रामचमेली गुलाटी, प्रधाना आर्यसमाज राजौरी गार्डन, दिल्ली द्वारा	=२,२५१
७.श्री प्रदीप बजाज सुपुत्र श्री दयानन्द जी बजाज, सुभाष नगर, दिल्ली	= १,१००
८. श्रीमती रामदेवी धर्मपत्नी स्वर्गीय पं० गणपतराम जी वेदपाठी	= १,०००
९. श्रीमती विजयलक्ष्मी धर्मपत्नी श्री अर्जुनदेव जी खन्ना यज्ञमंडली द्वारा जवाहर नगर, दिल्ली	=२,५००
१०. पं० लखपति शास्त्री ९/९० सुभाष नगर, दिल्ली	=१,०००

सामवेद के मन्त्रों का विभाग (१)

[१] पूर्व (छन्द) आर्चिक में ६ प्रपाठकों में ६४ दशतियाँ तथा ६४० मन्त्र हैं।

प्रपाठक	अर्धप्रपाठक	दशत	मन्त्र	क्रमसंख्या (तक)
१	२	१०	९६	१ से ९६
२	२	१०	९७	९७ से १९३
३	२	१०	९९	१९४ से २९२
४	२	१०	९८	२९३ से ३९०
५	२	१०	९६	३९१ से ४८६
६	६	१४	१५४	४८७ से ६४०
योग ६	१३	६४	६४०	१ से ६४०

[२] महानाम्न्यार्चिक में १० मन्त्र हैं।

[३] उत्तरार्चिक में ९ प्रपाठकों, २२ अर्धप्रपाठकों (अध्यायों); ४०२ सूक्तों में १२२५ मन्त्र है।

प्रपाठक	अर्धप्रपाठक	अध्याय	सूक्त	मन्त्र	क्रमसंख्या
१	१	१	२३	६२	६४१– ७१२
	२	२	२२	६२	७१३– ७७४
२	१	३	१९	५५	७७५– ८२९
	२	४	१९	५६	८३०– ८८५
३	१	५	२२	६९	८८६– ९५४
	२	६	२३	७६	९५५–१०३०
४	१	७	२४	८५	१०३१–१११५

प्रपाठक	अर्धप्रपाठक	अध्याय	सूक्त	मन्त्र	क्रमसंख्या
	२	८	१४	५९	१११६–११७४
५	१	९	२०	७८	११७५–१२५२
	२	१०	२३	९४	१२५३–१३४६
६	१	११	११	३२	१३४७–१३७८
	२	१२	२०	५६	१३७९–१४३४
	३	१३	२०	५४	१४३५–१४८८
७	१	१४	१६	४६	१४८९–१५३४
	२	१५	१४	३८	१५३५–१५७२
	३	१६	२१	४४	१५७३–१६१६
८	१	१७	१४	४०	१६१७–१६५६
	२	१८	१९	५४	१६५७–१७१०
	३	१९	१८	५४	१७११–१७६४
९	१	२०	१८	५१	१७६५–१८१५
	२	२१	१३	३३	१८१६–१८४८
	३	२२	९	२४	१८४९–१८७५
योग ९	२२	२२	४०२	१२२५	६४१–१८७५

इस प्रकार सम्पूर्ण सामवेद में ६४०+१०+१२२५=१८७५ मन्त्र हैं।

सामवेद के मन्त्रों का विभाग (२)

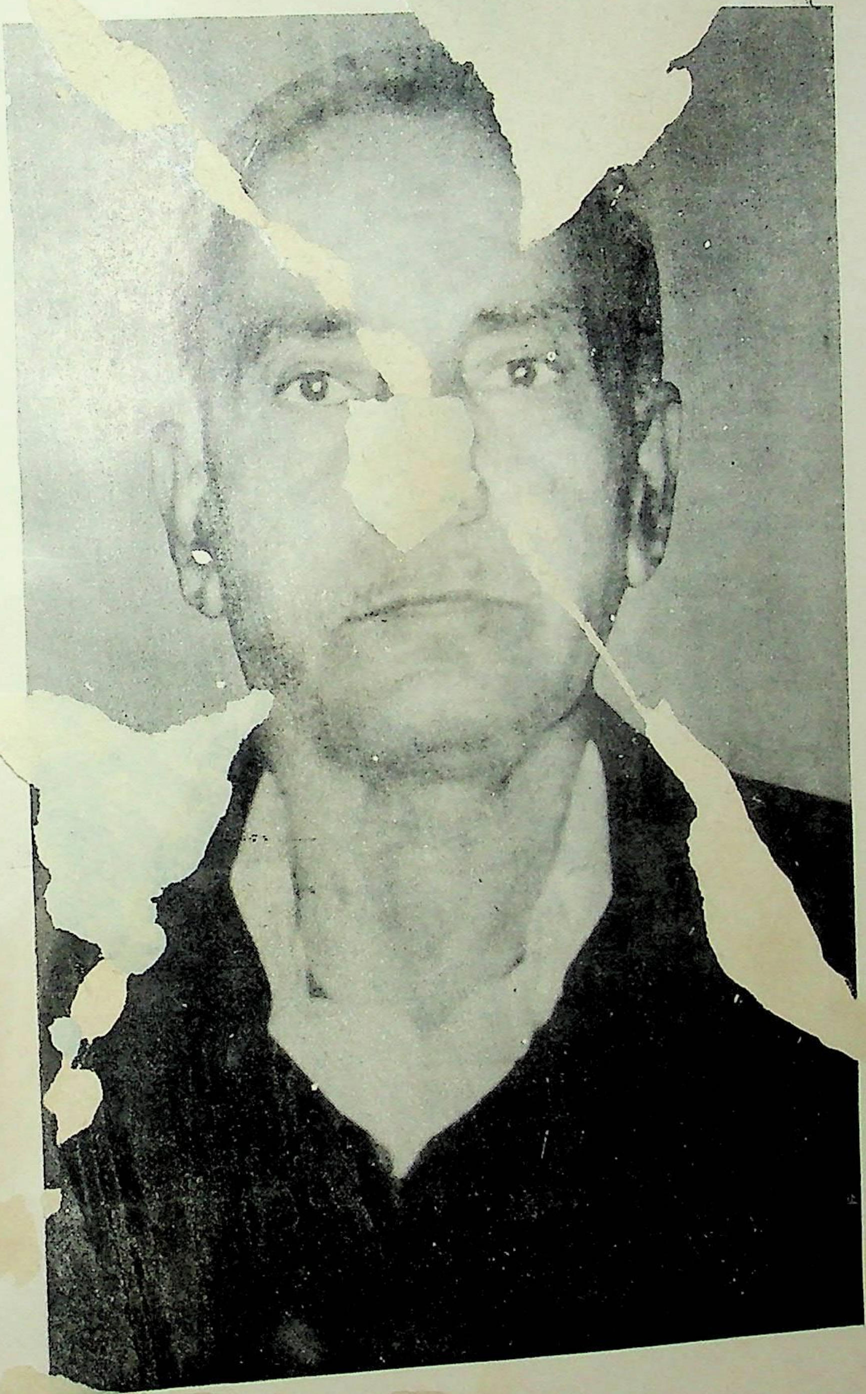
[१] पूर्व (छन्द) आर्चिक में ४ पर्व (काण्ड)—आग्नेय, ऐन्द्र, पवमान तथा आरण्यक तथा ६ अध्यायों में ६४० मन्त्र हैं—

१ अध्यायः		२ अध्यायः		३ अध्यायः		४ अध्यायः		५ अध्यायः		६ अध्यायः	
दशति	मन्त्र	दशति	मन्त्र	दशति	मन्त्र	दशति	मन्त्र	दशति	मन्त्र	दशति	मन्त्र
१	१०	१	१०	१	१०	१	८	१	१०	१	९
२	१०	२	१०	२	१०	२	१०	२	१०	२	७
३	१४	३	१०	३	१०	३	११	३	१०	३	१३
४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१४	४	१२
५	१०	५	१०	५	१०	५	८	५	१२	५	१४
६	८	६	१०	६	१०	६	१०	६	१०		
७	१०	७	१०	७	१०	७	१०	७	१२		
८	८	८	९	८	१०	८	८	८	९		
९	१०	९	१०	९	१०	९	१०	९	१२		
१०	६	१०	१०	१०	९	१०	१०	१०	१२		
११	१०	११	९	११	१०	११	१०	११	८		
१२	८	१२	१०	१२	१०	१२	१०	१२			
योग	११४		११८		११९		११५		११९		५५
१२		१२		१२		१२		११		५=६४	

इस प्रकार ६४ दशतियों में ६४० मन्त्र हैं।

महानाम्न्यार्चिक में १० मन्त्र हैं।

उत्तरार्चिकमें २२ अध्यायोंमें ४०२ सूक्त हैं जिनमें १२२५ मन्त्र हैं। इस प्रकार सर्वमन्त्रयोग १८७५ हुआ।



स्वर्गीय श्री हिम्मतराम छाबड़ा

ओ३म्



पूर्व (छन्द) आर्चिक

बहुसामि (१-१७४ मन्त्र), प्रथम प्रपाठक (१-९६ मन्त्र),
प्रथम आग्नेय पर्व (काण्ड), प्रथम अध्याय (१-११४ मन्त्र),

प्रथम दशति (खण्ड)

देवता—अग्नि समस्त पर्व का है। (छन्द —गायत्री, १ म, २ य तथा ३ य दशति में (८, ८ अक्षर के ३ चरण=सब २४ अक्षर) स्वर षड्ज।

रस—शान्त, अलङ्कार-श्लेष तथा अनुप्रास; गुण-प्रसाद तथा माधुर्य। ये तीनों प्रायः सब मंत्रों में हैं

१. ओ३म् अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषि।

ऋषि—भरद्वाज (वाज=अन्न आदि का भरण करने वाला); साम गान करने वाले ऋषि-प्रथम तथा तृतीय चरण के गौतम और द्वितीय चरण के कश्यप।

विनियोग—अग्नि का आह्वान (ताण्ड्य महाब्राह्मण १,२,२,३) अन्यत्र—ऋ० ६ १६. १०।

हे अग्ने, प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! आप (विद्या आदि शुभ गुणों की) व्याप्ति, ज्ञान तथा हृदय में प्रकाश करने के लिए, और हव्य (दानयोग्य) शुभ भक्ति और कर्मों के फल तथा पदार्थों को देने के लिए हमें आत्मा में अपना साक्षात्कार कराइयें। हम आपकी स्तुति करते हैं। सुख के देने वाले आप जहां ज्ञान की वृद्धि होती है ऐसे यज्ञ (आत्मा) में विराजमान होइये।

२. त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः। देवेभिर्मानुषेजने।

ऋषि-पूर्ववत्। सामगान करता-सुपर्णा। छन्द—वर्धमाना गायत्री, पहले चरण में ६, दूसरे में ७, तीसरे में ८=२१ अक्षर। प्रत्येक चरण में एक एक अक्षर बढ़ता जाता है अतः 'वर्धमाना'।

विनियोग—स्वर्ग सुखमय लोकको समष्टि की कामना (ता० म० ब्रा० १४. ३. ९.)

हे अग्ने परमात्मन्! आप सब संगति करने योग्य व्यवहारों को स्वीकार करने वाले और श्रेष्ठतम कर्मों के फल देने वाले हैं। आप विद्वान उपासकों के द्वारा मनुष्यों के समूह में धारण किए जाते हैं और मननशील यज्ञकर्ता मनुष्यमें दिव्य गुणों-ध्यान धारणा, तथा समाधि—के द्वारा धारण किये गये हैं

३. अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ।

ऋषि–काण्व मेधातिथिः । सामग–बृहद्भरद्वाज । विनियोग – बड़े स्वर्ग सुख की कामना से सन्धि करें । (ता० म० ब्रा० ६।१।३०)

उपासना करने वाले (हम सब मनुष्य) तीनों तापों का नाश करने वाले तथा कर्मों का फल पहुंचाने वाले, सुख के देने वाले, व्यापक होने के कारण सबके ग्रहण करने वाले, सबके लिए वेदों के ज्ञान के दाता, सबके धन, सर्वज्ञ, इस योगरूपी यज्ञ के संभालने वाले, अच्छे कर्म वाले परमात्मा को वरण=स्वीकार करते हैं और उसकी उपासना करते हैं ।

४. अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धः शुक्र आहुतः ।

ऋषि–भरद्वाज । सामग–श्रुतर्षा । विनियोग—वार्त्रघ्न यज्ञ (ऐतरेय ब्राह्मण १।१।४) अर्थात् रोग, ताप, बिघ्न रूपी वृत्रों के नाश के लिए अग्नि की स्तुति ।

स्तुति करने वालों के आत्मिक बल आदि धन की वृद्धि चाहने वाला, स्तुति द्वारा अच्छी प्रकार से प्रकाशित और प्रत्यक्ष किया हुआ, शुद्ध स्वरूप, मन में योग के अनुष्ठान से ध्यान किया हुआ और ध्यान से धारण किया हुआ अग्नि=परमात्मा हमारे दुःख, अविद्या, पाप आदि को अच्छी प्रकार नष्ट करे । यही हमारी कामना है ।

५. प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम् । अग्ने रथं न वेद्यम् ।

ऋषि तथा सामग-उशना,विनियोग–आधान किये गये अग्नि रूपी अतिथि की स्तुति (ताण्ड्य० १४।१२।१) । उपमा अलंकार ।

हे अग्ने=परमात्मन् ! मैं मित्र के समान प्यारे, अतिथि (सर्व व्यापक) रूप, और रथ(रमणीय साधन) के समान सब के आधार, आनन्द स्वरूप, प्राप्त करने तथा जानने योग्य, प्रियतम आपकी स्तुति तथा उपासना करता हूँ ।

६. त्वं नो अग्ने महोभिः पाहि विश्वस्या अरातेः । उत द्विषो मर्त्यस्य ।

ऋषि–सुदीति और पुरुमीढ़ । इसमें 'सांवर्ग' और 'वार्त्रघ्न नामक दो सामों का गानकर्त्ता इन्द्र ऋषि है । विनियोग—चौथे मन्त्र के समान ।

हे अग्ने परमात्मन् ! आप अपने महान् तेजों तथा पालन पोषणों द्वारा सब दुःखदायक—रोग आदि शत्रुओं और मनुष्य मात्र के द्वेषी शत्रु अनावृष्टि, दुर्भिक्ष आदि से हमारी रक्षा कीजिये ।

७. एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः । एभिर्वर्द्धास इन्दुभिः ।

ऋषि–बार्हस्पत्य भरद्वाज । सामग–साकमश्व । विनियोग-सायंकालके सवन में अग्नि को बुलाना ।

हे परमात्मन्, आइये, हमारे हृदय में विराजिये । आपके निमित्त मैं सत्य (वैदिक) और दूसरी लौकिक वाणियों को अच्छे प्रकार बोला करूं । मैं आपकी स्तुति के वचनों में लगा रहूं । उसके प्रति-

रिक्त इतर=आसुरी, (ऐ० ३.५.५.) मन को अस्थिर करने वाले, वचनों को दूर रखूं । आप इन इन्दुओं=ध्यान अभ्यास के रसों तथा ब्रह्मयज्ञों से हमारे हृदय में विशेष रूप से प्रकाशित होते हैं ।

८. आ ते वत्सो मनो यमत् परमाच्चित् सधस्थात् । अग्ने त्वां कामये गिरा ।

ऋषि तथा सामग-काण्व 'वत्स'(मन्त्र में आये 'वत्स' शब्द से विशेष सम्बन्ध होने कारण 'वत्स' नाम पड़ा) विनियोग-पाप के नाश की कामना से किये गये यज्ञ की प्रतिष्ठा (ता० ८. २. १.)

हे परमात्मन् ! बच्चे के समान आपका प्यारा होकर उपासना करने वाले आत्मारूप मैंने आप के मन तथा सत्यज्ञान को स्तुति द्वारा परम उत्कृष्ट स्थान से वश में किया है तथा प्राप्त कर लिया है । प्रभो ! मैं आपका पुत्र हूं । जिस प्रकार बच्चा प्रिय मधुर शब्द बोलकर अपनी माता को पुकारता है उसी प्रकार मैं अपनी स्तुतिरूपी वाणी से आपकी कामना करता हूं ।

९. त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ।

ऋषि-भरद्वाज । आर्षेय नामक इस सामगान का ऋषि अग्नि है । विनियोग-यज्ञ (ब्रह्मयज्ञ) में अरणियों से अग्नि (ईश्वर) का मन्थन=साक्षात्कार ।

हे परमात्मन्, संशय से रहित ज्ञानी, उपासक मनुष्य आपको विश्व के वहन करने वाले, शिर के समान सबके आधारभूत, पुष्कर=परम स्थान, हृदय रूपी आकाश में, अपने अन्दर मन में, श्रवण मनन और निदिध्यासन रूपी साधनों से प्रत्यक्ष करता है । मैं भी उसी प्रकार साक्षात्कार करना चाहता हूँ ।

१०. अग्ने विवस्वदा भरास्मभ्यमूतये महे । देवो ह्यसि नो दृशे ।

ऋषि—वामदेव । सामगान कर्त्ता—वाध्यश्व सुमित्र वा अनूप । विनियोग-पशु आदि की समृद्धि की कामना से की गई स्तुति में ।

हे परमात्मन्, आप हमारी बड़ी रक्षा करने के लिए हमको विशेष सुखदायक, निवास करने योग्य घर आदि प्राप्त कराइये तथा सुख के साधन यश आदि को सिद्ध कराइये । क्योंकि हमारे लिए मार्ग दिखाने वाले विद्वान् सर्वज्ञ के रूप में आप ही सदैव वर्तमान हैं ।

द्वितीय दशति (खण्ड)

११. नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः । अमैरमित्रमर्दय ।

ऋषि—आयुङ्क्ष्वाहि आङ्गिरस विरूप । संवर्ग नामक इस साम का गान-कर्त्ता अग्नि । विनियोग—अग्नि परमेश्वर की स्तुति और प्रार्थना ।

हे प्रकाशमय परमात्मन्, नमस्ते ! आपके लिए नमस्कार हो । उपासक मनुष्य ओज=आत्मिक बल के पाने के लिए आपकी स्तुति करते हैं । आप अपने बल तथा प्रभाव से बाहर और अन्दर के (काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, मद, अहंकार आदि) शत्रुओं को नष्ट कीजिए ।

१२. दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहममर्त्यम् । यजिष्ठमृञ्जसे गिरा ।

ऋषि-वामदेव । सामगान कर्त्ता---विश्वमना । विनियोग तीसरे मन्त्र के समान ।

हे परमात्मन् ! सब दुःखों के नष्ट करने वाले, सर्वज्ञ, दूत के समान, हव्य=देने योग्य शुभ कर्मफल के प्राप्त कराने वाले, अविनाशी, प्राप्त किये जाने योग्य आपकी मैं वेदवाणी द्वारा उपासना करता हूं।

१३. उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः । वायोरनीके अस्थिरन् ।

ऋषि-भार्गव प्रयोग वा बार्हस्पत्य अग्नि। सामग ऋषिश्राभ और श्नुष्ट । विनियोग—विश्वजित् यज्ञ में बहिश्पवमान के नव स्त्रोत्र में (ता० १६-५-१)

हे उपासनीय देव ! आपकी स्तुति करने वाले मनुष्य की वेद मन्त्र रूप वाणियां, बहिनों के समान, बार बार उपदेश करती हुई तथा अपने गुणों को प्रकट करती हुई, वायुमण्डल, अनन्त आकाश में आपके पास ही पहुंच रही हैं।

१४. उप त्वाग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम् । नमो भरन्त एमसि ।

ऋषि तथा सामग-वैश्वामित्र मधुच्छन्दा । विनियोग प्रातःकाल और सायंकाल के सवन में ।

हे परमात्मन् ! हम उपासना करने वाले जन, विज्ञान के प्रकाश के लिए प्रतिदिन सायंकाल और प्रातःकाल बुद्धि और आचरण द्वारा मन लगाकर नमस्कार करते हुए आपको प्राप्त हों।

१५. जराबोध तद्विविड्ढि विशे विशे यज्ञियाय । स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ।

ऋषि शुनःशेप । सामग-अग्नि । विनियोग-अन्न आदि की रक्षा और लाभ के लिए अग्नि (परमेश्वर) की स्तुति (ताण्ड्य० १४।५।२७)

हे स्तुति द्वारा जानने योग्य परमात्मन्, प्राणी मात्र के हिंत के लिए आप हमारे उस मन में प्राप्त होइये जहां यज्ञ के योग्य=पूजनीय और रुद्र=दुष्टों को रुलाने वाले, न्यायकारी तथा रुद्र=वेद रूपी शब्द को सृष्टि की आदिमें र=देने वाले, ज्ञानदाता आपके लिए मनोहर स्तुति की जारहीहै

१६. प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे । मरुद्भिरग्न आ गहि ।

ऋषि-काण्व मेधातिथि । इस 'मारुत' नामके साम को गाने वाला अग्नि ऋषि। उक्थ की स्तुति में विनियोग है (ता० १४. १२. ८.)

हे ज्ञानमय परमेश्वर ! उपासकों द्वारा उस सुन्दर हिंसारहित उपासना यज्ञ में तथा ज्ञानयज्ञ के स्थान हृदय देश में, ध्यान में मिलने वाले आनन्द रस की प्राप्ति के लिए आपका विशेष रूप से ध्यान तथा स्मरण किया जा रहा है; इसलिए आप परिमित शब्द वाली, करुण रस से द्रवीभूत करने वाली वेदवाणियों के साथ ही हमारे हृदय मे अपना साक्षात्कार कराइये।

१७. अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः । सम्राजन्तमध्वराणाम् ।

ऋषि–शुनःशेप । पहले और तीसरे सामका गानकर्त्ता भृगु तथा दूसरे का इन्द्र । अग्निष्टोम नाम के यज्ञ में विनियोग है :

हे परमात्मन् ! हम उपासक जन, अहिंसा रूपी ज्ञानयज्ञों में अच्छे प्रकार से प्रकाशमान तथा ऐसे यज्ञों के प्रकाशक, और वाल वाले अश्व के समान, तथा शत्रुओं को निवारण करने की शक्ति रखने वाले राजा के समान, काम क्रोध आदि को नष्ट करने वाले, पूजनीय आपकी नमस्कारों द्वारा वन्दना करने को प्रवृत्त हुए हैं और आपकी स्तुति कर रहे हैं।

१८. और्वभृगुवच्छुचिमप्नवानवदा हुवे । अग्निं समुद्रवाससम् ।

ऋषि–प्रयोग, काण्व मेधातिथि । सामुद्र नामक इस साम का गाने वाला और्व वैधारय ऋषि । अग्नि के आह्वान में विनियोग है।

मैं, उपासक, और्व भृगुवत्=अग्नि (परमेश्वर) को प्रज्वलित (साक्षात्कार) करने वाले ज्ञान काण्डी व्यक्ति के समान तथा अप्नवान=कर्मकाण्डी के समान होकर, शुद्ध स्वरूप, समुद्र, आकाश तथा वेदवाणी में स्थित सर्वव्यापक परमात्मा को स्मरण करता हूं तथा उसका आह्वान करता हूं।

उपासक को उस 'और्वभृगु' अग्नि के समान होना चाहिए जो पृथिवी के अन्दर रहकर सब पदार्थों को अपने ताप से भर्जन करती और पकाती है। उसे उस 'अप्नवान' अग्नि के समान भी होना चाहिए जो रसों और औषधियों में शांत भाव से रहती है और रस अम्ल तथा क्षार रूप में प्रकट होती है।

उपासना से पूर्व ज्ञान प्राप्त कर तदनुसार कर्म करना भी आवश्यक है।

१९. अग्निमिन्धानो मनसा धियं सचेत मर्त्यः । अग्निमिन्धे विवस्वभिः ।

मेधातिथि ऋषि । इस 'असंग' नामक साम का गान करने वाला ऋषि–अत्रि । विनियोग—प्रातः सवन में अग्नि (परमेश्वर) का दीपन (आत्मा में प्रकाश)।

मरणधर्मा मनुष्य, परमात्मा को ध्यान आदि से तथा श्रद्धा से हृदय तथा मन में प्रकाशित करता हुआ, मनन द्वारा बुद्धि तथा कर्मों को अच्छे प्रकार से प्राप्त करे और विवस्व=प्रकाश के हेतु ध्यान धारणा तथा समाधि से प्रकाश स्वरूप परमात्मा की उपासना करे। प्रातः सायं विवस्व=सूर्य किरणों के साथ हृदय में ईश्वर का ध्यान करे। ब्रह्मयज्ञ आदि में विवस्व=ऋत्विजों के साथ बैठ कर सामूहिक प्रार्थना करे।

२०. आदित् प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिः पश्यन्ति वासरम् । परो यदिध्यते दिवि ।

ऋषि–काण्व वत्स । 'निधनकाम' नामक इस सामगान का प्रजापति ऋषि । विनियोग–वीर्य की प्राप्ति के लिए अग्नि (परमात्मा) की स्तुति में (ताण्ड्य० ७-३-१३) मरने के समय जप करने में (बह्वृच-उपनिषद) यह वैश्वानर परमेश्वर की स्तुति है (भरत स्वामी)।

यह उसी सनातन, नित्य, सब प्रकाशों के कारण, सामर्थ्यवान् वीर्यवान्, तथा जगत् के विधाता

परमेश्वर का ही तेज और प्रकाश है जो वासरम्=दिन के समय सूर्य रूप में दिखाई देता है और जिसे वासरम्=नियामक रूप में विद्वान् लोग ज्ञान दृष्टि से देखते हैं और जो ज्योति बहुत दूर द्युलोक में और उससे आगे भी आकाश में प्रकाशित है।

तृतीय दशति (खण्ड)

२१. अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम् । अच्छा नप्त्रे सहस्वते ।

ऋषि भार्गव प्रयोग; अथवा बार्हस्पत्य अग्नि। सामगानकर्त्ता–सिन्धुक्षिद्। विनियोग–वृद्धि की कामना से किये जाने वाले यज्ञ में अग्नि (परमात्मा) की स्तुति।

हे मनुष्यो, तुम अपने हिंसारहित यज्ञों, परोपकार आदि कार्यों को बढ़ाने वाले, पुरूतम=सब दुष्ट गुणों के नाशक, सबसे श्रेष्ठ, बन्धुओं के समान सहायक, सब से अधिक बलवान् परमात्मा को सबसे अच्छा समझो।

२२. अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यंसद् विश्वं न्या३त्रिणम् । अग्निर्नो वंसते रयिम् ।

ऋषि–बार्हस्पत्य भरद्वाज। इसमें 'हर'नाम के दो सामों का गान करने वाला अग्नि और तीसरे 'वामदेव्य'साम का वामदेव है विनियोग–सत्य, पूर्णफल, वृद्धि तथा प्रजा के लाभ के लिए।

परमात्मा तीक्ष्ण तेज से सभी अत्रि–हिंसक दुष्ट शत्रुओं तथा प्रजा का धन और प्राण खा जाने वालों का नियमन तथा नाश करता है। वही हमारे लिए धन और सुखी जीवन प्रदान करता है।

२३. अग्ने मृड महाँ असयय आ देवयुं जनम् । इयेथ बर्हिरासदम् ।

ऋषि–वामदेव। यहां 'याम' नाम के दो साम हैं जिनका गायक अग्नि है। विनियोग–स्वर्गलोक (सुखमय जीवन) के आधिपत्य की प्राप्ति के लिए है। इसी मन्त्र से यम (नियम में रखने वाले) ने यम को स्वर्गलोक भेजा (ता० ११।१०।२०, २१, २२)

हे परमात्मन्! हमको ज्ञान देकर सुखी कीजिए। आप महान् हैं। आप सर्वव्यापक हैं। आप उपासना के लिए आसन पर बैठे हुए, दिव्य गुणों की कामना करने वाले, विद्वानों के प्यारे भक्त को अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं।

२४. अग्ने रक्षा णो अंहसः प्रति स्म देव रीषतः । तपिष्ठैरजरो दह ।

ऋषि–वसिष्ठ। इस 'राक्षोघ्न' सामका गायक अग्नि है। विनियोग–स्वस्त्ययन (कल्याण प्राप्ति के यज्ञ में पहले आज्यभाग के अनुवाक में।

हे पापनाशक परमात्मन्, आप हमारी पाप से रक्षा कीजिए। हे देव, आप अजर (जरा=बुढापे से रहित) सदा एक रस हैं। आप हिंसक, पापी, दुःखदायी रोग तथा काम क्रोध आदि को अपने अत्यन्त तपाने वाले तीव्र तेजों से पूरी तौर से नष्ट कर डालिये।

२५. अग्ने युङ्क्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः । अरं वहन्त्याशवः ।

ऋषि भरद्वाज । सामग तथा विनियोग पिछले मन्त्र के समान । रूपक अलंकार ।

हे दिव्य गुण युक्त परमात्मन् जो आपके साधन रूप अश्व=शीघ्र कार्य करने वाले व्यापक गुण-रूपी घोड़े हैं उनको हमारे शरीर रूपी रथ में नियुक्त कीजिए। तथा जो साधु, अच्छे स्वभाव वाले अश्व=उत्तम घोड़े, इन्द्रियां, सवारियां, ज्ञानी, साधक, सेवक पुरुष हैं, उनको यथायोग्य कार्यों में लगाइये। वे सब पर्याप्त उत्तम रूपसे आपको तथा आपके कार्यों को सब जगह पहुंचा रहे हैं।

२६. नि त्वा नक्ष्य विश्पते द्युमन्तं धीमहे वयम् । सुवीरमग्न आहुत ।

ऋषि–वसिष्ठ। सामग–विश्मनाः। विनियोग––तीसरे मन्त्रवत्।

हे प्राप्त करने तथा शरण में जानें योग्य, प्रजा के पालन करने वाले तथा स्वामी भक्तों द्वारा अच्छे प्रकार ध्यान किये गये, पुकारे गये, तथा स्मरण किये गये परमात्मन् ! हम उपासक लोग दीप्ति मय, प्रकाशयुक्त और कल्याणकारी सामर्थ्य वाले तथा श्रेष्ठ भक्त पुरुषों से सम्बन्ध रखने वाले आप का सदा ध्यान करते हैं।

२७. अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् । अपा रेतांसि जिन्वति ।

ऋषि–आँगिरस विरूप। इस 'आर्षेय' साम का गायक 'अग्नि' है। विनियोग-दर्श (अमावस्या) की और पूर्णमास की इष्टियों के आग्नेय ऋतु के अनुवाक में।

शिर के समान श्रेष्ठ, ककुत्=महान्, प्रकाशमय सूर्य आदि और प्रकाशरहित पृथिवी आदि का पालन करने वाला, स्वामी, यह सब ओर प्रत्यक्ष परमात्मा, अपां=व्यापनशील प्रकृति के तथा उसके कार्यों के, अन्तरिक्ष के, प्राणों के तथा जलों के वीर्य, साररूप चल तथा अचल पदार्थों को रचना जानता है और रचता है,उनको जीवन देता तथा तृप्त करता है, वही कर्मों के बीजों को भी जानता है।

२८. इममू षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम् । अग्ने देवेषु प्र वोचः ।

ऋषि–शुनःशेप विनियोग-राज्य के आधिपत्य तथा यज्ञ के पाने के लिए। गायक ऋषि सोम ने तप करके इस सोम नामक साम का दर्शन किया और राज्य तथा यश प्राप्त किया (ता०११.३.६.)

हे अनन्त विद्यामय परमेश्वर, आप हमारे कर्मफलों के अच्छे प्रकार विभाग करने वाले, नित्य नया बोध कराने वाले, गायत्र=गान करने वाले की रक्षा करने वाले, चारों वेदों को देवों में—सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न होने वाले परम विद्वान् पुण्यात्मा अग्नि, वायु आदित्य तथा अङ्गिरा ऋषियों में अच्छे प्रकार से उपदेश किया करते हैं। आप देवों=विद्वानों, इन्द्रियों तथा पांच भूतों के विषय में वेदों,अन्न आदि उपहार द्रव्यों तथा प्राणरक्षक साधनों को अच्छे प्रकार से वर्णन तथा प्रकट कीजिये।

२६. तं त्वा गोपवनो गिरा जनिष्ठदग्ने अङ्गिरः । स पावक श्रुधी हवम् ।

ऋषि तथा सामग–गोपवन (इस मन्त्र में आये 'गोपवन' शब्द से विशेष सम्बन्ध होने के कारण यह नाम पड़ा है) विनियोग–व्योम विश्वदेव स्तुत पञ्चशारदीय प्रकरण में आज्यशस्त्र में।

हे परमात्मन्, ऐसे प्रसिद्ध आपको गोपवन–वाणी तथा इन्द्रियों को वश में करके पवित्र रखने वाला, स्वाध्यायशील वेदज्ञ मनुष्य स्तुति द्वारा प्रकट करता है और आपकी महिमा को बढ़ाता है। हे अंगिरा=अंगों में रस के समान वर्तमान, प्राणप्रिय, ज्ञाननिधि, सर्वव्यापक,प्रकाशस्वरूप परमेश्वर, ऐसे प्रसिद्ध आप हमारे स्तोत्र=पुकार तथा गुण वर्णन को सुनकर हमें अनुगृहीत कीजिए।

३०. परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद्रत्नानि दाशुषे ।

ऋषि—गौतम वामदेव। इस 'सूर्य' साम का गायक वसुरोचि सूर्यवर्च्चा ऋषि है। विनियोग–पशु पर्यग्निकरण कार्य में प्रातः अनुवाक प्रकरण में तथा आग्नेय ऋतु के आश्विन शस्त्र में।

अन्नों का स्वामी, क्रान्तदर्शी, वेदरूपी काव्य तथा जगत् का निर्माता, सनातन श्रेष्ठ महाकवि परमात्मा, सब कुछ दानकर देने वाले उपासक के लिए ग्रहण करने योग्य रमणीय पदार्थ रत्न आदि धनों को देता हुआ, सर्वत्र व्याप्त हो रहा है।

३१. उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ।

ऋषि—काण्व प्रस्कण्व। सामग पूर्ववत्। विनियोग–सूर्य ऋतु में। उपमा तथा रूपक अलंकार।

जैसे पताकायें किसी स्थान को प्रकट करती हैं, जैसे सूर्य-किरणें सूर्य को प्रकाशित करती हैं, वैसे ही ईश्वर के सृष्टिरचना आदि अनेक प्रकार के गुण और विद्वान मनुष्य वेदों के प्रकाश करने वाले तथा सब प्राणियों को जानने वाले और सबको उत्पन्न करनेवाले उस देव परमात्मा को सब प्राणियों को दर्शन तथा ज्ञान प्राप्त कराने के लिए, अच्छे प्रकार प्रकाशित करते और धारण करते हैं।

३२. कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे । देवममीवचातनम् ।

ऋषि—काण्व मेधातिथि। 'काव' नामक इस साम का गायक वसुरोचि है। विनियोग—मन चाहे स्थान (पद) की प्राप्ति के लिए।

हे स्तुति करने वाले मनुष्यो, तुम अहिंसारूप ब्रह्मयज्ञ में अन्दर बाहर सबको ठीक देखने वाले, सर्वज्ञ महाकवि, सच्चे धर्म (न्याय) वाले अविद्या आदि दोषों तथा रोगों के नाशक, और दिव्यगुण युक्त परमात्मा की अच्छे प्रकार स्तुति (गुणवर्णन) करो।

३३. शं नो देवीरभिष्टये शं नो भवन्तु पीतये । शं योरभि स्रवन्तु नः ।

ऋषि–आम्बरीष सिन्धुद्वीप, त्वाष्ट्र त्रिशिरा, आप्तत्रित। सामगानकर्त्ता–सूर्यवर्च्चा, पारावत वसुरोचि काशीत, कापोत, वसुमन्द। विनियोग प्रातः अनुवाक प्रकरण में आश्विन शस्त्र में।

दिव्य गुणयुक्त परमात्मा तथा उसकी व्यापक दिव्य शक्तियां हमारे मनचाहे आनन्द के लिए कल्याणकारिणी हों और हमारी तृप्ति केलिए सुख प्रदान करे तथा हमारे सब ओर सुखकी वर्षा करें।

परमेश्वर की कृपा से जल की वर्षा समय पर हो। वह हमारे स्नान करने पोने तथा रोगों को शान्त करने और भय को भगाने के काम में आकर सुख पहुंचावें।

३४. कस्य नूनं परीणसि धियो जिन्वसि सत्पते । गोषाता यस्य ते गिरः ।

ऋषि—उशना। इस मन्त्र में प्रश्न तथा उत्तर हैं।

प्रश्न—हे सज्जनों तथा उपासकों के पालन करने वाले स्वामिन परमेश्वर, आप किस मनुष्य के बहुत से कर्मों और स्तुतियो को निश्चित रूप से पूर्ण कर देते तथा स्वीकार कर लेते हैं?

उत्तर—जिस उपासक के वचन अपनी इन्द्रियों को वश में करने के निमित्त हैं; जिसकी वाणी अमृत से भरी है और जिसकी स्तुतियां पांचों महायज्ञ आदि के करने से ब्रह्म-तेज से लाभ के लिए हैं आप उसी मनुष्यकी सम्पूर्ण बुद्धियों को सुखसे भरपूर कर देतेहैं तथा उसी की बुद्धि को तृप्त करते हैं।

चतुर्थ दशति (खण्ड)

सम्पूर्ण दशति में देवता—अग्नि। छन्द —बृहति (३६ अक्षर का ८-८ अक्षर के ३ चरण और १२ अक्षर का एक चरण) स्वर—मध्यम।

३५. यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरा गिरा च दक्षसे।

प्र प्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम्।

इस मन्त्र का ऋषि—बार्हस्पत्य तृणपाणि शंयु। इस मन्त्र में दो साम 'उपहव' नामक 'भरद्वाज' द्वारा गीत हैं तथा तीसरे साम का गायक 'श्रुष्टिगु' है और चौथे 'यज्ञायज्ञीय' साम के गायक 'वैश्वानर अग्नि' वा भरद्वाज हैं।

प्रत्येक यज्ञ में अग्नि की स्तुति की जाती है। अतः यज्ञ की प्रतिष्ठा में इस मन्त्र का विनियोग है उपमा अलंकार है।

हे मनुष्यो, तुम्हारे प्रत्येक यज्ञ में तथा प्रत्येक वचन में समर्थ तथा महान् अग्नि का गुण वर्णन हो। हम सब प्यारे मित्र के समान, मृत्युरहित, वेदों का ज्ञान देने वाले, सर्वज्ञ उस परमात्मा की प्रशंसा (गुण कीर्तन) करते हैं।

३६. पाहि नो अग्न एकया पाह्यु३त द्वितीयया।

पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो।

ऋषि—प्रागाथ भर्ग। इस मन्त्र में ३ साम हैं–पहला तथा तीसरा कर्त्तयश वा कार्तवेश दूसरा नृमेध का गाया हुआ नार्म्मेध।

हे अन्नों के पालक तथा स्वामी, हे सबके अन्दर बसने वाले तथा सबको अपने अन्दर बसाने वाले अन्तर्यामी प्रभो, आप एक ऋग्वेद रूपी वाणी से हमारी रक्षा कीजिए और दूसरी यजुर्वेद की वाणी द्वारा हमारी रक्षा कीजिये। आप तीनों प्रकार की ज्ञान, कर्म, उपासना रूप ऋग्यजुः साम की वाणियों के द्वारा हमारे रक्षक बनिये और ऋग् यजुः साम तथा अथर्व चारों वेदों की वाणी से स्तुति किये जाने पर हमारी रक्षा कीजिये। अथवा योगियों के मत से १) वैखरी—(तालु आदि से उच्चारण की गई और कानों से सुनी गई), २) मध्यमा—हृदय में स्थित अव्यक्त, ३) पश्यन्ती—लोक व्यवहार से पृथक, समाधि में उपयोग में आने वाली, स्वाभाविक ज्ञान का आधार, नित्य तथा ४) परा—जिसमें अनादि कारण ब्रह्मरूपी शब्द तत्व और उसका अक्षर विद्यमान रहता है, उसी परा वाणी में सृष्टि की आदि में परमात्मा ने वेद का उपदेश किया—इस मन्त्र में परमात्मा से चारों प्रकार की वाणियों द्वारा रक्षा की प्रार्थना की गई है।

३७. बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा।

भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ्य रेवत् पावक दीदिहि।

ऋषि—बार्हस्पत्य तृणपाणी शंयु। इस मन्त्र में पृश्नि नामक दो सामों के गायक ऋषि भरद्वाज हैं

हे दिव्य-गुण-युक्त, अत्यन्त महान्, पवित्र करने वाले और सब धनों के स्वामिन् परमात्मन्, आप अपने शुद्ध तेज से भरद्वाज=विज्ञान आदि को धारण करने वाले पुरुषार्थी मनुष्य में देदीप्यमान हो कर उसे महान् प्रकाश आदि गुणों से ऐश्वर्य, विद्या, विनय आदि धन युक्त करते हुए, प्रकाशित होइये।

३८. त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः । यन्तारो ये मधवानो जनानामूर्वं दयन्त गोनाम् ।

ऋषि–मैत्रावरुण वसिष्ठ । सामग-आंगिरस उरु । विनियोग-प्रातः अनुवाक में आश्विन शस्त्र में श्लेष अलंकार है ।

हे मन में योगद्वारा अच्छी प्रकार ध्यान किए हुए, ज्ञानस्वरूप परमेश्वर! इस संसार में जो आप की तथा अन्य पदार्थों की स्तुति (गुणवर्णन) करने वाले हैं जो विद्या आदि ऐश्वर्य से युक्त हैं, जो मनुष्यों के नेता (प्रजा के सेवक) हैं और जो गौओं के समूह की रक्षा करने वाले, वेदवाणियों के उपदेश करने वाले तथा इन्द्रियों को वश में रखने वाले मनुष्य हैं वे सब आप के प्रिय हों ।

३९. अग्ने जरितर्विश्पतिस्तपानो देव रक्षसः ।
अप्रोषिवान् गृहपते महां असि दिवस्पायुर्दुरोणयुः ।

ऋषि–बार्हस्पत्य भरद्वाज । पौरुमद्ग नामक दो सामों का गोतम वा आंगिरस पूरुमद्ग ऋषि है। प्रातर-नुवाक आश्विन शस्त्र में विनियोग है ।

हे स्तुति के योग्य तथा वेद द्वारा पदार्थों की स्तुति (गुणवर्णन) करने वाले परमात्मन् ! आप प्रजाओं के रक्षक और स्वामी हैं । हे अलौकिक ऐश्वर्य वाले, दिव्य गुणों से युक्त प्रभो ! आप राक्षसों (जो अकेला पाकर तथा रात्रिमें प्रहार करतेहैं और जिनसे अपनी रक्षा का ध्यान रखना पड़ता है,ऐसे दुष्टों को संताप देने वाले हैं) । हे गृहस्थों के पालक, हमारे घरों के स्वामी भगवन् ! आप भक्तों के हृदय में सदा निवास करते हुए सर्वत्र व्यापक होकर महान् हैं और द्युलोक आदि की रक्षा करने वाले हैं। आप सबके घरों और शरीरों की वृद्धि करने वाले होकर उपासकों के हृदयमन्दिर में वर्तमान रहते हैं ।

४०. अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य । आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवां उषर्बुधः ।

ऋषि–काण्व प्रस्कण्व । दो साम हैं जिनका गायक ऋषि 'मण्डु'है । विनियोग—नवस्तोत्रीयात्मक सन्धि स्तोत्र से स्तुति करने में बीच में व्युष्टि होगी ऐसी शंका जब हो तब इस मन्त्र रूप सन्धि स्तोत्र से स्तुति की जावे (ता० ९।३।४) ।

हे अविनाशी, वेदों के प्रकाशक, सब उत्पन्न हुए पदार्थों में निवास करने वाले, प्राणियों के जानने वाले परमात्मन् ! आप धन आदि सर्वस्व दान करने वाले त्यागी पुरुषार्थी उपासक के लिए उषा काल के प्रकाशक, सुखसाधक, अद्भुत धन - सूर्य की ज्योति को और ब्रह्म मुहूर्त्त में उपासना से उत्पन्न ज्ञानरूप धन को तथा अधिक प्रबुद्ध दिव्य गुणों को प्राप्त कराइये और प्रातःकाल में अधिक चेतना वाली ज्ञानेन्द्रियों को अच्छे कर्मों में लगाइये ।

४१. त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय ।
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ।

ऋषि–बार्हस्पत्य तृणपाणि शंयु । इस गाध नामक साम का भरद्वाज ऋषि है ।

हे सबके आधार, सर्वत्र बसने वाले ज्ञानस्वरूप परमात्मन् विचित्र शक्तिसम्पन्न, दर्शनीय तथा पूजनीय आप हमारी रक्षा करते हुए हमारे लिए विद्या बल तथा संपत्ति को और शुभ कर्मफल रूपी धनों को प्राप्त कराइये; क्योंकि आप ही इस धन के और संसार के कल्याण के प्रशंसित नेता=देने

तथा प्राप्त कराने वाले हैं और हमारे तुक् =अपत्य =न गिरने देने के लिए, समृद्धि के लिए, आत्मा की स्थिरता को तथा सन्तान के लिये प्रतिष्ठा को प्राप्त कराइये।

४२. त्वमित् सप्रथा अस्यग्ने त्रातऋतः कविः।
त्वां विप्रासः समिधान दीदिव आ विवासन्ति वेधसः।

ऋषि–विरूप और प्रागार्थ भर्ग। सामग-गोतम। विनियोग-प्रातः अनुवाक अश्विन शस्त्र।

हे रक्षक परमात्मन्! आप सर्वप्रसिद्ध, सर्वव्यापक, सत्य स्वरूप, कवि सब पदार्थों को आर-पार देखने वाले हैं। हे अपनी विभूतियों से अच्छी प्रकार प्रकाशमान ध्यान किये गये तेजस्वी परमात्मन्! बुद्धिमान् तथा विद्वान् जन आप का ही सब प्रकार से भजन, कीर्तन करते हैं।

४३. आ नो अग्ने वयोवृधं रयिं पावक शंस्यम्।
रास्वा च न उपमाते पुरुस्पृहं सुनीती सुयशस्तरम्।

ऋषि-प्रगाथ पुत्र भर्ग और शुनःशेप। इस 'आयु' नामक साम का गायक ऋषि अग्नि। विनियोग–आयुराख्य सोमयाग में। 'आयु' से देवों ने असुरों को पराजित किया इस प्रकार जानने वाला शत्रुओं को पराजित करता है। स्वर्ग की कामना से यज्ञ करे। (ता० १६,३,१,२,३)

हे पवित्र करने वाले और सर्व व्यापक होकर सृष्टि रचने वाले परमात्मन्! आप हमारे लिए आयु तथा अन्न के बढ़ाने वाले प्रशंसनीय धन तथा उत्तम जल को और अच्छी धर्म की नीति से बहुत से जनों द्वारा चाहे जाने वाले सुन्दर यशरूपी धन को भी दीजिये।

४४. यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम्।
मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्वग्नये।

ऋषि-काण्व सौभरि। इस में ४ साम हैं उनमें 'हर' नामक दो का गायक ऋषि अग्नि है और शेष दो का दीर्घश्रवाः है। विनियोग –आग्नेय ऋतु के प्रातः अनुवाक प्रकरण में।

जो मनुष्यों के लिए कर्मों के फल को देने वाला जीवन तथा आनन्द का दाता परमात्मा सब प्रकार के निवास स्थान तथा विद्या आदि धनों को उपासक जनों के लिए प्रदान करता है उसके लिए मधुर वेद के मन्त्र तथा उत्तम स्तुति वचन मधु =मधुर रस, सोम जल से भरे पात्रों के समान, मिठास से भरे रक्षा करने वाले शब्दों के समान, प्रस्तुत तथा भेंट किये जाने चाहिये।

पांचवीं दशति (खण्ड)

देवता–अग्नि (८ वें मन्त्र में भी इन्द्र रूप अग्नि) छन्द-बृहती। स्वर-मध्यम।

४५. एना वो अग्निं नमसोर्जोनपातमा हुवे। प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम्

ऋषि-वसिष्ठ, वामदेव। ४ साम हैं २ का गायक अग्नि तथा मनाज्य नामक दो का गायक गोतम। विनियोग –प्रातरनुवाक आश्विन शस्त्र।

हे मनुष्यो! मैं परमात्मा तुम्हारे लिये इस स्तोत्र (गुणवर्णन) द्वारा (और अन्न द्वारा) बल के रक्षक, सबके प्रिय, चेतना तथा बुद्धि देने वाले स्वामी, अच्छे यज्ञ =श्रेष्ठतम कर्म वाले, हिंसा-रहित, दूत =कर्मफल पहुंचाने वाले, वेद द्वारा ज्ञान का सन्देश देने वाले (दुःख-नाशक) अमर और नित्य स्वयं अपने स्वरूप का (तथा भौतिक अग्नि) का वर्णन करता हूँ।

४६. शेषे वनेषु मातृषु सं त्वा मर्तास इन्धते ।

अतन्द्रो हव्यंवहसि हविष्कृत आदिद् देवेषु राजसि ।

ऋषि–भर्ग । सामग–देवराज । विनियोग - पूर्वमन्त्रवत् ।

हे परमात्मन् ! आप जंगलों में, प्राणियों की आत्मा में, शरीरों में, आपका मान करने वाले कान्तियुक्त उपासकों में (उनके हृदयों में), माताओं के गर्भों में व्याप्त होकर (सोये हुए से, छिपकर) रहते हैं । वहाँ मननशील, मरणधर्मा, योगी मनुष्य आपको अच्छी प्रकार ध्यान द्वारा प्रकाशित करते हैं इस प्रकार सदा जागने वाले होकर आप कर्म करने वाले के देने योग्य फल को तथा भोग्य वस्तुओं को उनके लिए पहुंचाते हैं और इसके अतिरिक्त पृथिवी आदि पर सब जगह तथा विशेषकर विद्वानों की आत्मा में प्रकाशित होते हैं,

४७. अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन् व्रतान्यादधुः ।

उपोषु जातमार्यस्य वर्धनमग्निनक्षन्तुनो गिरः ।

ऋषि–सौभरि । सामग–कुशिकपुत्र गाथी । विनियोग–इस साम से स्तुति करता हुआ लौकिक वैदिक विधेय मार्ग को प्राप्त होता है (ता० ८-५-१०) अथवा अग्नि (परमेश्वर) के प्रकाशित होने पर इस साम का गान करे । (लाटचायन श्रौत सूत्र)

ज्ञानी उपासक जिस पर अपने व्रतों (कर्मों, संकल्पों तथा नियमों) का समर्पण करते हैं उन्हें उस सबसे श्रेष्ठ मार्गों के प्रदर्शक परमेश्वर का आत्मा में दर्शन हो जाता है, वह सर्वत्र दिखाई देने लगता है । हमारी वाणियाँ उस उत्तम गुणों से युक्त, अच्छी प्रकार आत्मा में साक्षात् हुए आर्यों (श्रेष्ठों) की वृद्धि करने वाले परमात्मा के प्रति व्यापक रूप से प्रकट हों ।

४८. अग्निरुक्थे पुरोहितो ग्रावाणो बर्हिरध्वरे ।

ऋचा यामि मरुतो ब्रह्मणस्पते देवा अवो वरेण्यम् ।

ऋषि-वैवस्वत मनु । दो साम हैं जिनका ऋषि बृहदुक्थ है । रूपक अलंकार है ।

जैसे कर्म काण्ड में यज्ञ कराने के लिए पुरोहित, सोम सम्पादन के लिए ग्रावा (पत्थर), बैठने के लिए बर्हि (कुशासन) और कर्म करने के लिए ऋत्विज होते हैं, उसी प्रकार प्रशंसनीय वाङ्मय (साहित्य) रूपी अहिंसामय ज्ञानयज्ञ में सर्वज्ञ परमात्मा पुरोहित सर्वव्यापक होने से सबसे आगे स्थित है । ग्रावा-शब्दों के उच्चारण में साधन कण्ठ तालु आदि स्थान परम आनन्द रुपी सोम रस निकालने वाले (पत्थर) हैं । बर्हिः -जहां ज्ञान की वृद्धि होती है, वह हृदय कुशआसन के समान है । पांच प्राण ऋत्विज के समान और दश इद्रियां देवता हैं । हे वेदों के प्रकाशक, कर्मों के रक्षक परमात्मन् ! मैं आपसे वेद-मन्त्रों के द्वारा उत्तम रक्षा की याचना करता हूँ ।

४९. अग्निमीडिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम् ।

अग्नि राये पुरुमीढ श्रुतं नरोऽग्निः सुदीतये छर्दिः ।

ऋषि–आङ्गिरस सुदीति वा पुरुमीढ (मन्त्र में आये दोनों शब्दों का अधिक अनुसन्धान तथा प्रचार करने के कारण ये ही नाम हो गये) सामग-पुरुमीढ । विनियोग–दसवें दिन अच्छा वाग् रुप प्रातः सवन में ।

हे बहुत सुख प्राप्त करने की इच्छा वाले मनुष्य ! तू अपनी रक्षा के लिए सब प्राणियों में अन्दर छिपा हुआ तेज रखने वाले, सर्वव्यापक परमात्मा की वेद-मन्त्रों तथा विज्ञान कथाओं से स्तुति कर, गुण वर्णन कर। हे मनुष्यो तथा उनके नेताओ ! धन तथा ऐश्वर्य पाने के लिए भी उसी वेद-वर्णित प्रसिद्ध परमेश्वर के गुणों का वर्णन करो। क्योंकि वही अच्छी प्रकार रक्षा के लिए तुम्हारा घर =घर के समान दुःख दूर करने वाला शरण स्थान है।

५०. श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः।
आ सीदतु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावभिरध्वरे।

ऋषि-प्रस्कण्व। सामग-कर्णश्रवा वा प्रस्कण्व विनियोग-प्रातरनुवाक आश्विन शस्त्र, रूपक अलङ्कार

हे सबकी बातें सुनने में समर्थ परमात्मन्! आप हमारी प्रार्थना को सुनिये। वह यह है कि मित्र= प्राण-वायु तथा अर्यमा=अपान वायु अपने साथियों-प्रातः ध्यान में परायण देह के वहन करने वाले, प्रकाशप्रद देवों=उदान आदि अन्य प्राणों उपप्राणों तथा दस इन्द्रियों के साथ हिंसारहित ज्ञानयज्ञ, योगाभ्यास तथा उपासना में ज्ञानवृद्धि के स्थान हृदयरूपी बर्हि (कुशासन) पर अच्छी प्रकार स्थित हों।

५१. प्र दैवोदासो अग्निर्देव इन्द्रो न मज्मना।
अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि।

ऋषि—सौभरि। सामग—दिवोदास।

द्योतमान तथा प्रकाश का दाता पिता परमेश्वर चमचमाती बिजली तथा सूर्य के समान अपनी सामर्थ्य से पृथिवी माता के सब ओर पूर्व, पश्चिम, उत्तर दक्षिण नीचे, ऊपर अच्छे प्रकार व्याप्त होकर दुःखरहित आनन्द रूप अपने स्वरूप में स्थित है।

५२. अध ज्मो अध वा दिवो बृहतो रोचनादधि।
अया वर्धस्व तन्वा गिरा ममा जाता सुक्रतो पृण।

ऋषि-मेधातिथि वा मेध्यातिथि। सामग-सुक्रतु विनियोग महाव्रतयाग में निष्केवल्य शसन में।

हे शोभन कर्म वाले परमात्मन्! आप पृथिवी के नीचे भी और विशाल, प्रकाशवान सूर्यमण्डल के ऊपर भी, सर्वव्यापक रुप से वर्तमान हैं।

आपकी महिमा मेरी इस विस्तृत वाणी द्वारा प्रकाशित होकर वृद्धि को प्राप्त हो। आप प्रसन्न हों और हमारे मनोरथों तथा प्रजाजनों को अभीष्ट फलों से पूर्ण कीजिये।

५३. कायमानो वना त्वं यन्मातृरजगन्नपः। न तत्ते अग्ने प्रमृषे निवर्तनं यद् दूरे सन्निहाभुवः।

ऋषि-विश्वामित्र। सामग-कण्व, विनियोग-प्रातरनुवाक में तथा आश्विन शस्त्रमें भक्त कहता है

हे शुभगुणों के प्रकाशक परमात्मन्! अभीष्ट की कामना करते हुए जो आप सेवनीय-स्वाध्याय आदि योग के अंगों और मातृभूत प्राणों अर्थात् परमात्मा की प्राप्ति के कारण प्राणभूत सामों को प्राप्त हुए हैं वह आपका दूर रहना मुझ से नहीं सहन किया जाता, आप दूर होते हुए भी यहाँ हमारे हृदय में ध्यान आदि द्वारा प्रकाशित होइये।

इन्हीं शब्दों में (पर अर्थ भिन्न में) परमेश्वर की उक्ति—हे जीव ! देहों का संचय करता हुआ तू जो माता के समान कर्मों में लग गया वह तेरा मोक्ष मार्ग से भ्रष्ट होना सहन नहीं होता कि तू स्वरूप से प्रकृति से दूर होते हुए भी इस संसार के बन्धन, जन्म-मरण के चक्र में पड़ गया।

५४. नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ।
दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः ।

ऋषि–कण्व मेधावी (मन्त्र में आये शब्द से विशेष सम्बन्ध होने के कारण यह नाम पड़ा) सामग-मनु ।

हे परमात्मन् ! मननशील, योगाभ्यासी मैं आप ज्योतिः स्वरूप नित्य पुरुष की प्राप्ति के लिए निरन्तर ध्यान करता हूँ तथा अनेक प्रकार के उपासकों के लिए उपदेश द्वारा उनका आत्मा में आप का प्रकाश स्थापित करता हूँ। जिन आपको सब मनुष्य नमस्कार करते हैं और उपासना करते हैं ऐसे आप सत्य ज्ञान से प्रत्यक्ष तथा महान होते हुए मुझ मेधावी में प्रकाशित हुए हैं। मुझ मेधावी में इस प्रकार प्रकाश कीजिये कि जिससे मैं सत्य से प्रसिद्ध और महान् हो जाऊं।

छठी दशति (खण्ड)

देवता–अग्नि (दूसरे मन्त्र में भी 'ब्रह्मणस्पति नामक अग्नि=परमेश्वर) छन्द—बृहती । स्वर-मध्यम ।

५५. देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्वासिचम् ।
उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद् वो देव ओहते ।

ऋषि–वसिष्ठ । इस द्रविण' नामक साम का गायक अग्नि । विनियोग–अग्निष्टोम साम में (ता० १७-१-१०) रूपक अलंकार ।

धनदाता देव परमात्मा तुम्हारी ध्यान, धारणा, समाधि रूप हवि से भरी हुई स्तुतिरूपी स्रुवा को तथा तुम्हारे भरपूर दान को स्वीकार करे। हे मनुष्यो ! तुम चाहे परमात्मा का उत्कृष्ट ध्यान करो अथवा उसके आशीर्वाद से भोग तथा मोक्षरूप अपनी इच्छा को पूरा करो। परमात्मा तो तत्काल ही तुम्हें मनचाहा परम आनन्द रूप फल देगा। तुम्हें तो जैसे चम्मच भर-भर कर हवन में घी छोड़ते हैं उसी प्रकार बहुत अधिक धन तथा भक्ति का दान करना चाहिए।

५६. प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता । अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ।

ऋषि –कण्व । सामग—बृहस्पति । विनियोग--अग्नि षोमीय प्रणयन में ।

अन्नों तथा वेदों का स्वामी परमेश्वर हम को प्राप्त हो। देवी वेदवाणी भी हमें अच्छी प्रकार प्राप्त हो। विद्वान लोग तथा ईश्वर के दिव्य गुण हमारे लिए शरीर और आत्मा के बलको देने वाले, नरों के हितकारी, मानवमात्र के लिए अन्न, धन तथा कल्याण प्राप्त कराने वाले यज्ञ तथा श्रेष्ठतम कर्मों को अच्छे प्रकार प्राप्त करावें।

५७. ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता ।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ।

ऋषि–कण्व । इस 'वीङ्क' नामक साम का गायक वसिष्ठ । विनियोग—इस मन्त्र से स्तुति करने पर साधक को युवा अवस्था के समान बल प्राप्त होता है। च्यवन को इस साम से पुनः युवा के समान बनाया गया। (ता० १४ ६-९-१०)

हे परमात्मन ! आप हमारी अच्छी प्रकार रक्षा के लिए सूर्य तथा विद्वान के समान सदा तत्पर रहिये। श्रेष्ठ भाव से युक्त होकर अन्न तथा बल के देने वाले होइये क्योंकि हम आपके गुणों का प्रकाश करने वाले छन्दों के द्वारा यज्ञ करने वाले बुद्धिमान् भक्तजनों के साथ आपका विशेष रूप से आह्वान करते हैं।

५८. प्र यो राये निनीषति मर्तो यस्ते वसो दाशत् ।

स वीरं धत्ते अग्न उक्थशंसिनं त्मना सहस्रपोषिणम् ।

ऋषि–सौभरि । सामग —आंगिरस विस्पर्धस् । विनियोग—प्रातरनुवाक आग्नेय ऋतु ।

हे धनदाता, हे अन्तर्यामी परमात्मन् ! जो मरणधर्मा मनुष्य धन विद्या और मोक्ष की प्राप्ति के लिए आप तक पहुंचना चाहता है, श्रेष्ठ कार्य करना चाहता है तथा आपसे प्रेम करना चाहता है, और इसीलिए जो अपना सब कुछ समर्पण करता है वह अपने को स्वाध्यायशील वेद का विद्वान्, हजारों (बहुतों) का पालन पोषण करने वाला तथा पुरुषार्थी बनाता है और वैसे ही पुत्र प्राप्त करता है।

५६. प्र वो यह्वं पुरूणां विशां देवयतीनाम् ।

अग्निं सूक्तेभिर्वचोभिर्वृणीमहे यं समिदन्य इन्धते ।

ऋषि–कण्व । सामग—इतवध्रि । विनियोग-प्रात-रनुवाक आश्विन ऋतु में ।

हे मनुष्यो ! परमात्मा को और विद्वानों तथा दिव्य गुणों को चाहने वाली बहुत सी तुम सब प्रजाओं के लिए हम उस महान् परमात्मा का वेदों के सूक्त रूपी वाणियों द्वारा तथा उनके साथ-२ अच्छी प्रकार वर्णन करते हैं जिसका अन्य जन भी अच्छी प्रकार ध्यान करते हैं ।

६०. अयमग्निः सुवीर्यस्येशेहि सौभगस्य । राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम् ।

ऋषि-आत्कील वा उत्कील । यह 'मनस दोह' नामक साम है, विनियोग-प्रातनुवाक अश्विन शास्त्रमें

यह आत्मा में साक्षात् किया हुआ परमात्मा अच्छी शक्ति और अच्छे भाग्य का अधिष्ठाता है । यही धन, अच्छी सन्तान, रक्षा गौ आदि पशु संपत्तिं तथा ब्राह्म तेज का स्वामी है और वही रोग, पाप विघ्न आदि शत्रुओं को विनाश करने वाले साधनों का स्वामी है ।

६१. त्वमग्ने गृहपतिस्त्वं होता नो अध्वरे । त्वं पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि यासि च वार्यम् ।

ऋषि–वसिष्ठ । इस मन्त्र के 'समन्त' नामक तीन सामों में एक का ऋषि वसिष्ठ वा वरुण है और दो का वाम्र नामक ऋषि है ।

हे परमात्मन् ! आप हमारे हिंसा रहित ज्ञान यज्ञ में घर के स्वामी और शरीर रूपी घर के पालन करने वाले यजमान और होता=कर्म-फल-दाता है । आप ही पवित्र करने वाले तथा अच्छी प्रकार चेताने वाले है जैसे कि पोता नाम का सामवेदी विशेष ऋत्विज और ब्रह्मा चतुर्वेदी ऋत्विज होता है । हे सब के द्वारा वरण किये जाने योग्य तथा सब विघ्नों के दूर करने वाले प्रभो ! आप ही यह विश्व की उत्पत्ति, स्थिति प्रलय रूपी यज्ञ कर रहे हैं और मनुष्यों के लिए कर्मों का फल पहुंचातेहैं।

६२. सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्त्तास ऊतये । अपां नपातं सुभगं सुदंससं सुप्रतूर्तिमनेहसम् ।

ऋषि–विश्वामित्र । सामग वैखानस वा आङ्गिजग

हे परमात्मन् ! ध्यान आदि के द्वारा आपके सखा हम मनन शील मनुष्य अपनी रक्षा के लिए दिव्यगुणयुक्त कर्मों का ठीक ठीक फल देने वाले, परमैश्वर्यशाली, सदा शुभ कर्म करने वाले संसार से तारने वाले, पापों तथा पापियों के विनाशक, क्रोधरहित शान्तस्वभाव आपको स्वीकार करते हैं ।

सातवीं दशति (खण्ड)

देवता —अग्नि ।

६३. आ जुहोता हविषा मर्जयध्वं नि होतारं गृहपतिं दधिध्वम् ।
इडस्पदे नमसा रातहव्यं सपर्यता यजतम् पस्त्यानाम् ।

ऋषि–श्यावाश्व वा वामदेव । सामग-श्यावाश्व । छन्द त्रिष्टुप्=११-११ अक्षरों के ४ चरण= सब ४४ अक्षर । स्वर-धैवत । विनियोग-उत्तर वेदी में अग्नि के स्थापन आदि में ।

हे उपासको ! तुम सब परमात्मा की अच्छी प्रकार उपासना करो । उसे ध्यान के द्वारा प्रसन्न करो, तथा अपने आत्मा और शरीर की शुद्धि करो । सुख के देने वाले, विश्व रूपी घर के स्वामी परमात्मा को वाणी के स्थान-वेद के वचनों में वा हृदय देश में तथा इडा नामक नाड़ी के अधिष्ठान में अच्छी प्रकार ध्यान करो । तुम्हारी भक्ति को स्वीकार करने वाले, गृहस्थों के लिए संगति करने योग्य पूजनीय परमात्मा की तुम अपने हृदय रूपी घरों के मध्य में नमस्कार के साथ सेवा करो ।

६४. चित्र इच्छिशोस्तरुणस्य वक्षथो न यो मातरावन्वेति धातवे ।
अनूधा यदजीजनदधा चिदा ववक्षत् सद्यो महि दूत्यां३ चरन् ।

ऋषि—उपस्तुत वार्ष्टहव्य वा वार्षहव्य । 'ऋतु' नामक दो साम हैं । छन्द-जगती (१२, १२ अक्षरों के ४ चरण सब ४८ अक्षर) । स्वर-निषाद । विनियोग-प्रातरनुवाक और आश्विन शस्त्र में । यह मन्त्र पहेली के रूप में है ।

प्रशंसनीय, तथा छोटे से छोटे शिशु के समान और बड़े से बड़े युवा के समान कार्य करने वाले उस महान् परमात्मा की गति, तथा जीवों के कर्मफल को पहुंचाना विचित्र ही है जो कि रक्षा के लिए किसी माता और पिता के पास नहीं जाता (स्वयम्भू है) शारीरिक अंगों से रहित उस ईश्वर द्वारा मनुष्यों की जैसे ही उत्पत्ति की जाती है वैसे ही तत्काल वह अनुमान द्वारा मनुष्यों के लिए व्यक्त हो जाता है और कर्मानुसार भोग और मोक्ष प्रदान का कार्य करते हुए सबको सब ओर से धारण करता है ।

६५. इदं त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व ।
संवेशनस्तन्वे३ चारुरेधि प्रियो देवानां परमे जनित्रे ।

ऋषि-वामदेव्य बृहदुक्थ। सामग-यम ।छन्द-त्रिष्टुप् स्वर-धैवत । विनियोग-आहवनीय में संवपन ।

हे परमात्मन् ! आपकी यह सूर्य रूपी एक ज्योति है, और दूसरी विद्युत् रूप ज्योति है, तथा तीसरी जो अग्नि रूप ज्योति है उसके साथ आप यज्ञ में हमारे ध्यान में आइये । श्रेष्ठ सुखों के उत्पादक विस्तृत यज्ञ में दिव्य गुणों के विस्तार के लिये विद्वानों के अच्छी प्रकार से प्रिय तथा अनुकूल होइये । (यजुर्वेद ३२।५ में लिखा है कि 'उस १६ गुणों से युक्त परमात्मा की तीन ज्योतियां हैं') सायणाचार्य ने जो इस मन्त्र में बृहदुक्थ के मरे पुत्र की कथा बताई है उसकी यहां गन्ध भी नहीं है ।

६६. इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।

ऋषि–आङ्गिरसं कुत्स । आर्षेय नामक एक साम का गायक ऋषि–अग्नि, कुत्स है । 'यज्ञसारथि' नामक साम है । छन्द—जगती । विनियोग-बहिष्पवमान के छठे दिन इंद्रिय, वीर्यं तथा रस के प्रति क्षरण न होने देने के लिये .... (ताण्ड्य० १३. ८. १) । उपमा अलङ्कार ।

हम पूज्य तथा वेद-प्रकाशक परमात्मा के लिये सूक्ष्म बुद्धि द्वारा मनोरंजन के साधन तथा रथ (यान) के समान अभीष्ट स्थान पर पहुंचाने वाले इस स्तुति-समूह की वृद्धि करें । इस परमात्मा की उपासना में हमारी अच्छी बुद्धि हमारा कल्याण करने वाली हो । हे परमात्मन् ! आपकी मित्रता में हम कभी कष्ट न भोगने पावें ।

६७. मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् ।
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्नः पात्रं जनयन्त देवाः ।

ऋषि–बार्हस्पत्य भरद्वाज । दो सामों का गायक वैश्वानर अग्नि । छन्द-त्रिष्टुप् । स्वर-धैवत । विनियोग- विषुवत् नाम के यज्ञाह में अग्नि मरुद्देव के सम्बन्ध में शस्त्र रूप से ।

शिर के समान श्रेष्ठ, प्रकाश वाले तथा प्रकाशरहित पृथिवी आदि लोकों के स्वामी, सब मनुष्यों के नेता सत्यज्ञानयुक्त, वेदों में अच्छी प्रकार प्रसिद्ध कवि, मनुष्यों के हृदय में अच्छी प्रकार प्रकाशमान, सबके सम्राट्, सर्वव्यापक, अतिथि के समान पूज्य, शरीर में मुख के समान श्रेष्ट मनुष्यों के रक्षक उस परमात्मा को हम विद्वान् जन सब मनुष्यों के लिये प्रकाशित करते हैं ।

६८. वि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरग्ने जनयन्त देवाः ।
तं त्वा गिरः सुष्टुतयो वाजयन्त्याजिं न गिर्ववाहो जिग्युरश्वाः ।

ऋषि–भरद्वाज । 'आश्व' नामक दो सामों का 'इटत' नामक सामगायक ऋषि है । छन्द-त्रिष्टुप् । विनियोग-विषुवन्नामक यज्ञाह में निष्केवल्य प्रयोग में । श्लेष तथा उपमा अलङ्कार ।

हे परमात्मन् ! विद्वान् तथा स्तुति करने वाले जन वेदमन्त्रों द्वारा आप के पास से अपनी अभिलषित वस्तुएं उसी प्रकार प्राप्त करते हैं जिस प्रकार बादल के एक देश से जल-धारायें प्राप्त होती हैं । हे वेदवाणी द्वारा प्राप्त करने तथा जानने योग्य परमेश्वर ! उत्तम गुण-वर्णन से पूर्ण वेद के शक्तिशाली मन्त्र आप की स्तुति (गुणों का वर्णन) उसी प्रकार करते तथा आपकी महिमा की विजय उसी प्रकार करते हैं जिस प्रकार कहने के अनुसार ले चलने वाले अश्व=घोड़े यान तथा यन्त्र युद्ध में शक्तिशाली होकर विजय प्राप्त करते हैं ।

६९. आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः ।
अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ।

ऋषि–गोतम वामदेव । सामग-वामदेव वा रुद्र । छन्द-त्रिष्टुप् । स्वर-धैवत । विनियोग-प्रातरनुवाक आश्विन शस्त्र में ।

हे मनुष्यो ! तुम सब हिंसारहित यज्ञ के स्वामी, कर्मफल के प्राप्त कराने वाले, दुष्टों के सन्तापक, द्यो तथा पृथिवी के बीच सच्चा यज्ञ (पदार्थों की संगति करने वाले, ज्योतिर्मय, हितकारी

तथा रमणीय प्रकाश वाले परमेश्वर की अपनी रक्षा के लिए बिजली के समान अकस्मात् आजाने वाली, अचेतन, ज्ञानरहित मृत्यु के आने से पहले ही उपासना करलो।

७०. इन्धे राजा समर्यो नमोभिर्यस्य प्रतीकमाहुतं घृतेन ।

नरो हव्येभिरीडते सबाध अग्निरग्रमुषसामशोचि ।

ऋषि–वसिष्ठ वैश्वज्योति नामक । छन्द त्रिष्टुप् । स्वर–धैवत । विनियोग-प्रातरनुवाक आश्विन ग्रह शस्त्र में।

स्वप्रकाशस्वरूप, स्वामी परमात्मा का नमस्कारों द्वारा भक्त के हृदय में अच्छी प्रकार से प्रकाश होता है। जिस परमात्मा का स्वरूप प्रकाश से पूर्ण है तथा भक्ति-रस द्वारा अच्छी प्रकार ध्यान किया जाता है और जिसकी बाधायें पड़ने पर मनुष्य वेदमन्त्र, अनुमान, ध्यान तथा योग-अभ्यास द्वारा स्तुति किया करते हैं वह उषाकाल, ब्राह्ममुहूर्त्त के समय हृदय में अच्छी प्रकार से प्रकाशित होकर पवित्रता प्रदान करे।

७१. प्र केतुना बृहता यात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति ।

दिवश्चिदन्तादुपमामुदानडपामुपस्थे महिषो ववर्ध ।

ऋषि-त्वाष्ट्र त्रिषिराः, 'याम' साम हैं। छन्द–त्रिष्टुप् । स्वर-धैवत । विनियोग–प्रातरनुवाक आश्विनशस्त्र तथा आग्नेय ऋतु में।

परमात्मा महान् सृष्टि-रचना रूप गुण तथा विज्ञानमय प्रकाश के साथ द्यौ से पृथिवी लोकों तक सर्वत्र व्यापक होकर अच्छी प्रकार गति कर रहा है। वृषभ—कामनाओं को पूर्ण करने वाले, ज्ञान की वर्षा करने वाले के समान वह चारों वेदों का उपदेश करता है। द्यौ लोक के अन्त तक पहुंचा हुआ भी अपनी शक्ति से अत्यन्त पास हृदय-देश में ही प्रकाशित हुआ वह कर्मों तथा ज्ञानों के बीच सामर्थ्यवान् होकर यश तथा नाम में बढ़ा हुआ है।

७२. अग्नि नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत प्रशस्तम् । दूरेदृशं गृहपतिमथव्युम् ।

ऋषि–वसिष्ठ । छन्द–विराट् त्रिष्टुप् । स्वर-धैवत । चतुर्वीर नामक यज्ञ के चौथे दिन विनियोग है। यज्ञ के लिए अग्नि किस प्रकार प्रकट की जाये यह इस मन्त्र से सूचित होता है। इस मन्त्र में दो साम-गान हैं जिनके ऋषि इन्द्र वसिष्ठ वा प्रजापति हैं। एक साम का नाम 'राशि' है और दूसरे का 'मराय'। ये प्रसिद्धि तथा वृद्धि कराने वाले हैं। इनके ऋषि च्यवन, शिखण्डी वा इन्वक हैं। रूपक अलङ्कार है।

मनुष्य दीप्ति करने वाली धारणा, ध्यान, समाधि-रूप योग-क्रियाओं से अरणियों के समान आत्मा और ओ३म् के ज्ञान तथा निर्मथन के अभ्यास द्वारा (देखिए कैवल्य उपनिषद १. ११) ध्यान तथा समाधि-रूप हाथों से प्रत्यक्ष किये हुए, प्रशंसनीय, दूर से दूर और पास से पास विद्यमान ब्रह्म-नगर तथा ब्रह्मघर—इस शरीर के पति, गतिशील सर्वव्यापक परमात्मा का आत्मा में प्रत्यक्ष करते हैं।

—०—

आठवीं दशति (खण्ड)

देवता —अग्नि (३ य मन्त्र में भी पूषा रूप अग्नि ही देवता है) छन्द-त्रिष्टु प् । स्वर-धैवत । उपमा अलंकार है ।

७३. अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।

यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सस्रते नाकमच्छ ।

ऋषि—बुध तथा गविष्ठिर । श्यैत, शयन वा शायन नाम वाले इस साम का गायक श्येन है वा दीर्घायुष्य नामक साम का प्रजापति गायक है । विनियोग—आग्नेय ऋतु आश्विनशस्त्र ।

परमात्मा उपासकों की आत्मा में साधन—योगानुष्ठान द्वारा प्रबुद्ध=उपासित किया जाता है जिस प्रकार आने वाले उषाकाल में दूध देनेवाली गाय प्रबुद्ध की जाती है । उस परमेश्वर की विभूतियाँ दुःखरहित, आनन्दमय मोक्ष पद की ओर अच्छी प्रकार फैलती हैं जिस प्रकार कि बड़े वृक्षों की शाखाओं का विस्तार हुआ करता है ।

७४. प्र भूर्जयन्तं महां विपोधां मूरैरमूरं पुरां दर्माणम् ।

नयन्तं गीर्भिर्वना धियं धा हरिश्मश्रुं न वर्मणा धनर्चिम् ।

ऋषि—वत्सप्रि । सामगान कर्त्ता-वसुक्र । विनियोग–प्रातरनुवाक तथा आश्विनशस्त्र । उपमा अलंकार ।

हे मनुष्य ! तू दुष्ट विचारों को जीतने वाले (नाशक), महान् मेधावी बुद्धिमानों की रक्षा करने वाले, मूढ अज्ञानियों से भी अविष्ठित शरीरों के आदर के साथ रक्षक, स्वयं सर्वज्ञ परमात्मा की स्तुति करने में समर्थ हो । इसके अतिरिक्त तू भजन करने योग्य बुद्धि प्राप्त कराने वाले, सूर्य की किरणों तथा सोने के समान तेजोमय, पूर्ण रक्षण से युक्त तथा विभूतिमान् परमात्मा की स्तुति रूप वेद-वाणियों से सेवा रूपी कर्म किया कर तथा उसको आत्मा में धारण कर ।

७५. शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद् विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि ।

विश्वा हि माया अवसि स्वधावन् भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ।

ऋषि—भरद्वाज । सामग—पूषा । विनियोग–चातुर्मास्य में ।

हे अन्न के रक्षक तथा स्वामी, पुष्टिकारक परमात्मन् ! आप सूर्य के समान स्वप्रकाशस्वरूप हैं । आप का शुक्र=प्रकाशमान् रूप, अग्नि तथा प्राण अन्य है तथा संगति कराने वाला रूप (सोम श्री तथा रयि) दूसरा है । तथा शुक्लगति रूप 'देवयान' नामक माग विद्वानों के प्राप्त करने योग्य दूसरा है और उससे भिन्न कृष्णगति रूप 'पितृयान' नामक मार्ग मुमुक्षुओं से त्यागने योग्य दूसरा है । ये दोनों रूप तथा मार्ग परस्पर विषम रूप दिन तथा रात के समान हैं । आप सभी मायाओं=सृष्टियों की तथा बुद्धिमानों की बुद्धियों की रक्षा करते हैं । आपकी प्रशसनीय मोक्ष प्रदान करने की क्रिया इस लोक में हमारे लिए कल्याणकारिणी होवे ।

७६. इडामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।

स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ।

ऋषि–विश्वामित्र । सामगान कर्त्ता –कुत्स ऋषि । विनियोग–प्रातरनुवाक आश्विनशस्त्र ।

हे परमात्मन् ! आप बहुत कर्मों से युक्त तथा इन्द्रियों को पुष्ट करने वाली, गौओं आदि सम्पत्ति तथा विद्या, ज्ञान आदि को प्राप्त कराने वाली, प्रशंसनीय वाणी को तथा अन्न को निरन्तर भक्ति करने वाले उपासक के लिए प्राप्त कराइये । हे परमेश्वर ! आपकी कृपा से हमारे पुत्र तथा पौत्र वंश का विस्तार करने वाले तथा विद्या-सुख के प्रचारक हों । आपकी कृपा करने वाली बुद्धि हमारे लिए प्रकाश देने वाली हो ।

७७. प्र होता जातो महान्नभोविन्नृषद्मा सीददपां विवर्ते ।

दधद्यो धायी सुते वयांसि यन्ता वसूनि विधते तनूपाः ।

ऋषि – वत्सप्रि । सामग–कश्यप । विनियोग–पूर्ववत् ।

जो परमात्मा कर्मों के फल को प्राप्त कराने वाला, प्रसिद्ध, सद्गुणों से पूज्य, आकाश में सर्वत्र व्यापक तथा उसको उत्तम रूप से जानने वाला, मनुष्यों के हृदयों में निवास करने वाला है, वही अन्तरिक्ष में तथा सब प्रजाओं में वर्तमान है । जो सब जगत् को धारण कर रहा है वही तुझ उपासक के लिए अन्न, आयु तथा सुखों को धारण करावे । शरीर का रक्षक तथा सबका नियन्ता परमेश्वर तुझ परिचर्या करने वाले के लिए धन आदि सुख-साधन प्रदान करे ।

७८. प्र सम्राजमसुरस्य प्रशस्तं पुंसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य ।

इन्द्रस्येव प्र तवसस्कृतानि वन्दद्वारा वन्दमाना विवष्टु ।

ऋषि—वसिष्ठ । सामग–आङ्गिरस घृताचि ।

मनुष्य का कर्तव्य है कि वह प्राणप्रद, पौरुषयुक्त, मनुष्यों के द्वारा स्तुति करने योग्य, शक्तिशाली, सूर्य के समान परमात्मा के उत्कृष्ट शोभनीय स्वरूप को जाने और उसके स्तुति प्रमुख, सबके द्वारा स्तुति किये जाने योग्य कर्मों को करने की अभिलाषा करे ।

७९. अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इवेत् सुभृतो गर्भिणीभिः ।

दिवेदिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ।

ऋषि–विश्वामित्र । प्रासाह नामक सामगान का भरद्वाज ऋषि । वरुणप्रघास आदि याग में अग्नि-प्रणयन आदि कार्य में विनियोग है । उपमा अलङ्कार है ।

वेदप्रकाश, प्राणियों का जानने वाला वह परमात्मा अरणियों (अग्नि प्रज्वलित करने वाली दो समिधाओं) के समान आत्मा और प्रणव (ओ ३ म्) के मध्य में उसी प्रकार स्थित है जिस प्रकार गर्भवती स्त्रियों के द्वारा गर्भ अच्छी प्रकार अदृश्य रूप से धारण किया जाता है । वह परमात्मा प्रतिदिन सावधान तथा भक्ति-साधन-सम्पन्न मनुष्यों के द्वारा स्तुति किये जाने योग्य है ।

८०. सनादग्ने मृणसि यातुधानान् न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।

अनु दह सह मूरान् क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ।

ऋषि–पायु । इस 'राक्षोघ्न' नामक सामगान का वैश्वानर अग्नि का अत्रि ऋषि है । राक्षसों के हनन के लिये जप आदि में विनियोग है ।

हे परमात्मन् ! आप चिरकाल से पीडादायक बाहर और अन्दर के शत्रुओं को नष्ट करने वाले हैं। वे राक्षस (काम-क्रोध आदि) आध्यात्मिक संग्रामों में आपको नहीं जीत सकते। आप उन माँस-भक्षक दुष्ट रोगों तथा दुर्गुणों को अपने तेज से भस्म कर दीजिये। आपके दिव्य सामर्थ्यरूपी शस्त्र से वे बच न पावें।

नवमी दशति (खण्ड)

देवता--अग्नि। छन्द-अनुष्टुप् (आठ-आठ अक्षर के चार चरण=कुल ३२ अक्षर) स्वर-गान्धार।

८१. अग्न ओजिष्ठमा भर द्युम्नमस्मभ्यमध्रिगो। प्र नो राये पनीयसे रत्सि वाजाय पन्थाम्।

ऋषि—गयत्रि। 'पाथ' नामक दो साम हैं। विनियोग—प्रातरनुवाक तथा आश्विनशस्त्र में।

नहीं रुकी हुई गतिवाले, अक्षय शक्तिशाली परमात्मन्! आप अत्यन्त बलयुक्त ज्ञानरूप धन हमारे लिये प्रदान कीजिये और प्रशंसनीय धन तथा अन्न के पाने के लिये हमको उपाय तथा मार्ग बताइये तथा तैयार कीजिये।

८२. यदि वीरो अनुष्यादग्निमिन्धीत मर्त्यः। आजुह्वद्धव्यमानुषक् शर्म भक्षीत दैव्यम्।

ऋषि—वामदेव वा भरद्वाज। इस बृहत् नामक सामगान का अग्नि के आधान में विनियोग है।

यदि मनुष्य परमात्मा का ध्यान करे और उस परमात्मा की निरन्तर अच्छी प्रकार उपासना करता रहे तथा आत्म-समर्पण कर दे तो वह वीर होकर श्रेष्ठ सुखों तथा मोक्ष के आनन्द को भोग सकता है।

८३. त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिवि सञ्छुक्र आततः।
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे।

ऋषि—भरद्वाज। इस 'याम' नामक साम का विनियोग धूम के उदय होने पर है (लाट्यायन श्रौतसूत्र)। उपमा अलंकार है।

हे पवित्र करने वाले परमात्मन्! प्रदीप्त तथा तेजस्वी आपका शुद्धि करने वाला तथा दुष्टों को कंपाने वाला बल और मन्यु समस्त आकाश में तथा दिव्यगुणों में फैल रहा है। आप निश्चय ही सूर्य के समान सामर्थ्य युक्त दीप्ति से सब जगह प्रकाशित हो रहे हैं।

८४. त्वं हि क्षैतवद् यशोऽग्ने मित्रो न पत्यसे। त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि।

ऋषि—भरद्वाज। इस 'बृहत्' नाम सामगान का प्रातरनुवाक तथा आश्विनशस्त्र में विनियोग है। उपमा अलंकार।

हे विशेष रूप से सब के देखने वाले, जगत् के आधार परमात्मन्! आप सूर्य तथा मित्र के समान, पृथिवी के हितकारी तथा सबको जीवन धारण कराने वाले अन्न, धन तथा बल के स्वामी हैं (हम उसे प्राप्त करें)। आप उस अन्न धन तथा यश को पुष्टिकारक वस्तुओं के समान हा बढ़ाते हैं।

८५. प्रातरग्निः पुरुप्रियो विश स्तवेतातिथिः। विश्वे यस्मिन्नमर्त्ये हव्यं मर्तास इन्धते।

ऋषि—मृक्तवाहा द्वित। कुमुद का पुत्र बृहत् इस साम का गायक है। विनियोग—प्रातरनुवाक आश्विनशस्त्र में।

सब का प्यारा, भक्त को धन देने वाला, समस्त प्रजा का पूज्य, सदा गतिशील परमात्मा की विशेष रूप से प्रातःकाल के समय स्तुति करनी चाहिए जिस अमर प्रभु के लिए सब मरणधार्मा मनुष्य देने योग्य शुभ कर्मफल को समर्पित कर देते हैं।

८६. यद् वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो। महिषीव त्वद् रयिस्त्वद् वाजा उदीरते।

ऋषि—वसूयु आत्रेय (अनेक)। वाहिष्ठीय और मंहिष्ठीय नामक इन दो सामों का गायक अग्नि ऋषि है। विनियोग—प्रातरनुवाक और आश्विन शस्त्र में—विशेष रूप से तो अश्वमेध याग के पौष्णेष्टि में स्विष्टकृत् प्रकरण में याज्या रूप से।

जो प्राप्त करने योग्य तथा समर्पित करने योग्य भक्ति रूप धन है वह परमेश्वर के लिए भेंट है। हे विशेष प्रकाश युक्त परमात्मन्! आप सबसे अधिक प्रकाशित होइये और धन तथा अन्न हमारे लिए प्रदान कीजिये। जैसे पृथिवी से अन्न आदि उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार महान् आपके पास से धन, अन्न और बल उत्कृष्ट रूप से प्राप्त होते हैं।

८७. विशो विशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम्।
अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः।

ऋषि—गोपवन वा सप्तवध्रि। इस 'विशो विशीय' नामक साम का अग्नि ऋषि है अथवा इडा-पुष्टि-अन्न से युक्त इस साम का नाम 'शार्ग' है। विनियोग—व्योप्रविश्वदेवस्तुद्याग में पञ्च शारदीय प्रकरण में आज्यशस्त्र रूप से।

हे अन्न और बल के चाहने वालो पुरुषो! प्राणिमात्र के पूज्य, सर्वव्यापक, सबके प्यारे, घर तथा शरीर के हितकारी जिस परमात्मा से अन्न तथा बल की याचना करते हो मैं (परमेश्वर अथवा उपासक) उसी की बल तथा सुख के लाभ के लिये मनन करने योग्य वेदमन्त्रों से तुम्हारे लिये स्तुति (गुण-वर्णन) करता हूँ।

८८. बृहद् वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्नये। यं मित्रं न प्रशस्तये मर्तासो दधिरे पुरः।

ऋषि—आत्रेय पुरु। 'कनीनिका' नामक दो सामों का प्रजापति वा अत्रि ऋषि है। प्रातरनुवाक और आश्विनशस्त्र में विनियोग है।

हे मनुष्य! तू उसी प्रकाशमान दिव्य गुणयुक्त परमात्मा के लिए अपनी सारी आयु और अपने महान् प्रेम को भेंट कर दे, जिसको मननशील मनुष्य उत्तम कीर्ति के कारण मित्र (=बन्धु तथा सूर्य) के समान मानकर स्तुति के लिए सदा साक्षात् किये रहते हैं।

८९. अगन्म वृत्रहन्तमं ज्येष्ठमग्निमानवम्। यः स्म श्रुतर्वन्नार्क्षे बृहदनीक इध्यते।

ऋषि—आत्रेय गोपवन। श्रौतर्वण साम है। विनियोग पूर्ववत्।

हम रोग, पाप आदि दुष्टों के विनाश करने वाले, महान्, श्रेष्ठ, मनुष्यों के हित करने वाले उस परमात्मा को प्राप्त होते हैं।

वह प्रसिद्ध तथा व्यापक किरणों वाले सूर्य में, नक्षत्रों के समूह में तथा अन्य तेजोमय लोकों और महासमुद्र तथा आकाश में सर्वत्र प्रकाशित हो रहा है।

९०. जातः परेण धर्मणा यत् सवृद्भिः सहाभुवः ।
पिता यत्कश्यपस्याग्निः श्रद्धा मातामनुः कविः ।

ऋषि—वामदेव, कश्यप, मनु । इस 'स्वयोनि' नामक साम का कश्यप ऋषि है, वा 'इन्द्रिय' तथा 'प्रिय' नाम के इस साम का इन्द्र ऋषि है । अग्नि के आधान के प्रकरण में अग्नि की स्तुति में विनियोग है ।

जो परमात्मा सूर्य का भी उत्पन्न करने वाला तथा योगियों का रक्षक है और जो आकाश आदि पञ्चभूतों के साथ मिला हुआ—प्रकृति में सर्वव्यापक, श्रेष्ठ, तपस्या आदि कर्मों से आत्मा में प्रत्यक्ष किया जाता है उसको श्रद्धा=आस्तिक बुद्धि और क्रान्तदर्शी मननशील मन माता के समान प्रकट करने वाले हैं—अर्थात् श्रद्धा तथा मनन से ही उसका साक्षात्कार होता है । तथा मननशील वेदज्ञ कवि पुरुष ही परमात्मा का मान करने वाला=ठीक प्रकार पता लगाकर वर्णन करने वाला होता है ।

दशमी दशति (खण्ड)

देवता—अग्नि । छन्द—अनुष्टुप् । स्वर–गान्धार ।

९१. सोमं राजानं वरुणमग्निमन्वारभामहे । आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ।

ऋषि—तापस अग्नि । सामग-बृहस्पति । विश्वेदेवाः के रूप में अग्नि देवता । विनियोग—महाव्रत याग में अग्निमारुतशस्त्र रूप से ।

सोम=सब जगत् के उत्पादक, प्रकाशमान, स्वीकरणीय नाशरहित, व्यापक, सबको प्रेरणा देने वाले, महान्, वेदों के पति, अग्रणी परमात्मा को हम रक्षा के लिए प्रतिदिन स्मरण करते तथा बुलाते हैं ।

९२. इत एत उदारुहन् दिवः पृष्ठान्या रुहन् । प्र भूर्जयो यथा पथोद् द्यामङ्गिरसो ययुः ।

ऋषि—वामदेव । सामग-अङ्गिराः वा यम । देवता—अङ्गिरस रूप में अग्नि । प्रेष रूप से विनियोग है ।

ये अङ्गिरस=आंग के समान अङ्गों में वीर रस भरे हुए ब्रह्मवेत्ता तपस्वी यहाँ से प्रकाशमय स्थानों को प्राप्त होकर श्रेष्ठ से श्रेष्ठ लोकों को और अन्त में ब्रह्मलोक मोक्षपद को उसी प्रकार प्राप्त कर लेते हैं जिस प्रकार पृथिवी के जीतने वाले राजा लोग विजय के पश्चात् श्रेष्ठ मार्गों पर चला करते हैं ।

९३. राये अग्ने महे त्वा दानाय समिधीमहि ।
ईडिष्वा हि महे वृषन् द्यावा होत्राय पृथिवी ।

ऋषि—वामदेव । सामग-असित । प्रेषरूप से विनियोग ।

हे मन चाहे सुखों की वर्षा करने वाले परमात्मन् ! महान् ऐश्वय प्राप्ति के लिए तथा अपनी भक्ति का दान करने के लिए हम आपका अच्छी प्रकार से ध्यान करते हैं । आप बड़े बड़े यज्ञ=श्रेष्ठतम कर्मों के करने के निमित्त द्यौलोक और पृथिवी लोक के गुणों का हमारे लिए वर्णन कीजिये ।

९४. बधन्वे वा यदीमनु वोचद् ब्रह्मेति वेरु तत् ।
परि विश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभुवत् ।

ऋषि—सोमाहुति । सामगायक-त्वष्टा । विनियोग-प्रातरनुवाक में, आश्विनशस्त्रमें—आग्नेय ऋतु में । अभिप्लविक के दूसरे दिन अथवा चौबीसवें दिन आज्यशस्त्र रूप में ।

ब्रह्मयज्ञ करने वाला मनुष्य परमात्मा को लक्ष्य करके जिस यज्ञ आदि को धारण करता है और जो वेदरूपी स्तोत्र का पाठ करता है उस सबको वह परमेश्वर जानता है और स्वीकार करता है। जिस प्रकार रथ के पहिये का परिधि (हाल) पहिये को सब ओर से घेरे रहता है उसी प्रकार वह परमात्मा सब सृष्टि की रचनाओं में तथा वेदरूपी काव्यों में व्यापक होकर स्थिर है ।

९५. प्रत्यग्ने हरसा हरः शृणाहि विश्वतस्परि । यातुधानस्य रक्षसो बलं न्युब्ज वीर्यम् ।

ऋषि—पायु । इस 'रक्षोघ्न' नामक साम का ऋषि अगस्त्य है। प्रातरनुवाक आश्विनशस्त्र में विनियोग है ।

हे परमात्मा ! आप विश्व में फैले पीडादायक रोगों तथा हिंसक दुष्ट पुरुषों के, दूसरों का प्राण हरण करने वाले अत्याचार रूपी बल को अपने तेज से नष्ट कर दीजिए और दुष्टों तथा रोगों की शक्ति को भग्न कर दीजिये ।

९६. त्वमग्ने वसूँरिह रुद्राँ आदित्यां उत । यजास्वध्वरं जनंमनुजातंघृतप्रुषम् ।

ऋषि—प्रस्कण्व । सामगायक–मनु । विनियोग–प्रातरनुवाक और आश्विनशस्त्र में । विशेषकर गर्ग त्रिरात्र याग के शिष्ट दिन में ।

हे परमात्मन् ! आप इस संसार में २४ वर्ष तक ब्रह्मचर्य रखने वाले 'वसु' नामक, ४४ वर्ष तक ब्रह्मचर्य रखने वाले 'रुद्र' नामक तथा ४८ वर्ष तक ब्रह्मचर्य रखने वाले 'आदित्य' नामक विद्वानों से और सबके रक्षक, अहिंसक, यज्ञ का अनुष्ठान करने वाले, मनन करने की शक्ति से उन्नतिशील और ज्ञान, कर्म तथा तेज से पूर्ण जनों से हमारा सत्सङ्ग कराइये ।

—०—

दूसरा प्रपाठक

(९७ से १९३ मन्त्र तक)

पहली दशति ग्यारहवां (खण्ड)

देवता--अग्नि । पाँचवें मन्त्र में 'पवमान'=पवित्र करने वाला अग्नि तथा छठे मन्त्र में 'अदिति' =अखण्डनीय अग्नि ही देवता है। उष्णिक् छन्द ८-८ अक्षर के पहले और दूसरे चरण तथा १२ अक्षर का तीसरा चरण=कुल २८ अक्षर । ऋषभ-स्वर ।

९७. पुरु त्वा दाशिवां वोचेऽरिरग्ने तव स्विदा । तोदस्येव शरण आ महस्य ॥

ऋषि—दीर्घतमाः । इस मन्त्र में पांच सामगान हैं, जिनमें दो का ऋषि तोद है और तीन का दीर्घतमा अथवा पांचों का ही 'तोद' वा 'दीर्घतमस' ऋषि है (आर्षेय ब्राह्मण) । प्रातरनुवाक में विनियोग है । उपमा अलंकार ।

हे परमात्मन् ! बड़े शिक्षक तथा गृहस्थ के आश्रम में जिस प्रकार शिष्य तथा सेवक रहता है उसी प्रकार सर्वस्व दान कर देने वाला भक्त सेवक मैं आप स्वामी की ही शरण का सहारा लेता हूँ और आपकी ही बहुत प्रकार से स्तुति करता हूँ ।

९८. प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽग्नये भरता बृहत् । विपां ज्योतींषि बिभ्रते न वेधसे ॥

ऋषि—विश्वामित्र । 'प्रहित' नामक दो सामों का 'श्यावाश्व ऋषि है । विनियोग पूर्ववत् ।

हे मनुष्यो ! बुद्धिमान् के तेजों तथा सूर्य आदि प्रकाशों को धारण करने वाले सबके विधाता के समान—अपने समान स्वय-अनुपम सुखदायक परमात्मा के लिए तुम बड़े ज्ञान से युक्त वेदमन्त्रों का उच्चारण करो ।

९९. अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो । अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ॥

गोतम—ऋषि । प्रजापति ऋषि के दो सामगान हैं—श्रुधी, श्रुद्धी; श्रुद्धा अथवा सत्य जिनका नाम है ।

हे बल के पुत्र, आत्मबल के पालक परमात्मन् ! आप गौ आदि पशुओं के तथा प्रकाश, अन्न और विज्ञान के स्वामी हैं । हे सर्वज्ञ तथा प्रकाश से बुद्धितत्त्व को फैलाने वाले प्रभो ! आप हमारे लिए बहुत-सा ज्ञान तथा अन्न दीजिये ।

१००. अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवान् देवयते यज । होता मन्द्रो वि राजस्यति स्रिधः ॥

ऋषि—विश्वामित्र । सामगायक प्रजापति के तीन सामगान हैं । एक का नाम—'सद' और दूसरे तथा तीसरे का नाम हविर्द्धान है । शेष पूर्ववत् ।

हे परमात्मन् ! सबसे श्रेष्ठ यज्ञों के करने वाले, कर्मफल-दाता तथा आनन्ददायक आप हिंसा-रहित श्रेष्ठ कामों में विद्वानों की संगति और दिव्य गुण-कर्म-स्वभावों को चाहने वाले पुरुष के लिये दिव्य गुणों को प्राप्त कराइये । आप काम, क्रोध आदि शत्रुओं पर शासन कर हमारी उपासना में विशेष रूप से प्रकाशित होइये ।

१०१. जज्ञानः सप्त मातृभिर्मेधामाशासत श्रिये । अयं ध्रुवो रयीणां चिकेतदा ॥

ऋषि त्रित । सामगान कर्त्ता त्वष्टा । शेष पूर्ववत् ।

गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप् और जगती—इन सात छन्दों से तथा सात ज्ञान-साधनों और सात मुख्य प्राणों से साक्षात् किया गया यह ध्रुव, नित्य परमात्मा हमारे कल्याण के लिये उपदेश देता है तथा धन-ऐश्वर्यों का स्वामी और देने वाला है ।

१०२. उत स्या नो दिवा मतिरदितिरूत्या गमत् । सा शन्ताता मयस्करदप स्रिधः ॥

इरिम्बिठि—ऋषि । सामगायक—अदिति । विनियोग पूर्ववत् ।

परमेश्वर की कृपा से वह अखण्डनीय, दृढ़ मननशक्ति तथा बुद्धि प्रतिदिन हमारी रक्षा के लिये प्रकाशार्थ हमें प्राप्त हो और शान्तिदायक सुखको प्रदान करे तथा अविद्या आदि शत्रुओं को नष्ट करे।

१०३. ईडिष्वा हि प्रतीव्यां३ यजस्व जातवेदसम् । चरिष्णुधूममगृभीतशोचिषम् ।।

ऋषि—विश्वमना । सामगायक—वृकजम्भा । विनियोग पूर्ववत् ।

हे मनुष्य ! तू काम-क्रोध आदि आत्मा के शत्रुओं के विनाशक, सर्वज्ञ, वेदोंके प्रकाशक, अविद्या-नाशक तेज से युक्त, व्यापक ज्ञान-साधनों से सम्पन्न, नित्य, तेजस्वी, अमर परमात्मा के गुणों का वर्णन कर तथा उसी की पूजा कर ।

१०४. न तस्य मायया च न रिपुरीशीत मर्त्यः । यो अग्नये ददाश हव्यदातये ।।

ऋषि—विश्वमना । इस 'राक्षोघ्न' नामक साम का 'अगस्त्य' ऋषि है ।

उस मनुष्य को कभी कोई शत्रु, रोग आदि अथवा काम-क्रोध आदि अथवा दुष्ट पुरुष छल से भी वश में नहीं कर सकता जो कि ज्ञानदाता परमात्मा के लिए अपने आपको समर्पित (भेंट) कर देता है ।

१०५. अप त्यं वृजिनं रिपुं स्तेनमग्ने दुराध्यम् । दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम् ।।

ऋषि—भरद्वाज ऋजिष्वा । 'सौमक्रतव' और 'बृहदाग्नेयीय' नामक साम है । विनियोग—दशरात्र याग के चौथे दिन प्र-उग शस्त्र रूप से ।

हे सज्जनों के पालक परमात्मन् ! आप उस त्यागने योग्य पापी शत्रु चोर, दुःख देने वाले मनुष्य को दूर से दूर कीजिये अथवा उसको अच्छे मार्ग पर चलने वाला बनाइये और हमारा मार्ग सुगम कीजिये ।

१०६. श्रुष्ट्यग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्पते । नि मायिनस्तपसा रक्षसो दह ।।

विश्वमना—ऋषि । 'राक्षोघ्न' सामगान का अगस्त्य ऋषि है । शेष पूर्ववत् ।

हे वीर, प्रजा के रक्षक, परमात्मन् ! आप मेरे इस समय के स्तोत्र को सुनिये और शीघ्र ही छली-कपटी राक्षसों तथा रोगों और पापों को अपने तेज से पूरी तरह से भस्म कर दीजिए ।

दूसरी दशति बारहवां खण्ड

देवता—अग्नि । छन्द—ककुप् उष्णिक् (जिसमें पहला ८ अक्षर का दूसरा १२ अक्षर का और तीसरा आठ अक्षर का चरण हो, ऐसा उष्णिक् । स्वर—ऋषभ ।

१०७. प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे । उपस्तुतासो अग्नये ।।

ऋषि—सोभरि, प्रयोग भार्गव । सामगायक—इन्द्र वा वसिष्ठ वा असित । विनियोग—प्रातरनुवाक तथा आश्विनशस्त्र में ।

हे समीप पहुंचे हुए स्तुति करने वाले मनुष्यो ! तुम सब श्रेष्ठ दानी, श्रेष्ठतम सृष्टिरूपी यज्ञ रचने वाले, सत्यस्वरूप, शुद्ध, तेजस्वी महान् परमात्मा का उत्तम रूप से गुणगान करो ।

१०८. प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः । यस्य त्वं सख्यमाविथ ।।

सौभरि—ऋषि। इस वाजभृत्, वाजामृत् अथवा 'वाजाभर्मीय' नामक सामका ऋषि भरद्वाज है। आभिप्ल विक उक्थ में प्रशास्ता से पढ़े जाने वाले शस्त्र में विकल्प से विनियोग है।

हे परमात्मन्! आप जिस मनुष्य के साथ सखा-भाव को प्राप्त होते हैं वह उत्तम शक्तिसम्पन्न रक्षा के साधनों द्वारा और अन्न के उत्पादन, ज्ञान-सम्पादन तथा बल के साधनों से सब विघ्नों को पार कर जाता है।

१०९. तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे। देवत्रा हव्यमूहिषे ॥

ऋषि तथा सामगायक—सौभरि। महाव्रत याग के निष्केवल्य प्रयोग में विनियोग है।

हे मनुष्य! विद्वान् जिसका ध्यान करते हैं, ऐसे सुख के नेता, दिव्य, स्वामी परमात्मा की तू स्तुति कर। वह परमात्मा देवताओं-विद्वानों,पञ्चभूतों और इन्द्रियोंमें शक्ति, ज्ञान आदि पहुंचाता है।

११०. मा नो हृणीथा अतिथिं वसुरग्निः पुरुप्रशस्त एषः। यः सुहोता स्वध्वरः ॥

ऋषि—सौभरि अथवा प्रयोग। सामगायक पत्थ।

हे मनुष्य! तू उस पूज्य सर्वव्यापक परमात्मा से दूर न हट। उसको निकट समझकर उसका ध्यान कर। वह बड़ी प्रशसा तथा आदर के योग्य सबमें बसा हुआ तथा सबको बसाने वाला परमात्मा है जो अच्छे पदार्थों का देने वाला और हिंसारहित कामों का करने वाला है।

१११. भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः। भद्रा उत प्रशस्तयः ॥

ऋषि—सौभरि। सामगायक—देवानीक। विनियोग उक्थक्रतु में तृतीय सवन में प्रशास्तृ व्यवहार्यशस्त्र रूप से।

अच्छी प्रकार से ध्यान किया हुआ परमेश्वर और हवन किया हुआ अग्नि हमारा कल्याण करने वाला हो। हे उत्तम ऐश्वर्य शाली परमेश्वर! हमारा हिंसारहित यज्ञ, हमारा दान और हमारी स्तुतियाँ भी कल्याणकारिणी हों।

११२. यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम्। अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥

सौभरि—ऋषि। सामगानकर्ता—गोतम वा सध्य। विनियोग—पूर्ववत्।

हे परमात्मन्! हम उपासक इस श्रेष्ठतम सृष्टि-रूपी यज्ञ के अच्छे प्रकार करने वाले, पूज्य, सर्वश्रेष्ठ, देवों के भी देव महादेव, सुख के देने वाले, अविनाशी आपको स्मरण तथा स्वीकार करते हैं।

११३. तदग्ने द्युम्नमा भर यत् सासाह सदने कं चिदत्रिणम्। मन्युं जनस्य दूढ्यम् ॥

ऋषि—सौभरि। 'संवर्ग' नामक सामका जमदग्नि ऋषि है।

हे परमात्मन्! आप हमारे लिए ऐसे बल तथा अन्न आदि धन को प्राप्त कराइये जो हमारे घर में आने वाले सभी चोर-पापी आदि दुष्ट पुरुषों को दबा सके और ऐसा ज्ञान दीजिये जो हमारे हृदय में वर्तमान, बुद्धि के नाशक, अभ्यासी जन के शत्रु, अज्ञान क्रोध आदि को नष्ट कर सके।

११४. यद्वा उ विश्पतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशे। विश्वेदग्निः प्रति रक्षांसि सेधति ॥

विश्वमना — ऋषि ।

जब कि प्रजा का पालक सूक्ष्म परमेश्वर मनुष्य के हृदय-रूपी घर में भक्ति द्वारा अनुकूल तथा प्रसन्न किया जाता है तभी वह सभी विघ्नकारक दुष्टों तथा रोगों आदि को निवृत्त करता है।

—०—

ऐन्द्र पर्व (काण्ड) द्वितीय अध्याय

(११५ से ६६ मन्त्र तक) (११५ से २३२ मन्त्र तक)

देवता—इन्द्र। छन्द–गायत्री।

तीसरी दशति प्रथम खण्ड

ऋषि—१ शंयु बार्हस्पत्य, भरद्वाज। २, ४, ५ श्रुकक्ष। ३ हर्यत प्रागाथ। ६ इन्द्रमातरः देवजामयः। ७, ८ गोषूक्ति तथा अश्वसूक्ति। ९, १०' आङ्गिरस मेधातिथि + काण्व प्रियमेध।

११५. तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने। शं यद्गवे न शाकिने ॥

यहाँ अन्तरात्मा के लिये प्रेष आज्ञा है तथा उपमा अलङ्कार है। हे जीवात्मा, तू स्वयं तथा अन्यों के साथ मिलकर अपने आध्यात्मिक यज्ञ (उपासना) में उस स्तुति का गान कर, जो कि स्तोता के लिये कल्याणकारी है और सदा एकरस रहने वाले, बलशाली सत्यस्वरूप, काम-क्रोधादि नाशक, दुष्टों की ताड़ना करने वाले शक्तिमान् इन्द्र=ऐश्वर्यशाली परमात्मा के लिये उसी प्रकार की जाती है जिस प्रकार गौ, पृथिवी तथा वाणी के निमित्त बैल, किसान, राजा तथा विद्वान् की स्तुति (गुणचर्चा) की जाती है।

११६. यस्ते नूनं शतक्रतविन्द्र द्युम्नितमो मदः। तेन नूनं मदे मदेः ॥

इसमें यमक तथा अनुप्रास अलङ्कार है। 'मद' शब्द का तीन बार प्रयोग तो बहुत ही मधुर प्रतीत होता है।

सैकड़ों (असंख्य) बुद्धियों तथा कर्मों से युक्त हे परमात्मन्! जो आपका निश्चय ही अत्यन्त ऐश्वर्यशाली आनन्द है उसके द्वारा परमानन्द रूपी मोक्षसुख में मग्न कर आप हमको भी अवश्य आनन्दित करें।

११७. गाव उप वदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा। उभा कर्णा हिरण्यया ॥

हमारी वाणियाँ रक्षक परमेश्वर का गुणगान करें। श्रेष्ठतम कर्मों के करने के लिये बनी हुई यह विशाल पृथिवी उत्तम फल देने वाली तथा वेदवाणी से भरपूर हो। पृथिवी और द्यौलोक तथा माता भूमि और पिता परमेश्वर दोनों हमारे लिए प्रकाशमय-पद प्राप्त कराने में साधन हैं।

११८. अरमश्वाय गायत श्रुतकक्षारं गवे। अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥

हे वेदज्ञान को हृदय में धारण करने वाले मनुष्यो! तुम सब शीघ्र सब स्थानों पर पहुंच जाने वाले साधन मन के गुणों की अच्छी प्रकार वर्णन करो। ज्ञान-स्वरूप आत्मा तथा इन्द्रियों के गुणों को अच्छी प्रकार समझो और ऐश्वर्यशाली परमात्मा के सत्, चित्, आनन्द-स्वरूप का अच्छी प्रकार गान करो।

११९. तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषा वृषभो भुवत् ।।

बड़े हिंसक पुरुषों तथा काम, क्रोध आदि वृत्रों के नाश के लिये हम उस ऐश्वर्यशाली परमात्मा का ज्ञान प्राप्त कर आत्मिक बल प्राप्त करते हैं। वह ज्ञान और आनन्द को बरसाने वाला वास्तव में समर्थ है।

१२०. त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः । त्वं सन् वृषन् वृषेदसि ।।

हे इन्द्र परमेश्वर ! आप बल, सहनशक्ति तथा ओज रखने के कारण प्रसिद्ध हैं। हे सुख की वर्षा करने वाले प्रभो ! आप वास्तवमें सब के मूलकारण सर्वश्रेष्ठ तथा आनन्द की वर्षा करनेवाले हैं।

१२१. यज्ञ इन्द्रमवर्धयद् यद्भूमिं व्यवर्तयत् । चक्राण ओपशं दिवि ।।

उपासना-रूपी ब्रह्मयज्ञ से ईश्वर की भक्ति में वृद्धि होती है। वह परमेश्वर सर्वत्र भूमिमें व्यापक है और द्योलोक तक में उसकी महिमा का विस्तार हो रहा है।

१२२. यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् । स्तोता मे गोसखा स्यात् ।।

हे परमेश्वर ! जिस प्रकार आप अकेले ही ज्ञान, जीवन तथा धन के स्वामी हैं उसी प्रकार मैं भी हो जाऊं। इन्द्रियों तथा वाणी का साथी मेरा मन आपकी स्तुति करने वाला होवे।

१२३. पन्यंपन्यमित् सोतार आ धावत मद्याय । सोमं वीराय शूराय ।।

हे ज्ञान प्राप्त करने वाले मनुष्यो ! तुम आनन्दमय, वीर, सबको प्रेरणा देने वाले, बलवान्, इन्द्र परमेश्वर के लिये उत्तम-उत्तम भक्ति के रस को प्राप्त कराओ।

१२४. इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् । अनाभयिन् ररिमा ते ।।

हे सब जगह बसने वाले और सबको बसाने वाले निर्भय परमेश्वर ! इस सम्पादित किये गये अपने जीवन की सामर्थ्य को आपके लिए समर्पित करते हैं, आप इसको अच्छी प्रकार स्वीकार कीजिये

चौथी दशति दूसरा खण्ड

ऋषि – १, २ सूतकक्ष वा श्रुतकक्ष वा सुकक्ष; ३ भरद्वाज, ४ श्रुतकक्ष, ५, ६ मधुच्छन्दा; ७, ९, १० त्रिशोक; ८ वसिष्ठ।

१२५. उद् घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् । अस्तारमेषि सूर्य ।।

हे सूर्य, सब को प्रेरणा देने वाले परमेश्वर ! आप ज्ञान और कीर्ति से सम्पन्न, मनुष्यों के लिये ज्ञान और सुख की वर्षा करने वाले तथा हितकारी और काम-क्रोध आदि को दूर रखने वाले पुरुष की आत्मा में ही प्रकाशित होते हैं।

१२६. यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य । सर्वं तदिन्द्र ते वशे ।।

विनियोग —शौनक ऋषि ने लिखा है कि सूर्य के उदय होने पर इस मन्त्र से इन्द्र (परमेश्वर) की स्तुति करने से मनुष्य शत्रु को पराजित और जगत् भरको वश में कर सकता है।

अज्ञानरूपी अन्धकार को नष्ट करने वाले, सबके प्रेरक हे परमेश्वर ! इस समय जो कुछ वर्तमान में अभ्युदय से युक्त संसार दिखाई दे रहा है, वह सब आपके ही वश में है।

१२७. य आनयत् परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम् । इन्द्रः स नो युवा सखा ।।

जो परम ऐश्वर्ययुक्त परमात्मा सुन्दर नीति तथा न्याय से कामीहिंसक, बुरे मार्ग पर चलने वाले मनुष्यों को बहुत दूर भूले हुए मार्ग से अच्छे मार्ग पर ले आता है वही हमारा सदा युवा रहने वाला नित्य साथी और मित्र है।

१२८. मा न इन्द्राभ्या३दिशः सूरो अक्तुष्वा यमत् । त्वा युजा वनेम तत् ।

हे परमेश्वर ! किसी भी दिशा की ओर से काम, क्रोध आदि शत्रु, चोर या हिंसक जन्तु रात के समय तथा हमारे अज्ञान के समय हमको घेर न सकें। आपकी कृपा और सहायता से युक्त होकर हम उन्हें मार सकें—यही प्रार्थना है।

१२९. एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् । वर्षिष्ठमूतये भर ।।

हे परमेश्वर ! आप हमारी रक्षा के लिए राष्ट्र में अच्छी प्रकार स्वीकार करने योग्य, शत्रुओं को जीतने वाले सदा कष्ट सह सकने वाले, शत्रुओं पर शस्त्र वर्षाने वाले बहुत अधिक बल तथा सेना रूपी धन को प्रदान कीजिये।

१३०. इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे । युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ।।

दुष्टों तथा काम-क्रोध आदि के साथ बड़े संग्राम में और छोटे उपद्रवों में भी हम सब श्रेष्ठों के सहायक और दुष्टों को दण्ड देने वाले परमेश्वर का ध्यान रखें।

१३१. अपिबत् कद्रुवः सुतमिन्द्रः सहस्रबाह्वे । तत्राददिष्ट पौंस्यम् ।।

परमेश्वर हजारों (अनेक) प्रकार के कर्मफल देने के लिये विद्वान् मनुष्य की ज्ञान-पूर्ण स्तुति को स्वीकार करता है। तभी उपासक का पुरुषार्थ अधिक प्रकाशित होता है।

१३२. वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र नोनुमो वृषन् । विद्धी त्वा३स्य नो वसो ।।

हे सुख-वर्षक परमेश्वर ! हम ज्ञानी होकर आपका सब प्रकार से उत्कृष्ट वर्णन करते हैं। सर्वव्यापक, सबको बसाने वाले प्रभो ! आप इस बात को जानते ही हैं।

१३३. आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् । येषामिन्द्रो युवा सखा ।।

जो मनुष्य अच्छी प्रकार से परमेश्वर की उपासना करते हैं और युवा—अमर नित्य परमेश्वर जिनका मित्र बन गया है, वे जन्मजन्मान्तरों में बढ़ते रहने वाले अपने शरीर के बन्धनों को काट डालते हैं।

१३४. भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः । वसु स्पार्हं तदा भर ।।

हे परमात्मन् ! आप सब द्वेष करने वाले दुष्ट शत्रुओं को दूर तथा छिन्न-भिन्न कीजिये। हमसे संघर्ष करने वाली बाधाओं को सब प्रकार से नष्ट कीजिए। हमें कामनायोग्य आत्मज्ञानरूपी तथा अपने आनन्दरूपी उस उत्कृष्ट धन को प्राप्त कराइये।

—०—

पांचवीं दशति तीसरा खण्ड

देवता—इन्द्र। ऋषि—१ कण्व घोर; २ त्रिशोक; ३ वत्स काण्व, ४ कुसीदी काण्व, ५ मेधातिथि, ६ श्रुतकक्ष, ७ श्यावाश्व, ८ प्रगाथकाण्व, ९ वत्स, १० इरिम्बिठि। छन्द—गायत्री। स्वर-षड्ज।

१३५. इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद्वदान्। नियामञ्चित्रमृञ्जते ॥

इस मन्त्र में रूपक अलङ्कार है। इन्द्र के साथी मरुतों का वर्णन है। इसलिए देवता 'मरुत्' तथा उनके सम्बन्ध से 'इन्द्र' ही है।

जिस प्रकार घोड़ों के हाँकने के समय चलाये जाने वाले चाबुक (हंटर) की ध्वनि होती है, वैसे ही परमेश्वर के कार्यकर्त्ता सूर्य आदि देवों के अधिकार में जो नियमरूपी कशा=कोड़ा है, उसके चलाये जाने पर जो ध्वनि सारे संसार में व्याप्त हो रही है उसको मैं उपासक मानो यहाँ ही (सर्वत्र) सुन रहा हूँ। यह कशा विचित्र प्रकार से संसार को नियम में चला रही है।

१३६. इम उ त्वा विचक्षते सखाय इन्द्र सोमिनः। पुष्टावन्तो यथा पशुम् ॥

उपमा अलङ्कार है।

हे परमेश्वर! जैसे पालने वाले पुष्टिकारक दाना आदि लेकर अपने उपकारी गौ आदि पूज्य पशु की ओर देखते हैं कि वह उसे स्वीकार करे उसी प्रकार सोम(शान्ति, भक्ति, ज्ञान)को धारण करने वाले आपके मित्र, उपासक भी अपने पुष्टिकारक आत्मिक बल को लेकर सबके द्रष्टा, सर्वव्यापक आपकी ओर देखते हैं कि आप उसे स्वीकार कर उनका कल्याण करें।

१३७. समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः। समुद्रायेव सिन्धवः ॥

उपमा अलङ्कार है।

इस परमेश्वर के मन्यु (ज्ञान तथा तेज, अनुशासन) के सामने सब प्रजायें इस प्रकार झुकती हैं जैसे नदियां समुद्र के लिए बही चली जाती हैं।

१३८. देवानामिदवो महत् तदा वृणीमहे वयम्। वृष्णामस्मभ्यमूतये ॥

ज्ञान तथा सुख की वर्षा करने वाले देवों (परमेश्वर तथा विद्वानों आदि) की जो बड़ी शरण है उसको हम अपनी रक्षा के लिये स्वीकार करते हैं।

१३९. सोमानां स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते। कक्षीवन्तं य औशिजः ॥

हे वेदों के पति परमेश्वर! जो वश में रहने वाला, कान्ति और भक्ति की कामनावाला, बुद्धिमान् विद्वान् का पुत्र उपासक है, उसको आप अधिक शक्ति से युक्त तथा ज्ञान आदि सोमों का सञ्चय करने वाला कीजिये और उसके प्राणों को बलवान् बनाइये।

१४०. बोधन्मना इदस्तु नो वृत्रहा भूर्यासुतिः। शृणोतु शक्र आशिषम् ॥

अज्ञानरूपी अन्धकार का नाशक, अत्यधिक आनन्ददाता, शक्तिशाली सर्वज्ञ परमेश्वर हमारे मन का बोध कराने वाला हो और हमारी प्रार्थना को सुने।

१४१. अद्य नो देव सवितः प्रजावत् सावीः सौभगम् । परा दुःष्वप्न्यं सुव ।।

संसार को उत्पन्न करने वाले, सबको प्रेरणा देने वाले परमेश्वर ! आप हमारे लिए आज तथा सदा ही अच्छी सन्तानों सहित ऐश्वर्य को प्रदान कीजिये और हमारे बुरे विचारों को दूर कीजिये ।

१४२. क्वा३स्य वृषभो युवा तुविग्रीवो अनानतः । ब्रह्मा कस्तं सपर्यति ।

प्रश्न सुखवर्षक, युवा, (अजर), बहुत (असंख्य) गरदनों (शक्तियों) वाला, किसी के आगे न झुकने वाला, वह इन्द्र कहाँ (प्राप्त किया जा सकता) है ? प्रश्न (२) वेदों को जानने वाला कौन मनुष्य उसकी उपासना करता है, अथवा—वेदज्ञ ब्रह्मा और क=प्रजापति (जनता के पालन करने वाले सेवक ही) उसकी सच्ची उपासना करते हैं ।

१४३. उपह्वरे गिरीणां सङ्गमे च नदीनाम् । धिया विप्रो अजायत ।।

उत्तर (१)—पहाड़ों की गुफाओं और बादलों के प्रान्तों में तथा नदियों के सङ्गम और समुद्रों में भी वह परमेश्वर वर्तमान हैं (सर्वव्यापक हैं) । ऐसे सुन्दर स्थानों पर और गिरि=रीढ़ की हड्डी के समीप तथा नदी=इडा, पिङ्गला, सुषुम्णा नाड़ियों के संगम=त्रिकुटी में ध्यान करने वाले से वह प्राप्त किया जा सकता है । गिरि=स्तुति करने वाले के हृदय में तथा नदी=मौनी विद्वानों की संगति तथा सभा में परमेश्वर का अनुभव होता है । उत्तर (२)—अपनी धी=बुद्धि तथा ज्ञानशक्ति से ही मेधावी विद्वान् होता है, वही परमेश्वर की सच्ची उपासना कर सकता है । बुद्धिरहित विप्र नहीं हो सकता ।

१४४. प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः । नरं नृषाहं मंहिष्ठम् ।।

हे मनुष्यो ! तुम ज्ञान के अनुसार आचरण करने वाले, तत्त्वद्रष्टा मनुष्यों के सम्राट् (हृदय में अच्छी प्रकार प्रकाशमान), स्तुति योग्य, सबके नेता, मनुष्यों को न्याय से वश में रखने वाले, पूजनीय और दाता परमेश्वर का वेद-वाणियों द्वारा अच्छी प्रकार वर्णन करो ।

—०—

छठी दशति चौथा खण्ड

देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री । स्वर—षड्ज ।

ऋषि—१. श्रुतकक्ष, २. मेधातिथि, ३. गोतम, ४. भरद्वाज, ५. बिन्दु वा पूतदक्ष, ६, ७ श्रुतकक्ष वा सुकक्ष, ८. वत्स काण्व, ९ शुनःशेप, १०. शुनःशेप वा वामदेव ।

१४५. अपादु शिप्रयन्धसः सुदक्षस्य प्रहोषिणः । इन्द्रोरिन्द्रो यवाशिरः ।।

सर्वत्र शीघ्रगामी, सर्वव्यापक परमेश्वर अत्यन्त चतुर और अच्छे प्रकार से दान तथा आदान करने वाले मनुष्य के प्रदीप्त तथा अन्न के सारभूत अंश से मिलकर परिपक्व प्राणधारण-सामर्थ्य को पालन करता है ।

१४६. इमा उ त्वा पुरूवसोऽभि प्र नोनुवुर्गिरः । गावो वत्सं न धेनवः ।।

उपमा अलङ्कार है। हे इन्द्रियों आदि में भी सब जगह बसने वाले परमेश्वर! जिस प्रकार गौएँ अपने बच्चे के पास जाया करती हैं उसी प्रकार ये मुझ उपासक की इन्द्रियाँ, नाड़ियाँ तथा वाणियाँ सब ओर से आपके ही पास जा रही हैं।

१४७. अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ।।

यहाँ परमेश्वर से सम्बन्ध रखने वाली सूर्यरश्मि सुषुम्ना नाड़ी का कुछ न ढका हुआ अंश ही चन्द्रमा के घर में (भ्रूकुटियों के बीच वामभाग में अथवा तालु के बीच में ऊपर की ओर मूर्धा स्थान में) गया हुआ है—ऐसा माना जाता है। वहीं परमेश्वर का साक्षात्कार है। (देखिये—हठयोग प्रदीपिका तथा योगरसायन आदि ग्रन्थ) यहाँ हठयोग की 'खेचरी' मुद्रा की ओर संकेत है।

१४८. यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरपो वृषन्तमः । तत्र पूषाभुवत् सचा ।।

जब वर्षा करने वाला परमेश्वर बहने वाली बड़ी-बड़ी जलधाराओं को वर्षा द्वारा सब स्थानों में पहुंचाता है— तब वहाँ साथ ही वह अन्न आदि उत्पन्न कर पुष्टि करने वाला भी होता है। इसके अतिरिक्त, जो सुखवर्षक परमेश्वर गतिवाली बड़ी-बड़ी नाड़ियों को मनुष्यों के शरीर में फैलाता है वही उनका पोषक भी होता है।

१४९. गौर्धयति मरुतां श्रवस्युर्माता मघोनाम् । युक्ता वह्नी रथानाम् ।।

हठयोग की खेचरी मुद्रा का वर्णन है। योग-रूपी यज्ञ सम्पादन करने वाले प्राणों की माता जिह्वा आनन्द को प्राप्त करती हुई योगाभ्यास में तालु-मूल में मूर्धा स्थान से टपकने वाले चन्द्र-रस को पान किया करती है।

(ऊर्ध्वजिह्वः स्थिरो भूत्वा सोमपान करोति यः । मासार्धेन न सन्देहो मृत्युं जयति योगवित् ।।
—हठयोगप्रदीपिका, उपदेश ३, श्लोक ४४)

इसी प्रकार चिति शक्ति तथा मध्यमा नाम की वाणी ज्ञान-रूपी सोमरस को पीती तथा पिलाती है। इन्द्रियरूपी रथों में जुड़कर वह चेतना शक्ति उनको अभीष्ट स्थान तक ले जाती है।

१५०. उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते । उप नो हरिभिः सुतम् ।।

हे आनन्दों के देने वाले स्वामिन्! आप हमारी ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा और कर्मेन्द्रियों के द्वारा उत्पन्न किये गये ज्ञान को प्राप्त हो।

१५१. इष्टा होत्रा असृक्षतेन्द्रं वृधन्तो अध्वरे । अच्छावभृथमोजसा ।।

इस अहिंसारूप आध्यात्मिक योगाभ्यास-रूपी यज्ञ में योग करने वाले होता रूप सात इन्द्रियाँ, आत्मा में परमेश्वर के अनुभव को बढ़ाती हुई, तेज के साथ यज्ञ-समाप्ति के स्नान (योग की आनन्द-प्राप्ति) करने के लिये उद्युक्त होती हैं।

१५२. अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह । अहं सूर्य इवाजनि ।।

क्योंकि योगाभ्यास करने वाले मैंने पिता परमेश्वर से वेदज्ञान की बुद्धि को ग्रहण कर लिया है। इसलिए मैं सूर्य के समान तेजस्वी हो गया हूँ—इस प्रकार योगियों को आत्मगौरव हो जाता है।

१५३. रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः। क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥

योग के द्वारा परमेश्वर के प्रसन्न तथा अनुकूल होने पर हमारी गौएँ, इन्द्रियाँ तथा नाड़ियाँ बल से पूर्ण हो जावें। जिनके साथ हम अन्न, निवास, ज्ञान तथा यश और अच्छे शब्दों से युक्त होकर आनन्द को प्राप्त करें।

१५४. सोमः पूषा च चेततुर्विश्वासां सुक्षितीनाम्। देवत्रा रथ्योर्हिता ॥

उत्पन्न और पोषण करने वाला परमात्मा सब देवों में व्यापक है और कर्म तथा भोग दोनों प्रकार की योनियों का हितकारक होकर सभी प्रजाओं को जानता है।

इडा और पिङ्गला नाड़ियों में स्थित चन्द्र और सूर्य स्वर सब प्राणियों को चेतना दे रहे हैं। वे ही इन्द्रियों के बीच गतिशील प्राण तथा अपान के हितकारक हैं।

सातवीं दशति पांचवाँ खण्ड

देवता—इन्द्र। छन्द—गायत्री। स्वर—षड्ज।

ऋषि— १, ४. श्रुतकक्ष; २. वसिष्ठ; ३. मेधातिथि, प्रियमेध; ५. इरिम्बिठि; ६, १०. मधुच्छन्दाः; ७. त्रिशोक, ८. कुसीद; ९. शुनःशेप।

१५५. पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत। विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम् ॥

हे मनुष्यो! तुम सब अन्न आदि की रक्षा करने वाले, सबके ऊपर अनुशासन रखने वाले, सैकड़ों (अनन्त) कर्मों तथा बुद्धियों से युक्त, ज्ञानियों को आनन्द देने वाले तथा पूजनीय परमेश्वर का अच्छी प्रकार गान करो।

१५६. प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत। सखायः सोमपाव्ने ॥

हे मित्रो! तुम दुःख हरण करने वाले, सर्वव्यापक, शान्त तथा ज्ञानी भक्तों के रक्षक परमेश्वर के लिये प्रसन्न करने वाले कार्यों का गान करो।

१५७. वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः। कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥

हे परमेश्वर! हम बुद्धिमान् तथा विद्वान् जन आपको पाने की इच्छा करते हुए उसी प्रयोजन के लिये 'ओ३म्' और वेदमन्त्रों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं।

१५८. इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः। अर्कमर्चन्तु कारवः ॥

हमारी वाणियाँ आनन्दस्वरूप परमेश्वर के लिये समर्पित स्तुति तथा ज्ञान का अच्छी प्रकार से वर्णन करें और श्रेष्ठ आचरण वाले विद्वान् उस पूज्य की उपासना करें।

१५९. अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि। एहीमस्य द्रवा पिब ॥

हे परमेश्वर! अपनी इस स्तुति तथा ज्ञान को मैं प्रत्येक यज्ञ में आपके लिए अच्छी प्रकार पवित्र रूप में समर्पित कर रहा हूँ। हमारे हृदय में शीघ्र साक्षात् होकर इसे स्वीकार कीजिये।

१६०. सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यविद्यवि ।।

उपमा अलङ्कार है। जैसे अच्छी दूध देने वाली गौ को दुहने वाले के सम्मुख करते हैं कि वह हमें दूध दुहकर दे दे, उसी प्रकार अपनी रक्षा के लिए हम श्रेष्ठ ज्ञान तथा कर्म वाले परमेश्वर को सदा अपने सामने ध्यान में रखते हैं।

१६१. अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये । तृम्पा व्यश्नुही मदम् ।।

हे श्रेष्ठतम परमेश्वर ! आपके दिये ज्ञानभण्डार में से मैं कुछ ज्ञान आपकी प्रसन्नता के लिये उपार्जित कर आपके समर्पित कर रहा हूँ। आप इसे स्वीकार करें और प्रसन्न हों तथा हमें भी आनन्दित करें।

हे आत्मा में सुख के वर्षक मनुष्य ! सृष्टि की आदि में ज्ञान का प्रकाश हो जाने पर मैं परमेश्वर उनको परमानन्द और तृप्ति के लिये तेरे समर्पित करता हूँ। तू तृप्त हो और आनन्द को प्राप्त कर।

१६२. य इन्द्र चमसेष्वा सोमश्चमूषु ते सुतः । पिबेदस्य त्वमीशिषे ।।

हे परमेश्वर ! मेघों और द्यौ तथा पृथिवी-लोक में जो मधुर जल आपने निर्माण किया है उसको हमें पान कराइये। उसके आप स्वामी हैं।

हे जीवात्मन् ! जो मस्तक-रूपी बड़े बर्तनों में तथा मस्तक के कोष्ठों और इन्द्रियरूपी छोटे चमचों में ज्ञानरूपी रस तय्यार किया जाता है उसका तू प्रयोग कर, उस ज्ञान का तू स्वामी है।

१६३. योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ।।

हम उपासक मित्र बनकर अपनी रक्षा के लिये प्रत्येक योगाभ्यास के समय तथा प्रत्येक ज्ञान-प्राप्ति और उचित बलप्रयोग के अवसर पर उस अतिबलशाली परमेश्वर का ध्यान करते हैं।

१६४. आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत । सखायः स्तोमवाहसः ।।

हे मित्रो ! स्तुति करने वाले विद्वानो ! स्तुतिरूप गानों का प्रवाह चलाते हुए तुम आओ और नियमपूर्वक बैठो तथा परमेश्वर के गुणों का अच्छी प्रकार गान करो।

—o—

आठवीं दशति छठा खण्ड

देवता—इन्द्र। छन्द—गायत्री। स्वर—षड्ज।

ऋषि—१. विश्वामित्र, २ मधुच्छन्दाः, ३ काण्व कुसीदी, ४ प्रियमेध, ५, ८ वामदेव, ६, ९ श्रुतकक्ष, ७. मेधातिथि, १०. बिन्दु पूतदक्ष।

१६५. इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते । पिबा त्वा३स्य गिर्वणः ।।

सब ज्ञानों तथा धनों के स्वामी परमेश्वर हमने ओज के साथ ज्ञान का सम्पादन किया है। आप इस प्रशंसनीय ज्ञान को स्वीकार कीजिये।

१६६. महाँ इन्द्रः पुरश्च नो महित्वमस्तु वज्रिणे । द्यौर्न प्रथिना शवः ।।

महान् परमेश्वर सदा हमारे सम्मुख रहे। उस बलशाली की महिमा ध्यान में बनी रहे। उसका ज्ञान तथा बल आकाश तथा सूर्य के समान फैला हुआ है।

१६७. आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं सं गृभाय। महाहस्ती दक्षिणेन ॥

धारक शक्तियों से युक्त हे महान् परमेश्वर ! आप हमारे लिये अन्न, निवास आदि के विज्ञान से युक्त, ग्रहण के योग्य अपने ज्ञान वेद को उत्तम साधनों से अच्छे प्रकार ग्रहण कराइये।

१६८. अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे। सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥

हे जीवात्मन् ! तू पृथिवी, इन्द्रियों आदि के स्वामी, सत्य के उत्पादक, सज्जनों के पालन करने वाले, सच्चे स्वामी परमेश्वर को ठीक प्रकार से जानने तथा अन्यों को बताने के लिए अपनी वाणी तथा वेदवाणी द्वारा वर्णन करें।

१६९. कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता ॥

विचित्र, पूज्य तथा सदा वृद्धि को प्राप्त परमेश्वर हमारी किसी रक्षा की सामर्थ्य और किसी बुद्धि-बलयुक्त व्यवहार के द्वारा मित्र हो जाता है।

१७०. त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम्। आ च्यावयस्यूतये ॥

हे मनुष्यो ! तुम अपनी रक्षा के लिये सबको जीतने वाले, सब वाणियों में विद्यमान परमेश्वर के आत्मा में प्रत्यक्ष करते हो।

१७१. सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्। सनिं मेधामयासिषम् ॥

मैं उपासक ऐसी मेधाबुद्धि को प्राप्त करूँ जो सभाओं तथा इन्द्रियों की रक्षा करने वाली और स्वामिनी हो, आश्चर्यजनक हो, परमेश्वर की प्यारी हो, कामना करने के योग्य हो और सत्य-असत्य की पहिचान कराने वाली तथा श्रेष्ठ कर्मफल दिलाने वाली हो।

१७२. ये ते पन्था अधो दिवो येभिर्व्यश्वमैरयः। उत श्रोषन्तु नो भुवः ॥

हे परमेश्वर ! जो आपके सच्चे नियम द्युलोक के नीचे तथा मानवमस्तिष्क में कार्य कर रहे हैं, जिनसे आप जगत् में व्याप्त शक्तियों को प्रेरित करते हैं, उन नियमों को हमारी भूमि पर स्थित मनुष्य और हमारे प्राण तथा इन्द्रियाँ भी सुनें और समझें।

१७३. भद्रं भद्रं न आ भरेषमूर्जं शतक्रतो। यदिन्द्र मृडयासि नः ॥

सैकड़ों कर्मों वाले हे परमेश्वर ! आप हमारे लिये अच्छे-अच्छे कल्याणकारी अन्न तथा बल को प्राप्त कराइये, क्योंकि आप ही हमें सुखी करने वाले हैं।

१७४. अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः। उत स्वराजो अश्विना ॥

यह सोमज्ञान प्रगट किया गया है। इसको स्वयं चेतनरूप से प्रकाशित मनुष्य तथा ज्ञानेन्द्रियाँ और प्राण तथा अपान और गुरु तथा शिष्य आदि सभी प्राप्त करके उपयोग में लाते हैं।

—०—

नवमी दशति सातवां खण्ड

देवता—इन्द्र। छन्द—गायत्री। स्वर—षड्ज।

ऋषि—१ इन्द्र की माता देवयामि। २ गोधा, ३ वामदेव दध्यङ् आथर्वण, ४ प्रस्कण्व, ५ गोतम, ६ मधुच्छन्दाः, ७ वामदेव, ८ वत्स, ९ शुनःशेप, १० वातायन उल।

१७५. ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते। वन्वानासः सुवीर्यम् ॥

ज्ञान प्राप्त करने वाली तथा कर्म की इच्छावाली इन्द्रियाँ अच्छे पराक्रम की प्रार्थना करती हुई आत्मा में प्रगट हुए परमेश्वर की उपासना करती हैं।

१७६. न कि देवा इनीमसि न क्या योपयामसि। मन्त्रश्रुत्यं चरामसि ॥

हम विद्वान् उपासक तथा हमारी इन्द्रियाँ कुछ भी हिंसा आदि न करें, और कुछ भी भूल; अज्ञान का कार्य न करें, किन्तु वेदमन्त्रों के अनुसार तथा परामर्श और विचार कर सब काम धर्मानुसार करें।

१७७. दोषो आगाद् बृहद्गाय द्युमद्गामन्नाथर्वण। स्तुहि देवं सवितारम् ॥

हे बड़े गान करने वाले, ज्ञान के प्रकाश से युक्त, स्थिर बुद्धि, अथर्ववेद के ज्ञाता उपासक! तू जब रात्रि आने को हो उस समय सन्ध्याकाल में देवसविता परमात्मा की उपासना कर। परमेश्वर आत्मा में प्रगट हो रहा है। तू उसकी स्तुति कर।

१७८. एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः। स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥

यही उषा की वेला (प्रातःकाल) अपूर्व सिद्धि देने वाली, बड़ी प्यारी हो आकाश में फैल रही है। मुझ उपासक के मस्तिष्क को पूर्ण करने वाली ज्योतिष्मती प्रज्ञा उदय हो रही है। अतः प्राण और अपान का मैं गुण-वर्णन करता हूँ। हे अध्यापको तथा शिष्यो! तुम महान् परमात्मा की स्तुति करो।

१७९. इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः। जघान नवतीर्नव ॥

किसी से भी पराजित न होने वाला परमेश्वर अपनी अज्ञाननाशक शक्तियों से स्थितप्रज्ञ तथा लक्ष्य पर ध्यान रखने वाले जीवात्मा के ज्ञान के नष्ट करने वाले ९० गुणित ९=८१० शत्रुओं को नष्ट कर देता है।

उपासक जीवात्मा किसी से पराजित न होकर, ध्यान के द्वारा प्राप्त करने योग्य परमात्मा की शक्तियों से ज्ञान के आवरक ८१० विघ्नों का नाश कर देता है।

प्रकृति के ३ गुण सत्त्व, रजस्, तमस् तीन कालों (भूत-भविष्यत्-वर्तमान) के भेद से ९ प्रकार के हुए। वे ही प्रभाव, उत्साह और मन्त्रभेद से गुणित होकर २७ प्रकार के हुए। फिर सात्त्विकादि के सम, विषम अथवा उत्तम, मध्यम, अधम भेद से ८१ प्रकार के और फिर दस-दस दिशाओं के भेद से वे ही प्रकृति के गुण ८१० प्रकार के हुए।

श्री माधव, श्री भरतस्वामी, श्री सायणाचार्य, श्री तुलसीराम और श्रीजयदेव शर्मा ने 'नवतीर्नव' का अर्थ (९० गुणित ९=) ८१० ही उपर्युक्त रीति से किया है। महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेद १।८४।१३ में आये इस मन्त्र का सेनापति तथा सूर्यपरक अर्थ करते हुए 'नवतीः नव' का अर्थ (९०+९=) ९९, तथा 'अनेक' किया है। इसका अर्थ, गणित शास्त्रपरक भी बहुत सुन्दर है। आध्यात्मिक

उपासना पक्ष में भी ६६ का अर्थ 'अनेक' हो सकता है—'वह परमेश्वर अनेकों वृत्रों का नाश करता है।' लोक में प्रचलित 'निन्नानवे के फेर' का मूल भी यही 'नवतीर्नव' प्रतीत होता है। प्रकृति की वस्तुएँ मनुष्य को ६६ के फेर में डालने वाली हैं। उसमें पड़ा हुआ जीव यही सोचता रहता है 'कि एक और पालूं कि पूरे सौ हो जावें।' यह ज्ञान को ढांकने वाले वृत्र असुर हैं। उपासक इस चक्कर को ईश्वर की भक्ति के द्वारा दूर कर सकता है।

व्यक्तिविशेष इन्द्र ने दधीचि नामक ऋषि की हड्डियों से असुरों को मारा—इस पौराणिक कथा का प्रचार भी इस मन्त्रके ठीक अर्थों को न समझने के कारण ही हुआ है। सायण, माधव तथा भरत-स्वामी ने भी कुछ-कुछ भिन्नता के साथ इस इतिहास को लिखा है।

१८० इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः। महाँ अभिष्टिरोजसा ॥

हे परमेश्वर! आप हृदय में साक्षात् होइये। मेरी प्राण-धारण-शक्ति, वाणी तथा समस्त सम्पादित ज्ञान-समूहों से प्रसन्न होइये। बलशाली होने से आप महान् तथा शत्रुओं के नाशक और पूज्य हैं।

१८१. आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्धमा गहि। महान्महीभिरूतिभिः ॥

विघ्नों के नाशक हे परमेश्वर! आप बड़ी शक्तियों से महान् हैं, हमको प्राप्त होइये तथा हमें समृद्धि प्राप्त कराइये।

१८२. ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत् समवर्तयत्। इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥

उपमा अलङ्कार है। इस इन्द्र-परमेश्वर का वह तेज प्रकाश हो रहा है जिससे वह द्यौलोक से लेकर पृथ्वी तक दोनों में उसी प्रकार व्यापक हो रहा है जैसे खाल शरीर के सब ओर व्याप्त रहती है। वह परमेश्वर उपासक के लिए द्यौ और पृथिवी को ढालके समान उसका रक्षक बना देता है।

१८३. अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम्। वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥

हे परमेश्वर! यह तेरा भक्त जीवात्मा, जिसको तू सदा प्राप्त हो रहा है, अपने अज्ञान के कारण, गर्भवासरूपी समुद्र में जल-स्थित जहाजके समान डूब रहाहै। यह साधक तेरे पास उसी प्रकार है जिसप्रकार प्रेम-मग्न कबूतर कबूतरी के पास जाता है। हे परमेश्वर! आप भक्त-उपासक की आत्मा में उसी प्रकार सदा प्राप्त होते हैं तथा उसके ज्ञान और भक्ति को उसी प्रकार प्रेम से स्वीकार करते हैं जिस प्रकार कबूतर कबूतरी को प्राप्त होता है। आप हम भक्त-उपासकों के वचन को भी प्रेम से सुना करते हैं, इस समय भी हमारी प्रार्थना को सुनिये।

शुद्ध श्रृंङ्गार-रस और उपमा, श्लेष तथा रूपक अलङ्कारों का यहाँ उत्कृष्ट प्रयोग है।

१८४. वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे। प्र न आयूंषि तारिषत् ॥

सर्वव्यापक परमेश्वर हमारे हृदय में प्रकट हो और प्राणायाम आदि के समय हृदय आदि के लिए कल्याण करने वाली, रोगनाशक, सुखदायक, शीतल, मन्द-सुगन्ध औषधरूप वायु को तथा अन्य औषधियों को भी प्राप्त करावे। वह हमारी आयु को बढ़ावे।

—०—

दसवीं दशति आठवां खण्ड

देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री । स्वर—षड्ज ।

ऋषि—१. कण्व, २. वत्स, वशोऽश्व्य, ३. वत्स, ४. श्रुतकक्ष, ५. मधुच्छन्दा, ६. वामदेव, ७. इरिम्त्रिठि, ८. वारुणि सत्यघृति, ९. वर्ष (वत्स)

१८५. यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा । न किः स दभ्यते जनः ॥

हे परमेश्वर ! ज्ञानी पुरुष और वरण करने योग्य, मित्र तथा न्यायकारी आप जिसकी रक्षा करते हैं वह मनुष्य नष्ट नहीं हो सकता।

१८६. गव्यो षु णो यथा पुराश्वयोत रथया । वरिवस्या महोनाम् ॥

भक्तिरूपी धन से पूर्ण उपासकों के पूज्य हे परमेश्वर ! हम उपासक जिस प्रकार पहले जन्मों में आपकी भक्ति करते थे, उसी प्रकार अब भी गौओं तथा इन्द्रिय-विजय, अश्वों तथा मन-विजय और रथों तथा शरीर-विजय की इच्छा से आपकी स्तुति तथा उपासना करते हैं।

१८७. इमास्त इन्द्र पृश्नयो घृतं दुहत आशिरम् । एनामृतस्य पिप्युषीः ॥

हे परमेश्वर ! आपकी ये सत्य ज्ञान को बढ़ाने-वाली स्तुतियाँ इस प्रस्फुटित हुए विशेष स्मृति-रूपी ज्ञान को उत्पन्न करती हैं।

१८८. अया धिया च गव्यया पुरुणामन् पुरुष्टुत । यत् सोमेसोम आभुवः ॥

अनेक नामों से पुकारे जाने वाले, बहुत प्रकार से स्तुति किये गये हे परमेश्वर ! जब आप प्रत्येक ज्ञान तथा भक्ति के समय आत्मा में साक्षात् हों तब हम इन्द्रियों की हितकारिणी बुद्धि तथा गौ आदि धन की इच्छा से युक्त होकर आपकी स्तुति करें।

१८९. पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥

हे परमेश्वर ! हमारी वाणी पवित्र करने वाली और ज्ञान तथा कर्म से शक्तिशालिनी होवे। धारण, ध्यान तथा बुद्धि के साथ रहने वाली वेदवाणी हमारे सभी प्रकार के यज्ञों को धारण करें।

१९०. क इमं नाहुषीष्वा इन्द्रं सोमस्य तर्पयात् । स नो वसून्याभरात् ॥

इस सर्वव्यापक परमेश्वर को मनुष्य-प्रजाओं में कौन ऐसा विशिष्ट है जो ज्ञानप्राप्ति तथा गुण-गान से तृप्त कर सकता है ? वह हमारे लिये ज्ञान तथा धन प्राप्त कराये।

१९१. आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् । एदं बर्हिः सदो मम ॥

हे परमेश्वर ! आप हमारे हृदय में प्रकट होइये। क्योंकि आपके लिये हम ज्ञान तथा शुद्ध भाव को उत्पन्न करते हैं। अतः आप इस हमारे ज्ञान तथा भक्ति को स्वीकार कीजिये। यह ज्ञानयज्ञ ही मुझ विज्ञानी भक्त का निवास-स्थान है।

१९२. महि त्रीणामवरस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः । दुराधर्षं वरुणस्य ॥

हे परमेश्वर ! मित्र, न्यायकारी तथा स्वीकार करने योग्य—इन तीनों विशेषणों वाले आपकी महान् रक्षा और असह्य तेज हमें प्राप्त हो।

१९३. त्वावतः पुरूवसो वयमिन्द्र प्रणेतः । स्मसि स्थातर्हरीणाम् ।।

सर्वव्यापक और मनुष्यों तथा इन्द्रियों के प्रेरक तथा अधिष्ठाता परमेश्वर ! हम सब आप स्वामी के ही सेवक हैं ।

—०—

तृतीय प्रपाठक

१९४ से २९२ मन्त्र तक

पहली दशति नौवाँ खण्ड

देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री । स्वर—षड्ज ।

ऋषि—१. प्रगाथ, २, विश्वामित्र, ३, १० वामदेव, ४, ६. श्रुतकक्ष, ५. मधुच्छन्दाः, ७. गृत्समद, ८. ९ भरद्वाज ।

१९४. उत्त्वा मन्दन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः । अव ब्रह्मद्विषो जहि ।।

हे चर तथा अचर के ग्रहण करने वाले परमेश्वर ! सौम्य गुण से युक्त उपासकजन आपको प्रसन्न करें । आप हमारे सिद्धि देने वाले विद्या आदि धन को प्रदान कीजिये और वेदविज्ञान के शत्रुओं को नष्ट कीजिये ।

१९५. गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे । इन्द्र त्वादातमिद्यशः ।।

वाणी द्वारा कीर्तनयोग्य हे परमेश्वर ! आप हमारी स्तुति को स्वीकार कीजिये और स्तोता की रक्षा कीजिये । आप वेदज्ञानरूपी अमृत की धाराओं से परिपूर्ण हैं । यह यश=सामर्थ्य, धन, अन्न, जल आपसे ही प्रकाशित तथा शोधित हैं ।

१९६. सदा व इन्द्रश्चर्कृषदा उपो नु स सपर्यन् । न देवो वृतः शूर इन्द्रः ।।

हे मनुष्य ! वह परमेश्वर सदा आपको अपने समीप ही आकृष्ट कर रहा है । वह ही आपका आदर-प्रेम करता हुआ शूर बनकर क्या सबको आवृत नहीं कर रहा है ? अवश्य वही सबको घेरे हुए है और वह सब से वरण किया जाता है ।

१९७. आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः । न त्वामिन्द्रातिरिच्यते ।।

हे परमेश्वर ! जैसे नदियाँ समुद्र में प्रवेश करती हैं उसी प्रकार मन की वृत्तियाँ तथा ज्ञानी पुरुष आप के आश्रित हैं । आपसे बढ़कर और कोई नहीं है । (उपमा अलङ्कार है ।)

१९८. इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ।।

सामगान करने वाले जन परमेश्वर का ही बृहत् आदि सामों के द्वारा बहुत प्रकार से गान करते हैं । ऋचाओं का पाठ करने वाले होता लोग भी ऋग्वेद के मन्त्रों से परमेश्वर की ही उपासना करते हैं । उनके अतिरिक्त अध्वर्यु आदि भी यजुर्वेद आदि की वाणियों से उसी का वर्णन करते हैं ।

१९९. इन्द्र इषे ददातु न ऋभुक्षणमृभुं रयिम् । वाजी ददातु वाजिनम् ॥

परमेश्वर हमारे लिए इच्छानुकूल अन्न आदि प्रदान करे और महान् शक्तिशाली, तेजयुक्त ज्ञान तथा धन को भी देवे । सर्वज्ञ तथा बलिष्ठ परमात्मा हमें ज्ञान तथा बल देकर अपने स्वरूप को साक्षात् कराये ।

२००. इन्द्रो अङ्गमहद्भयमभी षदप चुच्यवत् । स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥

हे मनुष्यो ! परमेश्वर सब ओर से आने वाले बड़े से बड़े भय को दूर भगा देता है, क्योंकि वह कूटस्थ, नित्य, सदा स्थिर, एकरस, और सबका देखने वाला है ।

२०१. इमा उ त्वा सुते सुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः । गावो वत्सं न धेनवः ॥

इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है । जिस प्रकार गौएँ अपने बच्चे के पास प्रेम से जाती हैं उसी प्रकार वेदवाणी द्वारा जानने योग्य हे परमेश्वर ! आपके पास हमारी वाणियाँ प्रेम से पहुंच रही हैं (आपका वर्णन कर रही हैं) ।

२०२. इन्द्रा नु पूषणा वयं सख्याय स्वस्तये । हुवेम वाजसातये ॥

हम ऐश्वर्यशाली तथा पोषण करने वाले परमेश्वर की मित्रता, और अपने कल्याण तथा ज्ञान, बल, आदि की प्राप्ति के लिए प्रार्थना करते हैं ।

२०३. न कि इन्द्र त्वदुत्तरं न ज्यायो अस्ति वृत्रहन् । न क्येवं यथा त्वम् ॥

समस्त विघ्नों के नाशक हे परमेश्वर ! यही नहीं कि आपसे बढ़कर श्रेष्ठ और महान् कोई नहीं है अपितु समान भी कोई नहीं है ।

दूसरी दशति दशम खण्ड

ऋषि—१, ४ त्रिशोक । २ मधुच्छन्दाः । ३ वत्स । ५. सुकक्ष । ६, ९ वामदेव । ७ विश्वामित्र । ८ गोषूक्ति+अश्वसूक्ति । १० श्रुतकक्ष ।

२०४. तरणिं वो जनानां त्रदं वाजस्य गोमतः । समानमु प्र शंसिषम् ॥

हे मनुष्यो ! तुम सब मनुष्यों को तारने वाले गौ आदि पशुओं तथा इन्द्रियों की शक्ति के साथ ज्ञान, अन्न और धन देने वाले, एकरस परमेश्वर की ही प्रशंसा करो ।

२०५. असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत । सजोषा वृषभं पतिम् ॥

हे परमेश्वर ! आपके लिए मैं प्रेमरस से पूर्ण वाणियाँ प्रकट कर रहा हूँ । ये सर्वश्रेष्ठ, सुख की वर्षा करने वाले आपके पास उसी प्रकार जा रही हैं जिस प्रकार प्रेमपूर्ण पत्नी अपने श्रेष्ठ सुखवर्षक पति के पास जाती है । इस मन्त्रमें पवित्र आध्यात्मिक श्रृंगाररस तथा उपमा अलंकार की ध्वनि है ।

२०६. सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा । मित्रास्पान्त्यद्रुहः ॥

वह मनुष्य निश्चय ही उत्तम मार्ग में जाने वाला और प्रशंसित है जिसकी विद्वान् जन और न्यायकारी, द्रोहरहित तथा सबका मित्र परमेश्वर रक्षा करता है ।

२०७. यद्वीडाविन्द्र यत् स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम् । वसु स्पार्हं तदा भर ॥

हे परमेश्वर ! जो धन किसी से न दबने वाले पुरुष के पास तथा उसके पुरुषार्थ में रहता है; जो धन स्थिर रहने वाले तथा विचारशील पुरुषों के पास रहता है वैसा ही अभीष्ट ज्ञान, बल तथा सम्पत्ति-रूपी धन और मेघ आदि में वर्तमान उत्तम जल आदि धन हमें भरपूर प्रदान कीजिये ।

२०८. श्रुतं वो वृत्रहन्तमं प्र शर्द्धं चर्षणीनाम् । आशिषे राधसे महे ॥

हे परमेश्वर! मैं उपासक वृत्रों के हनन करने वाले मनुष्यों की उन्नति करने वाले तथा उत्साही बलयुक्त आपकी मनुष्यों के मध्य महान् धन की प्राप्ति के लिये प्रार्थना करता हूँ ।

अथवा—परमेश्वर ! उपदेश करता है कि मैं अज्ञाननाशक वेदज्ञान तथा आत्मिक बल को मनुष्यों के महान् ऐश्वर्य-प्राप्ति के लिए शुभकामना के साथ प्रदान करता हूँ ।

२०९. अरं त इन्द्र श्रवसे गमेम शूर त्वावतः । अरं शक्र परेमणि ॥

हे शूरवीर परमेश्वर ! अपने ही समान, अद्वितीय आपके यशोगान करने के लिए हम लगे रहें । हे सर्वशक्तिमन् ! मोक्षदायक समाधि में तथा आपके परम-सुन्दर आनन्दस्वरूप में हम सदा लीन रहें ।

२१०. धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम् । इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥

हे परमेश्वर ! आप प्रातःकाल में, ध्यान से सम्पन्न, सुखप्राप्ति का आरम्भ करने वाले, ब्रह्म-ज्ञान के समीप पहुंचानेवाले, ज्ञानसम्पन्न मुझ जीवात्मा को स्वीकार कीजिये ।

तथा हे परमेश्वर ! हमारे प्रातःसवन में धाना=भुने जौ आदि खीलों, दही, सत्तू और पुरोडाश (पूए) पादि सात्त्विक पदार्थों से यज्ञ करनेवाले स्तोता को आप प्रीतिपात्र कीजिये ।

२११. अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः । विश्वा यदजय स्पृधः ॥

हे परमेश्वर ! जब आपने उपासक के समस्त स्पर्धा करनेवाले दोषों को जीत लिया तो ज्ञान और कर्म की वृद्धि करके, उसका पीछा न छोड़ने वाले कर्मबन्धन, पाप तथा जन्म-मरण के जाल को भी काट डालिए ।

२१२. इमे त इन्द्र सोमाः सुतासो ये च सोत्वाः । तेषां मत्स्व प्रभूवसो ॥

हे परमेश्वर ! आपकी प्राप्ति के लिए ये स्तुतियाँ तथा ज्ञान सम्पादित किये गये हैं और आगे भी बराबर सम्पादित किये जावेंगे । हे सबसे अधिक धनवान् तथा सर्वव्यापक प्रभो ! आप उनके कारण मुझ से प्रसन्न होइये ।

२१३. तुभ्यं सुतासः सोमाः स्तीर्णं बर्हिर्विभावसो । स्तोतृभ्य इन्द्र मृडय ॥

हे प्रकाश-सम्पन्न परमेश्वर ! आपके लिये भक्तिपूर्ण स्तुतियाँ प्रस्तुत की जा रही हैं; उपासकों का हृदयरूपी आसन पहले से ही बिछा हुआ है तथा उनका ज्ञान विस्तृत हो गया है। आप उन स्तुति करनेवालों को सुखी कीजिये ।

—०—

तीसरी दशति ग्यारहवाँ खण्ड

ऋषि—१. शुनःशेप । २. श्रुतकक्ष । ३. त्रिशोक । ४, ९. मेधातिथि । ५. गोतम । ६. ब्रह्मातिथि । ७. विश्वामित्र वा जमदग्नि । ८. प्रस्कण्व ।

२१४. आ व इन्द्रं क्रिविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् । मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः ॥

इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है। जैसे अन्न के चाहनेवाले कृषक खेत की नालियों को जल से सीचते हैं तथा जैसे कारीगर यन्त्रों को तैल से सींचते हैं, उसी प्रकार बल चाहने वाले हम उपासक बहुत प्रकार के कर्मों वाले, सर्वज्ञ, सुखदाता, पूज्य परमेश्वर को अपनी स्तुतियों से सींचते अर्थात् प्रसन्न करते हैं।

२१५. अतश्चिदिन्द्र न उपा याहि शतवाजया । इषा सहस्रवाजया ॥

हे परमेश्वर ! इस कारण ही आप सैकड़ों, सहस्रों प्रकार के आत्मिक बलों से युक्त आनन्दरूपी रसों के साथ हमें प्राप्त होइये।

२१६. आबुन्दं वृत्रहा ददे जातः पृच्छाद् वि मातरम् । क उग्राः के ह शृण्विरे ॥

समस्त आत्मिक शत्रुओं तथा विघ्नों का विनाशक परमेश्वर उपासक की आत्मा में साक्षात्कार किये गये अपनी विघ्ननिवारक शक्ति को प्रकट कर उपासक से मानो पूछता है कि बता कौन-कौन तेरी शान्ति को नष्ट करने वाले उग्र आत्मिक शत्रु तुझे कष्ट दे रहे हैं और तेरी हिंसा कर रहे हैं ? उनको नष्ट किया जावेगा।

तथा ॐ रूपी बाण का आश्रय लेकर अज्ञाननाशक जीवात्मा यथार्थ अनुभवशील चित् शक्ति से पूछता है कि वे कौन से विक्षेपक भाव हैं जो तेरी हिंसा कर रहे हैं ?

२१७. बृबदुक्थं हवामहे सृप्रकरस्नमूतये । साधः कृण्वन्तमवसे ॥

हम उपासकजन अपनी रक्षा के उद्देश्य से उस महान् प्रशंसनीय, असंख्य भुजाओं की शक्ति रखने वाले, संसार की रक्षा के लिए अच्छी प्रकार साधना करने वाले तथा धनदाता परमेश्वर को बुलाते हैं।

२१८. ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयति विद्वान् । अर्यमा देवैः सजोषाः ॥

वरने योग्य, विघ्न-निवारक, मित्र, विद्वान् तथा न्यायकारी परमेश्वर, विद्वानों से प्रीतियुक्त होकर हम सबको सरल नीति के मार्ग से ले जाता है।

२१९. दूरादिहेव यत्सतोऽरुणप्सुरशिश्वितत् । वि भानुं विश्वथातनत् ॥

दूर रहकर भी यहीं पास में वर्तमान परमेश्वर प्रभातकालीन प्रकाश के समान कान्तिमान् होकर जब उपासक की आत्मा में प्रकट रूप में अनुभूत होता है तब सब प्रकार की दीप्ति, प्रकाश तथा बुद्धियों को सब ओर विस्तार करता है।

२२०. आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥

शोभन कर्मवाले प्राण और अपान दीप्तियों द्वारा इन्द्रियों के मिलने के स्थान त्रिपुटी भाग को और रजोभाव से युक्त इन्द्रियों को विशेष चेतना संवित्सिद्धि द्वारा उत्तम प्रकार से पोषण करें।

२२१. उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठा यज्ञेष्वत्नत । वाश्रा अभिज्ञु यातवे ।।

वे वाणी के उत्पादक प्राणरूपी मरुद्गण अपने श्रेष्ठ निवासस्थान इन्द्रियस्थानों में ध्वनि करते हुए अपने मार्गों पर गति करने के लिए बड़े नियम के साथ ऊपर की ओर जाया करते हैं।

२२२. इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समूढमस्य पांसुले ।।

सर्वव्यापक परमेश्वर इस जगत् में सर्वत्र गति कर रहा है। वह अपनी शक्ति को पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ—इन तीनों लोकों में स्थापित किये हुए है। इस जगत् के धूल के कण-कण तक में उसका स्वरूप और शक्ति व्याप्त है।

—०—

चतुर्थ दशति बारहवाँ खण्ड

ऋषि—१, ७, ८ मेधातिथि। २ वामदेव, विश्वामित्र। ३, ५ मेधातिथि, प्रियमेध, श्रुतकक्ष। ४ विश्वामित्र। ६ कौत्स, दुर्मित्र वा सुमित्र। ९ वामदेव, विश्वामित्र, गाथिनोऽभीपाद वा उदल। १० श्रुतकक्ष।

२२३. अतीहि मन्युषाविणं सुषुवांसमुपेरय । अस्य रातौ सुतं पिब ।।

हे परमेश्वर ! आप मन्यु से ज्ञान को उत्तम मार्ग पर प्रेरित करने वाले मुमुक्षु उपासक की आत्मा में प्रत्यक्ष होइये। आप क्रोध से इन्द्रियों को बुरे मार्ग पर ले जाने वाले को दर्शन नहीं देते। अच्छे प्रकार ज्ञान और भक्ति प्राप्त करने वाले के पास सदा उसकी आत्मा में साक्षात् होते रहते हैं। उसकी समाधि के आनन्द की दशा में उपासक की भक्ति तथा स्तुति को आप स्वीकार करते हैं।

२२४. कदु प्रचेतसे महे वचो देवाय शस्यते । तदिद्ध्यस्य वर्धनम् ।।

महान् विद्वान् परमेश्वर के लिये यदि थोड़ा भी स्तुति के वचन का उच्चारण किया जाये तो भी वह स्तोता की वृद्धि करने वाला होता है।

२२५. उक्थं च न शस्यमानं नागो रयिरा चिकेत । न गायत्रं गीयमानम् ।।

सर्वव्यापक परमेश्वर अस्पष्ट स्वरवाले अथवा अज्ञानी के द्वारा कहे जाने वाले स्तुतिपाठ को और गाये जातेहुए गायत्र नामक साम को क्या नहीं जानता? अवश्य जानता और स्वीकार करताहै।

२२६. इन्द्र उक्थेभिर्मन्दिष्ठो वाजानां च वाजपतिः । हरिवान्त्सुतानां सखा ।।

परमेश्वर स्तुतियों (यथार्थ गुणवर्णन) से प्रसन्न, ज्ञानियों के भी ज्ञान का स्वामी, व्यापक शक्तियों तथा प्रकृति के पञ्चभूतों को वश में रखनेवाला और उत्पन्न किये मनुष्यों का सखा है।

२२७. आयाह्यु प नः सुतं वाजेभिर्मा हृणीयथाः । महाँ इव युवजानिः ।।

हे परमेश्वर ! आप हमारी ज्ञानों के द्वारा सम्पादित भक्ति तथा स्तुति को देखकर आत्मा में साक्षात् होइये, थोड़े से अपराध पर ही क्रुद्ध न होइये। आप अपने जीवन में प्रपौत्र (प्रपोते) को देखनेवाले वृद्ध के समान और उससे भी अधिक महान् हैं।

२२८. कदा वसो स्तोत्रं हर्यत आ अवश्मशा रुधद्वाः । दीर्घं सुतं वाताप्याय ।।

हे श्रेष्ठ धनवाले परमेश्वर ! वेदज्ञान का लाभ प्राप्त करनेवाले पुरुष के लिए आप शरीर के भीतर संचार करनेवाले जीवनरूपी जल को कब रोकते हैं ? अर्थात् कभी नहीं । प्राणायाम करनेवाले पुरुष का जीवन तथा सम्पादित ज्ञान विस्तृत होता है ।

२२९. ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृतूँरनु । तवेदं सख्यमस्तृतम् ॥

हे परमेश्वर ! आप सिद्धि प्राप्त करनेवाले ब्रह्मवेत्ता से ऋतुओं के अनुसार सम्पादित ज्ञान तथा भक्ति को स्वीकार कीजिये । आपकी उपासक के साथ की मित्रता कभी नष्ट नहीं होती ।

२३०. वयं घा ते अपि स्मसि स्तोतार इन्द्र गिर्वणः । त्वं नो जिन्व सोमपाः ॥

हे वाणी से प्रशंसा किए जाने योग्य परमेश्वर ! हम उपासक आपकी ही स्तुति करनेवाले हैं । आप हमारी भक्ति को स्वीकार करनेवाले होकर हमें प्रसन्न कीजिए ।

२३१. एन्द्र पृक्षु कासु चिन्नृम्णं तनूषु धेहि नः । सत्राजिदुग्र पौंस्यम् ॥

हे सदा विजयशील, उग्र, परमेश्वर ! आप किन्हीं विशिष्ट योग-क्रियाओं में हमारे शरीरों में पुरुषार्थ तथा योग-बल को धारण कराइये ।

२३२. एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः । एवा ते राध्यं मनः ॥

हे परमेश्वर ! आप निश्चय ही वीरों को चाहनेवाले और स्वयं शूर तथा स्थिर हैं । आपका मनन करने योग्य विज्ञान प्रशंसनीय है ।

—०—

तीसरा अध्याय

२३३ से ३५१ मन्त्र तक

पञ्चमी दशति पहला खण्ड

देवता—इन्द्र । केवल नवें मन्त्र का मरुद् देवता है । छन्द—बृहती । स्वर—मध्यम ।

ऋषि—१, ६, ९ वसिष्ठ । २ शंयु भरद्वाज । ३ बालखिल्य । ४ नोधा । ५ कलिप्रगाथ । ७. मेधातिथि । ८. भर्ग । १० प्रगाथ काण्व ।

२३३. अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥

हे शूरवीर परमेश्वर ! जैसे बिना दुही हुई गौएँ अपने प्यारे वत्स को देखकर नम्र बनी हुई रंभाती हैं, उसी प्रकार भक्ति से नम्र होकर हम आपको नमस्कार करते हैं । आप इस गतिशील तथा स्थिर दोनों प्रकार के जगत् के स्वामी हैं और सूर्य के समान स्वयं प्रकाशित और अन्यों को तथा सूर्य आदि को भी प्रकाशित करनेवाले हैं ।

२३४. त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः । त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः

हे परमेश्वर ! ज्ञान, बल, धन तथा अन्न की प्राप्ति के लिए हम उपासक आप का ही स्मरण करते हैं। विघ्नों के समय श्रेष्ठ स्वामी तथा सज्जनों के पालक आपको ही मनुष्य स्मरण करते हैं। संग्रामों में भी अश्वारोही विजय के लिये आपको ही याद करते हैं।

२३५. अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ।।

हे विद्यादि बहुत धनवाले परमेश्वर ! मैं उपासक आपको जैसा जानता हूँ वैसी ही आपकी पूजा करता हूँ। हे मनुष्यो ! तुम सब परमेश्वर को जिस प्रकार जान सको वैसे ही उसकी उपासना करो। सर्वव्यापक होकर वह परमेश्वर स्तुति करनेवालों के लिये सहस्रों प्रकार से शिक्षा देता है।

२३६. तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ।

जैसे गोएँ अपने घरों में अपने प्यारे बच्चे के लिए प्रेमभरे स्वर से बोलती हैं, उसी प्रकार हे मनुष्यो ! हम उस शत्रुओं के नाशक, बाधा-निवारण करने वाले परमेश्वर की वेद के मन्त्रों से प्रेमपूर्वक स्तुति करते हैं।

२३७. तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रं सबाध ऊतये ।
बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ।।

आत्मिक बलों के द्वारा ज्ञान के प्राप्त करनेवाले परमेश्वर को बाधाओं से पीड़ित हम अपनी रक्षा के लिए बृहद् नामक साम को तथा अच्छी स्तुतियों का गान करते हुए, ज्ञानपूर्ण अहिंसात्मक कर्मों में उसी प्रकार स्मरण करते तथा पुकारते हैं जिस प्रकार संग्राम में उपकारी बलवान् योधा को स्मरण किया जाता है अथवा जिसप्रकार घर में कुटुम्ब के भरण-पोषण करनेवाले को तथा सोमयाग में पोषणकर्ता यजमान को बुलाया जाता है।

२३८. तरणिरित् सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा ।
आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्रुवम् ।।

अति वेगवान् परमेश्वर सहायभूत बुद्धि तथा योग की समाधि के द्वारा शीघ्र ही हमारी भक्ति को स्वीकार करना चाहता है। इसलिए प्रत्येक देह में बल सञ्चार करनेवाले, बहुस्तुत परमेश्वर को मैं उपासक वेदवाणी से उसी प्रकार अपने प्रति अनुकूल करता हूँ जिसप्रकार बढ़ई उत्तम लकड़ी की बनी, उत्तम गति करने योग्य, पहिये की पुट्ठी (हाल) को झुकाकर अनुकूल बनाता है।

२३९. पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः ।
आपिर्नो बोधि सधमाद्ये वृधे३ऽस्माँ अवन्तु ते धियः ।।

हे परमेश्वर ! आप जितेन्द्रिय तथा श्रेष्ठ वाणी वाले हम लोगों की रस से पूर्ण भक्ति को स्वीकार कीजिये और हम पर प्रसन्न होइये। सर्वव्यापक! आप हमको ज्ञान दीजिये। योगरूपी यज्ञ में वृद्धि के लिए आपकी दी हुई बुद्धियाँ हमारी रक्षा करें।

२४०. त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये ।
उद्वावृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ।।

हे परमेश्वर ! ज्ञानी भक्त सेवक के लिए, विद्या आदि धन देने के लिये, आप प्राप्त होइये। हे अनन्त विद्या आदि धनयुक्त प्रभो ! इन्द्रियों की वृत्ति-निरोधरूप यज्ञ के लिए मन तथा प्राणों को सुख से पूर्ण कीजिये।

२४१. न हि वश्चरमं चन वसिष्ठः परिमंसते ।
अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबन्तु कामिनः ।।

हे प्राणो ! जीवात्मा तुममें से अन्तिम प्राण का भी तिरस्कार नहीं करता अर्थात् सबको उपयोग समझता है। हमारे सम्पन्न मन में तथा उत्पन्न किये हुए ज्ञानरस में कामना करनेवाले आप सब आज समाधि-अवस्था में एकसाथ आनन्दरस का पान करें।

२४२. मा चिदन्यद् वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ।।

हे मित्रो ! और किसी की स्तुति मत करो, व्यर्थ अपना नाश तथा दूसरों की हिंसा न करो। अपने उत्पादित ज्ञान, यज्ञ तथा शुद्ध मन में सब मिलकर श्रेष्ठ तथा सुखवर्षक परमेश्वर की ही स्तुति करो और बार-बार स्तोत्रों का गान करो।

—o—

छठी दशति दूसरा खण्ड

देवता—इन्द्र। छन्द—बृहती। स्वर—मध्यम।

ऋषि—आङ्गिरस पुरुहन्मा। २, ४. प्रगाथ, मेधातिथि और मेध्यातिथि काण्व। ४. विश्वामित्र ५. गौतम। ६. नृमेध और पुरुमेध। ७, ८, ९. मेधातिथि, मेध्यातिथि काण्व। १०. देवातिथि काण्व।

२४३. न किष्टं कर्मणा नशद् यश्चकार सदावृधम् ।
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णुमोजसा ।।

उस मनुष्य को कोई भी नष्ट नहीं कर सकता जो अपने कर्मों से अपने को सदा वृद्धि की ओर अग्रसर करता है और जो यज्ञों के द्वारा अपने को परमेश्वर के समान सबसे प्रशंसित, ज्ञान-सम्पन्न, किसी से न पराजित होने वाला और धीरज रखनेवाला सहनशील बना लेता है।

२४४. य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।
सन्धाता सन्धिं मघवा पुरूवसुर्निष्कर्ता विह्रुतं पुनः ।।

जो परमेश्वर, जोड़ने के साधन वस्तु के बिना ही, जन्म से पहले ही, जीवों के लिये, अलग-अलग हुए अंगों के भी जोड़ों को जोड़ता है वह सब स्थानों पर वास करने वाला, सब प्रकार के धनों से सम्पन्न, जीवन का स्वामी शस्त्र से कटे हुए स्थान को भी फिर अच्छी प्रकार वैसा ही बना देता है, और वही शरीर के बन्धनों का विच्छेद भी करने वाला है।

२४५. आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये ।।

हे परमेश्वर ! एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने योग्य आत्मा से युक्त शरीररूपी रथ में जुड़े हुए, सैकड़ों तथा हजारों, वेदज्ञानरूपी अन्न की शक्ति से युक्त विद्वान् पुरुष अथवा इन्द्रियरूपी घोड़े, भक्तिरूपी रस का पान करने के लिए, आपको प्राप्त हों। (इस मन्त्र में रूपक तथा श्लेष अलङ्कार है)।

२४६. आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
मा त्वा के चिन्नि येमुरिन्न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ।।

हे परमेश्वर ! आप मोर के शब्दों के समान उत्तम हर्षप्रद स्वरों से स्तुति किये जाने पर अपनी हर्षप्रद शक्तियों से हमारे अन्तःकरण में प्रत्यक्ष होइये। जाली मनुष्यों के समान कोई भी आपको बाँध नहीं सकता। शस्त्रधारी के समान आप उन जाल रचने वालों का निग्रह करते हैं।

२४७. त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ।।

सब में श्रेष्ठ तथा बलवान् परमेश्वर ! आप स्वयं प्रकाशमान होकर मनुष्यों को भी प्रशंसा-योग्य बनाते हैं। आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी सुख देनेवाला नहीं है, अतः आपकी स्तुति के वचनों का गान करता हूँ।

२४८. त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पतिः ।
त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इत् पुर्वनुत्तश्चर्षणीधृतिः ।।

हे परमेश्वर ! आप यशस्वी, समृद्ध, सरल मार्ग में प्रेरक, तथा सर्वशक्तिमान् हैं। आप बिना शरीर धारण किये ही, किसी से प्रेरित न होकर, अकेले ही मनुष्यों को धारण करनेवाले होकर, न दबने वाले बहुत से काम, क्रोध आदि विघ्नों तथा दुष्टों का संहार करते हैं।

२४९. इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।
इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ।।

हम विद्वानों तथा इन्द्रियों की भलाई के लिए परमेश्वर को ही पुकारते हैं; हिंसारहित यज्ञ के आरम्भ में भी परमेश्वर का आह्वान करते हैं; संग्राम में भी जब समभागी होकर परमेश्वर का ही स्मरण करते हैं और धन की प्राप्ति के लिए परमेश्वर की ही प्रार्थना करते हैं।

२५०. इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभिस्तोमैरनूषत ।।

हे परमेश्वर ! जो आपके प्रति कही जाने वाली मेरी वाणियाँ हैं वे वृद्धि को प्राप्त हों और जो तेजस्वी, पवित्र, विद्वान् पुरुष स्तुतिमन्त्रों से आपकी स्तुति करते हैं वे भी वृद्धि को प्राप्त हों।

२५१. उदु त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते ।

सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ।।

परमेश्वर के लिए वे अत्यन्त मधुर वेदवाणियाँ तथा स्तोत्र उसी प्रकार उच्च भाव से प्रकट किये जा रहे हैं जैसे सदा विजयी, धन प्राप्त कराने वाले, अक्षय बलशाली और वेगवान् रथ लक्ष्य की ओर उच्च ध्वनि करते हुए गमन करते हैं ।

२५२. यथा गौरो अपाकृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम् ।

आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब ।।

हे इन्द्र ! जिस प्रकार प्यासा मृग, सिंह अथवा बाघ जल से पूर्ण प्रदेश को प्राप्त होता है, उसी प्रकार आप हमारी मित्रता प्राप्त होने पर मेधावी उपासकों की ज्ञान-भक्ति-पूर्ण आत्मा में साक्षात् होकर उनकी भक्ति को स्वीकार करें ।

—०—

सातवीं दशति तीसरा खण्ड

देवता—इन्द्र । तीसरे मन्त्र में 'आदित्याः' देवता बताया जाता है किन्तु ऐन्द्रपर्व में वहाँ भी इन्द्र देवता ही समझना चाहिए । छन्द —बृहती । स्वर—मध्यम । ऋषि—१ भर्ग । २ रेफ काश्यप वा रेभ वा रेभ काण्व । ३ जमदग्नि । ४, ९ मेधातिथि, मेध्यातिथि काण्व । ५ पुरुमेध और नृमेध । ६ मेधातिथि वा नृमेध पुरुमेध । ७ वसिष्ठ वा शक्ति । ८ रेफ काश्यप । १० शंयु भरद्वाज ।

२५३. शग्ध्यू३ षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।

भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ।।

हे बलशाली, शक्तियों, कर्मों तथा बुद्धियों के स्वामी इन्द्र ! आप सब प्रकार की रक्षाओं से अभिलाषा को पूरा कीजिये । यशस्वी तथा धन प्राप्त करने वाले आप से हम ऐश्वर्य के समान ही यश की भी याचना करते हैं । हम सदा आपके अनुकूल चला करते हैं ।

२५४. या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वां असुरेभ्यः ।

स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ।।

हे सर्वधनसम्पन्न, प्रकाशयुक्त इन्द्र ! आप जिन अन्न आदि भोग्य पदार्थों को मेघों से वा अन्य प्राणदायक स्थानों से प्राप्त कराते हैं, उनके द्वारा आपकी आज्ञापालन करने वाले मुझ स्तोता को, और जो यज्ञों का विस्तार करनेवाले अपना शरीर आपके लिए अर्पण कर चुके हैं, उनके लिए पुष्ट कीजिये ।

२५५. प्र मित्राय प्रार्यम्णे सचथ्यमृतावसो ।

वरूथ्ये३ वरुणे छन्द्यं वचः स्तोत्रं राजसु गायत ।।

हे सत्यज्ञान में वास करनेवाले ज्ञानी पुरुषो ! तुम मित्र, अर्यमा=न्यायकारी, वरुण नामों से प्रसिद्ध इन्द्र परमात्मा के लिए तथा प्रकाशमान आदित्य नामक विद्वान् ब्रह्मचारियों के लिए, शरीर-रूपी घर के लिये हितकारी, सेवनयोग्य, वेद के अनुसार, स्तुति=गुणों का वर्णन करो ।

२५६. अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।
समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥

हे इन्द्र ! अपनी पूर्ण तृप्ति के लिए दीर्घ आयु की कामना करनेवाले, सच्चे और भले, मेधावी तथा प्राणविद्या के जानने वाले और रुद्र नामक ब्रह्मचारी विद्वान् आपका वेद के स्तोत्रों द्वारा अच्छे स्वर से गानकरते हैं तथा प्राणायामसे साधना करते हैं और सनातन तथा पूर्ण आपकी स्तुति करते हैं।

२५७. प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत । वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ॥

हे स्तोताओ ! तुम महान् इन्द्र की वेदद्वारा स्तुति करो। वह सैकड़ों कर्मों का करनेवाला इन्द्र सैकड़ों धारवाले ज्ञानरूपी बज्र (शस्त्र) से अज्ञान, पाप तथा विघ्नों को नष्ट करता है।

२५८. बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् ।
येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि ॥

हे कम बोलने वाले तथा ज्ञानयज्ञ की वृद्धि करनेवाले उपासको ! महान् इन्द्रदेव के लिए अज्ञान-नाशक उस श्रेष्ठ साम का गान करो, जिससे सत्यज्ञान को बढ़ाने वाले मनुष्य सदा जागृत और दिव्यगुणयुक्त ज्योति को अपने हृदय में प्रगट करते हैं।

२५९. इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥

हे इन्द्र ! जिस प्रकार पिता अपने पुत्रों के लिए ज्ञान और धन देता है उसी प्रकार आप हमारे लिये ज्ञान, बुद्धि, विद्या और धन को प्रदान कीजिये। हे उपासकों द्वारा स्तुत परमात्मन् ! आप इस प्राप्त करने योग्य ब्रह्मयज्ञ में हमें शिक्षा दीजिये जिससे हम जीवात्मा ज्ञान की ज्योति को प्राप्त करें।

२६०. मा न इन्द्र परा वृणग्भवा न सधमाद्ये ।
त्वं न ऊती त्वमिन्न आप्यं मा न इन्द्र परा वृणक् ॥

हे इन्द्र ! आप हमको मत छोड़िये। आनन्द प्राप्त करने के स्थान हृदय में, समाधि में, ब्रह्मयज्ञ में आप हमारे ही होकर हमारी रक्षा कीजिये। आप ही हमारे एकमात्र लक्ष्य और प्राप्त करनेयोग्य हैं। आप हमें मत छोड़िये।

२६१. वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥

हे अज्ञान आदि वृत्रों के नाशक परमात्मन् ! ज्ञान और भक्ति का सम्पादन करनेवाले, यज्ञ का विस्तार करने वाले, हम ज्ञान द्वारा देह के बन्धन को काटकर पवित्र वेदज्ञान के प्रवाहों को अपने चारों ओर करके उसी प्रकार स्थित हैं जिस प्रकार पानी भूमितट को अपने चारों ओर करके स्थित होता है।

२६२. यदिन्द्र नाहुषीष्वा ओजो नृम्णं च कृष्टिषु ।
यद्वा पञ्चक्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या ।।

हे इन्द्र ! शरीर-बन्धनों में बँधीहुई तथा कर्मफल प्राप्त करने वाली मनुष्यों की प्रजा में जो ओज, बल, धन है अथवा जो आत्मा की पाँचों भूमियों तथा विस्तृत योग-भूमियों में कान्त और बल है, वह सब बल, कान्ति, तेज, धन तथा पुरुषार्थ आप हमें प्रदान कीजिये ।

आठवीं दशति चतुर्थ खण्ड

देवता—इन्द्र । छन्द—बृहती । स्वर—मध्यम ।

ऋषि—१ मेधातिथि । २ रेभ । ३ वत्स, वर्ष वा वशोऽश्व्य । ४ शंयु वा भरद्वाज । ५ नृमेध । ६ पुरुहन्मा । ७ नृमेध और पुरुमेध । ८ वसिष्ठ । ९ प्रगाथ मेधातिथि और मेध्यातिथि । १० कलि ।

२६३. सत्यमित्था वृषेदसि वृषजूतिर्नोऽविता ।
वृषा ह्युग्र शृण्विषे परावति वृषो अर्वावति श्रुतः ।।

हे परमात्मन् ! आप सत्य ही इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और सुख की वर्षा करनेवाले हैं। श्रेष्ठ जनों द्वारा सेवित आप हमारे पालन करनेवाले हैं । हे उग्र प्रभो ! आप दूर-दूर तक तथा पास में भी सदा सुखवर्षक और श्रेष्ठतम सुने जाते हैं ।

२६४. यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन् ।
अतस्त्वा गीर्भिर्द्युगदिन्द्र केशिभिः सुतावाँ आ विवासति ।।

हे सर्वशक्तिमन् ! क्योंकि आप दूर से दूर भी हैं, और हे अज्ञानान्धकार निवारक प्रभो ! क्योंकि आप पास में भी हैं, इसलिये प्रकाश की ओर जानेवाला साधक-पुरुष वेदमन्त्रों से आपकी ही शीघ्र-स्तुति तथा उपासना करके अपने आत्मा में आपका साक्षात्कार करता है ।

२६५. अभि वो वीरमन्धसो मदेषु गाय गिरा महा विचेतसम् ।
इन्द्रं नाम श्रुत्यं शाकिनं वचो यथा ।।

हे मनुष्यो ! तुम शारीरिक तथा आत्मिक भोजन से प्राप्त होने वाले आनन्दों के लिए तथा बसे आनन्दों के प्राप्त होने पर, विशेष ज्ञानयुक्त, वेदों में प्रसिद्ध, सब को नम्र करनेवाले, शक्तिशाली वीर इन्द्र (परमात्मा) का वेद-वचनों के अनुसार गान करो ।

२६६. इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तये ।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ।।

हे इन्द्र ! मुझ उपासक के लिए और यज्ञ करनेवाले साधकों के लिए, कल्याणार्थ, ऐसा शरीर दीजिये जो वात, पित्त और कफ—इन तीनों धातुओं से बना हुआ हो, जो गर्मी, वर्षा, और शीत ऋतु में चन्दन, [illegible]र, केसर आदि तीन प्रकार के विलेपनों से युक्त किया गया हो तथा तीनों दोषों का

निवारण करनेवाला हो। साथ ही हमको ऐसा निवासंस्थान घर दीजिये जो विद्वानों, वृद्धों तथा साधारणजनों के उपभोग के योग्य हो; जो सोना, चाँदी, माणिक्य—इन तीन धातुओं से परिपूर्ण हो तथाजो तीन प्रकार की अग्नियों से युक्त हो। हे प्रभो! अन्त में हम सबके मोक्ष केलिए इस वज्रस्वरूप देह के बन्धन को हटाइये। इसप्रकार हमें आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक दुःखों से छुड़ाकर तीनों प्रकार की शान्ति प्राप्त कराइये।

२६७. श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत।
वसूनि जातो जनिमान्योजसा प्रति भागं न दीधिमः॥

किरणों के आश्रयस्थान सूर्य के समान सबके प्रेरक तथा आश्रयस्थान इन्द्र परमात्मा का सहारा लेते हुए सब उत्पन्न हुए तथा आगे उत्पन्न होनेवाले प्राणी परमेश्वर के ही भोगों को भोगते हैं और उसी के बल से अपने भाग के अनुसार बल, धन आदि को उसी प्रकार धारण करते हैं जिस प्रकार पुत्र अपने पिता के द्वारा दिये गये भाग को ग्रहण करता है।

२६८. न सीमदेव आप तदिषं दीर्घायो मर्त्यः। एतग्वा चिद्य एतशो युयोजत इन्द्रो हरी युयोजते

हे लम्बी आयुवाले मरणधर्मा मनुष्य! ईश्वर-भक्ति और दान से रहित होकर तू लक्ष्य तथा जीवनमार्ग को नहीं प्राप्त कर सकता। उद्दिष्ट स्थान पर जानेवाला पुरुष अपनी इन्द्रियरूपी घोड़ों को उसी प्रकार कार्य में नियुक्त करता है जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों को संयुक्त करता है। वास्तव में परमात्मा ही उपासक को उचित मार्ग पर चलाता है।

२६९. आ नो विश्वासु हव्यमिन्द्रं समत्सु भूषत।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन् परमज्या ऋचीषम॥

हे मनुष्यो! सब आनन्दावसरों तथा संग्रामोंमें हमारे पूज्य इन्द्र का गुणगान करो। हे विघ्नों को दूर करनेवाले, शत्रुओं के जीतनेवाले तथा स्तुति के योग्य परमात्मन्! आप हमारे स्तोत्रों तथा यज्ञों को शोभायुक्त कीजिए।

२७०. तवेदिन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम्।
सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि न किष्ट्वा गोषु वृण्वते॥

हे इन्द्र! नीच प्राणी भी आपका ही है, आप मध्यम प्राणी को भी पुष्ट करते हैं तथा सबसे उत्कृष्ट संसार में भी विराजमान हैं और द्यौ, अन्तरिक्ष तथा पृथिवीलोक के भी पालक हैं। आपको पृथिवी आदि लोकों में कोई भी नहीं रोक सकता। आपको समस्त लोकों गतिशील योनियों तथा इन्द्रियों में भी कौन नहीं वरण करता? अर्थात् सभी चाहते और स्वीकार करते हैं।

२७१. क्वेयथ क्वेदसि पुरुत्रा चिद्धि ते मनः।
अलर्षि युध्म खजकृत् पुरन्दर प्र गायत्रा अगासिषुः।

हे इन्द्र! आप कहाँ गति करते हैं और कहाँ रहते हैं? अर्थात् किसी एक स्थान पर नहीं, प्रत्युत सब स्थानों पर ही चेतनरूप से आपका ज्ञान तथा शक्ति गति कर रही है। हे शक्तिशाली,

हे इन्द्रियशक्तियों के विधाता, हे आकाश में उत्पन्न ब्रह्माण्डों के कर्ता, हे शरीर के बन्धनों को छुड़ाने वाले इन्द्र ! गानेवाले उपासक आपका ही गान करते हैं।

२७२. वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् । तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते

हम ब्रह्मज्ञानी लोग दुष्टों को दण्ड देने वाले इस प्रसिद्ध परमात्मा को ही अतीत जीवनों में तथा कल तक इस संसार में सब प्रकार से प्रसन्न करते रहे हैं। हे मनुष्यो ! तुम भी आज वेदानुकूल ब्रह्म-यज्ञ में उसी के लिए सम्पादित ज्ञान तथा भक्ति को धारणकर अपने आपको भूषित करो।

—०—

नवीं दशति पांचवां खण्ड

देवता—इन्द्र। ९ वें मन्त्र में इन्द्र के साथ अग्नि भी है। चौथे में सूर्य नाम से इन्द्र ही देवता है, क्योंकि यह 'ऐन्द्र पर्व' है।

छन्द—बृहती। स्वर—मध्यम। ऋषि—१, ६ पुरुहन्मा। २ भर्ग। ३ इरिमिठि (इरिम्बिठि) ४ जमदग्नि। ५, ७ देवातिथि। ८ वसिष्ठ। ९ भरद्वाज। १० बालखिल्य, मेध्यकाण्व।

२७३. यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे ॥

जो मनुष्यों तथा इन्द्रियों आदि का राजा है, जो रमणीय योग आदि साधनों से प्राप्त होता तथा पृथिवी आदि लोकों और वेदवाणी पर अधिकार रखने वाला है; जिसकी गति को कोई रोक नहीं सकता; जो अपने स्वरूप में ही स्थिर होकर भी अपनी रमणीय शक्तियों से सब स्थानों में पहुँचा हुआ है; जो सब वासनाओं तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष आदि से तारने (पार करने) वाला मनुष्यों तथा सेनाओं को विपत्ति से पार करने वाला है और जो अज्ञानों तथा दुष्टों का नाशक है, उस महान् तथा श्रेष्ठ परमात्मा की मैं स्तुति करता हूँ।

२७४. यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि ॥

हे इन्द्र ! जिसमें हमें भय होता है उससे हमको अभय कीजिये। हे बलशाली सर्वधनसम्पन्न ! आपके उस अभय-दान को हम मांगते हैं। हम श्रेष्ठों की रक्षा के लिए आप समर्थ हैं। आप हिंसक, दुष्ट तथा द्वेषी पुरुषों को नष्ट कीजिये तथा संग्रामों में हमें विजय दिलाइये।

२७५. वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणांसत्रं सोम्यानाम् ।
द्रप्सः पुरां भेत्ता शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनां सखा ॥

हे बसने योग्य स्थानों के स्वामी तथा रक्षक प्रभो ! आप सौम्य प्रजा तथा उपासकों के स्तम्भ के समान, निश्चित रीति से आधार और कवच के समान रक्षक हैं। आप अखण्डनीय, शीघ्र गति-वाले तथा ज्ञानी हैं। योगी उपासकों के शरीर-बन्धन तथा दुष्टों के नगरों को भेदन करने वाले हैं। ऐश्वर्यशाली आप मुनियों के मित्र हैं।

२७६. बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि, महस्ते सतो महिमा पनिष्टम मह्ना देव महाँ असि

हे सूर्य, सबके उत्पन्न करने वाले और प्रेरक परमात्मन् ! आप सचमुच महाम् हैं । हे अखण्डनीय प्रकृति के पालक, सबको अपने अन्दर रखने वाले ! आप सत्य ही महान् हैं । सत्यस्वरूप श्रेष्ठ आप-की बड़ी महिमा है । हे स्तुति करने योग्य देव ! आप अपनी महिमा से ही स्वयं महान् हैं ।

'ऋग्विधान' ग्रन्थ में लिखा है कि 'सूर्य को देखकर इस ऋचा का जप करता हुआ परमेश्वर का ध्यान करे। ऐसा पुरुष कभी भूल से असत्य वाणी बोलता हुआ भी उस असत्य से लिप्त नहीं होता ।'

२७७. अश्वी रथी सुरूप इद्गोमान् यदिन्द्र ते सखा ।

श्वात्रभाजा वयसा सचते सदा चन्द्रैर्याति सभामुप ।।

हे इन्द्र ! जो मनुष्य जब तेरा सच्चा मित्र बन जाता है तभी वह बलवान् प्राणों तथा घोड़ों से सम्पन्न; उत्तम शरीर, रमणीय रथ (सवारी) आदि रखने वाला; सुन्दर रूप वाला; उत्तम वाणी तथा इन्द्रियों से युक्त और धन, अन्न तथा दीर्घ आयु से सम्पन्न हो जाता है और सदा हर्षित करने वाले जनों के साथ आनन्ददायक गुणों से युक्त होकर सभा में जाया करता है ।

२७८. यद्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।

न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ।।

हे सर्वशक्तिमन् इन्द्र ! यदि द्यौलोक भी सैकड़ों हो जावें और यदि भूमियाँ भी सैकड़ों हो जावें तो भी, वे सब और हजारों सूर्य तथा यह सब उत्पन्न द्यौ-पृथिवी मिलकर भी आपको व्याप नहीं सकते । आप सर्वव्यापक हैं ।

२७९. यदिन्द्र प्रागपागुदङ् न्यग्वा हूयसे नृभिः ।

सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ।।

हे तेजस्वी इन्द्र ! जो आप पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण दिशाओं में मनुष्यों द्वारा बुलाये जाते हैं वह आप सर्वत्र बहुत प्रकार से मनुष्यों द्वारा प्रार्थित हैं और इन्द्रियों के अधीन रहने वाले तथा उनको अपने अधीन रखने वाले सभी देहधारी प्राणियों में भी सब के समीप वर्तमान हैं ।

२८०. कस्तमिन्द्र त्वा वसवा मर्त्यो दधर्षति ।

श्रद्धा हि ते मघवन् पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति ।।

हे सर्वव्यापक इन्द्र ! ऐसे आपको कौन मरने वाला मनुष्य अपमानित कर सकता है ? आप ही को अपना धन मानने वाले उपासक को कौन पराजित कर सकता है ? अर्थात् कोई नहीं । हे अनन्त-धनयुक्त ! श्रद्धा से ही, पार करने योग्य दिन में अथवा प्रकाशमय स्थान में, ज्ञानी भक्त-पुरुष आपके लिए अपनी ज्ञानमय भक्ति को देना चाहता है और सोमयाग करना चाहता है तथा आपसे ज्ञान तथा अन्न पाना चाहता है ।

२८१. इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात् पद्वतीभ्यः ।

हित्वा शिरो जिह्वया रारपच्चरत् त्रिंशत् पदा न्यक्रमीत् ।।

हे इन्द्र और अग्नि (ऐश्वर्यशाली ज्ञानस्वरूप) परमात्मन् ! बिना ही पैरों के=यह चेतनाशक्ति अथवा उषा, पैरवाली प्रजा से पहले ही आकर प्राप्त हो जाती है। शिरस्थानीय ब्रह्म अथवा सूर्यरूपी सिर को छोड़कर (उसके प्रत्यक्ष न होने पर) भी जीभ से शब्द करती और चलती हुई यह ३० पदों से आगे रहती है। चेतना के पक्ष में चेतन जीव के अतिरिक्त १० रुद्र, ८ वसु तथा १२ आदित्य=३० पद हुए। उषा के अर्थ में ६० मुहूर्त्त ३० पद हैं। भाव यह है कि उषा के पश्चात् सूर्योदय हो रहा है अब उपासना का समय है। पक्षियों आदि के शब्द ही बिना जिह्वा की उषा के शब्द हैं।

'इयम्' से अभिप्राय यदि पूर्व मन्त्र के प्रकरण से आई 'श्रद्धा' का लिया जावे तो यह अर्थ होगा कि "यह श्रद्धा, बिना ही पैर के पैरवालों से पहले, श्रद्धायोग्य वस्तु पर पहुंचती है। वही इन्द्र, अग्नि (परमात्मा) को प्राप्त कराती है।' 'श्रद्धा होने के कारण ही, उसी के बल से मनुष्य सिर कटने की चिन्ता न कर जीभ से बोलता और चलता हुआ तीस कदम आगे बढ़कर काम करता है।

२८२. इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः ।
आ शन्तम शन्तमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः ॥

हे अत्यन्त समीप स्थित इन्द्र ! आप मेधाबुद्धि का निर्माण करने वाली अपनी रक्षण-शक्तियों के साथ आत्मा में प्रत्यक्ष होइये। हे शान्ति देने वाले और अपने स्वरूप को प्राप्त कराने वाले, सुखदायक प्रभो ! शान्ति और सुखदेनेवाली हमारी कामनाओं के साथ हमें प्राप्त होइये।

—०—

सत्तवीं दशति छठा खण्ड

देवता—इन्द्र। पांचवें मन्त्र में 'अश्विनौ' देवता हैं जो 'इन्द्र' की प्राप्ति में सहायक हैं और छठे में वरुण-नामक इन्द्र (परमात्मा) देवता है। छन्द—बृहती। स्वर—मध्यम। ऋषि— १ नृमेध। २, ३ वसिष्ठ। ४ शंयु भरद्वाज। ५ परुच्छेप। ६ वामदेव। ७ मेधातिथि काण्व वा मेध्यातिथि। ८ भर्गः प्रागाथ। ९, १० प्रगाथ घोर काण्व, मेधातिथि और मेध्यातिथि।

२८३. इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम् । आशुं जेतारं होतारं रथीतममतूर्तं तुग्रियावृधम्

यहाँ अपनी रक्षा के लिए अजर, सबके प्रेरक, किसी से न प्रेरित, स्वयम्भू, व्यापक, सर्वोत्कृष्ट, ज्ञानदाता, सर्वश्रेष्ठ नेता, रमणीय पदार्थों के स्वामी, किसी से भी न मारे जाने वाले, अमर, ज्ञान के बढ़ाने वाले, जल के वर्षाने वाले इन्द्र की हम उपासना करते हैं। हे मनुष्यो ! तुम उसकी शरण में आओ।

२८४. मोषु त्वा वाघतश्च नारे अस्मन्नि रीरमन् ।
आरात्ताद्वा सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥

हे इन्द्र ! विद्वान् तथा अन्य जन, हमसे दूर तथा पास में भी क्या आपकी अच्छी प्रकार स्तुति नहीं कर रहे हैं ? अवश्य कर रहे हैं। आप दूर से दूर होने पर भी हमारे ब्रह्मयज्ञ के समय में आत्मा में प्रकट होइये और समीप हृदय में स्थित होने के कारण हमारी प्रार्थना को सुनिये।

२८५. सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमित् पृणन्नित् पृणते मयः ।।

हे उपासक मनुष्यो ! ज्ञान तथा भक्तिरस को स्वीकार करनेवाले, अज्ञाननाशक साधनों से सम्पन्न इन्द्र के लिए अपनी भक्ति का सम्पादन करो। उसके पक्व ज्ञान को अपने अन्दर पुष्ट करो और अपनी रक्षा के लिए यत्न भी करो। वह पालन करनेवाला और सुखदाता परमात्मा भक्ति की भेंट करनेवाले उपासक के लिये सुख देता है।

२८६. यः सत्राहा विचर्षणिरिन्द्रं तं हूमहे वयम् ।
सहस्रमन्यो तुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नो वृधे ।।

जो सब दुष्ट शत्रुओं का नाशक और सबको देखनेवाला है, उस इन्द्र को हम स्मरण करते हैं। हजारों मन्युओं तथा दीप्तियों से युक्त, बहुत बलशाली, सज्जनों के रक्षक हे परमात्मन् ! आप संग्रामों तथा आनन्द-उत्सवों के अवसर पर हमारी वृद्धि के लिये सहायक हों।

२८७. शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दिशस्यतम् ।
मा वां रातिरुपदसत् कदाचनास्मद्रातिः कदा चन ।।

हे शक्तियों से सब को जीवन देने वाले, कर्मरूपी धन से युक्त प्राण और अपान ! तुम दोनों अपनी शक्तियों से हमारे लिये दिन-रात शक्ति का सम्पादन करो, बुद्धि और धन प्रदान करो। तुम्हारा दान कभी कम न हो और हमारा दान का कार्य भी कभी कम न हो।

२८८. यदा कदा च मीढुषे स्तोता जरेत मर्त्यः ।
आदिद् वन्देत वरुणं विपा गिरा धर्तारं विव्रतानाम् ।।

जब कभी सुख के वर्षक इन्द्र परमात्मा के लिए स्तोता मनुष्य स्तुति करे तभी अनेक कर्मों के धारण करनेवाले वरुण=वरण करने योग्य तथा पापनिवारक परमेश्वर की, विशेष रूप से पालन करनेवाली वेदवाणी से, वन्दना भी करे।

२८९. पाहि गा अन्धसो मद इन्द्राय मेध्यातिथे ।
यः सम्मिश्लो हर्योर्यो हिरण्यय इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ।।

हे बुद्धिमान् तथा निरन्तर एक शरीर से दूसरे शरीर में जानेवाले, गतियुक्त जीवात्मन् ! तू परमेश्वर के पाने के लिये अन्न आदि प्राप्त होने पर, प्राण-धारण करने के उद्योग में, अपनी इन्द्रियों की रक्षा कर। जो ज्योतिस्वरूप, प्रकाशमय इन्द्र, हरणशील आत्मा, मन और इन्द्रियों में मिल रहा है, वही शक्तिशाली परमेश्वर सब जनों के लिए हितकारी और रमणीय है।

२९०. उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।
सत्राच्या मघवान्त्सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ।।

इन्द्र हमारे अन्दर और बाहर के दोनों प्रकार के वचनों को तथा स्तुति और प्रार्थना को सुने और ऐश्वर्य-सम्पन्न तथा बलशाली वह हमारी भक्ति को स्वीकार करने के लिये सत्य के पीछे चलने वाली बुद्धि के साथ हमें प्राप्त हो।

२९१. महे च न त्वाद्रिवः परा शुल्काय दीयसे ।

न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ ॥

अज्ञान-अन्धकार दूर करने वाले, दुष्टों के नाशक, मेघों के धारक तथा शक्तिशाली परमेश्वर ! आप बड़े भारी मूल्य को लेकर भी त्यागे नहीं जा सकते । बहुत धनवाले प्रभो ! सौ, हजार, लाख आदि किसी धन के बदले में आपकी उपासना को छोड़ा नहीं जा सकता, आप अमूल्य हैं ।

२९२. वस्याँ इन्द्रासि मे पितुरुत भ्रातुरभुञ्जतः ।

माता च मे छदयथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे ॥

हे इन्द्र ! आप धन का उचित भोग न करनेवाले तथा मेरा पालन न करनेवाले पिता और भाई से भी अधिक श्रेष्ठ वसाने वाले हैं । हे श्रेष्ठ निवास-स्थान रूप परमात्मन् ! मेरी माता और आप—दोनों एकसमान ही, मेरे निवास-स्थान तथा धन की प्राप्ति के लिये और सुशोभित करने तथा कार्य में सिद्धि दिलाने के लिये मेरा पोषण करते हैं ।

—०—

चतुर्थ प्रपाठक

(२९३ मन्त्र से ३९० मन्त्र तक)

पहली दशति सातवाँ खण्ड

देवता—इन्द्र । ७वें मन्त्र में भी बहुत से नामों से इन्द्र देवता का ही वर्णन है । छन्द—बृहती । स्वर—मध्यम । ऋषि—१ वसिष्ठ । २, ६ वामदेव । ३ मेधातिथि, मेध्यातिथि, विश्वामित्र । ४ नोधा । ५ मेधातिथि । ७ तौरश्रवाः, वामदेव । ८ बालखिल्य, श्रुष्टिगु काण्व । ९ मेधातिथि, मेध्यातिथि । १० नृमेध ।

२९३. इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः ।

ताँ आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां याह्योक आ ॥

इन्द्र परमात्मा के लिए इन ध्यानयोग से प्राप्त होनेवाले ज्ञानों को सम्पादित किया है, उनको स्वीकार कर, हे ज्ञानरूपी वज्र से सम्पन्न परमेश्वर ! हमारी प्रसन्नता और तृप्ति के लिए आप उपासना के स्थान हृदय में प्रकट होइये ।

२९४. इम इन्द्र मदाय ते सोमाश्चिकित्र उक्थिनः ।

मधोः पपान उप नो गिरः शृणु रास्व स्तोत्राय गिर्वणः ॥

हे इन्द्र ! मधुरभाषी, स्तुति करनेवाले के द्वारा सम्पादित ये भक्तियाँ आपकी प्रसन्नता के लिए हैं । इनको स्वीकार करते हुए आप हमारी वाणियों को सुनिये । हे वेदवाणी द्वारा भक्ति करने योग्य परमात्मन् ! आप स्तोता के लिये मनचाहे पदार्थों को दीजिये ।

२९५. आ त्वा३द्य सबर्दुघां हुवे गायत्रवेपसम् ।
इन्द्रं धेनुं सुदुघामन्यामिषमुरुधारामरङ्कृतम् ॥

हे परमेश्वर ! मैं अमृत (मोक्ष)—रूपी दूध देनेवाली, प्रशंसित गतिवाली, उत्तम चेष्टावाली, सरलता से दुही जा सकने योग्य, साधारण गौओं से अन्य, अन्नस्वरूप वा बलस्वरूप, चाहने योग्य, महान् विश्व को धारण करने वाली अथवा बहुत धारायें वर्षानेवाली, पर्याप्त रूप से इच्छा पूर्ण करनेवाली, सुभूषित, आप इन्द्ररूपी गौ अथवा माता की स्तुति तथा प्रार्थना करता हूँ। (इस मन्त्र में रूपक तथा श्लेष अलंकार है)।

२९६. न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीडवः ।
यच्छिक्षसि स्तुवते मावते वसु न किष्टदा मिनाति ते ॥

हे इन्द्र ! आपको बड़े-बड़े दृढ़ पहाड़ भी नहीं रोक सकते। क्या आपको वीर्यसम्पन्न विद्वान् नहीं स्वीकार करते? अवश्य, सभी स्वीकार करते हैं। वे आपका विरोध नहीं करते। स्तुति करनेवाले मुझ जैसे के लिए आप जिस ज्ञान की शिक्षा अथवा जो धन देते हैं, उसे आपकी कृपा से कोई भी नहीं रोक सकता।

२९७. क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे ।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥

ज्ञान और भक्ति के सम्पादित हो जाने पर उसे स्वीकार करनेवाले परमात्मा को भक्त के अतिरिक्त और कौन जानता है? कौन जानता है कि उसकी कितनी आयु है? वह तो अजर-अमर है। उपासक के अतिरिक्त और कौन उसके लिए अपनी भक्ति की भेंट दे सकता है? यह वह वेगवाला इन्द्र है जो उपासक की भक्ति से प्रसन्न होकर अपने बल से भोगभूमि शरीरों को विशेष प्रकार से भेदन कर मोक्ष देता है।

२९८. यदिन्द्र शासो अव्रतं च्यावया सदसस्परि ।
अस्माकमंशुं मघवन् पुरुस्पृहं वसव्ये अधि बर्हय ॥

हे परमेश्वर ! जो आप व्रतों (नियमों तथा यज्ञों) से रहित मनुष्य पर शासन करते हैं और उसे सभा तथा निवासस्थान अथवा उसकी मनुष्ययोनि से च्युत करते हैं, हटा देते हैं। आप अत्यन्त अभिलाषा के योग्य हमारे सुखदायक भाग को हमारे निवासस्थान अथवा शरीर में, हे मघवन् ! सब ओर से बढ़ाइये।

२९९. त्वष्टा नो दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः ।
पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रामणं वचः ॥

संसार का रचयिता, तेज:सम्पन्न, सब जनों का हितकारी, वेदों का स्वामी और रक्षक, अखण्डनीय इन्द्र परमात्मा हमारे देवसम्बन्धी वचनों की रक्षा करे। वही हमारे पुत्रों और भाइयों के साथ, अहिंसनीय, रक्षा के योग्य वचनों का पालन करे, हमें प्रतिज्ञापालन की शक्ति दे तथा उसका शुभफल प्रदान करे।

३००. कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ।।

हे इन्द्र ! आप कभी भी हिंसक नहीं हैं, जिसका बच्चा मर गया हो ऐसी दूध न देनेवाली गौ के समान नहीं हैं, किन्तु विद्या, धन आदि दान करनेवाले मनुष्य के लिए और भी धन देते हैं तथा कर्म-फल पहुंचाते हैं। हे सर्वधन-सम्पन्न ! ऐसे आप दाता का दान लगातार बार-बार शीघ्र मिलता ही रहता है। चुपचाप देते रहते हैं।

३०१. युङ्क्ष्वा हि वृत्रहन्तम हरी इन्द्र परावतः ।
अर्वाचीनो मघवन्त्सोमपीतय उग्र ऋष्वेभिरा गहि ।।

श्रेष्ठ रीति से अज्ञान, पाप आदि के नाशक हे परमात्मन् ! आप हमारे जीवात्मा और मनको तथा ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को दूर-दूर विषयों से हटाकर योगयुक्त कीजिए, अपने में लगाइये। हे धनसम्पन्न तथा उग्र तेजस्वी प्रभो ! आप हमारी भक्ति को स्वीकार करने के लिए महान् गुणों के साथ आकर आत्मा में प्रत्यक्ष होइये।

३०२. त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन् वज्रिन् भूर्णयः ।
स इन्द्र स्तोमवाहस इह श्रुध्युप स्वसरमा गहि ।।

हे शक्तिधारी इन्द्र ! स्तुति करने वाले और भरण-पोषण करनेवाले दानी, श्रमण-शील, भक्त तथा संन्यासी-मनुष्य भूत और वर्तमानकाल में आपको ही प्रसन्न करते थे और करते हैं। वह आप मुझ स्तोता की बात को सुनिये, और कर्मानुसार गतिवाले जीवात्मारूप घर में साक्षात् प्रत्यक्ष होइये।

—०—

दूसरी दशति आठवाँ खण्ड

देवता—१ इन्द्र के प्रसङ्ग से उषा। २, ३, ४ इन्द्र के सम्बन्ध से अश्विनौ। ५—१० इन्द्र। छन्द—बृहती। स्वर—मध्यम। ऋषि—१, २, ७, ८ वसिष्ठ। ३ अश्विनौ वैवस्वतौ, पौर आत्रेय। ४ प्रस्कण्वकाण्व। ५ प्रगाथ मेधातिथि और मेध्यातिथि ६ देवातिथि। ९ नृमेध। १० नोधा।

३०३. प्रत्यु अदर्श्यायत्यू३च्छन्ती दुहिता दिवः ।
अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ।।

आती हुई, अज्ञानरूप अन्धकार हटाती हुई, द्योलोक वा सूर्य की पुत्री उषा के समान इन्द्र परमेश्वर से उत्पन्न हुई शक्ति वा बुद्धि तथा वेदवाणी प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रही है। वह बड़ी बुद्धि तथा वेदवाणी महान् अज्ञान-अन्धकार को दूर करती है और अच्छे मार्ग में ले जानेवाली वह आत्मा में प्रकाश कर देती है।

३०४. इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः ।।

हे जगत् में वास करानेवाले अश्वियो—प्राण तथा अपान शक्तियो ! सूर्य तथा चन्द्रमा ! मस्तिष्क में गति करनेवाली इन्द्रियाँ तथा प्रकाश चाहती हुई प्रजायें भी तुम दोनों की ही महिमा को बतला रही हैं तथा चाहती हैं और उसी प्रकार स्मरण करती हैं जिस प्रकार गौ अपने बच्चे को। यह मैं उपासक भी अपनी रक्षाके लिए तुम दोनोंको उपयोगमें लाता हूँ। हे बुद्धि और धन देनेवालो! हे शक्ति द्वारा वास कराने वालो ! हे कर्मरूपी धन रखने वालो ! तुम दोनों प्रत्येक देह में, प्रत्येक प्रजा में गतिकर रहे हो तथा प्राप्त हो रहे हो।

३०५. कुष्ठः को वामश्विना तपानो देवा मर्त्यः ।
घ्नता वामश्नया क्षपमाणोऽशुनेत्थमु आद्वन्यथा ॥

हे दिव्यगुणयुक्त अश्वियो (प्राण-अपान अथवा सूर्य-चन्द्रमा) ! तुम दोनों कहाँ स्थित हो ? पृथिवी पर स्थित कौन मनुष्य तुम दोनों को प्रकाशित करता तथा तपाता है, कौन हम से अलग करता है ? उत्तर—तुम दोनों भोजन करने की शक्ति से अथवा किसी व्यापक शक्ति से प्रेरित होकर गति करते हो। जिस प्रकार शासक देशव्यापी बल से देश भर में विराजमान होकर शासन को चलाता है, उसी प्रकार सर्वव्यापक इन्द्र सर्वत्र निवास करके अपनी व्यापक शक्तियों से तुम दोनों को तपाता है और उसके अनुसार तुम गति करते हो। उपासक के प्राण और अपान सर्वव्यापक इन्द्र के द्वारा विशेष फल देने के लिए ही अलग किये जाते हैं, नहीं तो उनके शीघ्र अलग होने की आवश्यकता नहीं।

३०६. अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोमो दिविष्टिषु ।
तमश्विना पिबतं तिरोअह्न्यं धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥

हे अश्वियो (प्राण तथा अपान) ! तुम दोनों की उत्पन्न की हुई यह मधुर सौम्य शक्ति प्रकाश प्राप्त करानेवाले ब्रह्मयज्ञों तथा इन्द्रिय-समूहमें वर्तमान है। पहले ही तैयार की गई, उसको पुनः तुम स्वीकार करो और प्राणायाम करनेवाले साधक उपासक के लिये रमणीय सुखकारी साधन (शक्ति, आयु तथा बल) धारण कराओ।

३०७. आ त्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं ज्या ।
भूर्णि मृगं न सवनेषु चुक्रुधं क ईशानं न याचिषत् ॥

हे परमात्मन् ! मैं अपनी भक्ति के प्रकाशरूप उत्कृष्ट वाणी द्वारा सदा आपसे प्रार्थना करता हूँ। ब्रह्मयज्ञ आदिके समय तथा कभी भी मैं हिरण आदि किसी प्राणी पर क्रोध न करूँ। मैं भ्रमणशील सिंह अथवा बाघ के समान दुष्टों पर उग्र पर पालन करनेवाले परमेश्वर को बार-बार प्रार्थना से तथा अपने अज्ञान वा दुष्कर्म से क्रुद्ध न करूँ। अपने स्वामी से कौन नहीं याचना करता ?

३०८. अध्वर्यो द्रावया त्वं सोममिन्द्रः पिपासति ।
उपो नूनं युयुजे वृषणा हरी आ च जगाम वृत्रहा ॥

हे हिंसारहित जीवात्मन् तथा मेरे अहङ्कार ! परमेश्वर तुम्हारे द्वारा सम्पादित भक्ति को चाहता है, तुम अपना हृदय द्रवित करो। विघ्नों और अज्ञान के निवारक इन्द्र ने सुखों की वर्षा

करनेवाले तथा बलवान् प्राण अपान को अथवा ऋचाओं और सामों को उपयुक्त किया है और वह आत्मा में प्रकट हुआ है।

३०९. अभीषतस्तदा भरेन्द्र ज्यायः कनीयसः ।
पुरूवसुर्हि मघवन् बभूविथ भरेभरे च हव्यः ॥

हे श्रेष्ठ इन्द्र ! आपको चाहने वाले छोटे पुरुष के लिये भी आप उस बड़े ज्ञान को प्राप्त कराइये। क्यों कि आप सर्वव्यापक और बहुत धनसम्पन्न हैं और प्रत्येक संग्राम, यज्ञ तथा विपत्ति में स्मरण करने योग्य हैं।

३१०. यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय। स्तोतारमिद्दधिषे रदावसो न पापत्वाय रंसिषम्

हे इन्द्र ! जितने ऐश्वय के आप स्वामी हैं ! उतने धन का यदि मैं स्वामी हो जाऊँ तो, हे धन-दान करनेवाले प्रभो ! मैं उस धन को पदार्थों के यथार्थ गुण-वर्णन करनेवाले विद्वानों और भक्ति करनेवाले उपासकों के लिए देकर उनका पालन करूँ, पाप कर्मों में कभी व्यय न करूँ। मैं इतने ही धन का स्वामी होऊँ; जितने से अपने का और दूसरे धर्मात्मा का प्राणधारण कर सकूँ, पापियों के पालन में उसका व्यय न करूँ।

३११. त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।
अशस्तिहा जनिता वृत्रतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥

हे इन्द्र ! आप आत्मिक या भौतिक संग्रामों में तथा बल के कामों में सब स्पर्धा करनेवाले काम-क्रोध आदि दुर्गुणों और दुष्टों को पराजित करते हैं। हे शत्रुनाशक प्रभो ! आप शासन न मानने वाले (नियम में न चलने वाले) मनुष्यों के हनन करनेवाले, आप ही वृष्टि आदि के द्वारा सबके उत्पादक तथा पालक, और आप ही वृत्रों=विघ्न अज्ञान आदि के नाशक हैं। आप कृपया हिंसक-दुष्टों तथा दुर्गुणों को नष्ट कीजिये।

३१२. प्र यो रिरिक्ष ओजसा दिवः सदोभ्यस्परि ।
न त्वा विव्याच रज इन्द्र पार्थिवमति विश्वं ववक्षिथ ॥

हे इन्द्र ! जो आप अपने ओज से द्युलोक के स्थानों से परे भी दूर-दूर तक फैले हुए, सर्वव्यापक है तथा सर्वत्र दुष्टों की हिंसा करने वाले हैं, इसीलिए पृथिवीलोक का आप पर कुछ प्रभाव नहीं। आप इस विश्व को अतिक्रमण कर सबको धारण कर रहे हैं। हमको भी इस विश्व से पार करके मोक्ष प्राप्त कराईये।

—०—

तीसरी दशति नवम खण्ड

देवता—इन्द्र। छन्द—त्रिष्टुप् ११-११ अक्षरों के ४ चरण. सब ४४ अक्षर। स्वर—धैवत। ऋषि—१, २, ६ वसिष्ठ। ३ गातु। ४ पृथु वा पृथी वैन्य। ५ सप्तगु। ७ गौरिवीति। ८ वेन भार्गव। ९ नकुल वा बृहस्पति। १० सुहोत्र।

३१३. असावि देवं गोऋजीकमन्धो न्यस्मिन्निन्द्रो जनुषेमुवोच ।
बोधामसि त्वा हर्यश्व यज्ञैर्बोधा न: स्तोममन्धसो मदेषु ।।

हम उपासकों ने, देव परमात्मा के लिए, इन्द्रियों के द्वारा सरलता से प्राप्त, दिव्य आनन्द-दायक ज्ञान प्राप्त किया है। इन्द्र परमात्मा का आरम्भ से ही इस ज्ञान के साथ सम्बन्ध रहा है। परमात्मा ने उत्पत्ति के समय ही इस ज्ञान को व्यक्त वाणी में दिया है। हे प्राणों में व्यापक प्रभो! हम ब्रह्मयज्ञों से तथा योगों द्वारा आपका ज्ञान प्राप्त करते हैं। आप ज्ञान की आनन्दमय दशा में हमारे स्तोत्र को जानिये।

३१४. योनिष्ट इन्द्र सदने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्र याहि ।
असो यथा नोऽविता वृधश्चिद्ददो वसूनि ममदश्च सोमैः ।।

हे इन्द्र ! आपके प्रत्यक्ष होने का स्थान इस घर (शरीर) में हृदयदेश अथवा तालुमूल बनाया है (देखिये तैत्तिरीयोपनिषद् अनुवाक ६। वल्ली १)। बहुतों से स्मरण किये गये हे परमात्मन् ! उस स्थान पर नेता प्राणों के साथ प्रकट होइये। क्योंकि आप हमारे रक्षक और वर्धक हैं, इसलिये हमें ज्ञान और धन दीजिये तथा हमारी ज्ञान और भक्ति से प्रसन्न होइये।

३१५. अदर्दरुत् समसृजो वि खानि त्वमर्णवान् बद्बधानाँ अरम्णाः ।
महान्तमिन्द्र पर्वतं वि यद्वः सृजद्धारा अव यद्दानवान् हन् ।।

हे इन्द्र ! आप ऊर्ध्व स्थान मूर्धाभाग को विदीर्ण करते हैं और इन्द्रियद्वारों को रचते हैं। आप गतिशील, आघात-प्रतिघात करनेवाले प्राणों को व्यवस्थित करते हैं। आप हमारे महान् पर्वों (पोरुओं) वाले शरीर को विशेष रूप से प्रकट करते हैं और ज्ञान देने वाले प्राणों को प्रेरित करते तथा ज्ञान, स्मृतिरूप धाराओं को विशेष रूप से प्रेरित करते हैं। आप ही अज्ञान आदि को नष्ट करते हैं।

३१६. सुष्वाणास इन्द्र स्तुमसि त्वा सनिष्यन्तश्चित्तुविनृम्ण वाजम् ।
आ नो भर सुवितं यस्य कोना तना त्मना सह्याम त्वोताः ।।

भक्ति करते हुए तथा अन्न आदि का विभाजन करते हुए हम उपासक, हे बहुत धनसम्पन्न इन्द्र ! आपकी ही स्तुति करते हैं। आप से रक्षित हम जिसकी कामना करते हैं, उस कल्याणकारी धन तथा बल को हमें प्रदान कीजिये। हम स्वयं अपने आप विस्तृत अनुभवों तथा धनों को प्राप्त करें। हमें ऐसा पुत्र दीजिये जिससे हम दुष्ट शत्रुओं को जीत सकें। हमें ऐसा ज्ञान दीजिये जिससे हम काम, क्रोध आदि को नष्ट कर सकें।

३१७. जगृह्मा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं वसूयवो वसुपते वसूनाम् ।
विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ।।

हे इन्द्र ! हम आपका दाहिना हाथ पकड़ते हैं अर्थात् आपकी शरण में आते हैं। हे धनों के

स्वामी, हे शूर प्रभो ! धन और बल की कामना वाले हम आपको समस्त पृथिवी आदि लोकों, इन्द्रियों तथा वाणियों का स्वामी और रक्षक जानते हैं। आप हमारे लिए सदा बढ़ने वाला, ज्ञान से पूर्ण सुखदायक ऐश्वर्य तथा प्राण, अन्न और बल दीजिये।

३१८. इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पार्या युनजते धियस्ताः ।
शूरो नृषाता श्रवसश्च काम आ गोमति व्रजे भजा त्वं नः ॥

इन्द्र को मनुष्य संग्राम, यज्ञ आदि के समय स्मरण करते हैं, क्योंकि वह प्राप्त करने योग्य, पार पहुंचाने वाले ज्ञान और कर्मों से युक्त करने वाला है। हे प्रभो ! शूरवीर तथा मनुष्यों का उचित विभाग करने वाले आप मनुष्यों के लाभ में तथा यज्ञ आदि में और अभिलषित इन्द्रियों से सम्पन्न शरीर में हमें ज्ञान, अन्न, बल आदि प्राप्त कराइये।

३१९. वयः सुपर्णा उप सेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः ।
अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्द्धि चक्षुर्मुमुग्ध्या३स्मान्निधयेव बद्धान् ॥

पक्षी के समान दूर-दूर तक गति करने वाले दूरदर्शी, उत्तम ज्ञान से सम्पन्न, बुद्धि से प्रेम करने वाले, ज्ञान और बल की प्रार्थना करते हुए विद्वान्-जीवात्मा सूर्य के समान प्रकाशमान परमेश्वर के आश्रित हो कहते हैं कि हे परमात्मन् ! हमारे अज्ञान-अन्धकार को दूर कीजिये, हमारी आँखों को तेज से भर दीजिये, और जाल-फाँसे में बँधे हुए के समान हमको मुक्त कर दीजिये।

३२०. नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥

हे परमात्मन् ! दुःखरहित मुक्ति अवस्था में हृदय से आपकी कामना करते हुए उपासक-जन सुन्दर गतियुक्त हितकारी, रमणीय पक्षों (गुणों) से युक्त, वरण करने योग्य ज्ञान को प्राप्त करने-वाले, वायु के स्थान अन्तरिक्ष आदि में तथा प्राणों के स्थान हृदय में व्यवस्थित शक्तिसम्पन्न, सबके पालन करनेवाले आपको सब जगह देखते हैं।

३२१. ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥

ज्ञानवान् परमेश्वर ने सृष्टि के प्रारम्भ में अतिविस्तीर्ण, प्रकट होने वाले ब्रह्माण्ड तथा आदित्य-मण्डल को रचा और उसकी रचना से पूर्व ही उत्तम कान्तियों का पुञ्ज बनाकर प्रकट किया तथा उसके पश्चात् अच्छी चमकीली अन्य भूमियों को विस्तृत किया। उस ही ने आकाश में उत्पन्न हुए उस ब्रह्माण्ड के सदृश ही विशेष रूप से स्थित ब्रह्माण्ड भी स्थापित किये। वही इस वर्तमान, भविष्यत् तथा भूत के गर्भ सूर्यमण्डल को विस्तृत करता है। वही सद्-रूप में प्रकट जगत् और अव्यक्त प्रकृति के मूल आश्रय को प्रकट करता है।

३२२. अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै महे वीराय तवसे तुराय ।
विरप्शिने वज्रिणे शन्तमानि वचांस्यस्मै स्थविराय तक्षुः ॥

यथार्थ गुणवर्णन करनेवाले जन बड़े वीर, बलवान्, दुष्टों के हिंसक, वेगवान्, ज्ञानवान्, विघ्नों के नाशक, शक्तिशाली, अचल, नित्य, एकरस उस इन्द्र परमात्मा के लिए पूर्ण रीति से वर्णन करने-वाले बहुत से वचन प्रकट किया करते हैं।

चौथी दशति दसवां खण्ड

देवता—इन्द्र। छन्द—त्रिष्टुप्। स्वर—धैवत।

ऋषि—१ तिरिश्चि वा द्युतान। २, ४ द्युतान। ३ बृहदुक्थ। ५ वामदेव। ६, ८ वसिष्ठ। ७ विश्वामित्र। ९ गौरिवीति।

३२३. अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदीयानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः।
आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नीहितिं नृमणा अधद्राः॥

गतिवाला तथा संकर्षण या सन्निकर्ष करने वाला मुख्य प्राण या जीवात्मा अर्थों को प्रकाशित करनेवाले वेगवान् अन्य प्राणों के साथ, व्याप्त होनेवाली चेतना-शक्ति का आश्रय लेता है। इन्द्र= जीवात्मा अपनी शक्ति द्वारा श्वास-प्रश्वास लेते हुए उसको प्राप्त होता है। मनुष्यों में मनन-शक्ति-रूप वह इन्द्र अवघात करने वाले उस प्राण को नीचे अंगों में भी प्रेरित करता है।

इन्द्र=परमेश्वर के भय से भागा हुआ पाप तथा अज्ञान हजारों प्रकार के दुर्गुणों के साथ चेतना-रूपी नदी के तटपर आश्रय लेता है। कर्मों से बाधा पहुंचाने वाले उस हिंसकको तथा उसकी हिंसक सेना को मनुष्यमात्र में तथा मनसे प्रेम रखनेवाला परमात्मा दूर भगा देता तथा नष्ट कर देता है।

३२४. वृत्रस्य त्वा श्वसथादीषमाणा विश्वे देवा अजहुर्ये सखायः।
मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्त्वथेमा विश्वाः पृतना जयासि॥

हे इन्द्र=जीवात्मन्! इस तामस देह के श्वास-प्रश्वास से गति करते हुए सब मित्ररूप अमुख्य प्राण तथा इन्द्रियाँ तुझ को छोड़ देते हैं तो भी तेरी मित्रता उन प्राणों तथा इन्द्रियों से बनी ही रहती है। इसी कारण इन सब प्राणों तथा इन्द्रियों को तू अपने वश में रखता है।

हे इन्द्र=परमात्मन्! पाप तथा अज्ञान के जीवन से डरते हुए भी उन सभी इन्द्रियों ने तथा प्राणों ने, जो आपके मित्र बने हुए थे, आपको त्याग दिया। आपकी न त्यागने वाले प्राणों से तथा स्तुति करने वाले उपासक विद्वानों से आपकी मित्रता बनी रहे। आप अज्ञान, पाप तथा विघ्नों की समस्त सेना को जीतने वाले हैं।

३२५. विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान॥

ब्रह्मयज्ञ में विधमनशील और बहुतों के दमनशील युवा महत्तत्त्व को, मोक्ष-अवस्था में, बूढ़ा आत्मा निगल जाता है। उस परमेश्वर की रचना को देखो कि जो महत्तत्त्व कल जीवित था वह आज मरगया और प्रलय काल की महारात्रि तक मृत रहा तथा सृष्टिरूपी दिन के आरम्भ में एक मोक्ष से पुनरावृत्ति के पश्चात् फिर पूर्ववत् वर्तमान है।

सब जगत् के धारण करनेवाले तथा आत्मिक संग्राम में बहुत से अज्ञान आदि शत्रुओं को नष्ट करनेवाले, सदा युवा (एकरस) रहनेवाले इन्द्र परमात्मा की मैं वृद्ध उपासक स्तुति करता हूँ। हे मेरे जीवात्मन् ! तू परमेश्वर के वेदरूपी काव्य तथा जगत् की विचित्र रचना को देख कि जो अज्ञान कल जीवित था वह उसी की महिमा से आज मर गया। परमेश्वर ने अपनी महिमा से, अपने वेदरूपी काव्य द्वारा उस अज्ञान को, जो कलतक निरन्तर वर्तमान था आज समाधि-अवस्थामें नष्ट करदिया।

३२६. त्वं ह त्यत् सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र ।
गूढे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः ॥

हे जीवात्मन् ! तू ही प्रकट होते समय, कभी न सोनेवाले, निरन्तर चलने वाले, शरीर में स्थित, उन सातों प्राणों को अपने में लोन करनेवाला है और तत्पश्चात् तूने गुह्यों में स्थित, गुप्त रूप से वर्तमान मूर्धभाग और शेष शरीर के भाग को प्राप्त किया और बलवान् प्राणों से आनन्द को धारण किया।

हे परमेश्वर ! आप ही आत्मा में अपना साक्षात्कार कराके उस समय शरीर में स्थित कभी न सोने वाले सातों (५ ज्ञानेन्द्रियाँ, १ मन, १ बुद्धि) को नष्ट करनेवाले हुए, जबकि अज्ञान का नाशकर अज्ञान से गूढ़ बने हुए मर्धाभाग और शेष शरीरभाग के रहस्य को प्रकट करके आपने बलवान् प्राणों के लिए आनन्द प्रदान किया।

३२७. मेडि न त्वा वज्रिणं भृष्टिमन्तं पुरुधस्मानं वृषभं स्थिरप्स्नुम् ।
करोष्यर्यस्तरुषीर्दुवस्युरिन्द्र द्युक्षं वृत्रहणं गृणीषे ॥

हे परमेश्वर ! योगी अथवा वेदवाणी के समान शक्तिशाली, दीप्तिमान्, सबके धारण करने वाले, सुख-वर्षक श्रेष्ठ, स्थिररूप, प्रकाशस्वरूप तथा अज्ञान आदि विघ्नों के नाशक आपकी, मैं उपासक, स्तुति करता हूँ। श्रेष्ठ स्वामी आप आर्य (श्रेष्ठ) कर्मों में स्थित प्रजाओं को आपत्तियों से पार जानेवाली कर देते हैं।

३२८. प्र वो महे महे वृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।
विशः पूर्वीः प्र चर चर्षणिप्राः ॥

हे मनुष्यो! तुम अपनी महिमा से महान् बड़े सत्कारयोग्य परमेश्वर के लिए भक्ति तथा स्तुतियों का सम्पादन करो। ज्ञान-सम्पन्न परमात्मा के लिए उत्तम-उत्तम विचार तथा अनुकूलता प्राप्त करो। हे इन्द्र ! मनुष्यों को पालन तथा ज्ञानसम्पन्न करनेवाले आप धर्मपालन करने वाली उत्कृष्ट प्रजाओं की आत्मा में उत्तमरूप से प्राप्त होइये।

३२९. शुनं हुयेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानि ॥

इस भरण-पोषण करनेवाले, अन्न और ज्ञान के सिद्ध करनेवाले कार्यमें इस ऐश्वर्ययुक्त, सबसे श्रेष्ठ नेता, सबकी प्रार्थना सुननेवाले, उग्र, उत्सवों तथा आत्मिक और भौतिक संग्रामों में विघ्नों तथा अज्ञान और दुष्टों को नष्ट करनेवाले और नाना विभूतियों को स्वयं जीतने वाले परमेश्वर को हम अपनी रक्षा के लिए स्मरण करते तथा पुकारते हैं।

३३०. उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ ।
आ यो विश्वानि श्रवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि ।।

हे सर्वश्रेष्ठ मनुष्य ! तू ज्ञानप्राप्ति के लिए वेदमन्त्रों का पाठ कर और यज्ञ आदि में तथा विद्वानों की संगति में उस परमेश्वर की उपासना कर, जो अपने बल से सब संसार की रचना करता है और जो मुझ ज्ञानी भक्त के वचनों को समीप आत्मा में ही स्थित होकर सुनता है ।

३३१. चक्रं यदस्याप्स्वा निषत्तमुतो तदस्मै मध्विच्चच्छद्यात् ।
पृथिव्यामतिषितं यदूधः पयो गोष्वदधा ओषधीषु ।।

इस इन्द्र का जो सृष्टिरूपी चक्र प्रजाओं में विद्यमान है, इसके लिए वह मधुर अन्न, जल आदि को अपने वशमें रखकर सब ओर आच्छादित करता है । उसने जो मेघ आदि से प्राप्त होनेवाला जल पृथिवी पर छोड़ा है, उस सबका गौ आदि पशुओं तथा औषधियों में दूध तथा रस आदि के रूप में इन्द्र ही धारण करता है ।

—०—

पाँचवीं दशति ग्यारहवाँ खण्ड

देवता—इन्द्र (पहले में तार्क्ष्य नामक इन्द्र और सातवें तथा आठवें मन्त्र में इन्द्र के साथ पर्वत देवता भी है) । छन्द—त्रिष्टुप् । स्वर—धैवत । ऋषि—१ अरिष्टनेमि तार्क्ष्य । २ गर्ग भरद्वाज । ३ वसुक्रुद (वासुक्र), विमद ऐन्द्र वा प्राजापत्य । ४,५, ६, ९ वामदेव । ७ विश्वामित्र । ८ रेणु वैश्वामित्र । १० गौतम ।

३३२. त्यमू षु वाजिनं देवजूतं सहोवानं तरुतारं रथानाम् ।
अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम ।।

हम ज्ञान तथा वेग से युक्त, धनदाता, विद्वानों से पूजित, स्वयं बलशाली, प्राणी-शरीरों, नक्षत्रों आदि को गति देनेवाले, अहिंसक, आत्मिक शत्रुओं काम-क्रोध आदि को जीतनेवाले, सर्वव्यापक, कर्मफलदाता और अत्यन्त वेगवान् उस परमेश्वर को इस अपने अन्तःकरण में कल्याण के लिए स्मरण करते हैं ।

३३३. त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवे हवे सुहवं शूरमिन्द्रम् ।
हुवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रमिदं हविर्मघवा वेत्विन्द्रः ।।

अन्न आदि से पालन करनेवाले तथा शत्रुओं से रक्षक प्रत्येक प्रार्थना तथा संग्राम में सफलता से प्रसन्न होनेवाले शूर, शक्तिशाली तथा प्रजाओं से पूजित इन्द्र को मैं स्मरण करता हूँ । मेरी इस स्तुति को इन्द्र स्वीकार करे ।

३३४. यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिणं हरीणां रथ्यां३ विव्रतानाम् ।
प्र श्मश्रुभिर्दोधुवदूर्ध्वधा भुवद्वि सेनाभिर्भयमानो वि राधसा ।।

हम विघ्नों के निवारण में चतुर और विविध कर्मवाली इन्द्रियों तथा प्राणों के नेता परमेश्वर की पूजा करते हैं। वह शरीर में व्याप्त शिराओं द्वारा सबको गति देता हुआ, सब से उच्च रहता हुआ, सेनाओं—शक्तियों तथा बन्धन की रस्सियों से विशेष साधना द्वारा सबको कँपाया करता है।

३३५. सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रं महामपारं वृषभं सुवज्रम्।
हन्ता यो वृत्रं सनितोत वाजं दाता मघानि मघवा सुराधाः॥

सत्य द्वारा असत्य के नाशक दुष्ट शत्रुओं के दबानेवाले, सबके प्रेरक, अपार, सर्वश्रेष्ठ, सुख-वर्धक, न्यायानुकूल दण्ड देने वाले महान् उस इन्द्र =परमात्मा का हम स्मरण करते हैं जो वृत्ररूप अज्ञान को नष्ट करता है और धन, बल, अन्न तथा ज्ञानका उचित विभाग करनेवाला, उत्तम साधनों से सम्पन्न, अच्छी प्रकार आराधना करने योग्य और कर्मफलों का दाता है।

३३६. यो नो वनुष्यन्नभिदाति मर्त्त उगणा वा मन्यमानस्तुरो वा।
क्षिधी युधा शवसा वा तमिन्द्राभी ष्याम वृषमणस्त्वोताः॥

अपने दल के साथ जो मनुष्य हमारे अथवा श्रेष्ठ प्रजाओं के मारने की इच्छा से अपने को बहुत बलवान् मानता हुआ वा आवेश में आया हुआ, प्राणनाशक प्रहार वा शस्त्र-प्रहार से आक्रमण करता है, उसको हे परमेश्वर! आप नष्ट कीजिये तथा बलवान् और आपसे रक्षित हम लोग बलसे युद्ध द्वारा उसे पराजित करें।

३३७. यं वृत्रेषु क्षितयः स्पर्धमाना यं युक्तेषु तुरयन्तो हवन्ते।
यं शूरसातौ यमपामुपज्मन् यं विप्रासो वाजयन्ते स इन्द्रः॥

जिसको, विघ्नों तथा अज्ञान आदि के समय, स्पर्धा करते हुए मनुष्य स्मरण करते हैं, जिसको योगाभ्यासों में विक्षेपों पर शीघ्र विजय पाते हुए, योगी तथा संग्रामों में शीघ्रता करते हुए योधा पुकारते हैं, जिसे जल बरसने की ऋतु में अन्न आदि की प्राप्ति के लिए याद किया जाता है और जिसका बुद्धिमान् तथा विद्वान् जन ध्यान करते हैं, वही इन्द्र परमेश्वर है।

३३८. इन्द्रापर्वता बृहता रथेन वामीरिष आ वहतं सुवीराः।
वीतं हव्यान्यध्वरेषु देवा वर्धेथां गीर्भिरिडया मदन्ता॥

हे इन्द्र तथा पर्वत! परमात्मन् तथा जीवात्मन्! आप दोनों बड़े रमणीय साधन के द्वारा उत्तम वीर्यसम्पादक, मनोहर अन्न आदि भोग्य पदार्थों को प्राप्त कराते हैं। हे दिव्य-गुण-युक्त दान-शील देवो! अहिंसामय कार्यों में आप दोनों ग्रहण करने योग्य पदार्थों को स्वीकार करते हैं। आप दोनों वेदवाणियों द्वारा तथा भक्तिरूप रस से प्रसन्न होते हुए पुष्टि को प्राप्त हों।

३३९. इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा अपः प्रैरयत् सगरस्य बुध्नात्।
यो अक्षेणेव चक्रियौ शचीभिर्विष्वक्तस्तम्भ पृथिवीमुत द्याम्॥

उस परमेश्वर के लिये अनादि, अखण्डित रचना वाली वेदवाणियाँ प्रेरित की जाती हैं जो अन्तरिक्ष-प्रदेश से जल नीचे बरसाता है और जो, जैसे धुरे से रथ के दोनों पहिये ठहरे रहते तथा घूमते हैं, इसी प्रकार अपनी शक्तियों से पृथिवी और द्यौलोक को धारण किये हुए है।

३४०. आ त्वा सखायः सख्या ववृत्युस्तिरः पुरू चिदर्णवाञ्जगम्याः ।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अस्मिन् क्षये प्रतरां दीद्यानः ॥

हे परमात्मन् ! आपके मित्र उपासक मित्रभाव से आपको स्वीकार करते हैं, आप उनकी आत्मा में अदृश्य रूप से प्रकट होइये । आप अदृश्य भाव से सभी शरीरों में आत्मा के अन्दर प्रविष्ट हैं । इस निवासयोग्य जगत् में तथा आत्मा में श्रेष्ठ रीति से प्रकाशित होते हुए ज्ञानसम्पन्न आप पालन करने वाले पिता के समान सबकी रक्षा कीजिये ।

३४१. को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून् ।
आसन्नेषामप्सुवाहो मयोभून् य एषां भृत्यामृणधत् स जीवात् ॥

वर्तमानकाल में कर्मशील दीप्तियुक्त जीवात्मारूपी रथी = स्वामी के नित्यतम् शरीररूपी रथ के धुरा में पुरुषार्थी, आवेशयुक्त, निन्दित-क्रोधयुक्त, सांसारिक कर्मों तथा — अभिलषित पदार्थों को धारण करनेवाली और सुख अनुभव करानेवाली इन्द्रियरूपी बैलों तथा घोड़ों को कौन नियुक्त करता है ? वह सुखस्वरूप प्रजापति परमेश्वर ही नियुक्त करता है । इन इन्द्रियरूपी पशुओं के मुख में जो उनको पालन करनेवाली वस्तुओं को प्रदान करता है, वही परमात्मा जीवनधारण कराता है । उसकी सदा विजय होती है और वह सदा नित्य अमर है ।

छठी दशति बारहवाँ खण्ड

देवता—इन्द्र । छन्द—अनुष्टुप् । स्वर—गान्धार ।

ऋषि—१ मधुच्छन्दा । २ जेता माधुच्छन्दस । ३, ६ गोतम वा गौतम । ४ अत्रि । ५, ८, ९ तिरश्चि आङ्गिरस । ७ नीपातिथि काण्व । १० शंयु बार्हस्पत्य ।

३४२. गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः । ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥

हे बहुत बुद्धिमान् तथा बहुत प्रकार के कर्म करनेवाले प्रभो ! गान में कुशल सामगानकर्त्ता उद्गाता आदि आपका ही गान करते हैं । स्तुति में चतुर होता आदि ऋचाओं से स्तुति के योग्य आपकी ही स्तुति करते हैं । अथर्ववेद तथा चारों वेदों के विद्वान् अपने वंश अथवा वंश चलाने वाले पुरुष के समान आपको उच्च पदपर मानते हैं ।

३४३. इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः । रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥

सभी वाणियाँ आकाश के तुल्य सब जगह वर्तमान रथियों के भी रथी, विराट् ब्रह्माण्डरूपी रमणीय रथ रखने वाले, महान् शूर, ज्ञान तथा बल के रक्षक, सच्चे स्वामी इन्द्र की ही बड़ाई बता रही हैं ।

३४४. इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् । शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन् धारा ऋतस्य सादने ॥

हे इन्द्र जीवात्मन् ! तू इस सिद्ध हुए बड़े श्रेष्ठ, मृत्युरहित, योग से उत्पन्न मोक्ष के आनन्द को भोग । मुझ परमेश्वर के शुद्धस्वरूप में सत्य की धाराएँ तुझ को प्राप्त हों ।

हे इन्द्र = परमात्मन् ! आप मेरे द्वारा सम्पादित इस प्रमय भक्तिरस को स्वीकार कीजिये। सत्यज्ञान के उत्पन्न होने पर आपके निवासस्थान मेरे हृदय में शुद्धस्वरूप शान्ति की धारायें आपके प्रति बह रही हैं।

३४५. यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः । राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर

हे पूजनीय, विचित्र, अज्ञानरूपी अन्धकार को नष्ट करने वाले, दुष्टों को दण्ड देने वाले, सर्व-धन-सम्पन्न, धन प्राप्त करानेवाले तथा विद्वानों के एकमात्र धन परमेश्वर ! आपसे दिये जाने योग्य जो धन मेरे पास नहीं है, उसे आप दोनों हाथों से भरपूर प्राप्त कराइये।

३४६. श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति । सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि ।।

हे इन्द्र ! आप उस पूर्ण ज्ञानी साधक की पुकार को सुनिये, जो आपकी उपासना करता है और अच्छे वीर्यसम्पन्न, जितेन्द्रिय पुरुष को विद्या आदि धनों से भर दीजिये। आप वास्तव में महान् हैं।

३४७. असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः ।।

हे इन्द्र ! उपासक ने आपकी प्रसन्नता के लिए भक्तिरस तथा सौम्यगुण तय्यार किया है। हे बलशाली, अज्ञान, पाप तथा दुष्टों को पराजित करनेवाले प्रभो ! आप हमारी आत्मा में प्रकट होइये जैसे सूर्य किरणों से पृथिवी आदि लोकों को भर देता है, उसी प्रकार हमारे मन तथा इन्द्रियों को आपकी भक्ति भर दे।

३४८. एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् । दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो

हे इन्द्र ! आप दुःखहरण-शील-शक्तियों के साथ हमारे हृदय में प्रकट होइये और मेधावी उपासक की सुन्दर स्तुति को स्वीकार कीजिए। हे प्रकाश और सुख में वास करनेवाले प्रभो ! इस द्यौलोक तथा दिव्य मोक्ष का शासन करने वाले अपने दिव्यस्वरूप के सुख को प्राप्त कराइये।

३४९. आ त्वा गिरो रथीरिवास्थुः सुतेषु गिर्वणः ।
अभि त्वा समनूषत गावो वत्सं न धेनवः ।।

हे वेदवाणियों द्वारा भक्ति करने योग्य परमात्मन् ! शीघ्र चलने वाले यान पर चढ़े हुए व्यक्तियों के समान मेरी वाणियाँ, योग के अभ्यासों में आपके पास ही शीघ्रता से पहुंच रही हैं। जैसे गौएँ अपने प्यारे बच्चे को देखकर प्रेमभरे स्वर से उसी को लक्ष्य करती हैं उसी प्रकार उपासक की वाणियाँ तथा इन्द्रियाँ अपने प्यारे परमेश्वर की ही सब ओर से स्तुति तथा भक्ति करती हैं।

३५०. एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना । शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्ध आशीर्वान् ममत्तु

आओ मित्रो ! शुद्ध सामगान तथा शान्त भक्ति और पवित्र स्तोत्रों से उस महान् शुद्ध-पवित्र परमेश्वर का स्तवन करें। शुद्ध उपासकों की स्तुतियों से आशीर्वाद-युक्त होकर वह सोम प्रसन्न हो।

३५१. यो रयिं वो रयिन्तमो यो द्युम्नैर्द्युम्नवत्तमः । सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ।।

जो सबसे अधिक उत्तम धनयुक्त है और जो यशों तथा ओजों से अत्यन्त यशस्वी तथा ओजस्वी है, वह इन्द्र-परमात्मा तुम उपासकों को ऐश्वर्य, जीवन तथा धन प्रदान करे । अपने को स्वयं धारण करने-वाले, जीवों के पालक तथा स्वामी परमेश्वर ! उपासकों द्वारा सम्पादित ज्ञानपूर्ण भक्तिरस आपके लिए प्रसन्नताकारक हो ।

—०—

चतुर्थ अध्याय

(३५२ मन्त्र से ४६६ मन्त्र तक)

सातवीं दशति　प्रथम खण्ड

देवता—१—४, ६, ८ इन्द्र । छन्द—अनुष्टुप् । स्वर—गान्धार ।

ऋषि –१ भरद्वाज । २ वामदेव वा शाकपूत । ३ प्रियमेध । ४ प्रगाथ । ५ श्यावाश्व आत्रेय वा वामदेव । ६ शंयु । ७ वामदेव । ८ जेता माधुच्छन्दस ।

३५२. प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर । अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चादध्वने नरः ।।

हे मनुष्य ! तू इस भक्तिरस को स्वीकार करने की इच्छावाले, सबको जाननेवाले, विद्यापार-गामी, सर्वव्यापक, पीछे न हटनेवाले अर्थात् सबके नेता परमेश्वर के लिए प्रतिदिन अपने आपको समर्पण कर ।

३५३. आ नो वयो वयःशयं महान्तं गह्वरेष्ठाम् । महान्तं पूर्विणेष्ठामुग्रं वचो अपावधीः ।।

हम सब आयु को समाप्त करनेवाले कालरूप हृदय-गुहों में स्थित, प्रारम्भ से ही संसार को नियम में चलानेवाले, महान् इन्द्र की स्तुति करते हैं । हे मनुष्य ! तू उग्र वचनों को दूरकर । हे परमेश्वर ! आप हमारे तथा दुष्टों के उद्धत वचनों को दूर कीजिये ।

३५४. आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि । तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्रं शविष्ठ सत्पतिम् ।।

हे इन्द्र ! जिस प्रकार हम रथ=रमणीय यान तथा अपने शरीर को सुख और रक्षा के लिए धारण तथा भ्रमण करते हैं और शरीररूपी रथ को जन्म-जन्मान्तरों में धारण करते हैं, उसी प्रकार अपनी रक्षा और सुख के लिए अनेक प्रकार के महान् कार्यों को करनेवाले; इन्द्रियों, विषयों तथा दुष्टों को दबानेवाले; बलवान्; सज्जनों के पति आपको भी बार-बार अपने हृदयों में धारण करते हैं ।

३५५. स पूर्व्यो महोनां वेनः क्रतुभिरानजे । यस्य द्वारा मनुः पिता देवेषु धिय आनजे ।।

पूज्यों में मुख्य तथा सर्वज्ञ वह परमेश्वर श्रेष्ठ कर्मों से प्राप्त किया जाता है । जिसके द्वारा मननशील तथा पालन करनेवाला आचार्य विद्वानों में बुद्धियों को उत्पन्न करता है तथा जिसकी भक्ति

करके मनुष्य सबका पालन तथा विद्वानों में पिता के समान पूज्य होकर बुद्धि को प्राप्त करता है। वही मनुष्य सर्वपूज्य तथा विद्वान् होकर श्रेष्ठ कर्मों द्वारा जीवन-यापन करता है जिसको साधन बना कर मननशील स्वामी विद्वानों में अपनी बुद्धियों को प्रेरित करता है।

३५६. यदी वहन्त्याशवो भ्राजमाना रथेष्वा। पिबन्तो मदिरं मधु तत्र श्रवांसि कृण्वते ॥

जहाँ शरीररूपी रथों में नियुक्त शीघ्रगामी, दीप्त प्राण इन्द्र—परमेश्वर का आह्वान करते हैं, वहीं वह परमेश्वर के पुष्टिकर मधुर आनन्द-रस का पान करते हुए वेद-वचनों को साक्षात् करते हैं और अन्न, धन, यश आदि को प्राप्त कराते हैं।

३५७. त्यमु वो अप्रहणं गृणीषे शवसस्पतिम्। इन्द्रं विश्वासाहं नरं शचिष्ठं विश्ववेदसम् ॥

हे मनुष्यो! तुम्हारे लिए मैं उसी पूर्ववर्णित किसी से न मारे जा सकने वाले, अहिंसक, बलों के स्वामी तथा उसके द्वारा सबके पालक, सब पर प्रभाव रखनेवाले नेता, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, इन्द्र-परमात्मा का यथार्थ वर्णन करता हूँ।

३५८. दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः।
सुरभि नो मुखा करत् प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥

विजय प्राप्त करनेवाले, सर्वव्यापक होकर विश्व को धारण करने और नियम में चलाने वाले परमेश्वर का वर्णन करता हूँ। वह हमारे मुख आदि इन्द्रियों को शुद्ध तथा उत्तमरूप से कार्य करने वाली बनावें और हमारी आयुओं को बढ़ावे तथा जीवनों को सफल करे।

३५९. पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत। इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः

वह परमेश्वर मोक्ष प्रदान कर स्थूल, सूक्ष्म आदि शरीरों का भेदन करनेवाला, सदा युवा, सबका संगी, सर्वश्रेष्ठ, कवि तथा संसार का रचयिता, भीतर-बाहर सब स्थानों की बातों को जानने-वाला, क्रान्तदर्शी, अनन्त बलयुक्त, समस्त विश्व के कर्मों (उत्पत्ति तथा स्थिति) का धारण करने वाला, संहारक शक्ति से युक्त और सबका उपास्य है।

—०—

आठवीं दशति दूसरा खण्ड

देवता—१, ७ इन्द्र। ८ उषा। ९ विश्वेदेवा। १० ऋक्साम। छन्द-अनुष्टुप्। स्वर—गान्धार। ऋषि—१, ३, ५ प्रियमेधा। २ वामदेव वा कश्यप। ४ मधुच्छन्दा। ६ भरद्वाज बार्हस्पत्य। ७ अत्रि। ८ प्रस्कण्व। ९ त्रित आप्त्य, आङ्गिरस कौत्स। १० वामदेव।

३६०. प्रप्र वस्त्रिष्टुभमिषं वन्दद्वीरायेन्दवे। धिया वो मेधसातये पुरन्ध्या विवासति ॥

हे मनुष्यो! तुम वीरों से वन्दनीय ऐश्वर्ययुक्त इन्द्र के लिए मन, वाणी तथा कर्म—तीनों से प्रशंसित अन्न आदि अभीष्ट वस्तुओं तथा कामनाओं को प्रकट करो। वह परमात्मा तुम को पवित्र ज्ञान प्राप्त कराने के लिए शरीर को धारण कराने वाली उत्तम बुद्धि से संयुक्त करता है।

३६१. कश्यपस्य स्वर्विदो यावाहुः सयुजावितिः । ययोर्विश्वमपि व्रतं यज्ञं धीरा निचाय्य ॥

सुखस्वरूप परमात्मा को जानने तथा पानेवाले वीर मनुष्य प्रमाण और युक्तियों से जानकर प्राण और अपान को द्रष्टा परमेश्वर के (तथा साधक योगी के भी) नित्य के सहयोगी बताते हैं, जिनका सारा ही नियम तथा कर्म यज्ञमय है।

३६२. अर्चत प्रार्चता नर प्रियमेधासो अर्चत । अर्चन्तु पुत्रका उत पुरमिद् धृष्ण्वर्चत ॥

हे उत्तम बुद्धिवाले मनुष्यो ! तुम इस ब्रह्माण्ड को धारण करनेवाले परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करो। हे पुरुषों को दुःख से बचाने वाले मनुष्यो ! तुम उसकी ही उपासना तथा पूजा करो।

३६३. उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिष्षिधे । शक्रो यथा सुतेषु णो रारणत् सख्येषु च ॥

प्रजाओं में सब प्रकार की गति देने वाले इन्द्र के लिए, उसकी महिमा बढ़ाने वाले वचन बोले जाने चाहिये, क्योंकि वह सर्वशक्तिमान् परमात्मा, पिता और मित्र के समान होकर, हमारे पुत्र-पौत्रों में भी हमें प्रसन्न रखता है।

३६४. विश्वानरस्य वस्पतिमनानतस्य शवसः । एवैश्च चर्षणीनामूती हुवे रथानाम् ॥

मैं उपासक सबको आगे बढ़ाने वाली तथा किसी से न झुकाई जाने वाली शक्ति के स्वामी और रक्षक परमात्मा की, प्रजाओं की कामनाओं को पूरा करने के लिए तथा शरीररूपी रथों की रक्षा के लिये, प्रार्थना करता हूँ।

३६५. स घा यस्ते दिवो नरो धिया मर्तस्य शमतः । ऊती स बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति

हे परमेश्वर ! द्युलोक के नेता आपके ध्यान करने से शान्त मनुष्य के अनुकूल जो पुरुष व्यवहार करता है वह महान् दिव्यस्वरूप आप की रक्षा में ही, पापों के समान अप्रिय पदार्थों को तथा द्वेष करने वालों को पार कर लेता है।

हे मनुष्य ! तेरा जो मित्र इन्द्र परमेश्वर है, वह अपनी बुद्धि तथा कर्म से पापों को तथा उन्हीं के समान, द्वेष करने वालों को उल्लंघित करता है।

३६६. विभोष्ट इन्द्र राधसो विभ्वी रातिः शतक्रतो ।
अथा नो विश्वचर्षणे द्युम्नं सुदत्र मंहय ॥

हे इन्द्र, विभु ! आपके धन की दानराशि बहुत बड़ी है। हे बहुत कर्मवाले हे विश्व के द्रष्टा ! हे उत्तम दाता ! आप हमें भी उत्तम धन प्रदान कीजिये।

३६७. वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपाच्चतुष्पादर्जुनि । उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥

हे शुक्ल वर्णवाली उषा ! तेरे आगमन के पश्चात् दो पैर वाले मनुष्यादि और चार पैर वाले गौ आदि पशु तथा पंखोंवाले पक्षी भी अनेक दिशाओं से सब ओर जाना आरम्भ कर देते हैं। (यह उपासना का समय है)।

हे गतिशील चेतना शक्ति ! मूर्धास्थान से प्रेरित होने वाले ज्ञान, इन्द्रियाँ, हाथ-पैर आदि तेरे कारण ही गति क्रिया करते हैं (तू उपासक का भी आधार है)।

३६८. अमी ये देवा स्थन मध्य आ रोचने दिवः । कद्व ऋतं कदमृतं का प्रत्ना व आहुतिः ॥

जो ये दिव्य शक्तियाँ प्रकाशमान द्यौलोक के मध्य में तथा मनुष्य के मूर्धास्थान में विद्यमान हैं, उनके विषय में जानना चाहिए कि उनका सत्य तत्त्व क्या है, उनका अमृतस्वरूप क्या है और उनको स्मरण करने तथा तृप्त करने का प्राचीन पदार्थ क्या है।

हे देवो ! आप यथास्थान वर्तमान हैं। सूर्य के प्रकाशित हो जानेपर आप इस प्रकार हमसे प्रश्न कीजिये—"तुम्हारा सत्य और झूठ का विभाग कहां है और प्राचीन दान-आदान का क्रम क्या है ?"

३६९. ऋचं साम यजामहे याभ्यां कर्माणि कृण्वते ।
वि ते सदसि राजतो यज्ञं देवेषु वक्षतः ॥

हम उन ऋग्वेद तथा सामवेद आदि का स्वाध्याय करते हैं, जिनसे मनुष्य सब कामों को सिद्ध करते हैं। ऋचायें (यथार्थ गुणवर्णन) और सामगान— ये दोनों यज्ञों और. सभाओं में विशेषरूप से शोभित होते हैं और विद्वानों में यज्ञ, उपासना आदि समस्त श्रेष्ठतम कर्मों को प्राप्त कराते हैं।

नवमी दशति तीसरा खण्ड

देवता—इन्द्र। नवें मन्त्र में इन्द्र से सम्बन्धित 'द्यावा पृथिवी' देवता है। छन्द—जगती। (दसवें मन्त्र में महापंक्ति छन्द है)। पञ्चम-स्वर है। ऋषि—१ रेभ वा रेफ काश्यप। २ सुवेद शैरिशि वा शैलूषि, वा सुवेद शैलूषि। ३ वामदेव। ४,८ सव्य आङ्गिरस। ५ विश्वामित्र। ६ कृष्ण आङ्गिरस। ७ अङ्गिरा वा सव्य। ९ भरद्वाज। १० मेधातिथि, मान्धाता, यौवनाश्व।

३७०. विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।
क्रत्वे वरे स्थेमन्यामुरीमुतोग्रमोजिष्ठं तरसं तरस्विनम् ॥

सब मनुष्य एकमत होकर, दुष्टों तथा दुर्गुणों की सेनाओं को तिरस्कृत करनेवाले परमेश्वर को अपने स्वामी के रूप में समृद्ध करते हैं और दीप्ति-प्रकाश, राज्य के लिए उत्तम तथा स्थिर कार्यों में विघ्नों के संहार करनेवाले, उग्र, ओजस्वी, वेगवान्, बलवान् परमेश्वर को ही प्रभु स्वीकार करते हैं।

३७१. श्रत्ते दधामि प्रथमाय मन्यवेऽहन् यद् दस्युं नर्यं विवेरपः ।
उभे यत्त्वा रोदसी धावतामनु भ्यसात्ते शुष्मात् पृथिवी चिदद्रिवः ॥

हे सर्वशक्तिमन् परमात्मन् ! सर्वश्रेष्ठ, सर्वप्रथम, माननीय, मन्युस्वरूप आपके प्रति श्रद्धा करता हूँ। क्योंकि आप दस्युओं का हनन कर मानव-हितकारी कर्मों तथा जल आदि वस्तुओं को प्रकट करते हैं और क्योंकि आपकी ही शक्ति से ही द्यौ और पृथिवी दोनों लोक दौड़ रहे हैं और विस्तृत अन्तरिक्ष भी चल रहा है तथा भय खाता है।

३७२. समेत विश्वा ओजसा पतिं दिवो य एक इद् भूरतिथिर्जनानाम् ।
स पूर्व्यो नूतनमाजिगीषन् तं वर्तनीरनु वावृत एक इत् ॥

हे सब मनुष्यों ! तुम ओज के साथ उस परमात्मा की शरण में जाओ जो अकेला ही अपने बल से द्युलोक का स्वामी और मनुष्यों का पूज्य तथा निरन्तर गतिशील है।' सृष्टि-उत्पत्ति से भी पूर्व वर्तमान सनातन वह प्रभु, नवीन उत्पन्न, विजय को चाहनेवाली मानव-सृष्टि को अकेले ही श्रेष्ठ मार्गों पर चलाता है।

३७३. इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।
न हि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत् क्षोणीरिव प्रति तद्धर्य नो वचः ।।

हे बहुत धनयुक्त, सबसे स्तुति किये गये इन्द्र ! ये वे मनुष्य और हम उपासक आपका ही आश्रय लेकर गति कर रहे हैं। हे स्तुतियोग्य ! आपके अतिरिक्त और कोई भी स्तुतियों के योग्य नहीं है, अन्य कोई भी वेदवाणियों को नहीं व्याप सकता। इसलिए, जैसे पृथिवी सब पदार्थों को धारण और स्वीकार करती है, उसी प्रकार आप हमारे स्तुति-वचनों को स्वीकार कीजिये।

३७४. चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्या३ मिन्द्रं गिरो बृहतीरभ्यनूषत ।
वावृधानं पुरुहूतं सुवृक्तिभिरमर्त्यं जरमाणं दिवेदिवे ।।

समस्त स्तुति करनेवाले मनुष्य और उनकी बड़ी-बड़ी भक्तिपूर्ण स्तुतियाँ मनुष्यों के धारक, ऐश्वर्यसम्पन्न, प्रशंसनीय, बड़े महिमाशाली, मनुष्यों से पूजित तथा स्मरण कियेगये सुन्दर वेदवाणियों से प्रतिदिन स्तुति किये जाने वाले, अमर इन्द्र का सत्यस्वरूप-वर्णन करती हैं।

३७५. अच्छा व इन्द्रं मतयः स्वर्युवः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत ।
परि ष्वजन्त जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ।।

(इस मन्त्र में उपमा अलंकार है)। हे उपासको ! तुम्हारी सुख चाहनेवाली, सीधी-सच्ची, समस्त-बुद्धियाँ, कामनायें करती हुई, अच्छे प्रकार से, उस शुद्ध, धनसम्पन्न इन्द्र की ही उसी प्रकार स्तुति करें तथा उसका उसी प्रकार आश्रय लें जिस प्रकार पत्नियाँ अपने पति का आश्रय लेती हैं और जिस प्रकार प्रजा अपनी रक्षा के लिए व्यवहार में सच्चे, धनवान् मनुष्य का आश्रय लेती है तथा मनुष्य अपने पालन के लिए सूर्य का आश्रय लेता है।

३७६. अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियमिन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णवम् ।
यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषं भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत ।।

हे मनुष्यो ! उस, सुखवर्षक, बहुस्तुत, ऋचाओं से जाने जा सकने योग्य, धन के समुद्र तथा ब्रह्माण्डों के आधारभूत महासमुद्र उस इन्द्र को स्तुतियों से प्रसन्न करो, जिसकी ज्ञानरूपी किरणें मनुष्यलोक में सर्वत्र फैल रही हैं। उस महान् दानशील सर्वज्ञ इन्द्र की आनन्द भोगने के लिए सब प्रकार निरन्तर पूजा करो।

३७७. त्यं सुमेषं महया स्वर्विदं शतं यस्य सुभुवः साकमीरते ।
अत्यं न वाजं हवनस्यदं रथमिन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ।।

हे मनुष्य ! उस उत्तम आनन्ददायक, सुख प्राप्त करानेवाले इन्द्र की अच्छी प्रकार उपासना कर, सबसे मूलकारण-रूप जिसके साथ सैकड़ो ब्रह्माण्ड गति कर रहे हैं। निरन्तर गतिशील अश्व के समान वेगयुक्त, स्तुतियों से प्रसन्न होनेवाले, मनोहर इन्द्र को अपनी रक्षा के लिये स्तुतियों द्वारा मैं पुनः-पुनः स्मरण करूँ और उसका जप करूँ।

३७८. घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा।
द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥

दीप्तियुक्त, सब लोगों के आश्रय, विस्तृत, बहुत बड़े मधुर जीवनरस को देनेवाले, सुन्दर रूप वाले, बहुत प्रकार के बीजों को धारण करनेवाले सूर्य और पृथिवीलोक वरण करने योग्य, विघ्न-निवारक परमात्मा की धारणा शक्ति से ही उस सर्वव्यापक नित्य परमात्मा में ही आकाश में ठहरे हुए हैं।

३७९. उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव। महान्तं त्वा महीनां सम्राजं चर्षणीनाम्।
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥

हे इन्द्र ! आप दोनों, द्यौलोक तथा पृथिवी-लोक को उषा के समान अच्छे प्रकार से प्रकाशित करते हैं। महानों के भी महान्, मनुष्यों के सम्राट् आपको दिव्यज्ञान की माता वेदवाणी तथा आपकी ज्योति प्रगट करती है और फिर कल्याणकारी चेतना-शक्ति तथा बुद्धि आत्मा में आपका साक्षात्कार कराती है।

३८० प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना।
अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हुवेमहि ॥

हे मनुष्य ! प्रशंसनीय इन्द्र के लिये सारयुक्त वचनोंको समर्पित करो, जो पापरूपी काली प्रवृत्तियों को अपने सरल ज्ञान से नष्ट कर देता है। अपनी रक्षा चाहने वाले हमलोग उस सुखवर्षक श्रेष्ठ शक्तिशाली, प्राणों और प्रजाओं के आश्रय परमात्मा को मित्रता तथा अनुकूलता के लिये स्मरण करते हैं।

—०—

दशमी दशति चतुर्थ खण्ड

देवता—इन्द्र। छन्द—उष्णिक्। स्वर—ऋषभ। ऋषि—१ नारद। २, ३ गोषूक्ति तथा अश्वसूक्ति। ४ पर्वत। ५, ६, ७, १० विश्वमना वैयश्व। ८ नृमेध। ९ गौतम।

३८१. इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थ्यम्। विदे वृधस्य दक्षस्य महाँ हि षः ॥

हे परमेश्वर ! ज्ञानमय भक्तियों के सम्पादित हो जानेपर आप उपासक के वेदानुकूल कर्मों को पवित्र करते हैं। बढ़े हुए बल की प्राप्ति के लिए वह परमात्मा ही महान् साधन है।

३८२. तमु अभिप्रगायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् । इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ।।

हे मनुष्यो ! बहुतों से स्मरण किये गये तथा बहुतों से स्तुति किये गये उसी महान् इन्द्र = परमात्मा का मुख्य रूप से गान करो और स्तुतियों से परिचर्या कर सबके सामने प्रकाशित करो ।

३८३. तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृक्षु सासहिम् । उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ।।

हे ज्ञानसम्पन्न शक्तिशाली परमात्मन् ! आपके उस सुखवर्षक, सब प्राणियों के पोषक, काम-क्रोध आदि शत्रुओं को पराजित करनेवाले, संसार के उत्पादक, दुःखहरणशील, उपासकों के आश्रय-योग्य आनन्दस्वरूप की ही हम प्रशंसा करते हैं ।

३८४. यत् सोममिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्त्ये । यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ।।

हे परमेश्वर ! जो अमृतरूप आनन्द सर्वव्यापक आप में है, अथवा जो समाधि में पहुंचे हुए, तीनों भूमियों को अतिक्रमण करनेवाले योगी में, और इडा, पिङ्गला, सुषुम्णा के समुदाय स्थान पर है; अथवा जो आनन्द की मात्रा प्राणों में, इन्द्रियों में प्रजाओं में दिखलाई पड़ती है, उन सभी आनन्दों से आप ही अच्छे प्रकार से आनन्दित करते हैं ।

३८५. एदु मधोर्मदिन्तरं सिञ्चाध्वर्यो अन्धसः । एवा हि वीरस्तवते सदावृधः ।।

हे अहिंसक उपासक ! मनोहर, मधुर आनन्दकारी भक्ति का अत्यन्त हर्षप्रदरूप परमेश्वर के लिए समर्पित कर । उस सदा बढ़े हुए वीर परमात्मा की ही स्तुति की जाती है ।

३८६. एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु । प्र राधांसि चोदयते महित्वना ।।

हे मनुष्यो ! उस इन्द्र के लिए ही ऐश्वर्यपूर्ण भक्ति का समर्पण करो जो उपासकों की सौम्य-गुण-युक्त मधुर भक्ति को स्वीकार करता है। वही अपनी महिमा से बहुत प्रकार के धन प्रदान करता है ।

३८७. एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम् । कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ।।

हे मित्रो ! आओ, हम उस स्तुतियोग्य नेता इन्द्र की शीघ्र ही स्तुति करें जो एक अकेला ही सब मनुष्यों में व्यापक है और समस्त शत्रुओं को एक अकेला ही पराजित कर देता है ।

३८८. इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् । ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ।।

हे उपासको ! सर्वज्ञ, महान्, वेदज्ञान-प्रकाशक, ज्ञानदाता, पूजनीय इन्द्र के लिए बृहत् साम का गान करो ।

३८९. य एक इद् विदयते वसु मर्ताय दाशुषे । ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ।।

हे मनुष्यो ! जो एक अकेला ही दानी मनुष्य के लिये धन-धान्य को अनेक रूपों में प्रदान करता है, वह किसी से भी न पराजित किया गया स्पष्टतः सबका ईश है ।

३९०. सखाय आशिषामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे । स्तुष ऊ षु वो नृतमाय धृष्णवे ॥

हे मित्रो ! ज्ञानरूपी वज्र (शस्त्र) धारण करनेवाले सर्वशक्तिमान् से हम वेदज्ञान तथा अन्न आदि धनों की प्रार्थना करते हैं। आप सबके लिए अत्यन्त श्रेष्ठ नेता सब शत्रुओं को धर्षित करने-वाले; स्वयं कभी पराजित न होने वाले इस इन्द्र के स्वरूप का मैं अच्छी प्रकार वर्णन करता हूँ।

—०—

पंचम प्रपाठक

(३९१ मन्त्र से ४८६ मन्त्र तक)

प्रथम दशति पांचवां खण्ड

देवता—१-४, ६, ८ इन्द्र। ५, ७ आदित्य नाम से इन्द्र। छन्द—१-७ उष्णिक्। ८ विराट् उष्णिक्। स्वर—ऋषभ। ऋषि—१ प्रगाथ। २ भरद्वाज। ३ नृमेध। ४ पर्वत। ५, ७ इरिमिठ, इरिम्बिठि। ६ विश्वमना। ८ वसिष्ठ।

३९१. गृणे तदिन्द्र ते शव उपमां देवतातये। यद्धंसि वृत्रमोजसा शचीपते ॥

हे इन्द्र परमात्मन् ! योगरूपी यज्ञ के लिए आपके ही समान आपके उस बल का विद्वानों के लिए वर्णन करता हूँ, जिस बल और ओज से आप बुद्धि पर परदा डालने वाले अज्ञान आदि का विनाश करते हैं।

३९२. यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयन् । अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥

हे इन्द्र ! जिस ज्ञान और भक्ति के प्रकाशित होने पर आप प्रकाश के आश्रय आदित्य-ब्रह्मचारी तथा उपासक के लिए अज्ञान आदि नष्ट कर धर्ममेघ समाधिको सिद्ध करते हैं, वही ज्ञानपूर्ण भक्ति आपके लिए प्रस्तुत है; आप उसे स्वीकार करें।

३९३. एन्द्र नो गधि प्रिय सत्राजिदगोह्य। गिरिर्न विश्वतः पृथुः पतिर्दिवः ॥

हे परमात्मन् ! आप हमारी आत्मा में प्रकट होइये। हे प्यारे ! हे सब को विजय करने वाले, हे न छिपने योग्य तथा प्रशंसनीय ! आप सूर्य आदि प्रकाशों के तथा ज्ञान के स्वामी हैं, और मेघ अथवा पर्वत के समान सब ओर फैले हुये तथा विशाल हैं।

३९४. य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति। येना हंसि न्या३त्रिणं तमीमहे ॥

हे बलशाली इन्द्र ! भक्ति को स्वीकार करने वाले तथा प्रसन्न ! आप हमारे प्रति ध्यान देकर हमें ज्ञान देते हैं, जिससे आप हिंसक तथा सुख को खाजाने वाले काम-क्रोध आदि का विनाश करते हैं, ऐसे आपकी हम प्रार्थना करते हैं।

३९५. तुचे तुनाय तत्सु नो द्राघीय आयुर्जीवसे । आदित्यासः समहसः कृणोतन ।।

हे परमेश्वर की शक्तियो ! हे प्रकाशयुक्त सूर्यकिरणो ! हे ज्ञान से प्रकाशित आदित्य-ब्रह्मचारियो ! आप हमारे और पुत्र-पौत्रों के जीवन के लिए दीर्घ आयु-प्रदान करें तथा उसके उपाय बतायें।

३९६. वेत्था हिं निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् । अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ।।

हे शक्तिशाली प्रभो ! आप निर्ऋतियों=मृत्यु की ओर ले जाने वाली प्रवृत्तियों को तथा उनके त्यागने के उपायों को उसी प्रकार जानते हैं जैसे प्रतिदिन उदय होनेवाला सूर्य सब ओर जाने वाले प्राणियों तथा पक्षियों की गतिको जानता है। आप हमें उन निर्ऋतियों से छुड़ाइये।

३९७. अपामीवामप स्त्रिधमप सेधत दुर्मतिम् । आदित्यासो युयोतना नो अंहसः ।।

हे परमात्मा की शक्तियो ! सूर्यकिरणो ! विद्वानो ! तथा प्राणो ! तुम हमारे रोगों को दूर करो। हमें सुखाने वाले क्षय आदि रोगों तथा आत्मिक और सांसारिक शत्रुओं को नष्ट करो। हमारी दुष्ट-बुद्धि को तथा दुष्ट बुद्धिवाले जनों को हम से दूर करो। हमें पापों से अलग करो।

३९८. पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः । सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ।।

हे इन्द्र ! आप हमारी भक्ति को स्वीकार कीजिए। हे दुःखहरण करने की शक्ति रखनेवाले सर्वव्यापक प्रभो ! वह मेरी भक्ति आपको प्रसन्न करे, जिसको विद्वान् होकर मैंने, आपके लिये दृढ़ता से उसी प्रकार तय्यार किया है। जिस प्रकार प्रेरणा करने वाले सारथि के हाथों से घोड़ा उत्तम नियन्त्रित रूप में तय्यार किया जाता है।

—०—

द्वितीय दशति षष्ठ खण्ड

देवता—इन्द्र। ३, ६ में इन्द्र के सम्बन्धी मरुद् देवता हैं। छन्द—ककुप्। स्वर—ऋषभ। ऋषि—१—६, ९–१० सौभरि। ७, ८ नृमेध।

३९९. अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि । युधेदापित्वमिच्छसे ।।

हे इन्द्र=परमात्मन् ! आप सदा से शत्रुरहित, नेतारहित, बन्धु-बान्धवरहित हैं, तो भी आत्मा में साक्षत्कार होने से उपासक के बन्धु हो जाते हैं और योगद्वारा उसकी बन्धुता को स्वीकार करते हैं।

४००. यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु वः स्तुषे । सखाय इन्द्रमूतये ।।

हे मित्रो ! जिसने हमारे लिए सबसे पहले सृष्टि के आरम्भ में, यह प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले घर, वस्त्र आदि धन तथा शरीर प्रदान किया है, उस इन्द्र की तुम्हारी रक्षा के लिये स्तुति करता हूँ।

४०१. आ गन्ता मा रिषण्यत प्रस्थावानो माप स्थात समन्यवः । दृढा चिद्यमयिष्णवः ।।

हे प्राणो ! तुम आओ, नष्ट मत होओ। निरन्तर गति करने वाले तुम क्रोधयुक्त होकर मार्ग-भ्रष्ट मत होओ। तुम दृढ़ पदार्थों को भी नियम में बाँधने वाले हो। (उपासक प्राणायाम द्वारा इन्द्रियों के दोषों को दूर करे। नियम-विरुद्ध प्राणायाम न करे)।

४०२. आ याह्ययमिन्दवेऽश्वपते गोपत उर्वरापते। सोमं सोमपते पिब ॥

हे इन्द्रियों के पति, वाणी के स्वामी, धान्ययुक्त पृथिवी के पालक ! आप इस भक्त की आत्मा में प्रकट होइये। हे ज्ञान तथा भक्ति के पालन करनेवाले स्वामिन् ! आप उपासक की भक्ति को स्वीकार कीजिये।

४०३. त्वया ह स्विद्युजा वयं प्रति श्वसन्तं वृषभ ब्रुवीमहि। संस्थे जनस्य गोमतः ॥

हे सुखवर्षक, सर्वव्यापक प्रभो ! वाणीयुक्त मनुष्यसमूह में आप सहायक के कारण ही, हम श्वास लेनेवाले जीवित प्राणी से बातचीत करते हैं।

४०४. गावश्चिद् घा समन्यवः सजात्येन मरुतः सबन्धवः। रिहते ककुभो मिथः ॥

हे प्राणो ! तुम गतियुक्त होते हुए भी ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति से युक्त, समान तेजवाले, बन्धुरूप से सब मिलकर, समान स्थान पर उत्पन्न होने के कारण, पृथक्-पृथक् विस्तृत होते हुए भी आपस में मिलकर शरीर में सब ओर उसी प्रकार स्पर्श कर रहे हो तथा व्याप्त हो रहे हो, जिस प्रकार सूर्य की किरणें दिशाओंमें व्याप्त होती हैं और जिसप्रकार गौएँ अपने बच्चों को स्पर्श करती हैं।

४०५. त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे। आ वीरं पृतनासहम् ॥

हे बहुत कर्मों वाले, सबके द्रष्टा, इन्द्र ! आप हमें भरपूर ओज प्रदान कीजिये और वीरपुरुष को संग्राम में सहनशील बनाइये।

४०६. अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे। उदेव ग्मन्त उदभिः ॥

हे स्तुति के योग्य परमात्मन् ! हम उपासक अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए आपसे उसी प्रकार ज्ञान, धन आदि की प्रार्थना करते हैं जिस प्रकार व्यापारी जलयानों द्वारा व्यापारार्थ दूर देशों में पहुंचकर धन प्राप्त करते हैं और उपासक योग द्वारा आपसे उसी प्रकार मिलते है जिस प्रकार पानी पानी से मिल जाता है।

४०७. सीदन्तस्ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मदिरे विवक्षणे। अभि त्वामिन्द्र नोनुमः ॥

हे इन्द्र ! जिस प्रकार पक्षी पृथिवी पर पके, मीठे प्राणधारक अनाज आदि का आश्रय लेते हैं, उसी प्रकार हम उपासक इन्द्रियों से प्राप्त की गई, मधुर, हर्षकारक, मोक्ष प्राप्त करनेवाली भक्ति का आश्रय लेकर आपकी स्तुति करते हैं।

४०८. वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः। वज्रिञ्चित्रं हवामहे ॥

हे ज्ञान-वज्र से युक्त, सर्वशक्तिमान् प्रभो ! जिस प्रकार कोई मनुष्य अपने राजा या स्वामी को धन प्रदान करता है अथवा जैसे कोई अनाज रखने की कोठी को अनाज से भरता है, कि समय पड़ने पर उससे हमारी रक्षा होगी, उसी प्रकार अपनी रक्षा चाहने वाले हम उपासक जनता का पालन करते हुए आपकी स्तुति करते हैं।

—o—

तीसरी दशति   सातवाँ खण्ड

देवता—१-८ इन्द्र। ९ विश्वेदेवाः। १० अश्विनौ। छन्द—पंक्ति (८, ८ अक्षरों के ५ चरण=सब ४० अक्षर)। स्वर—पञ्चम। ऋषि—१—८ गोतम। ९ त्रित। १० अवस्यु।

४०९. स्वादोरित्था विषूवतो मधोः पिबन्ति गौर्यः।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभथा वस्वीरनु स्वराज्यम्॥

उपासक के चित्त की वृत्तियाँ सर्वव्यापक, मनोहर गुणों से युक्त, तृप्तिकारक परमात्मा के आनन्दरस का इस प्रकार अनुभव करती हैं कि वे सुखवषक, सर्वव्यापक परमात्मा के साथ गमन करती हुई आनन्द को प्राप्त करती हैं। शरीर अथवा चित्तमें बसनेवाली वे वृत्तियाँ स्वयं प्रकाशमान परमेश्वर के पीछे चलकर शोभित होती हैं।

४१०. इत्था हि सोम इन्मदो ब्रह्म चकार बर्धनम्।
शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शशा अहिमर्चन्ननु स्वराज्यम्॥

हे सर्वशक्तिमान्, ज्ञानरूपा वज्रवाले प्रभो! इसी प्रकार उपासना तथा भक्ति में ही आनन्द-युक्त विद्वान् वेदज्ञान की वृद्धि करता है और आप अपने राज्य (प्रताप) को प्रकट करते हुए अपने बल से पृथिवी के आवरणकारी अज्ञान आदि विघ्नों का विनाश करते हैं।

४११. इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः।
तमिन्महत्स्वाजिषूतिमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत्॥

इन्द्र सज्जनों के हर्ष के लिये और बल के लिये महान् है। अज्ञान आदि को नष्ट करनेवाला वह अपनी प्रजाओं के साथ युद्धों तथा उपासना-यज्ञों में हमारी रक्षा करता है। रक्षा करने वाले उसीके महान् संग्रामों तथा ज्ञानचर्चाके स्थानों में और छोटे उपद्रवों तथा हृदयस्थान में हम स्मरण किया करते हैं।

४१२. इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं वज्रिन् वीर्यम्।
यद्ध त्यं मायिनं मृगं तव त्यन्मायायावधीरर्चन्ननु स्वराज्यम्॥

हे ज्ञान की वर्षा करने वाले, शक्तिशाली, परमेश्वर! आप की ही शक्ति कहीं नहीं रोकी जा सकती, क्योंकि उस अज्ञान में तथा प्रकृति के चक्र में पड़े हुए, ज्ञान को लुप्त करनेवाले शरीर और मन को विनष्ट कर, आप उपासक को मोक्ष प्रदान करतें हैं। वह आप अपने उसी प्रताप को प्रकट करते हैं।

४१३. प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते।
इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम्॥

आइये! शीघ्र सम्मुख आइये! विघ्नों को दबाइये, आप की शक्तिको कोई नहीं दबा सकता। हे इन्द्र! आपका बल शत्रुओं को झुकाने वाला है। अतः आप अज्ञान आदि सब विघ्नों को नष्ट कीजिये तथा सब कर्मों को सिद्ध कीजिये और अपने प्रकाश को प्रकट कीजिये।

४१४. यद्वीरत आजयो धृष्णवे धीयते धनम् ।
युङ्क्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्मां इन्द्र वसौ दधः ॥

जब संग्राम या शास्त्रार्थ उठ खड़े होते हैं तो विजयी के लिए प्राप्तकरने योग्य धन आदि भेंट किया जाता है। हे परमात्मन् ! हर्ष की वर्षा करने वाले तथा दुःख का हरण करनेवाले प्राण और अपान को योगद्वारा अपने में नियुक्त कीजिये। किसी (अज्ञान आदि) को तो आप नष्ट कीजिये और किसी को अपनी साधना में धारण कीजिये । हे इन्द्र ! हम उपासकों को आप अपने आनन्द-स्वरूप में आश्रय दीजिये।

४१५. अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत ।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥

स्वयं सूर्यसमान प्रकाशित मेधावी उपासकजन आनन्द का भोग करते हैं, भक्ति में मस्त होते हैं और संसार की प्यारी वस्तुओं को त्याग देते हैं। वे प्रशंसा के योग्य बुद्धि से आप की स्तुति करते हैं। आप अपनी ऋचाओं और सामों का उनके लिये उपदेश दीजिये और सम्प्रज्ञात तथा असम्प्रज्ञात समाधि सिद्धि कराइये।

४१६. उपो षु शृणुही गिरो मघवन्मातथा इव ।
कदा नः सूनृतावतः कर इदर्थयास इद्योजान्विन्द्र ते हरी ॥

हे सर्वधनसम्पन्न परमात्मन् ! हमारे वचनों को सुनिये, हमारे विरुद्ध मत होइये। हम को आप कब सत्यवचन बोलने वाला बनावेंगे ? इसीलिए आप की प्रार्थना की जाती है। हे इन्द्र ! आप हमें सविकल्पक तथा निर्विकल्पक समाधियों को प्राप्त कराइये और ऋचाओं तथा सामों से युक्त कीजिये।

४१७. चन्द्रमा अप्स्वा३न्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥

हे परमात्मन् ! सुन्दर गतियुक्त, आह्लादकारी जीवात्मा कर्मों के मध्य में से आपके प्रकाश-स्वरूप की ओर शीघ्रता से जा रहा है। सोने के समान चमकीली धाराओं वाली, बिजली के समान चकाचौंध पैदा करने वाली क्षणभङ्गुर वस्तुएँ आपके स्वरूप का ज्ञान नहीं पा सकतीं। हे द्यौ और पृथिवी लोको ! हे प्राण और अपान ! इस रहस्य का ज्ञान मुझ उपासक को प्राप्त कराओ।

४१८. प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
स्तोता वामश्विनावृषिः स्तोमेभिर्भूषति प्रति माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥

हे प्राण और अपान ! जीवात्मा के निवासस्थान और वहन=धारण करनेवाले, भोगों की वर्षा करने वाले, सबसे प्यारे प्रत्येक रथरूपी शरीर में द्रष्टा, सत्य गुणोंका वर्णन करनेवाला उपासक जीवात्मा वेदमन्त्रों द्वारा तुम दोनों को भूषित करता है। हे मधुर ब्रह्मक्रिया को जानने वाले पुरुषो! मेरी इस स्तुति, प्रार्थना तथा उपासना को सुनो।

—o—

चतुर्थ दशति आठवाँ खण्ड

देवता—१, २, ७ अग्नि। ३ उषा। ४ सोम। ५, ६ इन्द्र। ८ विश्वेदेवाः। छन्द—१-७ पंक्ति। ८ उप रिष्टाद् बृहती। स्वर—१-७ पञ्चम। ८ मध्यम। ऋषि—१, ७ वसुश्रुत आत्रेय, वत्स। २, ४ विमद। ३ सत्यश्रवाः ५, ६ गौतम। ८ अंहोमुग् वामदेव्य।

४१९. आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम्।
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद् दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आभर॥

हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन्! प्रकाशयुक्त, अजर-अमर आप को हम अपनी आत्मा में प्रकाशित करते हैं। द्युलोक में आपकी वह प्रसिद्ध प्रशंसनीय कान्ति चमक रही है। यथार्थ गुणवर्णन करनेवालों के लिये आप ज्ञान और अन्न को प्राप्त कराइये।

४२०. आग्निं न स्ववृक्तिभिर्होतारं त्वा वृणीमहे।
शीरं पावकशोचिषं विवो मदे यज्ञेषु स्तीर्णबर्हिषं विवक्षसे॥

हे परमात्मन्! हम उपासक अपनी उत्तम स्तुतियों से सब स्थानों में अन्दर-बाहर व्यापक, पवित्र दीप्ति से युक्त, आनन्ददायक, सब के नेता, प्रकाशस्वरूप, आपकी आनन्दप्राप्ति के लिये इस समय प्रार्थना करते हैं। हे उपासको! हमारे-तुम्हारे ब्रह्मयज्ञों में उस परमात्मा के लिये हृदयरूपी आसन बिछाया गया है। हे परमेश्वर! आप महान् हैं।

४२१. महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती।
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते॥

हे उषा! हे चेतने! हे व्यापक परमेश्वर की सत्यस्वरूप वेदवाणी! ज्योतिःस्वरूप तू महान् ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिये, आज भी मुझे उसी प्रकार बोध प्राप्त करा, जिस प्रकार हे सब पापों को दहन करने वाली! तू हमको उत्तमरूप से प्रकट हुए वरण करने योग्य, विस्तृत, सत्य वेद-ज्ञान में लगाकर प्रारम्भ से ही बोध कराया करती है।

४२२. भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम्।
अधा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे रणा गावो न यवसे विवक्षसे॥

हे परमेश्वर! आप हमारे मन को, आत्मा को, और कर्म को कल्याण की ओर प्रेरित कीजिये। जैसे गौएँ घास आदि चारे में आनन्द प्राप्त करतीं और प्रीतियुक्त होती हैं, उसी प्रकार प्राणधारण करने वाली अपनी आनन्ददायक मित्रता में हमें स्वीकार कीजिये। आप महान् हैं।

४२३. क्रत्वा महाँ अनुष्वधं भीम आ वावृते शवः।
श्रिय ऋष्व उपाकयोर्नि शिप्री हरिवान् दधे हस्तयोर्वज्रमायसम्॥

महान् तथा दुष्टों के लिये भयंकर परमात्मा स्वधारूपी जीवात्मा या प्रकृति के लिये अपने कर्म और प्रज्ञान से, अपने बल को सब ओर से (अन्दर और बाहर) प्रेरित करता है। सब को आश्रय देने

के लिये महान्, बलशाली, हरण और आकर्षण करने वाला वह परमात्मा प्रकृति तथा जीवात्मा के बिल्कुल समीप स्थित आघात-प्रतिघातरूपी दोनों साधनों से स्नेह और वेग से बनी पतननिवारक शक्ति को सब ओर से अच्छे प्रकार से धारण करता है। (इसमें सृष्टि के उत्पन्न करने की शैली का वर्णन है)।

४२४. **स घा तं वृषणं रथमधि तिष्ठाति गोविदम् ॥**
यः पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजा न्विन्द्र ते हरी ॥

हे इन्द्र! वही मनुष्य उस सुखवर्षक, इन्द्रियरूपी घोड़ों से युक्त शरीररूपी रथ पर स्वामी होकर चढ़ा करता है जो इन्द्रियों को वश में कराने वाले योगाभ्यास और क्रिया-साधन को पूर्णरीति से जानता है। हे परमात्मन्! आप अपनी ऋचाओं और सामों को, प्राण और अपान को, सबीज और निर्बीज समाधि को योगाभ्यास में लगवाइये।

४२५. **अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः।**
अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥

मैं उपासक उसी को ज्ञानस्वरूप परमात्मा मानता हूँ जो सबके अन्दर निवास करनेवाला है, सब को निवास देने वाला है और जिसके आश्रय को वाणियाँ प्राप्त करती हैं, जिसके आश्रय को शरीर में व्याप्त होने वाले प्राण ग्रहण करते हैं और नित्य ज्ञानवान् आत्मायें भी जिसका आश्रय स्वीकार करती हैं। हे अग्ने परमात्मन्! आप स्तुति करने वाले विद्वानों के लिये अपना भरपूर ज्ञान तथा अन्न आदि प्रदान कीजिये।

४२६. **न तमंहो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम्।**
सजोषसो यमर्यमा मित्रो नयति वरुणो अति द्विषः ॥

हे प्रीतियुक्त विद्वानो! उस मनुष्य को पाप तथा बुराइयाँ स्पर्श नहीं करतीं जिसको न्यायकारी, मित्र, वरुण (वरण करने योग्य, विघ्ननिवारक) परमात्मा द्वेषों तथा विघ्नों से अलग रखता है।

—०—

पांचवीं दशति नवीं खण्ड

देवता—१–६, १० पवमान। ७ मरुत्। ८ अग्नि। ९ वाजी। छन्द—१, ३–५, ७, १० द्विपदा पंक्ति। २, ६ त्रिपदा अनुष्टुप् पिपीलिकामध्या। ८ पदपंक्ति।। ९ पुर उष्णिक्। स्वर—१, ३–८, १० पञ्चम। २, ६ गान्धार। ९ ऋषभ। ऋषि—१, ३–५, १० धिष्ण्य ऐश्वर अग्नि। २, ६ त्र्यरुण और त्रसदस्यु। ७ वसिष्ठ। ८, ९ वामदेव।

४२७. **परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णो भगाय ॥**

हे सोम=सबके प्रेरक परमात्मन्! आनन्दरूप आप मित्र बने हुए, प्रजा के पोषक और ऐश्वर्ययुक्त इन्द्र=जीवात्मा के लिये सब प्रकार से ज्ञान, और गति दीजिये।

४२८. पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः । द्विषस्तरध्या ऋणया न ईरसे ।।

हे परमात्मन् ! हमारे ज्ञान, बल, तथा अन्न आदि धन के लिये सब ओर से अच्छी प्रकार बढ़ाइये। विघ्नों के विनाशक आप हमारे अज्ञान आदि को सब ओर से मार भगाइये। सब प्रकार के ऋणों से बचानेवाले आप द्वेष करने वाले दुष्टों को नष्ट करने के लिये सब ओर व्याप्त हैं और हमें सदा प्रेरित किया करते हैं।

४२९. पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम ।।

हे शान्तस्वरूप, प्रेरक परमात्मन् ! आप महान् हैं तथा आप में सब प्राणी आनन्द करते हैं, महासमुद्र के समान आनन्द के भण्डार हैं, देवों=विद्वानों, इन्द्रियों तथा प्रकृति के तत्त्वों के पालन-कर्त्ता पिता हैं। आप सब मनुष्यों के हृदयों तथा शरीरों को पवित्र कीजिये और उनमें आनन्द का सञ्चार कीजिये।

४३०. पवस्व सोम महे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ।।

हे सोम परमात्मन् ! शुद्ध स्वरूप, विद्युत् के समान बलिष्ठ आप बड़े बल तथा धन के लिये हमें पवित्र कीजिये।

४३१. इन्दुः पविष्ट चारुर्मदायापामुपस्थे कविर्भगाय ।।

कल्याणस्वरूप, परमैश्वर्ययुक्त, क्रान्तदर्शी, कवि परमात्मा कर्मों और ज्ञानों के मध्य तथा प्रजाओं के समीप हर्ष और आनन्द उत्पन्न करने के लिये तथा धनादि ऐश्वर्य के लिये गति करता है। वह हमें पवित्र करे।

४३२. अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये ।
वाजाँ अभि पवमान प्रगाहसे ।।

हे परमात्मन् ! श्रेष्ठ पुरुषों के महान् राज्य में, जहाँ कि सब मनुष्य समान हों, हृदय में साक्षात् किये गये आपका ही अनुगमन कर हम आनन्द प्राप्त करें।

४३३. क ईं व्यक्ता नरः सनीडा रुद्रस्य मर्या अथा स्वश्वाः ।।

प्रकटहुए, एक ही शरीर में आश्रय लिये हुए, मनुष्यों के हितकारी और अच्छी प्रकार सुख का भोग करनेवाले इन मरुतों (प्राणों) के अतिरिक्त, रुद्र जीवात्मा के सहायक और कौन हैं ? अर्थात् कोई नहीं, मरुत् ही हैं।

४३४. अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् । ऋध्यामा त ओहैः ।।

हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! आज (और सर्वदा ही) अश्व के समान संसार का वहन करनेवाले, विद्युत के समान प्रकाशमान, रचयिता के समान ब्रह्माण्ड का निर्माण करनेवाले, कल्याणकारी, हृदय के प्यारे तथा हृदय में प्रत्यक्ष होनेवाले आप की हम स्तुतियों के द्वारा उपासना करते हैं।

४३५. आविर्मर्या आ वाजं वाजिनो अग्मन् देवस्य सवितुः सवम् ।
स्वर्गां अर्वन्तो जयत ।।

ज्ञानयुक्त मनुष्य दिव्यगुणयुक्त, सुखदाता सब के प्रेरक परमात्मा की ज्ञानसम्पन्न प्रेरणा तथा आदेश को प्रकट रूप से प्राप्त करते हैं। हे ज्ञान प्राप्त करनेवाले मनुष्यो ! तुम सुखमय स्थानों को तथा मोक्ष को जीतो, प्राप्त करो ।

४३६. पवस्व सोम द्युम्नी सुधारो महाँ अवीनामनुपूर्व्यः ॥

हे शान्तस्वभाव परमात्मन् ! (सबसे श्रेष्ठ) सब के मूलकारण, कान्तिमान्, सबको अच्छे प्रकार से धारण करनेवाले, गतिशील आत्माओं में सबसे महान् आप सब को पवित्र कीजिये ।

—०—

छठी दशति दशम खण्ड

देवता——१-५, ८-१० इन्द्र, ६ विश्वेदेवाः । ७ उषा । छन्द—द्विपदा पंक्ति । स्वर—पञ्चम । ऋषि—अवस्यु । १, २ ५, ६, ८—१० वामदेव । ३, ४ त्रसदस्यु । ७ संवर्तः ।

४३७. विश्वतो दावन् विश्वतो न आ भर यं त्वा शविष्ठमीमहे ॥

हे सब ओर से दान करनेवाले तथा प्रलयकाल में सबका संहार करनेवाले परमेश्वर ! आप से हम प्रार्थना करते हैं कि हमें सब ओर से सुख से पूर्ण कीजिये ।

४३८. एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे ॥

यही परमात्मा जो सबसे बड़ा और सबको बढ़ानेवाला तथा सब ऋतुओं में हितकारी है, वह 'इन्द्र' नाम से प्रसिद्ध है। मैं उसकी स्तुति करता हूँ।

४३९. ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरव र्धयन्नहये हन्तवा उ ॥

परमेश्वर तथा चारों वेदों को जाननेवाले मनुष्य स्तुतियों द्वारा इन्द्र-परमात्मा की पूजा करते हुए साँप के समान घातक पापों तथा विघ्नों के नाश करने के लिये ही उसकी महिमा का गान करते हैं।

४४०. अनवस्ते रथमश्वाय तक्षुस्त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम् ॥

हे परमेश्वर ! मनुष्य शीघ्र मोक्षप्राप्ति के लिये आपको रथ के समान रमणीय साधन बनाते हैं। हे बहुतों से स्तुति किये गये परमात्मन् ! विद्या से दीप्त मनुष्य आपको प्रकाशमान शस्त्र बनाता है। सब को रचनेवाले आप का विघ्नों को दूर करनेवाला बल अत्यन्त दीप्तिमान् है।

४४१. शं पदं मघं रयीषिणे न काममव्रतो हिनोति न स्पृशद्रयिम् ॥

कल्याणकारी स्थान, ज्ञान तथा धन, अपने धन को परोपकार में लगानेवाले और ऐश्वर्याभिलाषी को ही प्राप्त होता है। व्रत तथा नियम से रहित मनुष्य कामना पूरी नहीं कर पाता और धन को स्पर्श भी नहीं कर पाता ।

४४२. सदा गावः शुचयो विश्वधायसः सदा देवा अरेपसः ॥

हे परमात्मन् ! हमारी इन्द्रियाँ सदा शुद्ध और समस्त ज्ञानरस को धारण करनेवाली हों। विद्वान् पुरुष दोषों और पापों से रहित हों।

४४३. आ याहि वनसा सह गावः सचन्त वर्तनिं यदूधभिः ।।

हे उषा ! हे चेतने ! तू आ । तेरी किरणें वहनशील शक्तियों द्वारा तेरे आने के मार्ग को प्रकट करती हैं । हमारी इन्द्रियाँ धारक शक्तियों के साथ अपने मार्ग को संगत हों । हमारी वाणीरूपी गौएँ स्वाहा, वौषट, हन्त और स्वधारूपी चार स्तनों के साथ अपने मार्ग को प्राप्त हों ।

४४४. उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः पुष्येम रयिं धीमहे त इन्द्र ।।

हे इन्द्र ! हम मधुर आत्मिक क्षेत्र में रहते हुए ऐश्वर्य को प्राप्त करें और आपका ध्यान करें ।

४४५. अर्चन्त्यर्कं मरुतः स्वर्का आ स्तोभति श्रुतो युवा स इन्द्रः ।।

सुन्दर कान्तियुक्त ज्ञानी मनुष्य या प्राण अपने शक्तिदाता पूज्य परमात्मा की पूजा करते हैं और वह युवा, नित्य, प्रसिद्ध परमात्मा उनकी रक्षा करता है ।

४४६. प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गाथं गायत यं जुजोषते ।।

हे उपासको ! तुम सब अज्ञान आदि के तथा विघ्नों के नष्ट करनेवाले, मेधावी, इन्द्र परमात्मा के लिये वह वेद का गान गावो, जिस गान से वह परमेश्वर प्रीति करता तथा प्रसन्न होता है ।

सातवीं दशति ग्यारहवाँ खण्ड

देवता—१, २, ३ अग्नि । ४, ८, १० इन्द्र । ५ उषा ६, ७, ९ विश्वेदेवाः । छन्द—१, ३, ४, ७ द्विपदा गायत्री । २, ५, ६ द्विपदा पंक्ति । ८, ९ द्विपदा त्रिष्टुप् । १० एकपदा गायत्री ।। स्वर—१, ३, ४, ७, १० षड्ज । २, ५, ६ पञ्चम । ८, ९ धैवत ।। ऋषि—१ प्रबन्ध काण्व, संपात, वामदेव । २ बन्धु । ३, ४ बन्धु, सुबन्धु, विप्रबन्धु, वामदेव । ५ संवर्त्त । ६ भुवन आप्त्य । ७ कवष ऐलूष, वामदेव । ८ भरद्वाज । ९ आत्रेय, वामदेव । १० वसिष्ठ वामदेव ।

४४७. अचेत्यग्निश्चिकितिर्हव्यवाड् न सुमद्रथः ।

होम की हुई वस्तुओं को दूर-दूर तक पहुंचाने वाले भौतिक अग्नि के समान ही शोभायुक्त तथा रमणीय तेजस्वी स्वरूपवाला एक चेतन अग्नि परमेश्वर जान लिया गया है ।

४४८. अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भुवो वरूथ्यः ।।

हे ज्ञान तथा गति से पूर्ण परमात्मन् ! आप हमारे सबसे पास रहनेवाले रक्षक, कल्याणकारी तथा वरण करने योग्य हैं ।

४४९. भगो न चित्रो अग्निर्महोनां दधाति रत्नम् ।।

महान् देवों में सूर्य के समान प्रकाशमान तथा पूज्य परमात्मा रमणीय शक्ति को धारण करता है और उपासकों को विद्या आदि धनों को धारण कराता है ।

४५०. विश्वस्य प्र स्तोभ पुरो वा सन् यदि वेह नूनम् ।।

सब के विशेष पूज्य तथा प्रलय के समय सब के संहारक हे परमात्मन् ! आप पहले (भूतकाल में) भी सदा विद्यमान रहे हैं और वर्तमान में भी निश्चय ही विद्यमान हैं । आप सबके नगरों को

बसाते तथा समृद्ध करते हैं। हम उपासकों के हृदय-मन्दिरों को भी अवश्य अपने साक्षात्कार से समृद्ध कीजिये।

४५१. उषा अप स्वसुष्टमः सं वर्तयति वर्तनि सुजातता ॥

उषा अपनी बहिन रात के अन्धकार को, अपने जन्म से, विपरीत मार्ग पर लौटा देती है। हे परमात्मन् इसी प्रकार आप इस उषाकाल में ध्यान करने पर हमारे अज्ञान को दूर करें।

४५२. इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥

इन्द्र=जीवात्मा और सब प्राण तथा इन्द्रियाँ सब लोकों को वश में करें, सब पदार्थों से सुख को सिद्ध करें।

४५३. वि स्रुतयो यथा पथा इन्द्र त्वद्यन्तु रातयः ॥

हे परमेश्वर! जिस प्रकार बहने के मार्ग से आकर नदियाँ प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार आप से हमको विद्या आदि दान प्राप्त हों।

४५४. अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥

इस प्रकार की प्रार्थनाओं से हम परमात्मा के दिये हुए ज्ञान, बल तथा धन को प्राप्त करें और स्वयं उत्तम वीर तथा वीर पुत्रों से युक्त होकर सौ वर्षों तक आनन्दित रहें।

४५५. ऊर्जा मित्रो वरुणः पिन्वतेडाः पीवरीमिषं कृणुही न इन्द्र ॥

मित्र और वरण करने योग्य परमात्मा तथा सूर्य और वृष्टि-जल अपने बल से भूमियों को उर्वरित करें तथा अन्नों को पुष्ट करें। हे परमेश्वर! हमारी अन्न की फसल को बहुत अधिक मात्रा में उत्पन्न कीजिये।

४५६. इन्द्रो विश्वस्य राजति ॥

इन्द्र–परमेश्वर ही सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित कर उस पर शासन करता है।

—०—

आठवीं दशति बारहवाँ खण्ड

देवता १,३,४,१० इन्द्र। २ सूर्य। ५ विश्वेदेवाः। ६ मरुत्। ७ पवमान। ८ सविता। ९ अग्नि। छन्द—१, १० अष्टि (६४ अक्षर) २, ४, ६ जगती। ३, ५, ७, ९ अत्यष्टि। ८, १० अति शक्करी। स्वर—१, १० मध्यम ३, ५, ७, ९ गान्धार। २, ४, ६ निषाद। ८, १० पञ्चम। ऋषि—१, १० गृत्समद। २ गौर वा घोर आङ्गिरस। ३, ५ ९ परुच्छेप। ४ रेभा। ६ एवयामरुत्। ७ अनानत पारुच्छेपि। ८ नकुल।

४५७. त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृम्पत् सोममपिबद् विष्णुना सुतं यथावशम्।
स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्चद्देवो देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥

तीनों लोकों में तृप्त होता हुआ, महान् पूज्य तथा बलशाली जीवात्मा व्यापक परमात्मा के द्वारा उत्पन्न किये हुए यव आदि अन्नों से प्राप्त भोगों तथा शान्तिपूर्ण ज्ञान को अपनी शक्ति के अनुसार स्वीकार कर भोगता है, वही इस प्रकार महान् कर्म करने केलिये प्रसन्न हुआ करता है। वही दिव्यगुणयुक्त, प्रकाशमान, ज्ञानी होकर महान् नानाप्रकार की शक्तिरूपी सेनावाले सर्वज्ञ सुखदाता, सच्चे ऐश्वर्यशाली परमात्मा को प्राप्त करके सच्चा ऐश्वर्यवान् हो जाता है और आह्लाद को प्राप्त करता है।

४५८. अयं सहस्रमानवो दृशः कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्म ।
ब्रध्नः समीचीरुषसः समैरयदरेपसः सचेतसः स्वसरे मन्युमन्तश्चिता गोः ॥

वह उपासकों के लिये प्रत्यक्ष, हजारों मनन करनेवाले उपासकों से पूजित, द्रष्टा, कवियों की बुद्धि का आधार, ज्योतिःस्वरूप, विशेष रूप से सबको धारण करने वाला, सबको एक सूत्र में बाँधनेवाला, सूर्य के समान प्रकाशमान परमात्मा सृष्टिरूपी दिन के समय, स्वयं आगे बढ़नेवाले जीवन में, अच्छे प्रकार से गति करने वाली, अज्ञान तथा पाप से रहित, चेतना देने वाली उषाओं और विशुद्ध ज्योतिर्मय दशाओं को उपासक के लिये अच्छे प्रकार प्रेरित करता है। ये उषायें तथा ज्योतिर्मय दशायें सूर्य से तथा वेदवाणी से परमात्मा की कृपा से प्राप्त होतीं हैं और अत्यन्त प्रकाशमान तथा मन्यु और तेज से युक्त होतीं हैं।

४५९. एन्द्र याह्यु प नः परावतो नायमच्छा विदथानीव सत्पतिरस्ता राजेव सत्पतिः ।
हवामहे त्वा प्रयस्वन्तः सुतेष्वा पुत्रासो न पितरं वाजसातये मंहिष्ठं वाजसातये ॥

हे इन्द्र–परमात्मन् ! आप अब तक दूर रहनेवाले भी हम उपासकों के पास उसी प्रकार आइये, जिस प्रकार सत्य का पालक यजमान यज्ञों के पास जाता है और जिस प्रकार सच्चा स्वामी राजा प्रजा के घरों पर उनका दुःख दूर करने जाता है। सत्य का पालक उपासक आपकी ओर अच्छी प्रकार अभिमुख हो रहा है। हे इन्द्र ! हम उपासक अपनी भक्तियों के सिद्ध हो जाने पर उनको आपके अर्पण करने के लिये तथा ज्ञान और अन्न आदि पाने के लिये, पूज्य तथा सर्वश्रेष्ठ दानी आपको उसी प्रकार बुला रहे हैं, जिस प्रकार पुत्र अपने पालन करने वाले पिता को बुलाया करते हैं। (इस मन्त्रमें कई सुन्दर उपमायें हैं)।

४६०. तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं श्रवांसि भूरि ।
मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्त राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ॥

मैं उस इन्द्र परमात्मा को बराबर स्मरण करता हूँ जो समस्त धनों से सम्पन्न, उग्र, वेगवान्, सच्चे मनुष्यों का रक्षक, अनेक शक्तियों तथा वेद-ऋचाओं आदि को धारण करने वाला है। सर्वश्रेष्ठ दानी तथा पूज्य वह परमात्मा सब ओर वर्तमान है और बार-बार स्मरण किया जाता है, सर्वशक्तिमान् वह प्रभु हमें ऐश्वर्य तथा धन प्राप्त कराने के लिये समस्त उत्तम मार्गों और साधनों को प्रदान करे।

४६१. अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आ नु त्यच्छर्धो दिव्यं वृणीमह इन्द्रवायू वृणीमहे ।
यद्ध क्राणा विवस्वते नाभा सन्दाय नव्यसे ।
अध प्र नूनमुप यन्ति धीतयो देवाँ अच्छ न धीतयः ॥

प्रभो ! मेरी स्तुति को सुनिये । मैं उपासक अपने ध्यान तथा बुद्धि के बल से प्रकाशस्वरूप परमात्मा को साक्षात् हृदय में धारण करता हूँ और पश्चात् दिव्य आत्मिक बल की प्रार्थना करता हूँ हम उन जीवात्मा तथा मुख्य प्राणों को भी प्रत्यक्ष करते हैं जो निश्चय ही सदा नवीन, सूर्य के समान आत्मा की आकर्षण-शक्ति में तथा शरीर के केन्द्र. नाभिस्थान में सब प्राणों को अच्छी प्रकार से बाँधकर शरीररचना किया करते हैं। हमारी बुद्धियाँ, कर्म तथा स्तुतियाँ, सूर्य की किरणों, शिष्यों तथा अंगुलियों के समान निश्चय ही विद्वानों के अत्यन्त समीप पहुंच रही हैं और दिव्यगुणों को प्राप्त कर रहीं हैं ।

४६२. प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा एवयामरुत् ।
प्र शर्धाय प्र यज्यवे सुखादये तवसे भन्ददिष्टये धुनिव्रताय शवसे ॥

हे उपासको ! विद्वानों से उत्पन्न की गई तथा प्रार्थना-वाणियों से उत्पन्न, तुम्हारी बुद्धियाँ और स्तुतियाँ प्रजाओं में ओत-प्रोत, सर्वव्यापक, महान् परमात्मा के लिये प्राप्त हों। हे ज्ञान प्राप्त कराने वाले, वेदों को जाननेवाले उपासक मनुष्य ! प्राणों तक को चलानेवाली तेरी जीवात्मा उसी शक्तिशाली, जीवनयज्ञ तथा सृष्टि यज्ञ के रचनेवाले, सुखदाता, महान्, उपासकों से स्तुति किये गये, दुष्टों को कंपाने के व्रती, सर्वव्यापक परमात्मा की खोज में महती शक्ति, सुखभोग, स्फूर्ति, कल्याण, मानसबल आदि की प्राप्ति के लिये प्रवृत्त हो ।

४६३. अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि तरति सयुग्वभिः सूरो न सयुग्वभिः ।
धारा पृष्ठस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः ।
विश्वा यद्रूपा परियास्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः ॥

शूरवीर उपासक इस अज्ञान को हरनेवाली ज्योति से अपने सहायक इन्द्रियों तथा योग-साधनों के द्वारा पवित्र होकर सब द्वेषों को तथा द्वेष करने वालों को उसीप्रकार नष्ट कर देता है, जिसप्रकार सूर्य अपनी किरणों से पवित्र करता हुआ गन्दगी को दूर करता है और जिसप्रकार वीर नेता अपने सहायकों के द्वारा सब दुष्टों को पराजित करता है। धारण करनेवाले परमात्मा की धारने की शक्ति सब जगह प्रकाशित हो रही है। पवित्र, सबका प्रेरक, प्रकाशमान, सर्वव्यापक परमात्मा वह है, जो सब रूपवाली वस्तुओं तथा आकाश में स्थित पिण्डों को प्रकाशज्ञानयुक्त, शिर में स्थित सात प्राणों द्वारा वा ब्रह्माण्ड में नक्षत्रों को चलानेवाली सात वायुओं द्वारा घरेहुए सब ओर व्याप्त हो रहा है।

४६४. अभि त्यं देवं सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवं रत्नधामभि प्रियं मतिम् ।
ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत् सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः ॥

मैं उस दिव्य-सुख-दाता, द्यौ तथा पृथिवी के उत्पन्न करनेवाले, सर्वज्ञ, क्रान्तदर्शी बुद्धिवाले, सत्य को प्रकट करनेवाले, सच्चे ऐश्वर्यवाले रमणीय ज्ञान तथा विभूतियों को धारण करनेवाले, सबके प्यारे, मननयोग्य, सबके मान्य उस सुखदाता परमात्मा की सब प्रकार से स्तुति करता हूँ। जिसकी उच्च दीप्ति से, सृष्टि की उत्पत्ति के समय, जड़ प्रकृति प्रकाशित होती है और सूर्यरूपी ज्योति अद्वितीय रूपसे द्योतित है, वह तेजःस्वरूप, गतिरूपी हाथोंवाला, उत्तम कर्मवाला परमात्मा अपनी शक्ति तथा कृपा से सूर्य आदि प्रकाशमान लोकों को रचता है।

४६५. अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु शुक्रशोचिष आजुह्वानस्य सर्पिषः ॥

मैं उपासक ज्ञानस्वरूप, प्रकाशमान परमात्मा को इस सृष्टि में आदान-प्रदान करनेवाला, सुख-दाता; धन का देनेवाला, बलरूपी जीवात्मा को प्रेरित करनेवाला, शक्ति का प्रेरक, वेदरूपी ज्ञान को प्रकट करनेवाला, मेधावी मनुष्य के समान सब उत्पन्न हुए पदार्थों को जाननेवाला मानता हूँ, जो प्रकाशमान परमेश्वर ऊपर आकाश में स्थित अग्नि द्वारा श्रेष्ठ हिंसारहित सृष्टि-यज्ञ का करनेवाला देवों तक पहुंचनेवाली शक्ति से दीप्त ज्योतिवाले प्रसरणशील कान्तियुक्त सूर्य के विशेष प्रताप को प्रेरित कर रहा है।

४६६. तव त्यन्नर्यं नृतोऽप इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं दिवि प्रवाच्यं कृतम् ।
यो देवस्य शवसा प्रारिणा असु रिणन्नपः ।
भुवो विश्वमभ्यदेवमोजसा विदे दूर्जं शतक्रतुर्विदेदिषम् ॥

- हे मनुष्यों के हितकारी तथा नेता परमेश्वर ! आपका वह मनुष्यों के लिए हितकारक, सबसे पहले द्यौलोक में किया हुआ कार्य सबसे उत्कृष्ट तथा अत्यन्त प्रशंसनीय है। जिसने अपनी शक्ति से प्रकाशमान हिरण्यगर्भ के पवनरूप प्राण को गति देकर समस्त लोकों को बड़े वेग से चलाया है और जो न प्रकाशित होने वाले समस्त लोकों को अपने बल से व्याप्त होकर उनमें बल और जीवन देने-वाले अन्न आदि पदार्थों को प्राप्त कराता है। वह सैकड़ों काम करनेवाले शिल्पी परमात्मा हमारे लिये जीवन, प्राण तथा अन्न आदि प्रदान करे।

हे परमेश्वर ! जो आपका उपासक आपके बल से जीवित रहकर कर्मों को प्रारम्भ करे तो सैकड़ों कर्मों को करनेवाला होकर अपने पुरुषार्थ से परमेश्वर तथा विद्वानों के विरोधी सब को परा-जित करे, बल को प्राप्त करे और अन्न आदि सब पदार्थों को भी प्राप्त करे।

—०—

पावमान पर्व (काण्ड) पांचवाँ अध्याय

(४६७ मन्त्र से ५८५ मन्त्र तक)

समस्त पर्व का देवता—पवमान (सोम) है। ४६७ मन्त्र से ५३२ मन्त्र तक अद्भुत रस में वर्णन है।

नवीं दशति पहला खण्ड

पूरी दशति में छन्द—गायत्री। स्वर—षड्ज।

४६७. उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे। उग्रं शर्म महि श्रवः॥

ऋषि—अमहीयु=पृथिवी की नहीं द्युलोक की पहुंच रखने वाला।

हे सोम परमात्मन्! आपकी प्राण-प्रद शक्ति से उत्पन्न हुए, ऊँचे द्यौलोक तथा सूर्य आदि में वर्तमान, उत्कृष्ट सुखपूर्ण आश्रय को और महान् श्रुति-गान, ज्ञान, बल, अन्न आदि को भूमि पर स्थित मैं भौतिक शरीर के द्वारा प्राप्त कर रहा हूँ।

४६८. स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया। इन्द्राय पातवे सुतः॥

ऋषि—मधुच्छन्दा=मीठे संकल्पवाला।

हे सोम=सबके प्रेरक, सौम्यगुणयुक्त, शान्तिस्वरूप परमात्मन्! आप अत्यन्त रसीली, अत्यन्त आनन्ददायक, दिव्य नशा करानेवाली अपनी भक्ति तथा उपासना की धारा से इस संसार में व्याप्त होकर, पवित्र कीजिये। इन्द्रियों के राजा जीवात्मा के उपभोग के लिये यह ज्ञान, तथा भक्ति से पूर्ण आनन्दरस उत्पन्न किया गया है।

४६९. वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः। विश्वा दधान ओजसा॥

ऋषि—भृगु=तपस्वी।

हे परमात्मन्! आप धर्मस्वरूप, सुखवर्षक तथा सर्वश्रेष्ठ हैं। अपनी धारणाशक्ति से हमें पवित्र कीजिये। आप प्राणशक्ति रखनेवाले उपासक के लिये तृप्त करने वाले, हर्ष के सरोवर हैं। अपने ओज से सबको धारण करते हुए प्रकाशित होइये।

४७०. यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा। देवावीरघशंसहा॥

(अमहीयु ऋषि)। हे परमात्मन्। जो आपका ग्रहण करने योग्य आनन्द, हर्ष या नशा है, उस प्राणप्रद शक्ति से मेरी आत्मा में प्रकट होकर पवित्र कीजिये। आप विद्वानों तथा दिव्य भावनाओं के रक्षक और पाप की शिक्षा देनेवालों के घातक हैं।

४७१. तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः। हरिरेति कनिक्रदत्॥

ऋषि—त्रित=पूरा तरा हुआ, तीन से घिरा हुआ। तीन ध्वनियाँ (अ उ म) उठ रही हैं, मानो दूध देने वाली गौएँ अपने बच्चों को बुला रही हैं। चितचोर सर्वव्यापक परमेश्वर सब जगह ध्वनि करता हुआ हृदय में प्रकट हो रहा है।

ज्ञान, कर्म तथा उपासना–तीनों विषयों का प्रतिपादन करनेवाली वेदवाणियाँ अपना अभिप्राय प्रकट कर रही हैं। परमात्मा ज्ञान का मुख्य विषय है।

४७२. इन्द्रायेन्द्रो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः । अर्कस्य योनिमासदम् ॥

ऋषि—कश्यप=द्रष्टा।

हे ऐश्वर्यशील, जगत् को सरसाने वाले प्रेम के सुधाकर परमात्मन् ! आप प्राणों वाले, इन्द्रियों के स्वामी उपासक के लिये अत्यन्त मधुर होकर ज्ञान तथा जीवन-यज्ञ के उत्पत्तिस्थान (हृदय में) विराजमान होने के लिये प्रकट होइये। मैं उपासक पूजा के पात्र आपके समीप स्थित हो रहा हूँ आप मुझे पवित्र कीजिये।

४७३. असाव्यं शुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः । श्येनो न योनिमासदत् ॥

ऋषि—जमदग्नि=चलती हुई आग।

बादलों में, पर्वतों में, ऋषियों की वाणियों में रहने वाली संजीवनी शक्ति हर्ष के लिये मेरे हृदय की व्यापक तरंगों में कोंपल सी फूट पड़ी है। मानो बाज घोसले में आ गया है।

सर्वत्र व्यापक परमात्मा अपने प्रादुर्भाव के स्थान हृदयदेश में श्येनस्वरूप आत्मा के समान ही प्रकट होकर विराजमान है।

४७४. पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे । मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥

ऋषि—दृढ़च्युतः=बलपूर्वक हिला देने वाला।

हे पापहरण करनेवाले सर्वव्यापक परमात्मन् ! सब कार्यों को सिद्ध करनेवाले आनन्दरूप आप इन्द्रियों तथा प्राणों की ओर गतिशील आत्मा की तृप्ति के लिये प्रकट होइये।

४७५. परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत् । मदेषु सर्वधा असि ॥

ऋषि—असितः=बन्धन-रहित।

पर्वतों, मेघों और ऋषियों की वाणियों में विद्यमान सोम=संजीवनरस चारों ओर से शब्द करता हुआ हृदय की चलनी में टपक रहा है। वह सबको नशों में चूर रखनेवाला है।

सब का प्रेरक, स्वयंप्रकाशित, शान्तिदायक परमात्मा वाणी में विद्यमान होकर स्वतःपवित्र हृदय में प्रकट होता है। हे प्रभो ! आप सब आनन्दों में सब प्रकार विराजमान हैं।

४७६. परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः । स्वानैर्याति कविक्रतुः ॥

ऋषि—असित।

द्युलोक का कवि, द्युलोक और पृथिवी के, प्राण और अपान के बीच में ठहरा हुआ परमात्मा अपनी आक्रान्तदर्शिता से सुरीली तानों द्वारा प्यारे उड्डीयमान लोकों के तथा जीवात्माओं के चारों ओर व्यापक है।

दसवीं दशति दूसरा खण्ड

देवता—पवमान । छन्द—गायत्री । स्वर—षड्ज । ऋषि—१ श्यावाश्व (वृद्ध ज्ञान वाला)। २ त्रित । ३, ८ अमहीयु । ४ भृगु । ५, ६ कश्यप । ७ निध्रुवि काश्यप । ९, १० असित काश्यप वा देवल ।

४७७. प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम् । सुता विदथे अक्रमुः ॥

आनन्द को बहानेवाले, यज्ञ में अथवा ज्ञान के अवसर पर नियुक्त किये गये सौम्य स्वभाव के विद्वान् भक्तिरूपी धन से सम्पन्न हम सब के ज्ञान, यश तथा अन्न आदि के लिये उत्तम रीति से प्रवृत्त होते हैं ।

४७८. प्रसोमासो विपश्चितोऽपो नयन्त ऊर्मयः । वनानि महिषा इव ॥

भक्ति-रस से परिपूर्ण, सौम्य स्वभाववाले विद्वान् लहरों के समान, प्रजाओं को उसी प्रकार बहा ले चलते हैं, जैसे महान् बादल जलों को अपने साथ ले जाते हैं । जैसे बोझ ढोनेवाले भैंसे आदि पशु समान को दूर देशों तक पहुंचाते हैं, उसी प्रकार विद्वज्जन प्रजा को सेवनीय ज्ञान आदि उत्तम पदार्थों तक पहुंचाते हैं ।

४७९. पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने । विश्वा अप द्विषो जहि ॥

हे हृदय को सरस बसानेवाले संजीवनरस ! तू धर्ममेध द्वारा संपादित हुआ है । हे ज्ञानमय भक्तिरस ! तुझ सुखवर्षक को उपासक ने तय्यार किया है । हृदय में प्रकट हुए प्रभो ! आप पवित्रता की धारा बहा दें । हमें जनता में यशस्वी बनावें और हमारे सब द्वेषों को नष्ट करदें ।

४८०. वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे । पवमान स्वर्दृशम् ॥

हे पवित्र करने वाले परमात्मन् ! आप सुखवर्षक हैं । अलौकिक प्रकाश से दीप्तिमान् सुख के द्रष्टा, सर्वदर्शी आपको हम पुकार-पुकारकर बुलाते हैं ।

४८१. इन्दुः पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मतिः । सृजदश्वं रथीरिव ॥

आह्लादक तथा ऐश्वर्यशाली, चेतन, क्रान्तदर्शी ऋषियों का प्यारा, मननशील, परमात्मा उसी प्रकार प्रेरणा करता है जिस प्रकार सवार रथवान् अश्व को प्रेरित करता है ।

४८२. असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया । शुक्रासो वीरयाशवः ॥

शुद्ध संजीवनरस का संचार करनेवाले आलस्यरहित, योगी, उपासक व्यापक, वीर-रस-पूर्ण वाणी द्वारा शक्तिशाली होकर व्यापक प्रभाववाले हो गये ।

४८३. पवस्व देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः । वायुमा रोह धर्मणा ।

हे देव परमात्मन् !हमें आप पवित्र कीजिये । साथ ही आपका आनन्दप्रवाह, दिव्य नशा इन्द्रियों के स्वामी, उपासक जीवात्मा को प्राप्त हो । आप अपनी धारण करने की शक्ति से वायु आदि को वश में कर रहे हैं ।

हे दिव्यरस ! तेरा हर्ष जीवात्मा को प्राप्त हो । तू धर्म के द्वारा वायु पर सवार हो जा ।

४८४ः पवमानो अजीजनद् दिवश्चित्रं न तन्यतुम् । ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ।।

पवित्र उपासक प्रकाश के विचित्र से विस्तीर्ण ईश्वरीय तेज को अपनी आत्मा में प्रकट करता है।

पवित्रता के पुतले ने, द्युलोक की बिजली के समान विचित्र महान्, सार्वजनिक ज्योति को जन्म दिया है।

४८५. परि स्वानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा । मधो अर्षन्ति धारया ।।

यत्न से प्राप्त कियेगये, ऐश्वर्यकारी ज्ञानविज्ञान आनन्द के लिये बहुत बड़ी वेदवाणी से, सारभूत पदार्थ की धारणाशक्ति से सर्वत्र व्याप्त हो जाते हैं।

प्रेमरस से सरसाने वाले भक्त उपासक मस्ती के लिये महती वेदवाणी द्वारा गीत गा-गाकर मधुधारा के साथ चारों ओर घूमते हैं।

४८६. परि प्रासिष्यदत् कविः सिन्धोरूर्मावधि श्रितः । कारुं बिभ्रत् पुरुस्पृहम् ।।

समुद्र की लहरों पर सवार हुआ, क्रान्तदर्शी, उपासक विद्वान् लोकप्रेम की तन्त्री को उठाये हुए, प्रजा के प्रेमपात्र महान् शिल्पी परमेश्वर को हृदय में धारण किये हुए सब ओर बड़े प्रेम से बह जाता है।

षष्ठ प्रपाठक

(४८७ मन्त्र से ५८५ मन्त्र तक)

पहली दशति तीसरा खण्ड

देवता—पवमान सोम । छन्द—गायत्री । स्वर—षड्ज । ऋषि—१, ८, ९ अमहीयु । २ बृहन्मति आङ्गिरस । ३ असित काश्यप जमदग्नि । ४ प्रभूवसु । ५ मेध्यातिथि । ६, ७ निध्रुवि काश्यप । १० उचथ्य ।

४८७. उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् । इन्दुं देवा अयासिषुः ।।

विद्वान्-उपासक तथा उनकी इन्द्रियाँ उत्तम गुणों से सम्पन्न, प्रजाओं में व्यापक, गतिमान्, वाणियों से सुशोभित, सब दुःखों के भङ्ग करनेवाले तथा हर्षित करनेवाले परमात्मा के समीप जाया करती हैं।

दिव्य स्वभाव वाले मनुष्यों ने जल की तरह लचीले, रसीले, विनयभाव को निकट जा-जाकर प्राप्त कर ही लिया।

४८८. पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः । शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ।।

तत्त्वदर्शी उपासक ने पवित्रता का प्रचार करते-करते सभी संघर्षों—सब प्रकार के संग्रामों पर धावा बोल दिया । प्रजायें कर्म तथा ज्ञान द्वारा इस मेधावी उपासक का अभिनन्दन किया करती हैं।

प्रजाओं का द्रष्टा परमात्मा सब संग्रामों को पवित्र करताहुआ सब विघ्नों को पार कर जाता है । जिस मेधावी को अपनी स्तुतियों से उपासक जन अलंकृत करते हैं।

४८९. आविशन्कलशं सुतो विश्वा अर्षन्नभिश्रियः । इन्दुरिन्द्राय धीयते ।।

शान्ति-सम्पन्न योगरूपी ऐश्वर्यवाला पुरुष, सोलह कलाओं से बने इस मस्तक में व्याप्त होता हुआ, समस्त योगसम्पत्तियों को सब ओर फैलाता हुआ, परमेश्वर में अपने को प्रविष्ट जानता हुआ उसके लिये उपस्थित होता है ।

अव्यक्त ध्वनि से गुनगुना रहे हृदयरूपी कलश में प्रविष्ट हो, प्रेमभाव से भरकर, पैदा हुआ, संसार भर को सरसा रहा संजीवनरस, सब विभूतियों को सब ओर से समेटता हुआ, इन्द्रियों के राजा उपासक जीवात्मा के लिये भेंट किया जा रहा है।

४९०. असर्जि रथ्यो यथा पवित्रे चम्वोः सुतः । कार्ष्मन् वाजी न्यक्रमीत् ।।

जैसे कटोरों से पैदा हुआ सोमरस चलनी में उतरता है उसी प्रकार आकाश तथा पृथ्वी के मध्य प्रकट हुआ वीर्यवान् ज्ञानी उपासक आध्यात्मिक संग्राम में उतरा है। वह शरीररूपी रथ को ठीक प्रकार से चलाने योग्य योद्धा हो गया है।

जैसे रथयोग्य घोड़ा आकर्षण करता हुआ, प्रेरित होकर दोनों सेनाओं के बीच पैंतरे पर वेग से दौड़ता है, उसी प्रकार यह जीवात्मा प्राण और अपान के बीच प्रेरित होकर, पवित्र प्राणवायु में सब इन्द्रियों का आकर्षण करता हुआ रथरूपी शरीर के योग्य तथा वेगवान् होकर नाना स्थानों में गमन करता है ।

४९१. प्र यद्गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः । घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ।।

अन्धकार की काली केंचुली को उतार फेंकते हुए प्रकाश के चलते फिरते पुतले गतिशील उपासक विद्वान् वैसा ही पराक्रम करते हैं जैसा कि निरन्तर भ्रमण करने वाली किरणें सब ओर अन्धकार को दूर कर प्रकाश को फैलाती हैं ।

४९२. अपघ्नन्पवस मृधः क्रतुवित् सोम मत्सरः । नुदस्वा देवयुं जनम् ।।

हे परमेश्वर ! बुद्धि प्राप्त कराने वाले और हर्षदायक आप शत्रुओं को नष्ट करते हुए गति कर रहे हैं और पवित्र कर रहे हैं । आप विद्वानों की कामना न करनेवाले पुरुष को दूर कीजिये ।

हे मेरे सूखे हृदय के संजीवन ! आपकी पहुँच मेरे प्रत्येक सङ्कल्प, प्रत्येक क्रिया, प्रत्येक चेष्टा में है । आप हर्ष के सरोवर हैं तथा पापों का विनाश कर पवित्रता का प्रवाह लाते हैं । पाप की ओर प्रवृत्त मुझ उपासक को पाप-पथ से हटाकर आप सन्मार्ग में प्रेरित कीजिये ।

४९३. अया पवस्व धारया यथा सूर्यमरोचयः । हिन्वानो मानुषीरपः ॥

हे संजीवनरस ! जिस धारा से तूने सूर्य को रुचिर बनाया है, उसी से मानव-प्रजाओं को प्रेरित करते हुए पवित्रता का प्रवाह बहा दे।

हे परमेश्वर ! मनुष्यों के कर्मों को प्रेरित करते हुए आप जिस तेजरूपी धारा से सूर्य को प्रकाशित करते हैं, उसी धारा से मुझे प्राप्त हों।

४९४. स पवस्व य आविथेन्द्रं वृत्राय हन्तवे । वव्रिवांसं महीरपः ॥

हे सोम परमेश्वर ! जो आप महान् शुत्रकर्मों को रोकनेवाले, पाप को विनष्ट करने के लिये जीवात्मा की रक्षा करते हैं, उसको तृप्त करते हैं, वह आप हमें प्राप्त हों।

४९५. अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा । अवाहन्नवतीर्नव ॥

हे संजीवन सुधारक परमात्मन् ! आपके आनन्दरसों में बहकर, जिस भक्तिरूपी नशे के द्वारा उपासक जीवात्मा ने नौ इन्द्रियों (दो आँख दो कान, दो नासिका द्वार, एक मुख, दो मलमूत्र के मार्ग – इन नौ द्वारों) को अपने अधीन किया है, उसी कान्ति से आप सब ओर प्रवाहित होकर पवित्र कीजिये।

हे परमात्मन् ! आप इस प्रकार शरीर में व्याप्त रहिये कि जिससे आपके आनन्द में मग्न रहते हुए इन्द्रियों का स्वामी जीवात्मा मनुष्यशरीर में ९९ वर्ष अच्छी प्रकार व्यतीत कर सौवें वर्ष शरीर-त्याग करे।

हे परमेश्वर ! आप इस व्याप्ति से अमृत वर्षाइये कि जिससे उपासक आपके आनन्दों में मग्न होकर ८१० पापों को सब ओर से हनन करसके।

नवतीर्नव' की व्याख्या १७९वें मन्त्र में भी की गई है।

४९६. परि द्यु क्षं सनद्रयिं भरद्वाजं नो अन्धसा । स्वानो अर्ष पवित्र आ ॥

हे सोम ! अपने प्राणप्रद-रस से हमें बल प्रदान करते हुए, दिव्य सम्पत्ति चारों ओर से प्राप्त कराते हुए हमारे हृदय में गाते हुए आओ।

हे परमेश्वर ! प्रकाशयुक्त ऐश्वर्य को प्राप्त कराते हुए आप हमें, जीवन को धारण की सामर्थ्य से, ज्ञान तथा अन्न को प्राप्त कराइये। हमारे पवित्र हृदय में स्वयं व्यापक विराजमान हों।

–०–

दूसरी दशति चौथा खण्ड

देवता—पवमान सोम । छन्द—गायत्री । स्वर—षड्ज । ऋषि—१ मेधातिथि, मेध्यातिथि । २, ७ भृगु । ३ उचथ्य । ४ अवत्सार । ५ निध्रुवि । ६, १० असित, भृगु । ८, ९ काश्यप । ११ कवि भार्गव । १२ जमदग्नि । १३ अयास्य अङ्गिरस । १४ अमहीयु ।

४९७. अचिक्रदद् वृषा हरिर्महान् मित्रो न दर्शतः । सं सूर्येण दिद्यु ते ॥

सुखवर्षक, धर्ममेघ के रूप में वर्तमान, गति देने वाला, महान् चितचोर परमेश्वर मित्र तथा सूर्य के समान दर्शनीय होकर, सूर्य के साथ-साथ चमक रहा है, अपने प्रेरक बल से प्रकाशित हो रहा है।

४९८. आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥

हे परमेश्वर ! आपने शान्तिजनक, कल्याणकारी, सुख प्राप्त कराने वाले, पालक, भक्तों से अभिलषित, अग्नि के समान कार्यसाधक बल को आज उपासना के समय, इसप्रकार हम उपासक सब प्रकार से मांगते और ग्रहण करते हैं।

४९९. अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ नय । पुनाहीन्द्राय पातवे ॥

अहिंसा आदि व्रतों के इच्छुक मेरे मन ! तू मेघों, पर्वतों तथा ऋषियों की वाणियों और गुरुओं से उत्पन्न हुए शान्तिपूर्ण ज्ञान तथा भक्ति को पवित्र हृदय में ला और इन्द्रियों के स्वामी, ऐश्वर्यशाली उपासक जीवात्मा के पान करने के लिये उसे और पवित्र कर।

५००. तरत् स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः तरत् स मन्दी धावति ॥

ईश्वर की आराधना से उत्पन्न हुए प्राणप्रद भक्तिरस की धारा से वह स्तुति करनेवाला, मस्त हुआ मस्ताना, उपासक, जीवात्मा देह-बन्धन को तर जाता है, ऊर्ध्वगति को प्राप्त होता है और अज्ञान को पार करके अत्यन्त आनन्दमय होकर ब्रह्म की ओर दौड़कर मोक्ष के आनन्द में मग्न हो जाता है।

५०१. आ पवस्व सहस्रिणं रयिं सोम सुवीर्य्यम् । अस्मे श्रवांसि धारय ॥

हे मेरे संजीवन सुधा के स्रोत परमात्मन् ! आप हजारों में एक, उत्तम सामर्थ्य से युक्त, ऐश्वर्य को प्राप्त कराइये और हमें ज्ञान, दिव्यसन्देश, बल आदि धारण कराइये।

५०२. अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः । रुचे जनन्त सूर्यम् ॥

प्राचीन उपासनामार्ग पर चलनेवाले, और जीवन की कामना करनेवाले पुरुष अत्यन्त स्तुतियोग्य उत्तमपद अथवा ज्ञान का अनुसरण किया करते हैं। वे अपने प्रकाश के लिये सूर्य के समान प्रेरक परमेश्वर का आत्मा में साक्षात्कार किया करते हैं।

५०३. अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत् । सीदन् योनौ वनेष्वा ॥

ऐ मेरे आध्यात्मिक जीवन-जल, परमात्मन् ! मेरे काठ के कलशों के समान सूखे इन शरीरों में गुनगुनाते हुए अव्यक्त ध्वनि करते हुए, अपनी अत्यन्त चमकीली छटा दिखलाते हुए, ऊजड़ में बस्ती बसाते हुए, सेवन करने योग्य उपासना यज्ञों में तथा हृदयों में अच्छे प्रकार आकर प्रकट होइये।

५०४. वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः वृषा धर्माणि दध्रिषे ॥

हे मेरे जीवनतत्त्व, हे मेरी जान की जान, परमेश्वर ! आप चमक रहे हैं, धर्ममेघ हैं, सुख तथा अमृत की वर्षा करने वाले हैं, दीप्ति से युक्त हैं। हे दिव्यगुणयुक्त प्रभो ! आप बरसने का व्रत लिये

हुए धर्ममेघ हैं। शक्तिशाली श्रेष्ठ कर्मों वाले आप सब को धारण करनेवाले नियमों को बनाया करते हैं। आप धर्ममेघ होकर धर्म के तत्त्वों की रक्षा करते हैं।

५०५. इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः । इन्दो रुचाभि गा इहि ॥

हे मेरे मनरूपी दूज के चाँद ! तू बुद्धिमानों के द्वारा मँजता हुआ, धारा के रूप में सान के लिये प्रगति कर और प्रकाश के साथ-साथ कलाओं की वद्धि में प्रवृत्त हो।

हे परमेश्वर ! मननशील उपासकों के द्वारा विवेचना किये गये आप आनन्द की धारा के साथ योग के धारणारूप अङ्ग के द्वारा, अभीष्ट आत्मिक तृप्ति के लिये, प्रकट होइये और अपने ज्ञान के प्रकाश से स्तुति करने वाले उपासकों को प्राप्त होइये।

५०६. मन्द्रया सोम धारया वृषा पवस्व देवयुः । अव्या वारेभिरस्मयुः ॥

हे अमृतस्वरूप, प्रेरक तथा सुखवर्षक परमात्मन् ! विद्वानों के चाहनेवाले तथा हितकर आप आनन्ददायक अमृतमय धारा के साथ, योग की धारणा नामक क्रिया द्वारा, प्रकट होइये। हमारे हितकारी आप विघ्न-निवारक बलों तथा वरण करने योग्य गुणो से हमारी रक्षा कीजिये तथा चिति-शक्ति के आवरण करनेवाले कोशों में से भी बादल बनकर नशीलो धारा के रूप में प्रवाहित होइये।

५०७. अया सोम सुकृत्यया महान्त्सन्नभ्यवर्धथाः । मन्दान इद् वृषायसे ॥

हे आध्यात्मिक जीवन से सम्पन्न उपासक ! उपासना-रूपी इस सुन्दर कृत्य से तू महान् होकर इस प्रकार बढ़ा है कि मस्त हो-होकर ही बरसता है।

हे परमात्मन् ! आप महान् होकर इस उत्तम धारा से अमृत की वर्षा करके उपासकों की वृद्धि करते हैं। आनन्दरूप होते हुए ही आप मेघ के समान सुख की वर्षा करते हैं।

५०८. अयं विचर्षणिर्हितः पवमानः स चेतति । हिन्वान आप्यं बृहत् ॥

यह परमात्मा सबको विशेष रूप से देखने वाला, हितकारक तथा पवित्र करनेवाला है। वह बड़े कर्मफल को तथा प्रजाओं के हितकारक ज्ञान और अन्न को प्रेरित करता हुआ जाना जाता है और बुद्धि को बढ़ाता है।

यह दूरदर्शी महान् उपासक बन्धुत्व की लहर को प्रेरित करता हुआ चाहे ठहरा ही हुआ है किन्तु भक्तिरस में बहता हुआ-सा प्रतीत होता है।

५०९. प्र न इन्दो महे तु न ऊर्मिं न बिभ्रदर्षसि । अभि देवाँ अयास्यः ॥

हे रसभरी ज्योति ! मुझ उपासक की आत्मा ! तुझे देवताओं की ओर बिना आयास के—विना श्रान्ति के—जाना है और अनथक परिश्रम कर प्रकाश के पुञ्जों की पदवी को पाना है। तू इस महान् ऐश्वर्य के लिये लहर के समान भावना को उठाये-उठाये गति कर रही है।

हे ऐश्वर्यशाली परमात्मन् ! आप हमें विशाल ज्ञान प्राप्त कराने के लिये तरङ्ग के समान हर्ष

उत्पन्न करते हुए आत्मा में प्रकट होते हैं। आप विद्वान्-योगियों तथा उपासकों के द्वारा प्राप्त करने योग्य हैं।

५१०. अपघ्नन् पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः। गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥

इन्द्र-परमेश्वर के सुसंस्कृत घर=मोक्षपद को प्राप्त होता हुआ, सन्त-योगी-उपासक हिंसावृत्तियों तथा काम-क्रोध आदि शत्रुओं को हटाता हुआ पवित्रता के प्रवाह में बहता है।

—o—

तीसरी दशति पांचवाँ खण्ड

देवता—पवमान। छन्द—बृहती। स्वर—मध्यम। ऋषि—भरद्वाज, काश्यप, गोतम, अत्रि, विश्वामित्र, जमदग्नि और वसिष्ठ—ये सात ऋषि।

५११. पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि।
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः ॥

हे अमृतस्वरूप परमात्मन्! आप अमृत की धारा से पवित्र करके जीवात्माओं और कर्मों में व्यापक होकर हमें प्राप्त हो रहे हैं। रमणीय पदार्थों के पोषक, ज्योतिःस्वरूप, रस के सञ्चार करने-वाले आप जीवन, ज्ञान तथा सत्य वेद के मूलकारण अपने निज स्वरूप में व्यापक होकर स्थित हैं।

हे सौम्य उपासक! तू भक्ति की धारा से अपने को पवित्र करता हुआ, कर्मों को धारण करता हुआ विराजता है। रत्नि को धारण किये हुए वस्तुसत्ता के मूल पर बैठा हुआ है। तू अब आनन्द का हितकारी, रमणीय तथा दिव्य स्रोत है।

५१२. परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः।
दधन्वान् यो नर्यो अप्स्वा३न्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥

मेरे जीवन को—उस प्रकट हुए अमृतपुत्र को अब चारों ओर से सींचो जो उत्तम तथा ग्रहण करने योग्य है। जिस मनुष्य ने तरंगों के बीच में धारणा की डुबकी लगाई, उसने योगाभ्यासों द्वारा सोमरस खींच लिया।

हे उपासको! जो परमात्मा उत्तम, स्वीकार करने योग्य तथा तृप्ति का साधन है, इस हृदय में प्रकट हुए उसको सब प्रकार से भक्तिरस से सींचो। वह मनुष्यों का हितकारी सबको धारण कर प्रजाओं म व्याप्त रहता है। उपासक योगी उस शान्त-प्रेरक परमात्मा को प्राणायाम आदि योग के साधनों से प्रकट करता है।

५१३. आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया।
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दध्रिषे ॥

हे परमात्मन्! योग-साधनों से प्रत्यक्ष किये हुए, प्रकृति के आवरणों को पार करते हुए आप द्यौ और पृथिवी में तथा मस्तक के दोनों भागों में प्रवेश कर बाधाओं को पार करते हुए मन, हृदय

तथा आत्मा में उसी प्रकार स्थिति धारण करते हैं, जिस प्रकार वीरपुरुष परकोटे को लाँघता हुआ नगर में प्रवेश करता है।

हे मुझ उपासक के आत्मा ! तू प्रकृति के स्थिर रोमाञ्च को आवरण बनाकर बादलों की लय मिला रहा है। चित-चोर ने घरवाले के समान पृथिवी और आकाश की नगरी में भावनासहित प्रवेश कर ऊजड़ में बस्ती बसा रखी है।

५१४. प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा।
अंशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥

हे उपासक के सौम्य जीवन ! देवताओं की तृप्ति के लिये तू व्यापक परमात्मा की भक्ति के रस से इस प्रकार बढ़ता है कि जैसे नदी पानी से बढ़ जाती है। तू जागते हुए मस्ताने के समान मिठास टपकाने वाले कोष की ओर अच्छे प्रकार से बढ़ रहा है।

हे परमात्मन् ! आप अमृतमय आनन्द से उसी प्रकार पूर्ण है जैसे समुद्र जल से तलातल भरा रहता है। हर्षकारक और चेतन आप विद्वान्-उपासकों की तृप्ति के लिये आनन्द के कोष हृदयस्थान में प्रत्यक्ष हों।

५१५. सोम उ ष्वाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम्।
अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥

वह परमात्मा उपासकों के द्वारा चेतनाओं के मार्गों से अनुभव किया जाता हुआ धारणा के द्वारा व्यापक चेतना की आनन्दजनक धारा के साथ हृदय में प्रकट होता है।

वह प्रियतम चेतना तथा भावना की चोटियों पर चढ़े हुए यजमानों के साथ गाता हुआ हरी-भरी घास पर सवार होकर इस प्रकार जा रहा है, जैसे घोड़ों पर राजा जा रहा हो। वह मस्तानी धार पर सवार हुआ जा रहा है।

५१६. तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे।
पुरूणि बभ्रो निचरन्ति मामव परिधीं रति ताँ इहि ॥

हे विश्व को भरण करनेवाले परमेश्वर ! हे मेरे सौम्य जीवन ! मैं आपकी मित्रता में प्रतिदिन आनन्द प्राप्त करता हूँ। अनेक यातनायें तथा बुरी प्रवृत्तियाँ मुझे सताया करती हैं। उन बन्धनों को दूर करके मुझे प्राप्त होइये। मुझे मोक्ष प्रदान कर मेरा उद्धार कीजिये।

५१७. मृज्यमानः सुहस्त्य समुद्रे वाचमिन्वसि।
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥

हे पवित्र करनेवाले सुन्दर प्रकाशयुक्त प्रभो! अन्वेषण किये जाते हुए आप आनन्दरस के भण्डार हृदय में वेदवाणी को प्रेरित करते हैं और स्पृहणीय सुवर्ण आदि सुन्दर लोकप्रिय ऐश्वर्य को सब ओर प्राप्त कराते हैं।

५१८. अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।
समुद्रस्याधि विष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः ॥

शान्तस्वभाव, चलते-फिरते आध्यात्मिक जीवन के स्रोत, दीर्घजीवी, हर्ष से पूर्ण, मस्ती के भरपूर मन को वश में रखनेवाले योगी-उपासक आनन्दसागर में खड़े होकर अपने हृदय के भीतर आनन्दकारी रस को, हर्षित करनेवाली मस्ती को चारों ओर से प्राप्त करते हैं ।

५१९. पुनानः सोम जागृविरव्या वारैः परि प्रियः ।
त्वं विप्रो अभवोऽङ्गिरस्तम मध्वा यज्ञं मिमिक्षणः ॥

हे सबसे अधिक प्रकाशमान सोम परमात्मन् ! चेतना तथा बुद्धि की वृत्तियों द्वारा पवित्र करते हुए सबके प्यारे, मेधावी सदा जागरणशील आप हमारे हृदय में प्रकट हों और हमारे जीवन-यज्ञ को आनन्दरस से सींचिये । आप अपने वरणीय गुणों से हमारी रक्षा कीजिये ।

५२०. इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः ।
सहस्रधारो अत्यव्यमर्षति तमी मृजन्त्यायवः ॥

इन्द्रियों के राजा ऐश्वर्यशाली जीवात्मा के लिए आनन्द का प्रवाह बह रहा है, प्राप्त हो रहा है। प्राणों के स्वामी योगी-उपासक के लिये भक्ति का रस तैयार किया हुआ है । उसने परमात्मा का साक्षात्कार कर लिया है । वह हजारों धारणाशक्तियोंवाला चेतनामय मनरूपी साधन को अतिक्रमण करके प्रकट होता है । उसको आयुसम्पन्न साधक और भी अधिक अन्वेषण करके आनन्द-भोग करते हैं ।

५२१. पवस्व वाजसानमोऽभिविश्वानि वार्या ।
त्वं समुद्रः प्रथमे विधर्मन् देवेभ्यः सोम मत्सरः ॥

हे भक्तिमय जीवन ! तू समुद्र है । धर्म की पहली अवस्था में तू मस्ती का सरोवर है । अत्यन्त ज्ञान तथा बल देनेवाला होकर तू ग्रहण करने योग्य सभी सम्पत्तियों को पवित्र कर ।

हे परमात्मन् ! ज्ञान तथा बल से सम्पन्न आप सब बाधाओं को हटाकर प्रकाशित होइये और हमें पवित्र कीजिये । समुद्र के समान महान् आप विशेष रीति से धारक विशाल हृदय में प्रकट होकर विद्वान् उपासकों के लिये आनन्द प्राप्त कराइये ।

५२२. पवमाना असृक्षत पवित्रमति धारया ।
मरुत्वन्तो मत्सरा इन्द्रिया हया मेधामभि प्रयांसि च ॥

पवित्र होते हुए, प्राणशक्ति से युक्त, हर्ष के सरोवर, आनन्द में मग्न उपासकों के इन्द्रियरूपी घोड़े, ज्ञान तथा भक्ति की धारा से और धारणा आदि योग के अङ्गों से पवित्र परमात्मा को प्राप्त करके पवित्र ज्ञान, अन्न तथा बल को सब ओर से प्राप्त करते हैं ।

—०—

चौथी दशति छठा खण्ड

देवता—पवमान। छन्द—त्रिष्टुप्। स्वर—धैवत। ऋषि— १, ९ उशना काव्य। २ वृषगण वासिष्ठ। ३, ७ पराशर। ४, ६ वसिष्ठ। ५, १० प्रतर्दन। ८ प्रस्कण्व।

५२३. प्र तु द्रव परि कोशं निषीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष।
अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्ही रशनाभिर्नयन्ति॥

हे उपासक की जीवात्मन् ! तू आगे तो दौड़ ही, बढ़ ही किन्तु इसप्रकार कि जैसे कोश के चारों ओर बैठा है। पवित्रता लाता हुआ नेताओं के साथ ज्ञान, बल तथा अन्न की ओर प्रगति कर। अन्न, बल तथा ज्ञान से सम्पन्न तुझ को माँज-माँजकर (शुद्ध करके) धर्म के पाशों से यज्ञस्थली की ओर उसी प्रकार ले जाते हैं, जैसे घोड़े को रस्सियों से बाँधकर युद्धस्थल की ओर।

हे परमात्मन् ! आप उपासक पर कृपा कीजिये। उसके हृदय तथा मूर्धास्थान को व्याप्त होकर विराजिये। मनुष्यों द्वारा स्तुत आप ज्ञान प्रदान कीजिये। सर्वज्ञ आप को अन्वेषण करते हुए, उपासक-जन योग-साधनाओं से हृदय में उसी प्रकार स्थापित करते हैं, जैसे घोड़े को रशनाओं (लगामों) के द्वारा युद्धभूमि में स्थिर रक्खा जाता है।

५२४. प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति।
महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन्॥

देवों का देव परमात्मा विद्वान् मेधावी के समान, मानो कान्ति का अवतार होकर उपासकों को चाहता हुआसा, वेद-काव्य का उपदेश देता हुआ, समस्त देवों की तथा अन्य पदार्थों की उत्पत्ति को विशेष रीति से पूर्णतया वर्णन करता है। महान् व्रतोंवाला, विशाल कर्म तथा प्रज्ञा से युक्त, पवित्र मनुष्यों का बन्धु, अपने शुद्ध तेज से उपासक को अपने साथ बाँधनेवाला, स्वयं पवित्र तथा दूसरों को पवित्र करनेवाला, श्रेष्ठ वेदवाणी का बोलनेवाला, श्रेष्ठ कलरूपी दिनवाला परमात्मा वेदपदों को हृदय में प्रकट करता हुआ ऋषियों की आत्मा में साक्षात् होता है तथा ज्ञान के रहस्यों को प्राप्त कराता है।

५२५. तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम्।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः॥

ज्ञान का वहन करनेवाला परमात्मा ऋग्, यजुः, साम—इन तीन प्रकार के मन्त्रों के रूप में सत्य को धारण करनेवाली, मन को प्रेरणा देने वाली वेदवाणी को तथा विद्या, मति और बुद्धि को भी संसार के लिये प्रचारित करता है। वेदवाणी के पालक तथा स्वामी परमात्मा से पूछती हुई-सी वेद-वाणियाँ वेदज्ञान प्राप्त करनेवाले आदि-ऋषियों तथा परवर्ती विद्वानों के पास पहुंचती हैं और वेद में निहित ज्ञान भी उन सौम्य विद्वानों को प्राप्त होता है।

ज्ञान की अग्नि से प्रदीप्त उपासक विद्वान् अ, उ, म्—इन तीन वाणियों को जगाता है। वह ऋग् यजुः, साम—तीन प्रकार के मन्त्रों का तथा विद्या, मति और बुद्धि का संसार के लिये उपदेश करता

है । वह महत्तत्त्व, बुद्धि =अहंकार, तथा मन आदि ज्ञानेन्द्रियों को प्रेरित करता है। ऋतरूप आत्मा को धारण करने वाली मन की प्रेरणा ब्रह्म के अनकूल होती है। उस उपासक जीवात्मा के कर्म ब्रह्म को अभिमत होते हैं। उसकी इन्द्रियाँ भी अपने पति उसी उपासक से पूछ-पूछकर काम करती हैं और सोमरूप आत्मा की कामना से उसी में लीन हो जाती हैं, वेदवाणियाँ भी उस अपने पालक विद्वान् उपासक के पास पहुँचती हैं और सौम्यगुणयुक्त उस उपासक को मननशक्तियाँ भी प्राप्त हो जाती हैं।

५२६. अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम् ।
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन् मितेव सद्म पशुमन्ति होता ॥

इस परमात्मा की स्वर्गीय प्रेरणा से पवित्रता का लाभ प्राप्त कर विद्वान्-उपासक अन्य विद्वानों के साथ अपनी ज्ञानमय भक्ति के रस को मिला देता है। इस ईश्वरीय-ज्ञान की प्रेरणा करनेवाली सुनहरी कान्ति से पवित्र हुए उपासक का दिव्य जीवात्मा इन्द्रियों के साथ भी आनन्दरस का मेल करा देता है। ज्ञानपूर्ण भक्ति उस उपासक के अनेक वृत्तियों से पूर्ण हृदय में, अनाहत ध्वनि करती हुई वैसे ही प्राप्त होती है और वह साधक ज्ञानी होकर, इन्द्रियों से युक्त इस शरीर को वैसे ही वश में कर लेता है, जैसे कोई पशुपालक पशुओं से भरे घर में प्रविष्ट होता तथा पशुओं को वश में रखता है।

५२७. सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥

बुद्धियों को जन्म देनेवाला, द्यु, पृथिवी, अग्नि, सूर्य, विद्युत् और यज्ञ का उत्पादक, शरीर में तेज, वाणी, आँख, प्राण, श्रोत्र, हृदय आदि को पैदा करने वाला वह प्रेरक तथा शान्त परमात्मा सब जगह गति कर रहा है तथा सब को पवित्र करता है।

५२८. अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामङ्गोषिणमवावशन्त वाणीः ।
वना वसानो वरुणो न सिन्धुर्वि रत्नधा दयते वार्याणि ॥

वेदवाणियाँ तथा उपासक की वाणियाँ, मन, वाणी, शरीर—तीनों मे संपृक्त, पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यु—तीनों लोकों में व्यापक; सुखवर्षक; आयु तथा अन्न के धारण करने वाले; गतिशील इन्द्रियों को प्राणों के साथ धारण करानेवाले; प्रत्येक अङ्ग में निवास करनेवाले; स्तुति के योग्य परमात्मा को चाहती हुई पुकारा करती हैं। सब देहों में वास करता हुआ, स्वीकार करने योग्य, विघ्ननिवारक तथा रमणीय पदार्थों को धारण करनेवाला वह परमात्मा सभी श्रेष्ठ वस्तुओं को उसी प्रकार प्रदान करता है, जैसे जल से भरा तथा रत्नधारक समुद्र श्रेष्ठ रत्नों को देता है।

५२९. अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मञ्जनयन् प्रजा भुवनस्य गोपाः ।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत् सोमो वावृधे स्वानो अद्रिः ॥

आदि सृष्टि के समय सब भुवनों का रक्षक परमात्मा प्रजाओं को उत्पन्न करतेहुए समुद्र के समान उमड़ा था। चेतना की पवित्र चोटी पर वह महान् रस-रूप करुणा-मेघ बरस-बरसकर गा-गाकर विस्तार को प्राप्त हुआ।

प्रथम उत्पन्न बड़े आकाश में सब प्रजाओं को उत्पन्न करता हुआ, नदियों के आश्रय समुद्र के समान सब का आश्रय परमात्मा सब में व्यापक है।

पर्वत के एकान्त, पवित्र स्थान में ध्यान किया जाता हुआ, पवित्र आत्मा में प्रकट हुआ, सुख-वर्षक परमात्मा चेतना तथा उपासना के शिखर पर प्रत्यक्ष किया जाता है।

५३०. कनिक्रन्ति हरिरा सृज्यमानः सीदन् वनस्य जठरे पुनानः।
नृभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गामतो मतिं जनयत स्वधाभिः॥

सब ओर से प्रकट होताहुआ स्वयं पवित्र तथा पवित्र करनेवाला, सर्वव्यापक परमात्मा इस शरीर तथा आत्मा के मध्य स्थित होकर, आनन्द की तरङ्गों के पेट में बैठा हुआ बोलता है। मनुष्यों द्वारा संयम (धारणा, ध्यान और समाधि) का विषय बनकर वाणी, इन्द्रियों तथा बुद्धि को शुद्ध करता है। इसलिए हे मनुष्यो! इन साधनों से, अपनी धारणाशक्तियों से आत्मा को धारण करने-वाली चिति-शक्ति के द्वारा अच्छी बुद्धि उत्पन्न करो तथा परमात्मा का मनन करो।

५३१. एष स्य ते मधुमाँ इन्द्र सोमो वृषा वृष्णः परि पवित्रे अक्षाः।
सहस्रदाः शतदा भूरिदावा शश्वत्तमं बर्हिरा वाज्यस्थात्॥

हे इन्द्रियों के स्वामी, ऐश्वर्यशाली जीवात्मा! यह वह मधुरप्रेमयुक्त, शान्त तथा सबका प्रेरक परमात्मा तुझ भक्ति की वर्षा करने वाले के पवित्र हृदय में, पवित्र त्रिकुटी स्थल में चारों ओर से स्रवित हो रहा है। सैकड़ों, हजारों, अनन्त सुखों का देनेवाला तथा सर्वज्ञ वह परमात्मा नित्य जीवात्मरूपी आसन में स्थित होता है।

५३२. पवस्व सोम मधुमाँ ऋतावापो वसानो अधि सानो अव्ये।
अव द्रोणानि घृतवन्ति रोह मदिन्तमो मत्सरः इन्द्रपानः॥

हे मेरी सुखी आत्मा के संजीवन-रस, परमात्मन्! आप मधुर, यज्ञमय तथा सत्यज्ञान से युक्त हैं। आप हृदय अथवा मस्तिष्क में, चेतना अथवा प्राण के बने चित्त में भी, नाना ज्ञान-वृत्तियों को आच्छादित करते हुए, तरंगों के वस्त्र पहने चेतना के शिखर से बहिये और हमें पवित्र कीजिये। आप आनन्द और मस्ती का अत्यन्त नशीला स्रोत बनकर, इन्द्रियों के स्वामी ऐश्वर्यशाली उपासक जीवात्माओं के द्वारा पान करनेयोग्य होकर, अनेक दीप्तियुक्त मस्तकों तथा हृदयों में उतरिये।

—०—

पांचवीं दशति सातवाँ खण्ड

आगे की तीन दशतियों में वीररस का उत्कृष्ट वर्णन है।

छन्द—त्रिष्टुप् । स्वर—धैवत । ऋषि—१ प्रतर्दन । २, १० पराशर । ३ इन्द्रप्रमति । ४ वसिष्ठ । ५ मृडीक । ६ नोधा । ७ कण्व । ८ मन्यु । ९ कुत्स । ११ कश्यप । १२ प्रस्कण्व ।

५३३. प्र सेनानीः शूरो अग्ने रथानां गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना ।
भद्रान् कृण्वन्निन्द्रहवान्त्सखिभ्य आ सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते ॥

इन्द्रियों की सेना को प्रेरित करनेवाला, शूर जीवात्मा शरीरों के आगे पथ-प्रदर्शक के समान इन्द्रियों की वृद्धि चाहता हुआ आगे-आगे चलता है। इसकी सेना (इन्द्रियाँ) प्रसन्न होती हैं। वह भक्त सौम्य-उपासक अपने मित्रों (इन्द्रियों) के लिये परमेश्वर के आह्वानों को कल्याणकारी करता हुआ अतिचञ्चल, आच्छादक आवरणों को हटा लेता है।

५३४. प्र ते धारा मधुमतीरसृग्रन् वारं यत्पूतो अत्येष्यव्यम् ।
पवमान पवसे धाम गोनां जनयन्त्सूर्यमपिन्वो अर्कैः ॥

हे उपासक ! तेरी उस समय मधुर ब्रह्मज्ञान की धाराएँ उत्पन्न होती हैं जब तू पवित्र होकर भावनापूर्ण रोमाञ्च ला रहा होता है। हे पवित्र भक्त ! तथा पवित्रता लाने वाले भक्तिपूर्ण ज्ञान ! तू इन्द्रियों तथा वाणियों के स्थान शरीर को और सम्पूर्ण पृथिवी-माता को पवित्र कर रहा है और प्रकट होकर अपने प्रकाश से सूर्य का अनुकरण करता है।

हे परमात्मन् ! आप भक्ति की मधुर धाराओं को उत्पन्न करते, चेतनाशक्ति के आवरण करने वाले अन्धकार को हटाते, त्रिपुटी में प्रकट होते, शरीर को पवित्र करते और सूर्य को उत्पन्न कर प्रकाश से भरते हैं।

५३५. प्र गायताभ्यर्चाम देवान्त्सोमं हिनोत महते धनाय ।
स्वादुः पवतामति वारमव्यमा सीदतु कलशं देव इन्दुः ॥

हे उपासको ! परमात्मा का गान करो, गाओ, खूब गाओ। हम विद्वानों की पूजा करें। तुम महान् ऐश्वर्य के लिये उस सोम-परमात्मा को उदबुद्ध करो, प्रेरित करो। यह दिव्य आह्लादक परमेश्वर त्रिपुटी के आवरण को पार करके, भावनापूर्ण रोमाञ्च के रूप में प्रवाहित होकर पवित्र करे और हृदय में विराजमान हो।

५३६. प्र हिन्वानो जनिता रोदस्यो रथो न वाजं सनिषन्नयासीत् ।
इन्द्रं गच्छन्नायुधा संशिशानो विश्वा वसु हस्तयोरादधानः ॥

अच्छी प्रकार प्रेरणा करता हुआ, द्यौ तथा पृथ्वी को उत्पन्न करनेवाला परमात्मा ज्ञान आदि का विभाग करता हुआ, रमणीय सूर्य अथवा यान के समान सर्वत्र गति करता है और योगसाधनों

से सम्पन्न इन्द्रियों के स्वामी भक्त-उपासक जीवात्मा में प्रकट होता हुआ और भी प्रखर होता हुआ जीवन की सब सम्पत्तियों को अपने वश में करनेवाला वह सर्वत्र व्याप्त होता है।

५१७. तक्षद्यदी मनसो वेनतो वाग् ज्येष्ठस्य धर्मं द्युक्षोरनीके ।
आदीमायन् वरमा वावशाना जुष्टं पतिं कलशे गाव इन्दुम् ॥

जब बड़े तेजस्वी, कान्तिवान्,मनस्वी-उपासक के मन की वाणी ज्येष्ठ आत्मा के तथा उसकी सेना (इन्द्रियों) के प्रकाशित स्थान में धर्म को निश्चित करती हुई प्रकट होती है, तब श्रेष्ठ, सेवनीय स्वामी तथा पालक इस ऐश्वर्यशाली जीवात्मा के पास उसकी सब इन्द्रियाँ कामना करती हुई वैसे ही आज्ञा में उपस्थित रहती हैं, जैसे गौएँ अपने स्वामी के पास आ जाती हैं और जैसे वर की कामना वाली कन्यायें प्रिय पति को प्राप्त करती हैं।

५१८. साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।
हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥

एकसमान ज्ञान तथा कर्म को सींचनेवाली, धीर उपासक की प्रेरक दस बहिनें (५ ज्ञानेन्द्रियाँ + ५ कर्मेन्द्रियाँ) और बुद्धियाँ उसको शुद्ध कर देती हैं। दुःखों को हरण करने वाला, चितचोर परमात्मा सूर्य की कन्याओं (दिशाओं) की प्रदक्षिणा करता है अर्थात् सर्वत्र व्यापक है। वह सूर्य के समान दीप्त उपासक की चित्तवृत्तियों में व्याप्त होता और शीघ्रगामी घोड़े की तरह, उपासक की आत्मा में शीघ्र प्रकट हो जाता है।

५१९. अधि यदस्मिन् वाजिनीव शुभः स्पर्धन्ते धियः सूरे न विशः ।
अपो वृणानः पवते कवीयान् व्रजं न पशुवर्धनाय मन्म ॥

जब इस उपासक की आत्मा में प्रविष्ट चित्तवृत्तियाँ तथा शुद्ध बुद्धियाँ उसी प्रकार होड़ लगाने लगती हैं, जैसे घोड़े के शरीर में शुभ गतियाँ और जैसे कि नेता के प्रति अथवा सूर्य के उदय होने पर प्रजायें कार्य-प्रवृत्त हो जाती हैं। तब उन वृत्तियों को वश में करता हुआ, शुभ कर्मों को वरण करता हुआ, क्रान्तदर्शी, कवियों के समान इन्द्रियों की शक्ति बढ़ाने के लिये मनोमय शरीर में उसी प्रकार प्रवेश करता है, जिस प्रकार पशुओं की वृद्धि के लिये गोपाल (ग्वाला) पशुओं के बाड़े में प्रवेश करता है।

५२०. इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय ।
हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातिं वरिवस्कृण्वन् वृजनस्य राजा ॥

ज्ञानसम्पन्न, बलशाली, हृदयों को हर्षित करनेवाला सोम-परमात्मा इन्द्र=जीवात्मा के आनन्द के लिये शक्ति को प्रेरित करता हुआ, इन्द्रियों की प्रवृत्ति को नीची करके उसे पवित्र करता है। शक्ति का राजा परमात्मा वर के रूप में सिद्धियाँ प्रदान करता हुआ, उपासक के सब विघ्नों को दूर करता है और अप्रिय कृपणों तथा आलसियों को चारों ओर से दबा देता है।

५४१. अया पवा पवस्वैना वसूनि मांश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व ।
ब्रध्नश्चिद्यस्य वातो न जूतिं पुरुमेधाश्चित्तकवे नरं धात् ।।

हे हृदयों को सरसानेवाले परमात्मन् ! इस पवित्र धारा से इन जीवनों को, इन प्राणों को पवित्र कीजिये और मनोहर जलपूर्ण तालाब के समान भक्तिपूर्ण हृदय में विराजिये। इन्द्रियों को बन्धन में रखनेवाला, वायु के समान जीवात्मा भी आप के संयोग की आतुरता को धारण करता है और मेधावी होकर नेता स्वरूप आपका हृदय में साक्षात्कार करता है।

५४२. महत् तत् सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान् ।
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत् सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ।।

महान् सोम-परमात्मा ने यह बड़ा भारी काम किया है कि कर्मों और बुद्धियों को अन्दर रखने वाला जीवात्मा इन्द्रियों को आवृत करके रखता है, पवित्र परमात्मा ने, इस ऐश्वर्यशाली प्रभुने सबके उत्पादक सूर्य में तथा जीवात्मा के मुख्य प्राण में ज्योति पैदा की है।

५४३. असर्जि वक्वा रथ्ये यथाजौ धिया मनोता प्रथमा मनीषा ।
दश स्वसारो अधि सानो अव्ये मृजन्ति वह्निं सदनेष्वच्छ ।।

जिस प्रकार वेगवान् यानों से विजय किये जानेवाले युद्ध में बुद्धिपूर्वक आज्ञा देनेवाला सेनापति नियुक्त किया जाता है, उसी प्रकार इस शरीर द्वारा किये जानेवाले योगाभ्यासरूपी यज्ञ में ध्यान और धारणा-द्वारा ओ३म् का जप करनेवाला जीवात्मा नियुक्त होता है। जिसके मन को ओत-प्रोत करनेवाली पहली चेष्टा चितिशक्ति है। भावना की चोटी पर चढ़ी, सरण करनेवाली, बहिनों के समान, दस प्राण-वृत्तियाँ धारण करनेवाले जीवात्मा तथा परमात्मा को अच्छे प्रकार प्राप्त करती हैं।

५४४. अपामिवेदूर्मयस्तर्तुराणाः प्र मनीषा ईरते सोममच्छ ।
नमस्यन्तीरुप च यन्ति सं चाच विशन्त्युशतीरुशन्तम् ।।

मननशील उपासक की चेष्टा में तथा ध्यान की वृत्तियाँ जलों की लहरों के समान, अतिवेगवती होकर शान्त परमात्मा की ओर बढ़ती हैं और नमस्कार करती हुई, तेजकी धारा के समान चमकती हुई, परमात्मा में लीन हो जाती हैं और उसी रूप में प्रकट होती हैं।

—०—

छठी दशति आठवाँ खण्ड

१–६, ८, ९ का अनुष्टुप् छन्द। गान्धार—स्वर। ७ का बृहती छन्द, मध्यम—स्वर। ऋषि—१ श्यावाश्व। २, ३ ययाति। ४ मनु; सांवरण। ५, ८ ऋजिश्व और अम्बरीष। ६, ७ प्रभु के दो काश्यप। ९ प्रजापति।

५४५. पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे ।
अप श्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् ।।

हे मित्रो ! सभी जीवनप्रद पदार्थ तुम्हारे सामने जीवित (साक्षात्) उपस्थित हैं । आनन्दित करनेवाली भक्ति की रक्षा के लिये तुम लोग, लम्बी जीभ निकाले हुए कुत्ते के समान लालची अपने मन को विषयों से दूर रखो ।

५४६. अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति । पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ।।

सबका पोषक, ऐश्वर्यशाली यह शान्त परमात्मा पवित्र करता हुआ सब जगह गति करता हैं और सम्पूर्ण जगत् का पालक स्वामी वह द्युलोक और पृथिवी को प्रकाशित करता है ।

५४७. सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।
पवित्रवन्तो अक्षरन् देवान् गच्छन्तु वो मदाः ।।

सम्पादित की हुई, अत्यन्त मधुर, ऐश्वर्यशाली जीवात्मा के लिये आनन्द देनेवाली पवित्र हृदय से की गई उपासनायें आत्मा में प्रकाशित हो रही हैं । उनके आनन्द विद्वानों को प्राप्त होवें ।

५४८. सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः । मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ।

उत्तम मार्ग को दिखलाने वाली, मित्रतापूर्ण, गानस्वरूप, निष्पाप, शुभ संकल्पवाली, सुख देने वाली सौम्य भक्तियाँ हमारे लिये पवित्र कारिणी हैं ।

५४९. अभी नो वाजसातमं रयिमर्ष शतस्पृहम् ।
इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभासहम् ।।

हे ऐश्वर्यशाली परमेश्वर ! आप हमें ज्ञानबल तथा अन्न को भरपूर देने वाले, सहस्रों भक्तों का पोषण करने वाले, तेज से युक्त, विरुद्ध तेजों को तिरस्कृत करने वाले दिव्य आत्मिक ज्ञान को प्रदान कीजिये ।

५५०. अभी नवन्ते अद्रुहः प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
वत्सं न पूर्व आयुनि जातं रिहन्ति मातरः ।।

द्रोह से रहित उपासक की भक्तियाँ जीवात्मा के प्रिय परमात्मा की ओर उसी प्रकार प्रेम से झुकती हैं, जैसे मातायें गौओं के समान उत्पन्न हुए बालक को उसकी प्रथम अवस्था में प्रेम से चाटती हैं ।

५५१. आ हर्यताय धृष्णवे धनुष्टन्वन्ति पौंस्यम् ।
शुक्रा वि यन्त्यसुराय निर्णिजे विपामग्रे महीयुवः ।।

महत्त्वाकांक्षी, ब्रह्मचारी उपासक प्रजाओं द्वारा कमनीय, वृत्तियों को दबाने वाले परमात्मा की प्राप्ति के लिये पुरुषार्थरूपी धनुष को तानते हैं और प्राणों की शक्ति को देनेवाले निःशेष सुधार के लिये विद्वानों के आगे विशेषरूप से जाते हैं।

५५२. परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।
यो देवान् विश्वाँ इत् परि मदेन सह गच्छति ॥

उपासक उस मनोहर कान्तिमान्, भरण करने वाली आत्मा को विघ्नों के निवारण करनेवाले अन्तःकरण से रोमाञ्च ला-लाकर पवित्र करते हैं। जो सब इन्द्रियों को आनन्दरस के साथ भर देता है।

५५३. प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः । अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥

भक्ति को सम्पादित करने वाले साधक को प्राप्त उस अनाहत वाणी को साधारण मनुष्य नहीं प्राप्त कर सकता। तपस्याओं से अज्ञान को नष्ट करनेवाले उपासको ! तुम उपासनायज्ञ की हिंसा मत करो। तुम लोभरूपी कुत्ते को मार भगाओ।

—०—

सातवीं दशति नवम खण्ड

यहाँ से तीन दशतियों में शान्तरस का प्रवाह है।

छन्द—जगती। स्वर—निषाद। ऋषि—१, २, ३, ५, ६ कवि भार्गव। ४ ऋषिगण। ७ रेणु। ८ वेन। ९ भारद्वाज वसु। १० वत्स या वत्सप्रीः। ११ अत्रि। १२ पवित्र।

५५४. अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते ।
आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वञ्चमरुहद् विचक्षणः ॥

महान् उपासक जीवात्मा अन्नरूपी प्रकृति में स्थित होकर उन प्यारे नामों तथा कामों को सब ओर से पवित्र करता है जिनका आश्रय लेकर वह बढ़ता है। सबसे बड़े प्रेरक परमात्मा के द्वारा सब प्राणियों को प्राप्त होनेवाले शरीररूपी रथ पर वह चढ़ता है तथा उसका शासन करता है।

५५५. अचोदसो नो धन्वन्त्विन्दवः प्र स्वानासो बृहद् देवेषु हरयः ।
वि चिदश्नाना इषयो अरातयोऽर्यो नः सन्तु सनिषन्तु नो धियः ॥

सरसता लानेवाली ज्योतियाँ संगीतस्वरूप किरणें बनकर, बिना प्रेरणा के ही महान् देवों (विद्वानों तथा दिव्यगुणयुक्त इन्द्रियों में) खूब गति करें। हमारी शत्रु कृपणतारूपी कामनायें तथा लालची इन्द्रियाँ भोगरहित रहजावें। हमारी शुभ इच्छायें सफल हों।

५५६. एष प्र कोशे मधुमाँ अचिक्रददिन्द्रस्य वज्रो वपुषो वपुष्टमः ।
अभ्यृ३तस्य सुदुघा घृतश्चुतो वाश्रा अर्षन्ति पयसा च धेनवः ॥

यह बीज बोने वालों में सबसे उत्तम इन्द्र-जीवात्मा की शक्तिरूप मधुर भक्तिपूर्ण ज्ञान हृदय-कोष में अनाहत नाद को उत्पन्न करता है। जैसे उत्तम दूध देने वाली रँभाती हुई गायें चारों ओर से दूध के साथ प्राप्त होती हैं वैसे ही कान्ति की धारायें बहाने वाली ज्ञानरूपी सुन्दर दूध देनेवाली भक्तियां और उपासनायें आनन्दरस के साथ उपासक को प्राप्त होती हैं।

५५७. प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न प्र मिनाति सङ्गिरम् ।
मर्य इव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयामना पथा ॥

परमात्मा का मित्र ऐश्वर्यशाली जीवात्मा परमात्मा के पद=मोक्ष को प्राप्त हो जाता है, तब भी उसकी उत्तम वेदवाणी को नहीं छोड़ता और उस मित्र की बात को नहीं काटता। सौम्य स्वभाव होकर वह जीवात्मा साथ रहनेवाली ज्ञान-वृत्तियों के साथ सैकड़ों प्रकार से जाने योग्य योगमार्ग से, १६ कलाओं से सम्पन्न ब्रह्म में उसी प्रकार विचरण करता है, जैसे मनुष्य युवतियों (बहिन, पत्नी माता आदि) के साथ नाना प्रकार से सम्बन्ध करता है।

५५८. धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः ।
हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुषे नदीष्वा ॥

द्यौलोक, मूर्धाभाग, सूर्य तथा ज्ञान को धारण करने वाला, भक्ति द्वारा, रसस्वरूप आनन्दयुक्त ३३ देवों, विद्वानों तथा इन्द्रियों को बल देनेवाला परमात्मा उपासकों को पवित्र करता है। मनुष्य उसका अनुगमन कर आनन्दित होते हैं। व्यापक, चितचोर, सृष्टिरचना करनेवाला, परमात्मा सात्विक वृत्तियों से उपासक की नाड़ियों के बलों को उसी प्रकार व्यर्थ कर देता है, जिस प्रकार खेवट पतवारों की शक्ति से नदियों के बल को व्यर्थ कर देता है।

५५९. वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः ।
प्राणा सिन्धूनां कलशां अचिक्रददिन्द्रस्य हार्द्याविशन्मनीषिभिः ॥

सद्बुद्धियों की वृष्टि करनेवाला, विशेष प्रकार से सबका द्रष्टा, उषाओं, दिनों और द्यौलोक का बढ़ाने वाला, कभी नाश न होनेवाली ज्योति की दीप्तियों की वृद्धि करने वाला, शान्त परमात्मा हमें पवित्र कर रहा है। देह की नाड़ियों में जीवन सञ्चार करनेवाला वह प्रभु मन की प्रेरणाओं द्वारा ऐश्वर्यशाली जीवात्मा के हृदय में सब प्रकार प्रवेश करते हुए आत्मा में अव्यक्त ध्वनि, अनाहत नाद करता है।

५६०. त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे सत्यामाशिरं परमे व्योमनि ।
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत ॥

इस जीवात्मा के लिये, रसपान करनेवाली सात इन्द्रियां अथवा सात शिर के प्राण परम रक्षा-स्थान मूर्धा या ब्रह्मरन्ध्र कपाल में सच्ची ज्ञानधारा को तीन-तीन बार, ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय इन तीन प्रकारों से जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं में दे रही थीं। जब इसके ज्ञान में ऋत की

वृद्धि हुई तो अपने परिशोधन के लिये इसने चार अन्य भुवनों को—ओ३म् के चार पादों को चार भुवनों के रूप में—बना लिया; अथवा देह की चारों अवस्थाओं-जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीय को सुन्दर बना लिया।

उपासक के लिये सभी ७ पदार्थों के समुदाय सुख तथा सच्चे ज्ञान को देनेवाले होते हैं। चार पदार्थों के समुदायों-वेद, आश्रम आदि को भी वह सुन्दर रीतिसे आत्मशुद्धि-अर्थ उपयोग में लाता है।

५६१. इन्द्राय सोम सुषुतः परि स्रवापामीवा भवतु रक्षसा सह।
मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनो द्रविणस्वन्त इह सन्त्विन्दवः॥

हे सोम परमात्मन्! साक्षात् किये हुए आप इन्द्र=जीवात्मा के लिये प्रकट होवें। शरीर के रोग मानसिक सन्तापों, काम-क्रोधादि राक्षसों के साथ दूर हो जावें। इन दोनों से भरेहुए पापी लोग आपके आनन्दरस से प्रसन्न नहीं हो सकते। इस योगसाधना में सबके हृदय में प्रकट होने वाली भक्ति की धारायें समृद्ध होकर शीघ्र गति से बहें।

५६२. असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत्।
पुनानो वारमत्येष्यव्ययं श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदत्॥

अत्यन्त प्रकाशमान, सुखवर्षक, सर्वव्यापक, शान्त-परमात्मा उपासक के हृदय में प्रकट हुआ है। राजा के समान दर्शनीय वह प्रभु प्रजाओं को चारों ओर से पुकार रहा है और वेदवाणियों में अपना नाद कर रहा है।

हे उपासक! प्रकाशमान होता हुआ, तू अनेक रुकावटों को भी पार कर जाता है और जैसे बाज अपने घोंसले में आजावे उसी प्रकार तू अपने आश्रय, अत्यन्त दीप्त परमेश्वर को प्राप्त करता है।

५६३. प्र देवमच्छा मधुमन्त इन्दवोऽसिष्यदन्त गाव आ न धेनवः।
बर्हिषदो वचनावन्त ऊधभिः परिस्रुतमुस्रिया निर्णिजं धिरे॥

मधुरता-युक्त,सौम्य उपासक उपास्य देव के प्रति वैसे ही अच्छे प्रकार अपनी भक्ति को भेंट करते हैं जैसे दूध देनेवाली गौएँ अपने वत्स की ओर दूध प्रवाहित करती हैं। ब्रह्म में रमण करनेवाले वेदवचन के अनुसार चलने वाले, सूर्यकिरणों के समान प्रकाशमान उपासक हृदय में प्रकाशित अति-शुद्ध भक्तिरस को उसी प्रकार धारण करते हैं, जैसे गौएँ अपने स्तनों में छलक रहे दूध को धारण करती हैं।

५६४. अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मध्वाभ्यञ्जते।
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमप्सु गृभ्णते॥

उपासकजन परमात्मा को साक्षात् करते हैं, अनेक प्रकार से साक्षात् करते हैं और अच्छे प्रकार से साक्षात् करते हैं। यज्ञस्वरूप उस प्रभु का वे आस्वादन करते हैं अपने भीतरी आनन्द के साथ

एकरस कर लेते हैं। ज्ञान से अपने को पवित्र करनेवाले वे साधकजन परमात्मा की ओर गति करने-वाले, प्राणों को ब्रह्मरन्ध्र की ओर ऊपर की गति में लेजाने वाले आनन्दवर्षी तथा स्वयं अपने द्रष्टा जीवात्मा को अपने प्रज्ञानों में, भक्ति की तरङ्गों में, साक्षात् किया करते हैं।

५६५. पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद् वहन्तः सं तदाशत ॥

हे ब्रह्माण्ड, वेद तथा वेदवेत्ता के स्वामिन् ! आपका पवित्र ज्ञान बड़ा विस्तृत है। आप प्रभु होकर सब अंगों को सब ओर से घेरे हुए हैं। इस शरीर को तपस्याओं द्वारा न तपानेवाला उपासना में कच्चा मनुष्य तेरे पवित्र ज्ञानको प्राप्त नहीं कर सकता। तपस्या तथा योगाभ्यास में पके हुए उपासक ही आपका धारण करते हुए उस वेदज्ञान को प्राप्त करते हैं।

आठवीं दशति दशम खण्ड

छन्द—उष्णिक्। स्वर—ऋषभ। ऋषि—१, ७, ११ अग्नि चाक्षुष। २,चक्षु मानव। ३, ४, ९, १० पर्वत और नारद। ५ त्रित आप्त्य। ६ मनु आप्सव। ८, १२ द्वित आप्त्य।

५६६. इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः । श्रुष्टे जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥

ये सम्पादित की गई, मनोहर, ज्ञानयुक्त आत्मा में अकस्मात् प्रादुर्भूत हुई आनन्दप्रद सरस ज्योतियाँ तथा भक्तियाँ सुखवर्षक उपासक जीवात्मा को प्राप्त होती हैं।

५६७. प्र धन्वा सोम जागृविरिन्द्रायेन्दो परि स्रव । द्युमन्तं शुष्ममा भर स्वर्विदम् ॥

हे प्रेरक तथा शान्त और सदा जागरणशील परम ऐश्वर्यशाली परमात्मन् ! आप इन्द्रियों के जीतनेवाले उपासक के चारों ओर अन्दर-बाहर सब जगह प्रकट होइये और आनन्दप्रद, प्रकाशयुक्त आत्मज्ञान तथा आत्मिक बल को भरपूर प्राप्त कराइये।

५६८. सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत । शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥

हे मित्रो ! आओ, बैठो। उस पावन प्रभु का गान करो। जैसे श्री (शोभा) के लिये शिशु को सब प्रकार भूषित करते हैं, उसी प्रकार सबके भीतर शयन करनेवाले आत्मा को अपनी श्री के लिये अपने ज्ञान तथा कर्मों से ब्रह्मयज्ञ आदि से परिभूषित करो।

५६९. तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत । शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥

हे मित्रो ! तुम उस पवित्र आत्मा का गान करो और स्तुतियों तथा भक्तियों द्वारा उसी प्रकार प्रसन्न करो, जैसे सरल शिशु को वश में करते हैं।

५७०. प्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम् । विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥

शरीरों में प्राण-सञ्चार करने वाला, बड़ी शक्तियों का जीवनदाता, सुप्त रूप से विद्यमान व्यापक परमात्मा सत्यज्ञान की भावना को प्रेरित करता हुआ सब प्रिय वस्तुओं में वर्तमान हो रहा है, उन्हें दुगुनी प्यारी बना रहा है और उनमें दो प्रकार से—समष्टि,व्यष्टिरूप से स्थूल-सूक्ष्म, गृहीत-ग्राह्य या विषयी-विषय भेद से व्याप्त हो रहा है।

५७१. पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा । आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥

हे ऐश्वर्यशाली परमात्मन् ! आप विद्वानों की ज्ञान प्राप्ति के लिये, इन्द्रियों की बलप्राप्ति के लिये भक्ति की धाराओं से तथा ओज से हमें पवित्र कीजिये। हे परमात्मन् ! आप मधुर-आनन्द से युक्त हैं। हमारे हृदय में विराजमान होइये।

५७२. सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं वि धावति । अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥

परमात्मा पवित्र करताहुआ ऊर्ध्वगति से ज्ञान की लहर से उपासक के अज्ञान के आवरण को पार कर देता है, वह हृदय में भावनापूर्ण रोमाञ्च के साथ विशेष प्रकार से दौड़ रहा है। वह वेद-वाणी के आगे-आगे 'ओ३म्' के रूप में उच्चारण किया जाता है।

५७३. प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उच्यते । भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते ॥

स्वयं विधाता, पवित्र परमात्मा केलिये भक्ति-वचनों का उच्चारण किया जाता है। हे उपासक भावनाओं से प्रसन्न होने वाले प्रभु के लिये भेंटरूप में अपना समर्पण कर। हे परमात्मन् ! उपासक अपनी बुद्धियों से आपका ध्यान कर रहा है। आप उसकी चितिशक्ति को पारिश्रमिक अथवा भेंट के रूप में बढ़ाइये।

५७४. गोमन्न इन्दो अश्ववत् सुतः सुदक्ष धनिव । शुचिं च वर्णमधि गोषु धारय ॥

हे परमेश्वर ! आत्मा में प्रकट होकर आप हमारी इन्द्रियों तथा प्राणों पर अधिकार कर, रस का स्रोत बहाइये और हमारी वाणियों तथा इन्द्रियों में अपना पवित्र रंग (स्वरूप) धारण कराइये।

५७५. अस्मभ्यं त्वा वसुविदमभि वाणीरनूषत । गोभिष्टे वर्णमभि वासयामसि ॥

हे प्रभो ! हमारे लिये जीवन तथा धन को देनेवाले आपका वेदवाणियाँ यथार्थ वर्णन करती हैं। इन वाणियों द्वारा आपके स्वरूप को हम चारों दिशाओं में बसा रहे हैं।

५७६. पवते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रंह्या । अभ्यर्षस्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥

सबका प्राप्य, दुःखहर्त्ता परमात्मा उपासक के कष्टकारी विघ्नों को वेग से दूरकर उसे पवित्र करता है। हे प्रभो ! आप स्तोताओं के लिये वीरतायुक्त तेज दीजिये।

५७७. परि कोशं मधुश्चुतं सोमः पुनानो अर्षति । अभि वाणीर्ऋषीणां सप्तानूषत ॥

पवित्र करता हुआ सोम-परमात्मा आनन्दमय कोश को व्याप्त किये हुए है। वह उपासक के हृदय में प्रकट होता है। सात-ऋषियों=प्राणों की सात वाणियाँ (ज्ञान-प्रवाह) और वेदमन्त्रों के सात प्रकार के छन्द परमात्मा की साक्षात् स्तुति करते हैं।

नवमी दशति ग्यारहवाँ खण्ड

छन्द—१, ४, ६ ककुप् । ५ यवमध्या गायत्री । ७, ८ प्रगाथ । स्वर—१, ४, ६ ऋषभ । ५ षड्ज । ७ ८ मध्यम । ऋषि –१ गौरिवीति । २ ऊर्ध्वसद्मा । ३, ८ ऋजिष्वा । ४ कृतयशा । ५ ऋणव । ६ शक्ति । ७ उरु ।

५७८. पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः । महि द्युक्षतमो मदः ॥

सबसे अधिक ज्ञानसम्पन्न हे परमात्मन् ! ज्ञान प्राप्त करने वालों में श्रेष्ठ, आनन्दस्वरूप आप उपासक जीवात्मा के लिये प्रकट होइये और पवित्र कीजिये । आप हर्ष की मूर्ति और सबसे महान् हैं ।

५७९. अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुम् । वि कोशं मध्यमं युव ॥

हे ज्ञान और अन्न के स्वामी, देव ! आप दिव्य स्वभाव की कामना करने वाले महान् यश को और धन तथा बल को प्रकाशित कीजिये । बीच के आवरण करने वाले कोश—मनोमय तथा विज्ञानमय कोश को काटकर आनन्दमय कोश का दर्शन कराइये ।

५८०. आ सोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम् । वनप्रक्षमुदप्रुतम् ॥

हे उपासको ! तुम स्तुतियोग्य, ज्ञान तथा कर्मों से प्राप्त करने योग्य, लोकों में व्यापक, सब आत्माओं में कूटस्थ-रूप से व्यापक, ज्ञान से परिपूर्ण परमेश्वर को अपने हृदय में प्रकट करो और उसके आनन्दमयरसों का आसेचन करो ।

५८१. एतमु त्यं मदच्युतं सहस्रधारं वृषभं दिवोदुहम् । विश्वा वसूनि बिभ्रतम् ॥

इसी हर्ष-रस को बरसानेवाले, सहस्रों लोकों को धारण करनेवाले, सुखवर्षक, द्युलोक आदि सब के सारभूत, सब धनों को धारण करनेवाले परमात्मा को हम उपासक प्राप्त करते हैं ।

५८२. स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इडानाम् । सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥

जो दीप्तिमान् आठ वसुओं का और समस्त भूमियों, ज्ञान-धाराओं तथा अन्नों का प्राप्त कराने वाला है, जो आत्मा निवासयोग्य शरीरों का निर्माता है, वह सबका प्रेरक परमात्मा हृदय में साक्षात् किया जाता है ।

५८३. त्वं ह्या३ङ्ग दैव्यं पवमान जनिमानि द्युमत्तमः । अमृतत्वाय घोषयन् ॥

हे सर्वव्यापक परमेश्वर ! सबसे अधिक प्रकाशमान आप ही द्यौलोक आदि लोकों और दिव्य गुणों की उत्पत्तियों और उनके मूलकारणोंको हमें मोक्ष प्राप्त कराने के लिए उपदेश करते हैं।

५८४. एष स्य धारया सुतोऽव्या वारेभिः पवते मदिन्तमः । क्रीडन्नूर्मिरपामिव ॥

यह वही धारणा-द्वारा आत्मा में साक्षात् किया हुआ, आनन्द से अत्यन्त समृद्ध परमेश्वर ज्ञान, कर्म अथवा जल की लहर के समान संसार में क्रीडायें-सी करता हुआ, चितिशक्ति के आवरणों से पार होकर भावनापूर्ण रोमाञ्च के द्वारा हृदय में प्रकाशित होता है ।

५८५. य उस्रिया अपि या अन्तरश्मनि निर्गा अकृन्तदोजसा ।
अभि व्रजं तत्निषे गव्यमश्व्यं वर्मीव धृष्णवा रुज ॥

हे परमात्मन् ! जो आप ऊर्ध्वगति करनेवाला, कर्म और ज्ञान की इन्द्रियों को व्यापक तथा पत्थर के समान परिपक्व मुख्य प्राण में बनाते हैं, और जो आप ज्ञानसम्बन्धी तथा कर्मसम्बन्धी इन्द्रियसमूह को अच्छे प्रकार विस्तरित करते हैं, वह सब को विजय करनेवाले आप कवचधारी योद्धा के समान हमारे सब विघ्नों को दूर कीजिये ।

आरण्यक पर्व (काण्ड) षष्ठ अध्याय

(५८६ मन्त्र से ६४० तक)

दशवीं दशति प्रथम खण्ड

देवता—१, ३ इन्द्र । ४ वरुण । ५, ७, ८ पवमान । ६ विश्वेदेवा । ९ अन्न ॥ छन्द—१ बृहती । २, ९ त्रिष्टुप् । ३, ७, ८ गायत्री । ४, ५ चतुष्पदा गायत्री । ६ एकपदा गायत्री । स्वर—१ मध्यम । २, ४, ५, ९ धैवत । ३, ७, ८ षड्ज । ६ निषाद । ऋषि—१ भरद्वाज । २ वसिष्ठ । ३, ६ वामदेव । ४ शुनःशेप । ५ गृत्समद । ७, ८ अमहीयु । ९ आत्मा ।

५८६. इन्द्र ज्येष्ठं न आ भर ओजिष्ठं पुपुरि श्रवः ।
यद्दिधृक्षेम वज्रहस्त रोदसी उभे सुशिप्र पप्राः ॥

हे इन्द्र=ऐश्वर्यशाली परमात्मन् ! आप हमें श्रेष्ठ, ओजयुक्त, पूर्णकरनेवाला ज्ञान भरपूर प्राप्त कराइये । हे ज्ञानरूपी वज्र को धारण करनेवाले, उत्तम ज्ञानी, बलशाली तथा व्यापक प्रभो ! हम जिस ज्ञान को धारण करने की इच्छा रखते हैं, उसे आप इस लोक तथा परलोक दोनों में प्राप्त कराइये ।

५८७. इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमा विश्वरूपं यदस्य ।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतं चिदर्वाक् ॥

इन्द्र जगत् का तथा मनुष्यों का और जो भी नाना रूपों वाले पदार्थ हैं उन सबका राजा है । वह सर्वव्यापक प्रभु दानशील उपासक के लिये उपयोगी धन प्रदान करता है, वही स्तुति किया गया प्रभु हमारे लिये ऐश्वर्य और ज्ञान से प्रेरित करे ।

५८८. यस्येदमा रजोयुजस्तुजे जने वनं स्वः । इन्द्रस्य रन्त्यं बृहत् ॥

दानशील मनुष्य में प्रकृति के रजोगुण से योग करने वाले तथा लोकों को धारण करनेवाले परमेश्वर का ही यह सुख और सेवनीय धन है। उस प्रभु का धन वस्तुतः रमणीय और बहुत अधिक है।

५८९. उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अथादित्य व्रते वयं तवानागसो अदितये स्याम ॥

हे वरणीय, विघ्ननिवारक परमात्मन्! प्रकृति के उत्तम सात्त्विक बन्धन को उपर से ही शिथिल कर दीजिये, निकृष्ट तामस-बन्धन आदि को नीचे गिराकर ढ़ीला कर दीजिये, और मध्यम राजस बन्धन-क्रोध आदि को अनेक प्रकार से विशेष रूप से शिथिल कीजिये। हे अखण्ड, अदीन प्रभो! आप के नियम में चलकर हम अपराधरहित होकर दीनतारहित होने के लिये समर्थ हों।

५९०. त्वया वयं पवमानेन सोम भरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥

हे सोम परमात्मन्! पवित्र आपके द्वारा हम इस जीवन में निरन्तर किये गये कर्म को विशेष रूप से सञ्चित करें। मित्र, वरणीय, अखण्ड, समुद्रवत् व्यापक तथा सब के आश्रय, पृथिवी के समान प्रकाशस्वरूप आप हमें उस अभिलषित फल को प्रदान कीजिये।

५९१. इमं वृषणं कृणुतैकमिन्माम् ॥

हे प्रभो! आप इस मुझ उपासक को सब सुखों की वर्षा करनेवाला बना दीजिये।

५९२. स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः । वरिवोवित् परिस्रव ॥

ऐश्वर्यशील, ब्रह्मयज्ञ आदि के करनेवाले, बिघ्ननिवारक आत्मा केलिये और प्राणों तथा इन्द्रियों के लिये हितकारी पदार्थ देने वाला परमात्मा हमारे लिये हृदय में प्रकट हो।

५९३. एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् । सिषासन्तो वनामहे ॥

मनुष्यों का स्वामी परमात्मा मनुष्योचित सभी धनों को हमें प्राप्त करावे। हम सेवन तथा दान करने की इच्छा से उनकी याचना करते हैं।

५९४. अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाम ।
यो मा ददाति स इदेवमावदहमन्नमन्नमदन्तमद्मि ॥

परमात्मा का वचन है कि मैं इस सत् जगत् की उत्पत्ति से पहले ही वर्तमान हूँ। सब देवों से भी पूर्व विद्यमान हूँ। मैं अमृत का स्वरूप हूँ। जो मुझ को इस प्रकार जानकर अन्न आदि का दान करता है, वही सब की रक्षा करता है। मैं अन्न हूँ, प्राण को धारण करता हूँ। मैं ही कर्म-फल-भोग, करनेवाले प्राणी को अपने में लीन कर लेता हूँ।

—०—

ग्यारहवीं दशति दूसरा खण्ड

देवता—१, ३, ४, ७ इन्द्र। २ पवमान । ५ विश्वेदेवा । ६ वायु ॥ छन्द—१, ३, ४, ६ गायत्री। २ जगती । ५ त्रिष्टुप् । ७ अनुष्टुप् । स्वर—१, ३, ४, ६ षड्ज । २ निषाद । ५ धैवत । ७ गान्धार। ऋषि—१ श्रुतकक्ष । २ पवित्र । ३, ४ मधुच्छन्दा । ५ प्रथ । ६ गृत्समद । ७ नृमेध और पुरुमेध ।

५९५. त्वमेतदधारयः कृष्णासु रोहिणीषु च । परुष्णीषु रुशत् पयः ॥

हे परमात्मन् ! आप ही प्राणों का कर्षण करनेवाली पिङ्गला नाड़ियों में, प्राणों का रोहण= वर्धन करने वाली इड़ा नाड़ियों में तथा पर्वों में निवास करने वाली ज्ञानवाहिनी सुषुम्णा नाड़ियों में और रात्रियों, उषाओं तथा दिनों में भी कान्तियुक्त तेज को धारण कराते हैं।

५९६. अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा मिमेति भुवनेषु वाजयुः ।
मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमादधुः ॥

उपासक की साधना तथा कान्ति का प्रकाशक, श्रेष्ठ सुखों को सेचन करनेवाला, प्राणों में बल का सञ्चार करने वाला, भुवनों में अन्न देनेवाला परमात्मा प्रकाशित हो रहा है। प्रकृति की समस्त शक्तियाँ उसी की शक्ति से बनती हैं और मनुष्यों के द्रष्टा तथा पालन करनेवाले मूल प्राकृतिक पदार्थ उसी की शक्ति से सृष्टि के बीज को धारण करते हैं।

५९७. इन्द्र इद्धर्योः सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥

परमेश्वर ही वाणी से योग रखने वाली ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों को एकसाथ मिलाकर रखने वाला है। वह सर्वशक्तिमान् तथा सूर्य के समान कान्तिमान् और गतिशील है।

५९८. इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥

हे उग्र इन्द्र ! आप अपनी उग्र-शक्तियों से ज्ञान के कार्यों में तथा सहस्रों युद्धों में हमारी रक्षा कीजिये।

५९९. प्रथश्च यस्य सप्रथश्च नामानुष्टुभस्य हविषो हविर्यत् ।
धातुर्द्युतानात् सवितुश्च विष्णो रथन्तरमा जभारा वसिष्ठः ॥

जिसके प्रथ और सप्रथ (प्राण और अपान) दोनों ही पुत्रवत् हैं, वह मुख्य आत्मा, शरीररूपी रथ को चलाने वाले, स्तुतियोग्य द्रव्य के भी सार द्रव्य, मुख्य प्राण को, धारक, उत्पादक तथा सर्वव्यापक परमात्मा से ही प्राप्त करता है।

६००. नियुत्वान् वायवा गह्ययं शुक्रो अयामि ते । गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥

हे गतियुक्त प्रभो ! शक्तिसम्पन्न आप हमें प्राप्त होइये। यह प्रकाशमान सूर्य आदि आपके नियम में हैं। आप योगी साधक के हृदयरूपी घर में प्रकट होइये।

६०१. यज्जायथा अपूर्व्य मघवन् वृत्रहत्याय । तत् पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उतो दिवम् ।।

हे अद्वितीय ! हे विभूतियों के स्वामी प्रभो ! जब आप अज्ञान आदि के नाश के लिये उपासक के हृदय में प्रकट होते हैं, तभी इस भूमि को भी प्रकट करते हैं और द्युलोक को भी आकाश में स्थापित करते है ।

—०—

बारहवीं दशति तीसरा खण्ड

देवता—१ प्रजापति । २, ३ पवमान । ४, ६, १३ अग्नि । ७ रात्रि । ८ वैश्वानर । ९ विश्वेदेवा: । १०, ११ इन्द्र । १२ आत्मा ।। छन्द - १, ७ अनुष्टुप् । २, ३, ५, ६, ९, ११–१३ त्रिष्टुप् । ४ गायत्री । ८ जगती । १० महापंक्ति ।। स्वर १, ७ गान्धार । २, ३, ५, ६, ९, ११–१३ धैवत । ४ षड्ज । ८ निषाद । १० पञ्चम ।। ऋषि—१, ५, ७, १० वामदेव । २, ३ गौतम । ४ मधुच्छन्दा । ६ गृत्समद । ८, ९ भरद्वाज । ११ हिरण्यस्तूप । १२, १३ विश्वामित्र ।

६०२. मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत्पयः । परमेष्ठी प्रजापतिर्दिवि द्यामिव दृंहतु ।।

प्रजा का पालक स्वामी परमात्मा जिस प्रकार आकाश में सूर्य को स्थित करता है, उसी प्रकार मुझ उपासक में तेज, यश और आत्मा के परमरस मोक्ष को धारण करावे !

६०३. सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः ।
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व ।।

हे सोम परमात्मन् ! अभिमानियों को दण्ड देनेवाले आपके ज्ञानरस, अन्न तथा समस्त बल हमें प्राप्त हों । परिपूर्ण आप अमृतस्वरूप उपासक जीवात्मा के लिये मोक्ष में उत्तम ज्ञान तथा सुखों को धारण कराइये ।

६०४. त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः ।
त्वमातनोरुर्वा३न्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ।।

हे परमात्मन् ! आप ने ही इन सब औषधियों, रसों, गौ आदि पशुओं वाणियों तथा पृथिवी को और शरीर, ज्ञान, कर्म, इन्द्रिय, चित्तवृत्ति आदि को उत्पन्न किया है । आप ही विस्तृत अन्तरिक्ष को फैलाते हैं । आप सूर्य तथा ज्ञान के प्रकाश से अन्धकार तथा अज्ञान को दूर करते हैं ।

६०५. अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ।।

ब्रह्मयज्ञ के देव, श्रेष्ठ हितकारी, प्राणों द्वारा पूज्य, सबके धारक तथा पालक, रमणीय पदार्थों को धारण करनेवाले ज्ञानस्वरूप परमात्मा की स्तुति करता हूँ ।

६०६. ते मन्वत प्रथमं नाम गोनां त्रिः सप्त परमं नाम जानन् ।
ता जानतीरभ्यनूषत क्षा आविर्भुवन्नरुणीर्यशसा गावः ।।

वे विद्वान् परमात्मा को वेदवाणियों का प्रथम उत्पत्ति स्थान मानते हैं। वे इक्कीस प्रकार के छन्दों से युक्त वेद को श्रेष्ठ नामवाला समझते हैं। वे वेदवाणियाँ सब बातों को बताती हुई अपने मूलकारणों की स्तुति करती हैं और तेज से प्रकाशित वाणियों के रूप में प्रकट होती हैं।

६०७. समन्या यन्त्युपयन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यस्पृणन्ति ।
तमू शुचिं शुचयो दीदिवांसमपान्नपातमुप यन्त्यापः ।।

ईश्वरको प्राप्त करानेवाली स्तुतियाँ तथा प्रजायें नदियों के समान हैं। कुछ तो परस्पर मिलती हैं, कुछ एकसमान विशाल आश्रय (समुद्र, ईश्वर) तक पहुंचती हैं। ज्ञान तथा कर्म का उपदेश करने वाली तथा शुद्ध होकर उस शुद्ध देदीप्यमान. समस्त ज्ञानों के आश्रय परमात्मा को प्राप्त होती हैं।

६०८. आ प्रागाद्भद्रा युवतिरह्नः केतून्त्समीर्त्सति ।
अभूद्भद्रा निवेशनी विश्वस्य जगतो रात्री ।।

सब जगत् को सुख देनेवाली ब्रह्मविद्या सब का आश्रय और कल्याणकारिणी है। परमात्मा की सत्संगति करानेवाली और सुखदात्री वह सब ओर से प्रकट होती है और ज्ञानों को प्राप्य कराती है।

६०९. प्रक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू महः प्र नो वचो विदथा जातवेदसे ।
वैश्वानराय मतिर्नव्यसे शुचिः सोम इव पवते चारुरग्नये ।।

सबके भीतर सम्पर्क करने वाले सुखवर्षक, कान्तिमान्, सब उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान परमात्मा के तेज को यज्ञोंमें हम अच्छे प्रकार वर्णन करें। स्तुतियोग्य समस्त नरों के नेता तथा ज्ञान-स्वरूप परमात्मा के लिये उपासक के शुद्ध सङ्कल्प, प्रेरक परमात्मा के ही समान उत्तम रूप में प्रकट होते हैं।

६१०. विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञमुभे रोदसी अपां नपाच्च मन्म ।
मा वो वचांसि परिचक्ष्याणि वोचं सुम्नेष्विद्वो अन्तमा मदेम ।।

द्यौ और पृथिवी में सब विद्वान् तथा प्रजाओं, प्रज्ञाओं और कर्मों का आश्रय ईश्वर भी मेरे सङ्कल्प को सुने। उनके वचनों का मैं त्याग न करूँ। सुख के समय भी इस प्रकार उच्चारण करूँ कि "आप लोगों के समीप होकर ही हम आनन्दित हों।"

६११. यशो मा द्यावापृथिवी यशो मेन्द्रबृहस्पती । यशो भगस्य विन्दतु यशो मा प्रति मुच्यताम् । यशस्वा ३स्याः संसदो ऽहं प्रवदिता स्याम् ।।

हे प्रभो ! मुझको द्यौलोक और पृथिवी का यश प्राप्त हो; इन्द्र और बृहस्पति का यश प्राप्त

हो, ईश्वर का यश मुझे प्राप्त हो। यश मुझे न छोड़े, मैं यशस्वी होकर ब्रह्मविद्या तथा भक्तों की सभा का ज्ञानोपदेशक बनूँ।

६१२. इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत् पर्वतानाम् ॥

मैं परमेश्वर के उन पराक्रमों का वर्णन करता हूँ, जिन श्रेष्ठ कामों को सर्वशक्तिमान् वह किया करता है। वह अज्ञानों का नाश कर प्रज्ञाओं को प्रवाहित करता है और विद्वानों की हृदयग्रन्थियों को भेदन करके ज्ञानधाराओं को प्रवाहित करता है।

६१३. अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतम्मे चक्षुरमृतं म आसन् ।
त्रिधातुरर्को रजसो विमानोऽजस्रञ्ज्योतिर्हविरस्मि सर्वम् ॥

परमात्मा का वचन है कि मैं स्वयं सब पदार्थों को जानने वाला ज्ञानस्वरूप हूँ। मेरा देखने का तथा दिखाने का साधन अति दीप्तिमान् है, मेरा बल अमृत है। सब पदार्थों को तीन प्रकार—उत्पत्ति, स्थिति तथा लय रूप से धारण करने वाला सूर्य के समान प्रकाशक, लोकों का निर्माण करने वाला मैं ही अविनाशी ज्योति हूँ और मैं ही भोग्य पदार्थों का दाता हूँ।

६१४. पात्यग्निर्विपो अग्रं पदं वेः पाति यह्वश्चरणं सूर्यस्य ।
पाति नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः पाति देवानामुपमादमृष्वः ॥

मेधावी परमात्मा गति करने वाले सब पदार्थों के जाने के मार्ग को सुरक्षित करता है। महान् वह सूर्य के मार्ग की भी रक्षा करता है। वही ज्ञानस्वरूप ईश्वर नाभि में प्राणों तथा सिर में स्थित सात प्राणों का पालन करता है और वही समस्त देवों को भी पालता है।

—०—

तेरहवीं दशति चौथा खण्ड

देवता—१ अग्नि। २ ऋतु। ३—६ पुरुष। ७ स्रष्टा। ८ द्यावा पृथिवी। ६, ११ इन्द्र। १० आत्मा। १२ गौ॥ छन्द—१, २ पंक्ति। ३—७, ६, १० अनुष्टुप्। ८ त्रिष्टुप् (उपरिष्टाज्ज्योति) ११, १२ त्रिष्टुप्। स्वर—१, २ पञ्चम। ३–७, ६, १० गान्धार। ८, ११, १२ धैवत॥ ऋषि—१, २, ८—१२ वामदेव। ३–७ नारायण।

६१५. भ्राजन्त्यग्ने समिधान दीदिवो जिह्वा चरत्यन्तरासनि ।
स त्वं नो अग्ने पयसा वसुविद्रयिं वर्चो दृशेऽदाः ॥

हे प्रकाशमान सर्वोपरि विराजमान परमेश्वर! आपकी ही शक्ति से मुख के अन्दर जीभ चलती है और चितिशक्ति विचरती है। आप ही हमें अन्न, ज्ञान, ऐश्वर्य तथा बल प्रदान करते हैं।

६१६. वसन्त इन्नु रन्त्यो ग्रीष्म इन्नु रन्त्यः। वर्षाण्यनु शरदो हेमन्तःशिशिरः इन्नु रन्त्यः ॥

वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर सभी ऋतुएँ ईश-कृपा से रमणीय हों।

६१७. सहस्रशीर्षा: पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। स भूमिं सर्वतोवृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥

सहस्रों शिरों वाला, हजारों आँखोंवाला, हजारों पैरवाला पुरुष वह परमेश्वर भूवृत्त को व्याप्त करके दशों दिशाओं तक सर्वत्र स्थित है।

६१८. त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः तथा विष्वङ् व्यक्रामदशनानशने अभि॥

पुरुष=जगत् में व्यापक परमात्मा सत्, चित्, आनन्दरूप तीन पैरवाला, सबसे उत्कृष्ट होकर वर्तमान है। इसका १ चरणरूप सब उत्पन्न हुए पदार्थ बार-बार उत्पन्न हुआ करते हैं। वही सर्वत्र भोजन करनेवाले प्राणियों तथा भोजन न करनेवाले जड़पदार्थों में व्यापक है।

६१९. पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्।
पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥

जो उत्पन्न जगत् है और जो आगे उत्पन्न होनेवाला है, उस सब में परमेश्वर व्यापक है। सब उत्पन्न पदार्थ उसके एक पैर के रूप में और शेष तीन पैर (भाग) विनाशरहित सत्, चित् तथा आनन्द उसके प्रकाशस्वरूप में ही वर्तमान हैं।

६२०. तावानस्य महिमा ततो ज्यायाँश्च पूरुषः। उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति।

इस जगत् का जितना विस्तार है उससे भी कहीं बड़ा वह परमात्मा है और वही इस अमर जीव संसार का स्वामी है, जो कर्म-फल-भोग के द्वारा मूल कारण से कार्यरूप संसार को उत्पन्न करता है।

६२१. ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चात् भूमिमथो पुरः॥

उस परमात्मा से विराट् ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ। विराट् का अधिष्ठाता पुरुष परमात्मा ही है। वह उत्पन्न विराट् ही सृष्टि में सबसे बड़ा रहा। उसके पश्चात् इस भूमि और फिर इन शरीरों को परमात्मा ने उत्पन्न किया।

६२२. मन्ये वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ ये अप्रथेथाममितमभि योजनम्।
द्यावापृथिवी भवतं स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः॥

हे सूर्य के समान प्रकाशक परमात्मन्! और हे पृथिवी के समान विस्तृत प्रकृति! मैं तुम दोनों को उत्तम पालक मानता हूँ। तुम दोनों इस अनन्त संसार को विस्तृत कर देते हो। तुम दोनों हमारे लिये सुखकारक होओ। दोनों हमें पाप से मुक्त करें।

६२३. हरी त इन्द्र श्मश्रूण्युतो ते हरितौ हरी। तं त्वा स्तुवन्ति कवयः पुरुषासो वनर्गवः॥

हे परमेश्वर ! आप की शक्तियां सर्वव्यापक हैं, आपके धारण तथा आकर्षण गुण सब जगह विद्यमान हैं। सुन्दर वाणियों वाले मेधावी उपासक आप की स्तुति करते हैं।

६२४. यद्वर्च्चो हिरण्यस्य यद्वा वर्च्चो गवामुत। सत्यस्य ब्रह्मणो वर्च्चस्तेन मा सं सृजामसि।

सूर्य का जो तेज है, जो तेज उसकी किरणों का है और सत्यस्वरूप ब्रह्म का जो तेज है, उस से हम उपासक अपने को संयुक्त करें।

६२५. सहस्तन्न इन्द्र दद्धयोज ईशे ह्यस्य महतो विरप्शिन्।
क्रतुं न नृम्णं स्थविरं च वाजं वृत्रेषु शत्रून्त्सहना कृधी नः॥

हे सत्यज्ञानमय परमात्मन् ! हमें वह सहनशक्ति तथा ओज दीजिये, जिससे आप इस महान् संसार पर शासन करते हैं। आप हमारे बल को यज्ञ के समान उपभोगयोग्य तथा स्थिर कीजिये और दुष्ट राक्षसों के बीच में उनको नष्ट करनेवाला तथा सहनशील बनाइये।

६२६. सहर्षभाः सहवत्सा उदेत विश्वा रूपाणि बिभ्रतीर्द्व्यूध्नीः।
उरुः पृथुरयं वो अस्तु लोक इमा आपः सुप्रपाणा इह स्त॥

हे इन्द्रियो ! ज्ञान तथा कर्म से सम्बन्धित तुम आत्मा तथा मनके साथ समस्त जीवों का भरण-पोषण करती हुई उन्नति को प्राप्त होओ। परलोक तुम्हारे लिये बड़ा विशाल रहे। यह लोक उत्तम भोग करने योग्य पदार्थों से सज्जित रहे। तुम यहीं रहो।

—०—

चौदहवीं दशति पांचवां खण्ड

देवता—१ अग्नि पवमान। २–१४ सूर्य॥ छन्द—१, ४–१४ गायत्री। २ जगती। ३ त्रिष्टुप्। स्वर—१, ४–१४ षड्ज। २ निषाद। ३ धैवत॥ ऋषि—१ वैखानस। २ विभ्राट्। ३ कुत्स। ४-६ सार्पराज्ञी। ७–१४ प्रस्कण्व।

६२७. अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः। आरे बाधस्व दुच्छुनाम्॥

हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! आप हमें आयु, बल और अन्न देते हैं। बुरे, लोभी, क्रोधान्ध जनों को हमसे दूर रखकर पीडित कीजिये।

६२८. विभ्राड् बृहत् पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम्।
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पिपर्त्ति बहुधा विराजति॥

विशेषरूप से प्रकाशमान परमात्मा हमारी बड़ी भक्तिपूर्ण मधुर उपासना को स्वीकार करे, ब्रह्मयज्ञ के पालक मुझ में सरल जीवन को धारण करावे। जो गतिमान् शक्तियों से युक्त होकर स्वयं प्रजाओं की रक्षा करता है, वह परमात्मा बहुत प्रकार से विराजमान होता है।

६२९. चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥

समस्त देवों को बल देनेवाला, पूज्य और मित्र, वरनेयोग्य तथा प्रकाशयुक्त लोकों का प्रकाशक द्यौ, पृथिवी अन्तरिक्ष -तीनों लोकों को व्याप्त करनेवाला, सब का प्रेरक परमात्मा स्थावर तथा जङ्गम संसार को गति देनेवाला स्वामी है ।

६३०. आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥

यह सर्वत्र पहुंचा हुआ, सर्वान्तिर्यामी परमात्मा हमारी पृथ्वी-माता, सूर्य-पिता और मध्य में स्थित अन्तरिक्ष इन सब स्थानों को प्राप्त होताहुआ भक्त के हृदय में साक्षात् प्रकट होता है ।

६३१. अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती । व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥

इस परमात्मा की सबको रुचिकर दीप्ति प्राण ग्रहण करती, और प्राण-वायु को बाहर करती हुई विचरती है । महान् परमात्मा सूर्य को भी प्रकाशित करता है ।

६३२. त्रिंशद्धाम वि राजति वाक् पतङ्गाय धीयते । प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥

वह परमात्मा, दिन के तीसों स्थान, तीसों घड़ियों तक दीप्तियों के हृदय में बराबर विराजता है । यह वेदवाणी उसी सर्वव्यापक ईश्वर के लिये पाठ की जाती तथा मनन की जाती है ।

६३३. अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूराय विश्वचक्षसे ॥

जिस प्रकार रात्रियों के साथ-साथ नक्षत्र भी यज्ञ के प्रकाशक सूर्य के कारण लुप्त हो जाते हैं उसी प्रकार सर्वद्रष्टा आपके प्रत्यक्ष होने पर हृदय के चोर काम, क्रोध आदि दूर भाग जाते हैं ।

६३४. अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥

प्रकाशमान विद्वान्-पुरुष जिस प्रकार सब प्राणियों पर दृष्टि रखते हैं, उसी प्रकार इस परमात्मा की शक्तियाँ समस्त प्राणियों पर दृष्टि रखती हैं ।

६३५. तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमाभासि रोचनम् ॥

हे सूर्य=सबके प्रेरक परमात्मन् ! आप दुःख-सागर से तारनेवालेसंसार में एकमात्र दर्शनीय, प्रकाशमान ज्योतियों को बनानेवाले हैं । आप सभी सुन्दर पदार्थों को प्रकाशित करते हैं ।

६३६. प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान् । प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥

हे परमेश्वर ! आप विद्वान्-प्रजाओं के सामने, साधारण मानुषी प्रजा के सामने और समस्त विश्व के सामने सुख का दर्शन कराने के लिये साक्षात् उदय हो रहे हैं ।

६३७. येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु । त्वं वरुण पश्यसि ॥

हे पवित्र करनेवाले, अनिष्ट-निवारक परमात्मन् ! आप जिस दृष्टि से मनुष्य का भरण-पोषण करनेवाले हैं, वह प्रशंसनीय है।

६३८. उद् द्यामेषि रजः पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः । पश्यञ्जन्मानि सूर्य ॥

हे सबके उत्पादक परमात्मन् ! आप व्यापनशील शक्तियों द्वारा समस्त जन्म लेने वाले प्राणियों को देखते हुए विशाल द्युलोक में भी व्यापक हैं।

६३९. अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्र्यः । ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥

सबको प्रेरणा देनेवाला परमात्मा शरीर के साथ शुद्ध ज्ञान प्राप्त करानेवाली, कुमार्ग पर न गिरने देनेवाली सात इन्द्रियों को उपासक से युक्त करता है और अपनी युक्त की हुई उन इन्द्रियों के कर्मों द्वारा भक्त को प्राप्त होता है।

६४०. सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षण ॥

सबके उत्पादक और प्रेरक देव परमात्मन् ! हे अन्तर्यामिन् प्रभो ! इस शरीर में सात ज्ञान प्राप्त करनेवाली इन्द्रियाँ कान्तियुक्त शक्तियों वाले आपको धारण करती हैं अर्थात् आपकी शक्ति से चला करती हैं।

॥ पूर्व (छन्द) आर्चिक समाप्त ॥

२ महानाम्न्य आर्चिक

(६४१ से ६५० तक १० मन्त्र)

ऋषि—प्रजापति । देवता—इन्द्र त्रैलोक्यामा ।

६४१. विदा मघवन् विदा गातुमनुशंसिषो दिशः । शिक्षा शचीनां पते पूर्वीणां पुरूवसो ॥

हे भगवन् ! आप सब कुछ जानते हैं। आप हमें मार्ग दिखाइये। लक्ष्य तक पहुंचने के लिए हमे दिशाओं का निर्देश कीजिये। समस्त शक्तियों के पालन करनेवाले स्वामिन् ! सब के भीतर रहनेवाले सर्व धन-सम्पन्न प्रभो ! आप हमें शिक्षा दीजिये।

६४२. आभिष्ट्वमभिष्टिभिः स्वा३ऽन्नांशुः । प्रचेतन प्रचेतयेन्द्रद्युम्नाय न इषे ॥

सूर्य के समान प्रकाशमान, चेतनस्वरूप परमेश्वर ! आप, हमारी इन अभीष्ट उपासनाओं से अन्न, जीवन तथा ज्ञानरूपी प्रकाश पाने के लिये, हमें चिताइये।

६४३. एवाहि शक्रो राये वाजाय वज्रिवः ।

शविष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे मंहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जस आ याहि पिब मत्स्व ॥

हे प्रभो ! ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये आप ही शक्तिशाली हैं; शक्ति तथा अन्न प्राप्त करने के लिए आप बलशालो हैं; आप ही पाप से छुड़ानेवाले हैं; सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक प्रभो ! आप हमें समथ बनाइये। हे सबसे अधिक महान्, वज्र (बल) से युक्त प्रभो ! आप हमें बलशाली बनाइये। हमारे हृदय में प्रकट होइये, हमारी भक्ति को स्वीकार कीजिये तथा हम पर प्रसन्न होइये।

६४४. विदा राये सुवीर्यं भवो वाजानां पतिर्वशाँ अनु ।

मंहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे यः शविष्ठः शूराणाम् ॥

प्रभो ! आप हमारे ऐश्वर्य के लिये हमें उत्तम वीर्य तथा शक्ति प्राप्त कराइये। आप ज्ञान और बलों के स्वामी हैं और आप के वशमें वर्तमान समस्त लोक अनुकूल हैं। सबसे महान् शक्तिशाली प्रभो ! आप सबको अपने वश में रखते हैं। आप शूरों में भी अधिक शक्तिशाली शूरवीर हैं।

६४५. यो मंहिष्ठो मघोनाम् अंशुर्न शोचिः । चिकित्वो अभि नो नयेन्द्रो विदे तमु स्तुहि ॥

जो आप ऐश्वर्यवालों में भी सब से महान् हैं और सूर्य के समान शुद्ध प्रकाशस्वरूप हैं। अतः हे सर्वज्ञ परमेश्वर ! आप ज्ञान और बल प्राप्त करने के लिए हमें भी आगे ले चलिये। हे मनुष्य ! तू उसी की स्तुति कर।

६४६. ईशे हि शक्रस् तमूतये हवामहे जेतारमपराजितम् ।
स नः स्वर्षदति द्विषः क्रतुश्छन्द ऋतं बृहत् ।।

शक्तिमान् परमेश्वर ही ईश है, अतः कभी पराजित न होने वाले, सदा जीतने वाले उसी को अपनी रक्षा के लिये स्मरण करते हैं। वह हमारे शत्रुओं का विनाश करे। वह सबका निर्माता, वेद-ज्ञानमय, सत्यस्वरूप और सबसे महान् है।

६४७. इन्द्रं धनस्य सातये हवामहे जेतारमपराजितम् ।
स नः स्वर्षदति द्विषः स नः स्वर्षदति द्विषः ।।

हम धन (लौकिक तथा आत्मिक) के पाने के लिये कभी न हारने वाले, सदा विजयी परमेश्वर का स्मरण करते हैं। वह हमारे लौकिक तथा आत्मिक शत्रुओं का नाश करता है। वह हमारे लौकिक तथा आत्मिक शत्रुओं का नाश करे।

६४८. पूर्वस्य यत्ते अद्रिवोंऽशुर्मदाय । सुम्न आ धेहि नो वसो पूर्तिः शविष्ठ शस्यते ।
वशी हि शक्रो नूनं तन्नव्यं संन्यसे ।।

हे प्रलय करने वाले प्रभो ! सबके पूर्व वर्तमान आपका जो व्यापक स्वरूप आनन्द देनेवाला है, हे सर्वधनसम्पन्न परमेश्वर! वही हमारे सुख के लिये, हमें अनुभव कराइये। हे सबसे अधिक बलवान् प्रभो ! आपके द्वारा किये गये पालन की सभी प्रशंसा करते हैं। वस्तुतः आप सबको वश में रखने वाले और शक्तिमान् हैं, इसलिये स्तुतियोग्य आप को मैं अच्छी प्रकार हृदय में धारण करता हूँ।

६४९. प्रभो जनस्य वृत्रहन्त्समर्येषु ब्रवावहै । शूरो यो गोषु गच्छति सखा सुशेवो अद्वयुः ।।

हे मनुष्यों के विघ्न-नाशक प्रभो ! हम सब कार्यों में आपका वर्णन किया करते हैं जो आप वेद की वाणियों में वर्णन किये गये वही आप शूरवीर, हमारे मित्र, अच्छे प्रकार सेव्य और अद्वितीय हैं।

६५०. एवाह्यऽ३ऽ३ऽ३व । एवा ह्यग्ने । एवाहीन्द्र । एवा हि पूषन् । एवा हि देवाः ।।

इस मन्त्र के पांच पदों का नाम 'पुरीष' है। हे प्रभो ! आप निश्चय ही इसी प्रकार के हैं जैसे कि पहले वर्णन किया गया है। हे अग्ने ! आप वस्तुतः प्रकाशस्वरूप हैं। हे इन्द्र ! आप वस्तुतः परम ऐश्वर्य से सम्पन्न हैं। हे पूषन् ! आप निश्चय ही सबको पालन-पोषण करनेवाले हैं। हे देवो, विद्वानो तथा संसार की दिव्य शक्तियो ! तुम भी ईश्वर की कृपा से वैसे ही हो, जैसे कि पहले वर्णन किये जा चुके हो।

उत्तर आर्चिक

[६५१ मन्त्र से १८७५ मन्त्र (अन्त) तक]

प्रथम प्रपाठक

(६५१ मन्त्र से ७७४ मन्त्र तक)

प्रथम अर्धप्रपाठक प्रथम अध्याय

(६५१ मन्त्र से ७१२ मन्त्र तक)

पहला खण्ड

पहला सूक्त—असित, काश्यप वा देवल ऋषि। साम देवता। गायत्री छन्द। षड्ज स्वर।

६५१. उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे। अभि देवाँ इयक्षते॥

हे मनुष्यो! इस पवित्र करने वाले, देवों को ज्ञान देनेवाले परमेश्वर के लिये उपासना का गान करो।

६५२. अभि ते मधुना पयोऽथर्वाणो अशिश्रयुः। देवं देवाय देवयुः॥

हे परमेश्वर! अहिंसक-उपासक लोग आपके दिव्य, विद्वानों से चाहे गये, आनन्दरूपी रस का ब्रह्मज्ञान-रूपी मधु के साथ सेवन करते हैं।

६५३. स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शर्मवते। शं राजन्नोषधीभ्यः॥

हे मेरे राजा=देदीप्यमान प्रभो! आप हमारी इन्द्रियों तथा गौओं के लिये, मनुष्यमात्र के लिये, प्राणों तथा अश्वों के लिये और ओषधियों के लिये सुख और कल्याण की वर्षा कीजिये।

दूसरा सूक्त—कश्यप मारीच ऋषि। सोम देवता। गायत्री छन्द। षड्ज स्वर।

६५४. दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा। सोमाः शुक्रा गवाशिरः॥

सौम्य, शुद्ध तथा इन्द्रियों को वश में रखनेवाले उपासकजन प्रकाशमान कान्ति और सर्वत्र प्रशंसित सामर्थ्य से युक्त रहा करते हैं।

६५५. हिन्वानो हेतृभिर्हित आ वाजं वाज्यक्रमीत्। सीदन्तो वनुषो यथा॥

जिस प्रकार वीर योद्धा तीव्र गति से चलते हैं और जिस प्रकार कशा (हन्टर) आदि से प्रेरित

घोड़ा मैदान में अपनी शक्तिभर दौड़ता है उसी प्रकार हित चाहनेवाला ज्ञानी उपासक-पुरुष प्रेरक शक्तियों से प्रेरित होकर ज्ञानमार्ग पर चलता है।

६५६. ऋधक्सोम स्वस्तये संजग्मानो दिवा कवे । पवस्व सूर्यो दृशे ।।

हे कवि तथा सौम्य उपासक ! दूर-दूर तक कल्याण के लिये अपने ज्ञान के बल पर जाते हुए आप, सूर्य के समान, सब को सत्य का दर्शन कराने के लिये गमन कीजिये।

तीसरा सूक्त—वैखानस आङ्गिरस ऋषि । सोम देवता । गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ।

६५७. पवमानस्य ते कवे वाजिन्त्सर्गा असृक्षत । अर्वन्तो न श्रवस्यवः ।।

हे कवि तथा ज्ञानवान् उपासक ! योग-मार्ग पर चलने वाले तेरे वे ज्ञान को प्राप्त करने वाले प्रयत्न उसी प्रकार स्वयं सफल होते हैं जिस प्रकार दौड़ते हुए घोड़े लक्ष्य तक पहुँचते हैं।

६५८. अच्छा कोशं मधुश्चुतमसृग्रं वारे अव्यये । अवावशन्त धीतयः ।।

ध्यान करने वाले उपासक लोग समाप्त न होने वाले तमोगुणी परदे पर मधुर टपकाने वाले आनन्दमय कोश को अच्छी प्रकार से प्रकट किया करते हैं और उसी की अभिलाषा करते हैं।

६५९. अच्छा समुद्रमिन्दवोऽस्तं गावो न धेनवः । अग्मन्नृतस्य योनिमा ।।

जिस प्रकार दूध देने वाली गौएँ घर की ओर लौटती हैं, उसी प्रकार ऐश्वर्ययुक्त उपासक जन सत्यज्ञान के आधार, आनन्दसागर परमात्मा की ओर अच्छे प्रकार से प्राप्त होते हैं।

दूसरा खण्ड

चौथा सूक्त—भरद्वाज ऋषि । अग्नि देवता । गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ।

६६०: अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता सत्सि बर्हिषि ।।

हे अग्ने प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप (विद्या आदि शुभ गुणों की) व्याप्ति तथा ज्ञान और हृदय में प्रकाश करने के लिये और हव्य (दानयोग्य) शुभ भक्ति और कर्मों के फल तथा पदार्थों को देने के लिये हमें आत्मा में अपना साक्षात्कार कराइए। हम आप की स्तुति करते हैं। सुख देने-वाले आप, जहाँ ज्ञान की वृद्धि होती है ऐसे यज्ञ में, विराजमान होइये।

६६१. तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठ्य ।।

हे प्रकाशमान तथा बलवान् परमात्मन् ! हम उपासक योग आदि साधनों और प्रेमपूर्ण भक्ति से आपकी विशालता को अनुभव करते हैं। आप हमारे हृदय में बहुत प्रकाश कीजिये।

६६२. स नः पृथु श्रवाय्यमच्छा देव विवाससि । बृहदग्ने सुवीर्यम् ।।

हे अग्निदेव परमात्मन् ! आप हमें महान् प्रशंसनीय बल तथा वेदज्ञान को प्राप्त कराइए।

पांचवाँ सूक्त—विश्वामित्र वा जमदग्नि ऋषि । मित्रावरुण देवता । गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ।

६६३. आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥

शोभन कर्मवाले प्राण और अपान दीप्तियों द्वारा इन्द्रियों के मिलने के स्थान त्रिपुटि भाग को और रजोभाव से युक्त इन्द्रियों को विशेष चेतना संवित्सिद्धि के द्वारा उत्तम प्रकार से पोषण करें।

६६४. उरुशंसा नमोवृधा मह्ना दक्षस्य राजथः । द्राघिष्ठाभिः शुचिव्रता ॥

हे प्राण और अपान ! शुद्ध कर्म करनेवाले प्रशंसनीय, ज्ञान और अन्न से बढ़नेवाले तुम आत्मा की महिमा से और दीर्घ अभ्यासों से प्रकाशित तथा दीप्त होते हो।

६६५. गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतम् । पातं सोममृतावृधा ॥

हे प्राण और अपान ! प्रकाशमान आत्मावाले योगी के द्वारा गुणवर्णन किये गये तुम उपासना-यज्ञ के मूल भाग में स्थित होओ और सत्य तथा ज्ञान को वढ़ाने वाले होकर सबके प्रेरक बल को प्राप्त करो।

छठा सूक्त—इरिमिठि ऋषि । इन्द्र देवता । गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ।

६६६. आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् । एदं बर्हिः सदो मम ॥

हे इन्द्र ! आप हमारे समीप (आत्मा में ही) आइये। हमारी सम्पादित की हुई इस भक्ति को स्वीकार कीजिये। यह उपासनारूपी यज्ञ ही मेरा घर है।

६६७. आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना । उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥

हे परमेश्वर ! ब्रह्म (वेद और ईश्वर) से योग (मेल) करने वाले आत्मा और मन दीप्तियों से युक्त होकर आपको प्राप्त हों। आप हमारी प्रयुक्त वेदवाणियों को सुनिये।

६६८. ब्रह्माणस्त्वा युजा वयं सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुतावन्तो हवामहे ॥

हे परमेश्वर ! हम वेदवेत्ता, ब्रह्मज्ञानी आनन्दरस का पान करने वाले सौम्य उपासक लोग भक्ति को स्वीकार करने वाले आपका योग के द्वारा ध्यान करते हैं।

सातवाँ सूक्त—विश्वामित्र ऋषि । इन्द्र और अग्नि देवता । गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ।

६६९. इन्द्राग्नी आ गतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् । अस्य पातं धियेषिता ॥

इस संसार में सब बातों का ज्ञान कराने वाले जीवात्मा और परमात्मा अच्छी प्रकार गति करें और वाणियों से तथा बुद्धि से, एकसूत्र में बांधने वाले श्रेष्ठ ज्ञान को प्राप्त करावें।

६७०. इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः । अया पातमिमं सुतम् ॥

सबको चेताने वाला परमात्मा उपदेश करता है कि जीवात्मा और परमात्मा प्राण के सहायक हैं वे स्तुति करने वाले उपासक की भक्ति में सहायक होते हैं। वे दोनों इस उत्पन्न हुए संसार का पालन करें और उपासक द्वारा प्राप्त की हुई भक्ति की रक्षा करें।

६७१. इन्द्रमग्नि कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे । ता सोमस्येह तृम्पताम् ॥

उपासनारूपी यज्ञ के सेवन के लिये मैं बुद्धिमानों के रक्षक जीवात्मा तथा परमात्मा को वरण करता हूँ । वे दोनों इस संसार में ऐश्वर्य के द्वारा सबको तृप्त करें ।

तीसरा खण्ड

आठवाँ सूक्त—ऋषि—अमहीयु । देवता—सोम । छन्द—गायत्री । स्वर—षड्ज ।

६७२. उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे । उग्रं शर्म महि श्रवः ॥

हे परमेश्वर ! आपकी शक्ति से उत्पन्न, उच्च द्युलोक में वर्तमान, श्रेष्ठ सुख देनेवाले आश्रय को और महत्त्वपूर्ण श्रवण करने योग्य ज्ञान को मैं उपासक भूमि पर ही पा रहा हूँ ।

६७३. स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः । वरिवोवित् परि स्रव ॥

ऐश्वर्यशाली, यज्ञ करनेवाले, श्रेष्ठ आत्मा के लिये तथा प्राणों और इन्द्रियों के लिये हितकारी प्रभु हमारे हृदय में प्रकट हो ।

६७४. एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् । सिषासन्तो वनामहे ॥

हमारा स्वामी परमेश्वर मनुष्यों के हितकारी सभी धनों को हमें प्राप्त करावे । उन धनों का उचित उपभोग तथा दान करने की इच्छा रखते हुए हम उनको माँग रहे हैं ।

नवाँ सूक्त—अमहीयु । सोम । बृहती । मध्यम ।

६७५. पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि ।
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः ॥

हे उपासक ! भक्ति से पवित्र होता हुआ तू कर्मों को करते हुए विराजमान हो । रत्नों तथा श्रेष्ठ वस्तुओं को धारण करनेवाला होकर ज्ञान के मूल कारण प्रभु को प्राप्त कर तथा देव बनकर सुख के साथ स्थित हो ।

६७६. दुहान ऊधर्दिव्यं मधु प्रियं प्रत्नं सधस्थमा सदत् ।
आपृच्छ्यं धरुणं वाज्यर्षसि नृभिर्धौतो विचक्षणः ॥

चतुर, शुद्ध, ज्ञानी पुरुष आनन्द के स्रोत परमात्मा से अलौकिक, प्रिय, सनातन, सदा साथ में वर्तमान मधुर भक्तिरस को दुहता हुआ प्राप्त करता है । वही उपासक मनुष्यों द्वारा प्रश्नपूर्वक जानने योग्य सबके धारक परमात्मा को भी प्राप्त करता है ।

दसवाँ सूक्त—अमहीयु । सोम । त्रिष्टुप् । धैवत ।

६७७. प्र तु द्रव परि कोशं निषीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष ।
अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्हीं रशनाभिर्नयन्ति ॥

हे प्रभो ! आप दया कर हृदय में विराजमान हों और मनुष्यों द्वारा स्तुति किये जाने पर उन्हें ज्ञान प्रदान करें। जैसे घोड़े को लगामों से बाँधकर किसी स्थान पर रखते हैं उसी प्रकार उपासक लोग आपको योग द्वारा हृदय में धारण करके प्रत्यक्ष करते हैं।

६७८. स्वायुधः पवते देव इन्दुरशस्तिहा वृजना रक्षमाणः।
पिता देवानां जनिता सुदक्षो विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्याः ॥

अच्छी शक्तियों से युक्त ऐश्वर्यशाली देव परमात्मा सर्वत्र गति कर रहा है और पवित्र करने वाला है। वह दुःखविनाशक त्यागने, योग्य मार्गों से बचानेवाला, देवों का पालक और उत्पादक है तथा उत्तम बलयुक्त है। वही द्यौलोक और पृथिवी का आकर्षण और धारण करनेवाला है।

६७९. ऋषिर्विप्रः पुर एता जनानामृभुर्धीर उशना काव्येन।
स चिद्विवेद निहितं यदासामपीच्यां ३ गुह्यं नाम गोनाम् ॥

ऋषि=द्रष्टा, ज्ञानी, उत्पन्न मनुष्यों के पहले ही सर्वत्र व्यापक परमात्मा ही अथवा सृष्टि की आदि में सबसे पहले उत्पन्न होनेवाला मनुष्य ही अथवा मनुष्यों में ज्ञान में अग्रणी नेता ऋषि ही, अति प्रकाशमान, धीर तथा सबका हितकारी होकर, वेदरूपी वैज्ञानिक काव्य द्वारा, इन वेदवाणियों का मनोहर, गुप्त, हृदय से जानने योग्य, भीतर रखा हुआ सार स्वयं जानता और दूसरों को बताता है।

चौथा खण्ड

ग्यारहवाँ सूक्त—वसिष्ठ। इन्द्र। बृहती। मध्यम।

६८०. अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥

हे परम शूर प्रभो ! आप इस चर-अचर जगत् के स्वामी हैं तथा स्वयं प्रकाशमान हैं। हम प्रेम और भक्ति से नम्र होकर आपको उसी प्रकार नमस्कार करते हैं जिस प्रकार बिना दुही गौएँ प्यारे बछड़े को देखकर प्रेम से भर जाती हैं।

६८१. न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥

हे परम धनवान् परमेश्वर ! आपके समान दूसरा कोई भी न तो द्युलोक में और न पृथिवीलोक में, न तो उत्पन्न हुआ और न उत्पन्न होगा। अश्वों, गौवों, प्राणों, इन्द्रियों और अन्न, बल तथा ज्ञान की इच्छा करते हुए हम आपकी स्तुति, प्रार्थना तथा उपासना करते हैं।

बारहवाँ सूक्त –ऋषि–वामदेव। देवता—इन्द्र अथवा सब देवता। गायत्री छन्द। षड्ज स्वर।

६८२. कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता ॥

विचित्र, पूज्य तथा सदा वृद्धि को प्राप्त परमेश्वर हमारी किसी रक्षा के सामर्थ्य और किसी बुद्धि-बलयुक्त व्यवहार के द्वारा मित्र हो जाता है।

६८३. कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृढा चिदारुजे वसु ॥

हे जीवात्मन् ! सुखस्वरूप, सत्य, हर्षकर पदार्थोंमें सबसे महान् और जीवनधारक रस के रूपमें वर्तमान तथा दृढ़ वासयोग्य जीवनधन परमात्मा आरोग्य प्राप्त कराने केलिये तुझे आनन्दित करे।

६८४. अभी षु णः सखीनामविता जरितृणाम् । शतं भवास्यूतये ॥

हे परमेश्वर ! आप हमारे मित्र तथा उपासकों की रक्षा के लिये सौ वर्षों तक रक्षक बने रहें।

तेरहवाँ सूक्त—ऋषि नोधा। देवता इन्द्र। बृहती छन्द। मध्यम स्वर।

६८५. तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥

जैसे गौएं अपने घरों में अपने प्यारे बच्चे के लिये प्रेम भरे स्वर से बोलती हैं, उसी प्रकार हे मनुष्यो ! हम उस शत्रुओं के नाशक, बाधा-निवारण करने वाले परमेश्वर की वेद के मन्त्रों से प्रेम-पूर्वक स्तुति करते हैं।

६८६. द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥

दिव्य गुणों में रहनेवाले, उत्तमदाता, बलों से परिपूर्ण, प्रजाओं के पालक परमात्मा से हम ऐसे सैकड़ों तथा सहस्रों प्रकार के अन्न, बल और ज्ञान को माँगते हैं, जिसके द्वारा निवास के लिए घर पा सकें, और गो आदि धनों से पूर्ण हो सकें।

चौदहवाँ सूक्त—कलि प्रागाथ ऋषि। इन्द्र देवता। बृहती छन्द। मध्यम स्वर।

६८७. तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रं सबाध ऊतये ।
बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥

जिस प्रकार युद्ध में योधा और कुटुम्ब में पालन करनेवाले को याद किया जाता है, उसी प्रकार बाधाओं से सताये हुए हम अपनी रक्षा के लिये आत्मिक बलों द्वारा ज्ञान देनेवाले इन्द्र को याद करते हैं।

६८८. न यं दुध्रा वरन्ते न स्थिरा मुरो मदेषु शिप्रमन्धसः ।
य आदृत्या शशमानाय सुन्वते दाता जरित्र उक्थ्यम् ॥

जिस उत्तम ज्ञानी परमेश्वर को दुष्ट, काम-क्रोध आदि, और स्थिर आलस्य आदि गुण तथा मरणशील क्षणिक भाव भी नहीं रोक सकते, और जिसको चञ्चलचित्त तथा दुष्ट मनुष्य स्वीकार

नहीं किया करते, वह परमात्मा स्तुति करनेवाले, योगाभ्यासी तथा सत् विद्या का उपदेश करनेवाले पुरुष के लिये प्राण की आनन्दयुक्त अवस्थाओं में वेदमय ज्ञान को ला देता है।

पांचवां खण्ड

१५ वाँ सूक्त—मधुच्छन्दा। पवमान सोम। गायत्री। षड्ज।

६८९. स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया। इन्द्राय पातवे सुतः॥

हे सोम परमेश्वर! आप रसपूर्ण, आनन्ददायक भक्ति की धारा से हमें पवित्र कीजिये। यह भक्ति ऐश्वर्यशाली जीवात्मा की तृप्ति के लिये सम्पादित की गई है।

६९०. रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहते। द्रोणे सधस्थमासदत्॥

दुष्टों के नाश करनेवाला, संसार को देखनेवाला परमात्मा शक्ति से गति करनेवाले जगत् में और साथ ही स्थिर रहनेवाले अन्तरिक्ष को भी सब ओर से व्याप्त किये हुए है।

६९१. वरिवोधातमो भुवो मंहिष्ठो वृत्रहन्तम। पर्षि राधो मघोनाम्॥

अज्ञान तथा दुष्टों के नाशक प्रभो! आप श्रेष्ठ धनों के धारण करनेवाले और सबसे बड़े दानी हैं। आप ही यज्ञ करनेवालों को धन-धान्य से भरपूर करते हैं।

१६ वाँ सूक्त—गौरिवीति। सोम। ककुप्। ऋषभ।

६९२. पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः। महि द्युक्षतमो मदः॥

हे सबसे अधिक मधुर प्रभो! आप जीवात्मा के लिए पवित्र कीजिये। हे सोम! आप सबसे अधिक ज्ञानपूर्ण और आनन्दस्वरूप हैं। आप महान् और हर्ष की मूर्ति हैं।

६९३. यस्य ते पीत्वा वृषभो वृषायतेऽस्य पीत्वा स्वर्विदः।
स सुप्रकेतो अभ्यक्रमीदिषोऽच्छा वाजं नैतशः॥

हे परमेश्वर! आपके जिस मधुर आनन्द-रस को पीकर अपने अन्दर सुख की वर्षा करनेवाला जीवात्मा इन्द्रियों के द्वारा सुख का भोग करता है, वह सुख प्राप्त करानेवाले आनन्द-रस को पीकर उत्तम ज्ञान प्राप्त करके मन की इच्छाओं को वैसे ही पार कर लेता है जैसे घोड़ा युद्धक्षेत्र में।

१७ वाँ सूक्त—अग्निचाक्षुष ऋषि। पवमान सोम देवता। उष्णिक् छन्द। ऋषभ स्वर।

६९४. इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः। श्रुष्टे जातास इन्दवः स्वर्विदः॥

ये मनोहर उपासनायें उस ऐश्वर्यशाली आत्मा को अच्छे प्रकार से प्राप्त होती हैं जो ज्ञानयुक्त है। ज्ञानयुक्त आत्मा में प्रकट हुई वे उपासनायें सरस ज्योतियों के रूप में आनन्द देनेवाली होती हैं।

६९५. अयं भराय सानसिरिन्द्राय पवते सुतः। सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे॥

यह उत्पन्न किया गया भक्तिरस सबके सेवनयोग्य है। यह इन्द्र—जीवात्मा की उन्नति के लिये

प्रकट हो रहा है। सबका प्रेरक पवित्र करनेवाला प्रभु काम-क्रोध आदि को जीतनेवाले उपासक को इसप्रकार जान लेता और चिताता है कि जैसे ज्ञानी के लिये ज्ञान देता है।

६९६. अस्येदिन्द्रो मदेष्वा ग्राभं गृभ्णाति सानसिम् ।
वज्रं च वृषणं भरत् समप्सुजित् ॥

जीवात्मा, उपासना के आनन्दों में सेवन और ग्रहण करने योग्य ज्ञानरूपी वज्र को चारों ओर फैंके अर्थात् फैलावे। कर्मों पर विजय प्राप्त करता हुआ योगी अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करता है तथा सुखवर्षक प्रभु को प्राप्त कर लेता है।

१८वाँ सूक्त—अन्धीगुः श्यावाश्वि ऋषि। सोम पवमान देवता। गायत्री छन्द। षड्ज स्वर।

६९७. पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे ।
अप श्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् ॥

हे उपासको! सभी वस्तुएँ तुम्हारे लिये मिल सकती हैं, यदि तुम आनन्दित करनेवाली भक्ति की रक्षा के लिये लम्बी जीभ वाले कुत्ते के समान अपने लालची मन को सांसारिक विषयों से दूर रखो।

६९८. यो धारया पावकया परिप्रस्यन्दते सुतः । इन्दुरश्वो न कृत्व्यः ॥

जितेन्द्रिय तथा ऐश्वर्यशाली यह उपासक अश्व के समान कार्यकुशल हो जाता है जो पवित्र धारणा-शक्ति द्वारा भक्तिपूर्ण होकर सब ओर ज्ञान के उपदेशों द्वारा विचरता है।

६९९. तं दुरोषमभी नरः सोमं विश्वाच्या धिया । यज्ञाय सन्त्वद्रयः ॥

उस क्रोधरहित उपासक के पास मनुष्य विश्वव्यापी प्रेमबुद्धि से आया करते हैं। उपासकों को चाहिये कि वे पर्वत के समान दृढ़ होकर उपासना-यज्ञ के लिये बलिदान हो जावें।

१९ वाँ सूक्त—आन्धीगव ऋषि। सोम देवता। जगती छन्द। निषाद स्वर।

७००. अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते ।
आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वञ्चमरुहद्विचक्षणः ॥

उपासक योगी प्रकृति में स्थित होकर उन प्रिय कामों को किया करता है जिनका आश्रय लेकर वह अपनी उन्नति किया करता है। महान् प्रेरणा देनेवाले परमेश्वर के दिए हुए शरीर को धारण कर वह उस पर शासन करता है।

७०१. ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर्धियो अस्या अदाभ्यः ।
दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यां३ नाम तृतीयमधि रोचनं दिवः ॥

सच्चे उपासक की जीभ प्यारी मधुरवाणी को कानों में बरसाती है। वह मधुरभाषी उपासक पापियों द्वारा दबाया नहीं जा सकता, अपने माता-पिता का श्रेष्ट पुत्र वह उपासक, माता-पिता को भी अज्ञात उस तीसरे ही यशस्वी नाम को पाता है जो विद्वानों में शोभा को बढ़ानेवाला है।

७०२. **अव द्युतानः कलशाँ अचिक्रदन्नृभिर्येमाणः कोश आ हिरण्यये ।**
अभी ऋतस्य दोहना अनूषताधि त्रिपृष्ठ उषसो वि राजसि ॥

दीप्तिमान्, प्रेरक, उपासकजनों से ध्यान किया गया परमात्मा आनन्द-कोश में धीरे-धीरे अनहत नाद उत्पन्न करता है । सत्यस्वरूप प्रभु को प्राप्त करने में यत्नशील उपासक उसकी स्तुति करते हैं और वह तीन प्राणों के संगम स्थान, त्रिपुटी स्थल पर उषा के समान प्रकाशमान विशोका प्रज्ञा में प्रकाशित होता है ।

छठा खण्ड

२० वाँ सूक्त—अग्नि वैश्वानर वा शंयु बार्हस्पत्य ऋषि । अग्नि देवता । बृहती छन्द । मध्यम स्वर ।

७०३. **यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।**
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥

हे मनुष्यो ! तुम्हारे प्रत्येक यज्ञ में तथा प्रत्येक वचन में समर्थ तथा महान् अग्नि का गुण वर्णन हो । हम सब प्यारे मित्र के समान, मृत्युरहित, वेदों का ज्ञान देनेवाले, सर्वज्ञ उस परमात्मा की प्रशंसा (गुणकीर्तन करते हैं ।)

७०४. **ऊर्जो नपातं स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये ।**
भुवद्वाजेष्वविता भुवद्वृध उत त्राता तनूनाम् ॥

जिसका बल कभी क्षीण नहीं होता ऐसे अग्नि परमात्मा के लिये, कर्मफल तथा श्रेष्ठ पदार्थों की प्राप्ति के लिये, अपना आत्मसमर्पण करते हैं, क्योंकि वह हमारा हितकारी है । वह बुद्धि तथा बल के कार्यों में रक्षक है और हमारी वृद्धि के लिये शरीरों का पालन करनेवाला भी है ।

२१ वाँ सूक्त—भरद्वाज बार्हस्पत्य अथवा साकमश्व ऋषि । अग्नि देवता । गायत्री छन्द । षड्ज स्वर ।

७०५. **एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः । एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥**

हे परमात्मन् ! आइये हमारे हृदय में विराजिये । आपके निमित्त मैं सत्य (वैदिक) और दूसरी लौकिक वाणियों को अच्छे प्रकार बोला करूँ । मैं आपकी स्तुति के वचनों में लगा रहूँ । उसके अतिरिक्त इतर=आसुरी (ऐ० ३. ५ ५.) मन को अस्थिर करनेवाले, वचनों को दूर रखूँ । आप इन इन्दुओं=ध्यान-अभ्यास के रसों तथा ब्रह्मयज्ञों से हमारे हृदय में विशेष रूप से प्रकाशित होते हैं ।

७०६. **यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम् । तत्र योनिं कृणवसे ॥**

हे अग्ने परमात्मन् ! आपकी (कर्मानुकूल फल देने की) इच्छा जहाँ की होती है वहीं उस लोक वा देश में जीवों को मनुष्यादि योनियों में नियत कर देते हैं और उत्तम बल को भी धारण कराते हैं ।

७०७. न हि ते पूर्तमक्षिपद्भुवन्नेमानां पते । अथा दुवो वनवसे ।।

हे अग्ने परमात्मन् ! आपकी उत्पन्न की हुई आवश्यकताओं की पूर्ति करनेवाली वस्तुएँ हमारी इन्द्रियों का पतन करनेवाली न हों। हे इन्द्रियों तथा शरीर के पालन करनेवाले प्रभो ! इस हेतु आप हमारी भक्ति को स्वीकार कीजिये ।

२२ वाँ सूक्त—सौभरि। इन्द्र। ककुप्। ऋषभ।

७०८. वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः । वज्रिञ्चित्रं हवामहे ।।

हे शक्तिशाली प्रभो ! हम आपको अपना स्वामी मानकर अपनी रक्षा चाहते हुए और प्रजा की सेवा करते हुए, आपकी उपासना करते हैं।

७०९. उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् ।
त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ।।

हे इन्द्र परमेश्वर ! अपने कार्यों की रक्षा के लिये हम उपासना करते हैं। आप युवा और उग्र हैं और काम-क्रोध आदि को नष्ट करने वाले हैं। हम परस्पर मित्र रहते हुए आश्रयणीय और रक्षक आपको वरण करते हैं।

२३ वाँ सूक्त—नृमेध। इन्द्र। ककुप्। ऋषभ।

७१०. अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे । उदेव ग्मन्त उदभिः ।।

हे परमेश्वर ! हम उपासकजन अपनी कामनाओं को पूरा करने के लिये आपकी प्रार्थना करते हैं और जैसे जल जल में मिलकर एक हो जाता है, उसी प्रकार योग द्वारा आपके ध्यान में लीन हो जाते हैं।

७११. वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि । वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे ।।

हे अविनाशी ज्ञानवाले शूर परमात्मन् ! ब्रह्मज्ञानी प्रतिदिन स्तुतियों द्वारा उसी प्रकार आपकी महिमा की वृद्धि करता है, जिस प्रकार नदियों से जल की वृद्धि होती है।

७१२. युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे वचोयुजा । इन्द्रवाहा स्वर्विदा ।।

प्रेरक ईश्वर की स्तुति-द्वारा उपासक लोग विशाल समाधिवाले शरीर में वाणी द्वारा वश में हो जाने वाले प्राण और अपान को योग से अपने वश में कर लेते हैं। ये प्राण और अपान प्रकाश और सुख को दिलाने वाले और आत्मा को धारण करनेवाले हैं।

—०—

दूसरा अध्याय दूसरा अर्धप्रपाठक

(७१३ मन्त्र से ७७४ मन्त्र तक)

सूक्तों के अनुसार ऋषि, देवता, छन्द और स्वर

ऋषि—१, ४ श्रुतकक्ष। २, १४, १५ वसिष्ठ। ३ मेध्यातिथि और प्रियमेध, ५ इरिमिठि। ६ कुसीद। ७ त्रिशोक। ८ प्रियमेध। ९ विश्वामित्र। १० मधुच्छन्दा। ११ शुनःशेप। १२ नारद। १३ वामदेव। १६ अवत्सार। १७, १८ असित काश्यप वा अमहीयु। १९, २१ श्यावाश्व। २० भरद्वाज आदि सात ऋषि। २२ वें सूक्त में पहले मन्त्र का श्यावाश्व, दूसरे का प्रजापति अथवा दोनों का अग्नि चाक्षुष और तीसरे का अम्बरीष या प्रजापति है।

देवता— १–१२ इन्द्र। १३, १६ अग्नि। १४ उषा। १५ दोनों अश्वि। १७–२२ सोम।

छन्द—१–११, १६–१९, २१ गायत्री। १२ उष्णिक्। १३-१५, २० बृहती। २२ वें सूक्त में पहले-दूसरे मन्त्र का उष्णिक् और तीसरे का अनुष्टुप्।

स्वर—१–११, १६–१९, २१–२२ षड्ज। १२ ऋषभ। १३–१५, २० मध्यम।

पहला खण्ड

७१३. पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत। विश्वसाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम् ॥

पहला सूक्त—हे मनुष्यो! तुम अन्न आदि के रक्षक, अनन्त कर्मों वाले, आनन्ददायक महान् पूज्य परमेश्वर का गान करो।

७१४. पुरुहूतं पुरुष्टुतं गाथान्यां३ सनश्रुतम्। इन्द्र इति ब्रवीतन ॥

हे मनुष्यो! तुम उसी को 'इन्द्र' इस नाम से पुकारो जो कि बहुत से मनुष्यों द्वारा अनेक बार पुकारा जाता है, जिसकी बहुत स्तुति की जाती है, जो गान करने योग्य है और सदा से प्रसिद्ध सनातन तथा नित्य है।

७१५. इन्द्र इन्नो महोनां दाता वाजानां नृतुः। महाँ अभिज्ञ्वा यमत् ॥

परमेश्वर ही हमारे लिये बड़े बलों का देनेवाला है, कर्मानुकूल चलाने वाला है, महान् है और सर्वज्ञ होकर सबको कर्ममय बन्धनों से बांधता है।

७१६. प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत। सखायः सोमपाव्ने ॥

दूसरा सूक्त—हे मित्रो! तुम दुःखनाशक, सर्वव्यापक, भक्तों के रक्षक परमेश्वर के लिये प्रसन्न करनेवाले गुणों का गान करो।

७१७. शंसेदुक्थं सुदानव उत द्युक्षं यथा नरः। चकृमा सत्यराधसे ॥

जिस प्रकार नेता लोग दानी की स्तुति करते हैं उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य उत्तम दानी परमेश्वर

की श्रेष्ठ 'ओ३म्' पद वाली वेदमन्त्रमय स्तुति करे। हम उपासक सत्यरूप परमात्मा की ही स्तुति करते हैं।

७१८. त्वं न इन्द्र वाजयुस्त्वं गव्युः शतक्रतो । त्वं हिरण्ययुर्वसो ।।

हे परमेश्वर! आप हमारे ज्ञान, बल तथा अन्न को देनेवाले हैं आप ही इन्द्रियों, वाणी तथा गौ आदि पशुओं के देनेवाले हैं। हे सैकड़ों कर्मों के करनेवाले, सबको वास देने वाले प्रभो ! आप ही प्रिय धन को देनेवाले हैं।

७१९. वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः । कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ।।

तीसरा सूक्त—हे प्रभो ! हम बुद्धिमान् और आपको पाने के इच्छुक होकर 'ओं' और मन्त्रों द्वारा आप की स्तुति करते हैं।

७२०. न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ । तवेदु स्तोमैश्चिकेत ।।

हे वज्रिन् प्रभो ! मैं कार्यों के आरम्भ में आपके अतिरिक्त और किसी की स्तुति नहीं करता। स्तुतियों द्वारा आपका ही ज्ञान प्राप्त करता हूँ।

७२१. इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति । यन्ति प्रमादमतन्द्राः ।।

विद्वज्जन अपना साक्षात्कार करानेवाले आप की ही इच्छा करते हैं, वे निद्रा की भी इच्छा नहीं करते। वे आलस्य छोड़कर आनन्द को प्राप्त करते हैं।

७२२. इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः । अर्कमर्चन्तु कारवः ।।

चौथा सूक्त—हमारे वचन इन्द्र की ही स्तुति करें। श्रेष्ठ कार्य करने वाले उपासकजन पूज्य परमेश्वर की ही भक्ति करें।

७२३. यस्मिन् विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः । इन्द्रं सुते हवामहे ।।

जिस परमेश्वर में सात योगभूमियों में आसन जमानेवाले मनुष्य समस्त योग की लक्ष्मियों का वर्णन करते हैं, जिसमें सभी शोभायें वर्तमान हैं, जिसमें सातों इन्द्रियाँ आनन्द-लाभ करती हैं, उसको हम उपासकजन मन शुद्ध हो जाने पर और ऋतम्भरा प्रज्ञा के सिद्ध हो जाने पर पुकारा करते हैं।

७२४. त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत । तमिद्वर्धन्तु नो गिरः ।।

विद्वज्जन तीनों लोकों में चेतना देनेवाले जिस यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं, उसी यज्ञ को हमारी वाणियाँ बढ़ावें।

दूसरा खण्ड

७२५. अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि । एहीमस्य द्रवा पिब ।।

पांचवाँ सूक्त—हे इन्द्र ! आपकी पवित्र उपासना को इस ज्ञानयज्ञ में सम्पादन कर रहा हूँ। आप हमारे हृदय में प्रकट होकर इसे स्वीकार कीजिये।

७२६. **शचिगो शचिपूजनायं रणाय ते सुतः। आखण्डल प्र हूयसे ॥**

शक्तियों के कारण पूज्य, हे शक्तिशाली परमेश्वर! रमणीय आपके लिये यह भक्ति समर्पित है। अज्ञान-नाशक प्रभो! आपको ही बुलाया जा रहा है।

७२७. **यस्ते शृङ्गवृषो णपात् प्रणपात् कुण्डपाय्यः। न्यस्मिन् दध्र आ मनः ॥**

हे परमेश्वर! अज्ञान को नष्ट करनेवाला आत्मा को न गिरने देनेवाला, प्राणों द्वारा पान करने योग्य आत्मा की रक्षा करनेवाला जो आपका ज्ञानरस है, उसमें योगी ध्यान को स्थिररूप में लगाया करता है।

७२८. **आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं सं गृभाय। महाहस्ती दक्षिणेन ॥**

छठा सूक्त—हे महान् शक्तिशाली इन्द्र! आप अन्न आदि के विज्ञान से युक्त, ग्रहण करने योग्य वेदज्ञान को हमें ग्रहण कराइये।

७२९. **विद्मा हि त्वा तुविकूर्मि तुविदेष्णं तुवीमघम्। तुविमात्रमवोभिः ॥**

हे इन्द्र! आपका हम, आपकी रक्षाओं के कारण, अनेक कर्मों को करनेवाला, बहुत धनों का देने वाला, उत्तम ज्ञान-सम्पन्न और बहुत से ज्ञान-साधनों से युक्त समझते हैं।

७३०. **न हि त्वा शूर देवा न मर्तासो दित्सन्तम्। भीमं न गां वारयन्ते ॥**

हे परमेश्वर! जिस प्रकार भयंकर बैल को (जब वे आपस में युद्ध करते होते हैं) कोई नहीं हटा सकता, उसी प्रकार रुद्ररूपधारी दुष्टोंके विनाश के लिये उद्यत आपको न तो प्राकृतिक शक्तियाँ और न मनुष्य ही हटा सकते हैं।

७३१. **अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये। तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥**

सातवाँ सूक्त—हे सुखवर्षक प्रभो! मैं अपने शुद्ध मनमें तृप्ति के लिये भक्ति का सम्पादन कर रहा हूँ। आप स्वीकार करें और आनन्द प्रदान करें।

७३२. **मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन्। मा कीं ब्रह्मद्विषं वनः ॥**

हे प्रभो! मूढ़, केवल भोजन की चिन्ता करने वाले, और केवल हँसी-मजाक करनेवाले लोग आपकी सत्ता के ही विरुद्ध न होने पावें। वेद और ब्रह्मज्ञान से द्वेष करनेवाले को आप अपनी शरण में नहीं ले सकते।

७३३. **इह त्वा गोपरीणसं महे मन्दन्तु राधसे। सरो गौरो यथा पिब ॥**

हे प्रभो! यहाँ ही महान् ब्रह्मज्ञान पाने के लिये उपासक लोग ज्ञान-रश्मियों तथा वेदवाणी से परिपूर्ण आपको प्रसन्न करें और आप उनके भक्तिपूर्ण हृदय में उसी प्रकार विराजिये जैसे गौर मृग जल से पूर्ण तालाब पर आकर विराजता है।

७३४. इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् । अनाभयिन् ररिमा ते ॥

आठवाँ सूक्त—हे शरीर में बसनेवाले, भयरहित जीवात्मन् ! तू इस जीवन-सामर्थ्य को खूब अच्छी तरह ग्रहण कर। यह अन्न और शक्ति तेरे लिये ही भेंट है।

७३५. नृभिर्धौतः सुतो अश्नैरव्या वारैः परिपूतः । अश्वो न निक्तो नदीषु ॥

सूक्ष्म तत्त्वदर्शी मनुष्यों द्वारा शुद्धरूप में प्राप्त कियागया आत्मज्ञान, चितिशक्ति के प्रकट करने वाले योगरूपी साधनों द्वारा परिशोधित होकर, ज्ञानधाराओं में उसी प्रकार शुद्ध हो जाता है, जैसे घोड़ा नदी में नहाकर शुद्ध हो जाता है।

७३६. तं ते यवं यथा गोभिः स्वादुमकर्म श्रीणन्तः । इन्द्र त्वास्मिन्त्सधमादे ॥

जिस प्रकार पाचक दूध आदि मिलाकर जौ के दलिये आदि को स्वादिष्ट बनाते हैं, उसी प्रकार वे साधकजन अपनी भक्ति को ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त रसों से मिलाते हुए इह समाधि-दशा में अत्यन्त हर्षदायक बनाते हैं।

तीसरा खण्ड

७३७. इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते । पिबा त्वा३स्य गिर्वणः ॥

नवाँ सूक्त—हे ज्ञान तथा साधनों के स्वामी इन्द्र=जीवात्मन् ! तू ओज के साथ सम्पादित इस प्रशंसनीय आनन्द को अच्छी प्रकार ग्रहण कर।

७३८. यस्ते अनु स्वधामसत् सुते नि यच्छ तन्वम् । स त्वा ममत्तु सोम्य ॥

हे जीव ! तेरा ज्ञान और आनन्द अपने स्वरूप में धारण करने के पश्चात् उत्पन्न होता है, उसमें तू अपने स्वरूप को समर्पित कर। वह आनन्दरस तुझे आनन्दित करे।

७३९. प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः । प्र बाहू शूर राधसा ॥

हे इन्द्र=जीवात्मन् ! वह आनन्दरस तेरी दोनों कुक्षियों (ज्ञान और कर्म) को और सिर को ब्रह्मज्ञान द्वारा व्याप्त करे और तेरी बाहों को बल से पूर्ण करे।

७४० आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत । सखाय स्तोमवाहसः ॥

दसवाँ सूक्त— हे स्तुतिकर्त्ता मित्रो ! आओ एकत्र बैठकर इन्द्र के गुणों का गान करो।

७४१. पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम् । इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥

ज्ञानरस के उत्पन्न हो जाने पर उस इन्द्र का गान करो, जो दुष्टों का नाशक है, श्रेष्ठ ज्ञान और धनों का स्वामी है।

७४२. स घा नो योग आ भुवत् स राये स पुरन्ध्या । गमद् वाजेभिरा स नः ॥

वही परमेश्वर योग में तथा समाधि-दशा में साक्षात् होता है, वही ऐश्वर्यों में और वही बुद्धि-द्वारा भी प्रत्यक्ष होता है। वही हमें ज्ञानों द्वारा प्राप्त होता है।

७४३. योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ॥

ग्यारहवाँ सूक्त—हे मित्रो ! उस अत्यन्त बलशाली इन्द्र को हम प्रत्येक योगाभ्यास में और ज्ञानप्राप्ति के समय, अपनी रक्षा के लिये बुलाते हैं।

७४४. अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् । यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥

जिसको हमारे पालन करनेवाले आचार्य सबसे पहले स्मरण किया करते हैं, ऐसे सनातन मोक्ष-प्रद की ओर ले जानेवाले, बहुत-सी शुभकामनाओं को पूरा करने वाले परमेश्वर को मैं बार-बार स्मरण करता हूँ।

७४५. आ घा गमद्यदि श्रवत्सहस्रिणीभिरूतिभिः । वाजेभिरुप नो हवम् ॥

यदि वह परमेश्वर हमारी पुकार सुन ले तो सहस्रों रक्षा करनेवाली शक्तियों और सत्य-ज्ञान के साथ हमको प्राप्त ही हो जावे।

७४६. इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थ्यम् । विदे वृधस्य दक्षस्य महाँ हि षः ॥

बारहवाँ सूक्त—हे परमेश्वर ! भक्तियों के पूर्ण हो जाने पर आप हमारे वेदानुकूल कर्मों को पवित्र करते हैं। बढ़ेहुए बल को पाने के लिये वह परमेश्वर महान् साधन है।

७४७. स प्रथमे व्योमनि देवानां सदने वृधः । सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सुजित् ॥

वह परमेश्वर सूर्यादि देवों के स्थान विस्तृत आकाश में सबसे बड़ा है, श्रेष्ठों के काम को पूरा करनेवाला है, उत्तम यश तथा ज्ञान से युक्त है और कर्मबन्धन में फँसे जीवों की अपेक्षा उत्कृष्ट तथा कर्मानुकूल फलदायी है।

७४८. तमु हुवे वाजसातय इन्द्रं भराय शुष्मिणम् । भवा नः सुम्ने अन्तमः सखा वृधे ॥

बल की प्राप्ति के लिये, काम आदि शत्रुओं से युद्ध के लिये मैं उसी महाबली परमेश्वर को स्मरण करता हूँ कि हे प्रभो आप हमारी वृद्धि और सुख के लिये हमारे अन्तरङ्ग मित्र होइये।

चौथा खण्ड

७४९. एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे ।
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥

तेरहवाँ सूक्त—मनुष्यो ! तुम्हारे लिये उस प्रकाशस्वरूप परमात्मा का उपदेश किया जाता है जो पदार्थों के गुणवर्णन द्वारा बल का रक्षक है, प्रिय है, बुद्धि देनेवाला स्वामी है, अहिंसक, कर्मफल पहुंचानेवाला और अमृत है।

७५०. स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत् स्वाहुतः ।
सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवं राधो जनानाम् ।।

वह परमात्मा विश्व के पालक, दीप्तिमान् सूर्य तथा पृथिवी को नियुक्त करता है, उसकी उत्तम कीर्ति है, वह सर्वत्र व्यापक है, वही सबका उत्पादक है, वही श्रेष्ठ तथा उत्तम शान्तगुणसम्पन्न है और वही मनुष्यों को उत्तम धन प्रदान करता है ।

७५१. प्रत्यु अदर्श्यायत्यू३च्छन्ती दुहिता दिवः ।
अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ।।

१४ वाँ सूक्त—परमात्मा द्वारा उत्पन्न उषा, बुद्धि तथा वेदवाणी उपासक को प्रत्यक्ष दिखाई देती है। वह अज्ञान को दूर करनेवाली, अच्छे कर्मों में लगानेवाली तथा आत्मा में प्रकाश करने वाली है।

७५२. उदुस्त्रियाः सृजते सूर्यः सचा उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत् ।
तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि ।।

प्रेरक और उत्पादक सूर्य=परमात्मा निवासयोग्य भूमियों को एकसाथ रचता है और उदय होनेवाले गतिशील पिण्डों को भी कान्तिमान् बनाता है। हे उषा ! तेरे और सूर्य के प्रकट होने के समय हम भक्ति करने योग्य प्रभु का ध्यान करें ।

७५३. इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः ।।

१५ वाँ सूक्त—हे शरीर में वास करने वाले प्राण तथा अपान ! ये इन्द्रियाँ तुम्हारी महिमा को प्रकट करती हैं । मैं उपासक अपनी रक्षा के लिये प्राणायाम द्वारा तुम दोनों को शरीर के भीतर तथा बाहर दूर तक ले जाता हूँ । अपने कर्म द्वारा जीवात्मा को शरीर में वास कराने वाले तुम दोनों प्रत्येक शरीर में गति कर रहे हो ।

७५४. युवं चित्रं ददथुर्भोजनं नरा चोदेथां सूनृतावते ।
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु ।।

हे नेतारूप प्राण और अपान ! तुम दोनों वेदानुकूल चलनेवाले के लिये विचित्र-विचित्र भोग्य पदार्थों को देते हो और उसे कर्म में प्रेरित करते हो। तुम दोनों एकसमान होकर नीचे की ओर जानेवाले अपने वेग को नियन्त्रित करो और उत्तम शुद्ध वायु का पान करो ।

पांचवां खण्ड

७५५. अस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः । पयः सहस्रसामृषिम् ।।

१६वाँ सूक्त—इस सोम=परमात्मा की अनादि वे ज्ञानरूपी कान्ति का अनुसरण करके विद्वान् हजारों फल देनेवाले, शुद्ध गूढ़ बातों को दिखाने वाले ज्ञानरूपी दूध को दुहते हैं।

७५६. अयं सूर्य इवोपदृगयं सरांसि धावति । सप्त प्रवत आ दिवम् ।।

यह परमात्मा, सूर्य के समान सबका द्रष्टा है। यह दिन-रात, सब लोकों को प्रकाशित कर रहा है और द्यौलोक के सात प्रकार के गतिमान् पदार्थों को चलाता है।

७५७. अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवनोपरि । सोमो देवो न सूर्यः ।।

यह परमात्मा सूर्य के समान सब लोकों के ऊपर उनको गति देता हुआ विराजता है।

७५८. एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः । हरिः पवित्रे अर्षति ।।

१७वाँ सूक्त—यह सोम=आत्मा अनादि जन्म ग्रहण की शक्ति से इन्द्रियों के लिए प्रकट होकर और उनको गति देने वाला होकर प्राण और अपान के द्वारा गति करता है।

७५९. एष प्रत्नेन मन्मना देवो देवेभ्यस्परि । कविर्विप्रेण वावृधे ।।

यह चेतन जीवात्मा अपनी अनादि मननशक्ति से ज्ञानी होकर भी अपने से अधिक ज्ञानी परमात्मा के साथ उन्नति को प्राप्त करता है।

७६०. दुहानः प्रत्नमित्पयः पवित्रे परि षिच्यसे । क्रन्दं देवां अजीजनः ।।

हे जीवात्मन् ! अपने अनादि काल से वर्तमान प्राणों को ही जीवनरूप में दुहता हुआ तू प्राण-अपान से सम्बद्ध होता है। शब्द करता हुआ तू इन्द्रियगण को प्रकट करता है।

७६१. उप शिक्षापतस्थुषो भियसमा धेहि शत्रवे । पवमान विदा रयिम् ।।

१८वाँ सूक्त—हे पवित्र परमात्मन् ! आप नीच व्यवहार करनेवालों को शिक्षा दीजिये, शत्रु को भय दिखलाइये। श्रेष्ठों को धन प्राप्त कराइये।

७६२. उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् । इन्दुं देवा अयासिषुः ।।

विद्वज्जन उत्तम-गुण-सम्पन्न, प्रजाओं में व्यापक, वेदवाणी से सुशोभित, दुःखनाशक परमेश्वर के समीप पहुंचते हैं।

७६३. उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे । अभि देवाँ इयक्षते ।।

हे मनुष्यो ! इस पवित्र, विद्वानों को विशेष ज्ञान देनेवाले,ऐश्वर्यशाली परमेश्वर के लिये स्तुतिगान करो।

छठा खण्ड

७६४. प्र सोमासो विपश्चितोऽपो नयन्त ऊर्मयः । वनानि महिषा इव ।।

उन्नीसवाँ सूक्त—सौम्य तथा विद्वान् उपासक जनता को उसी प्रकार अपने साथ ले चलते हैं जैसे कि बादल अपने साथ पानी को।

७६५. अभि द्रोणानि बभ्रवः शुक्रा ऋतस्य धारया । वाजं गोमन्तमक्षरन् ॥

काषायवस्त्रधारी उपासक संन्यासी, ज्ञान और तप की धारणा से सुशोभित होकर, राष्ट्रों में जा-जाकर वेदवाणी-युक्त ज्ञान का प्रचार किया करते हैं।

७६६. सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमा अर्षन्तु विष्णवे ॥

संसार के समस्त सौम्य पदार्थ और ज्ञान ऐश्वर्यशाली, गतिशील, वरणीय विद्वान् नेता के लिये, अन्य विद्वानों के लिये तथा उनके व्यापक सङ्गठन के लिये सदा प्राप्त होते रहें।

७६७. प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा ।
अंशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥

२० वाँ सूक्त—हे सौम्य उपासक ! तू विद्वानों को सन्तुष्ट करने के लिये, व्यापक परमेश्वर की भक्तिद्वारा जल से पूर्ण नदी के समान, वृद्धि को प्राप्त होता है। तू जागता हुआ, आनन्द-मग्न होकर मधुर आनन्द को देनेवाले भण्डार परमात्मा की ओर बढ़।

७६८. आ हर्यतो अर्जुनो अत्के अव्यत प्रियः सूनुर्न मर्ज्यः ।
तमीं हिन्वन्त्यपसो यथा रथं नदीष्वा गभस्त्योः ॥

अभिलषणीय, पुत्र के समान प्रिय, पापरहित जीवात्मा सर्वव्यापक प्रभु की भक्ति में मग्न हो जाता है। जिस प्रकार योद्धा अपनी सवारी को नदियों में भी लेजाकर पार पहुँचाते हैं, उसी प्रकार वेगवान् प्राण उपासक को उसकी इडा-पिंगला और प्राण-अपान की धाराओं में प्रेरित करते हैं।

७६९. प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम् । सुता विदथे अक्रमुः ॥

२१ वाँ सूक्त—ज्ञान-यज्ञ में नियुक्त, आनन्द के देनेवाले सौम्य विद्वान् हमारे लिये ज्ञान-प्रदान में प्रवृत्त हुआ करते हैं।

७७०. आदीं हंसो यथा गणं विश्वस्यावीवशन्मतिम् । अत्यो न गोभिरज्यते ॥

जिस प्रकार घोड़ा अपने चालों से अपने गुण प्रकट करता है और जैसे जीवात्मा इस उत्पन्न हुए अपने शरीर को वश में रखता है, उसी प्रकार परमात्मा वेदवाणी द्वारा तथा अनेक प्रकार के सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय आदि कार्यों द्वारा अपने को प्रकट कर रहा है और समस्त संसार को वश में किये हुए है।

७७१. आदीं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥

अज्ञानसागर से पार उतरे हुए उपासक की चित्तवृत्तियाँ उसकी पवित्र, ऐश्वर्यशाली आत्मा को, परमेश्वर की प्राप्ति तथा आत्मिक तृप्ति के लिये, दृढ़ अभ्यासों द्वारा प्रेरित किया करती हैं।

७७२. अया पवस्व देवयू रेभन् पवित्रं पर्येषि विश्वतः । मधोर्धारा असृक्षत ॥

२२ वाँ सूक्त—हे उपासक ! तू परमात्मा से प्रेरित इस धारणा के द्वारा पवित्र हो, तभी अभ्यास करता हुआ सब प्रकार से योग्य हो जावेगा और तभी मधुर आनन्द की धारायें उत्पन्न होंगी।

७७३. पवते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रंह्या । अभ्यर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥

सब में व्यापक, दुःख दूर करने वाला परमात्मा सब विघ्नों को शीघ्र दूर कर देता है। प्रभो ! आप उपासकों को वीरतापूर्ण यश प्रदान कीजिये।

७७४. प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः । अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥

भक्त उपासक को प्राप्त हुई दिव्यवाणी को साधारण मनुष्य नहीं पा सकता। तप से पवित्र उपासको ! तुम अपने ध्यान-यज्ञ को नष्ट न होने दो। लोभरूपी कुत्ते को दूर करो।

—०—

दूसरा प्रपाठक

(७७५ मन्त्र से ८८५ मन्त्र तक)

तीसरा अध्याय पहला अर्धप्रपाठक

(७७५ मन्त्र से ८२९ मन्त्र तक)

सूक्तानुसार ऋषि, देवता, छन्द और स्वर

ऋषि—१ जमदग्नि। २, ५, १५ प्रमहीयु। ३ कश्यप। ४, १० भृगु वारुणि का जमदग्नि। ६, ७ मेधातिथि काण्व। ८ मधुच्छन्दा वैश्वामित्र। ९ वसिष्ठ। ११ उपमन्यु वासिष्ठ। १२ शंयु बार्हस्पत्य। १३ प्रस्कण्व काण्व। १४ नृमेध। १६ नहुष मानव। १७ वें सूक्त में पहले दो मन्त्रों का 'सिकत निवावरी' और अन्तिम मन्त्र का 'पृष्णि अजा'। १८ श्रुतकक्ष वा सुकक्ष। १९ जेता माधुच्छन्दस।

देवता—१-५, १०, ११, १५—१७ पवमान सोम। ६ अग्नि। ७ मित्रावरुण। ८, १२-१४, १८, १९ इन्द्र। ९ इन्द्र अग्नि।

छन्द—१—१०, १५,१८ गायत्री। ११ त्रिष्टुप्। १२—१४ बृहती। १६, १९ अनुष्टुप्। १७ जगती।

स्वर—१—१०, १५, १८ षड्ज। ११ धैवत। १२—१४ मध्यम। १६, १९ गान्धार। १७ निषाद।

पहला खण्ड

७७५. पवस्व वाचो अग्रियः सोम चित्राभिरूतिभिः । अभि विश्वानि काव्या ॥

पहला सूक्त—हे परमात्मन् ! सर्वश्रेष्ठ आप सब काव्यों और प्रार्थनाओं को अनेक प्रकार की रक्षाओं से सर्वतः पवित्र कीजिये।

७७६. त्वं समुद्रिया अपोऽग्रियो वाच ईरयन् । पवस्व विश्वचर्षणे ।।

हे संसार के द्रष्टा प्रभो ! आप सब में अग्रणी होकर वेदवाणियों को प्रकट करते हुए उन्नति की ओर ले जाने वाले कर्मों का उपदेश करते हैं। आप हमें पवित्र कीजिये।

७७७. तुभ्येमा भुवना कवे महिम्ने सोम तस्थिरे । तुभ्यं धावन्ति धेनवः ।।

हे कवि परमेश्वर ! आपकी महिमा के लिये ये भुवन उपस्थित हैं। आपके लिये ये वेदवाणियाँ प्रकट कर रही हैं।

७७८. पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने । विश्वा अप द्विषो जहि ।।

दूसरा सूक्त—हे परमेश्वर ! आत्मा में प्रत्यक्ष होकर तू उपासक के हृदय में प्रकट हो, हमें यशस्वी बना और सब द्वेष करनेवाले दुष्टों को नष्ट कर।

७७९. यस्य ते सख्ये वयं सासह्याम पृतन्यतः । तवेन्दो द्युम्न उत्तमे ।।

हे ऐश्वर्यशाली प्रभो ! ऐसी कृपा कीजिये कि आपकी उत्तमपूर्ण मित्रता में रहकर हम दुष्ट शत्रुओं को पराजित करें।

७८०. या ते भीमान्यायुधा तिग्मानि सन्ति धूर्वणे । रक्षा समस्य नो निदः ।।

हे परमात्मन् ! जो आपके तीक्ष्ण भयानक विद्युत् आदि शस्त्र दुष्टों के नाश करने के लिये हैं, उनके द्वारा हम सब की दुष्टों से रक्षा कीजिये।

७८१. वृषा सोम द्युमां असि वृषा देव वृषव्रतः । वृषा धर्माणि दध्रिषे ।

तीसरा सूक्त—हे सोम परमात्मन् ! आप सुखवर्षक और दीप्तियुक्त हैं, हे सर्वश्रेष्ठ देव ! आप धर्मानुकूल जगत् को चलानेवाले हैं और नियमों का पालन कराते हैं।

७८२. वृष्णस्ते वृष्ण्यं शवो वृषा वनं वृषा सुतः । स त्वं वृषन् वृषेदसि ।।

हे प्रभो ! बलिष्ठ आपका बल मोक्षसुख की वर्षा करने वाला है। आपकी सेवा से धर्म की वर्षा होती है, आपका साक्षात्कार सुखदायक है। इस प्रकार आप सब प्रकार धर्म और सुख की वर्षा करने वाले हैं।

७८३. अश्वो न चक्रदो वृषा सं गा इन्दो समर्वतः । विनो राये दुरो वृधि ।।

हे परमेश्वर ! सुखवर्षक आप हमारी अश्व के समान गति करने वाली ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को समान भाव से संचालित करते हैं। आप हमारे जीवन के द्वारों को ऐश्वर्य पाने के लिये खोल दीजिये।

७८४. वृषाह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे । पवमान स्वर्दृशम् ।।

चौथा सूक्त—हे पवित्र प्रभो ! आप सुखवर्षक तथा सर्वश्रेष्ठ हैं। ज्ञान से प्रकाशित सबके द्रष्टा आपकी हम स्तुति करते हैं।

७८५. यदद्भिः परिषिच्यसे मर्मृज्यमान आयुभिः । द्रोणे सधस्थमश्नुषे ।।

हे परमात्मन् ! मनुष्यों द्वारा प्रार्थित आप जब योगाभ्यासों द्वारा धारण किये जाते हैं तब इस मूर्धास्थल में अपने साथ ही स्थिर जीवात्मा को भी व्याप्त कर लेते हैं।

७८६. आ पवस्व सुवीर्यं मन्दमानः स्वायुध । इहो ष्विन्दवा गहि ।।

हे श्रेष्ठ शक्तिशाली प्रभो ! आप आनन्दमय होकर उत्तम सामर्थ्य को प्रकट कीजिये। हे परमेश्वर ! आप यहाँ ही आत्मा में अच्छे प्रकार प्रत्यक्ष होइये।

७८७. पवमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युन्दतः । सखित्वमा वृणीमहे ।।

पांचवाँ सूक्त—हे परमेश्वर ! प्राणों को शुद्ध करने वाले, पवित्र आपके मित्रभाव को हम स्वीकार करते हैं।

७८८. ये ते पवित्रमूर्मयोऽभिक्षरन्ति धारया । तेभिर्नः सोम मृडय ।।

हे अमृतस्वरूप परमात्मन् ! आपकी अमृत की लहरें, धारकशक्ति से, हमारे अन्तःकरण में प्रकट होती हैं, उनसे आप हमें सुखी करें।

७८९. स नः पुनान आ भर रयिं वीरवतीमिषम् । ईशानः सोम विश्वतः ।।

हे प्रेरणा देनेवाले प्रभो ! सबके स्वामी और पवित्र करनेवाले आप हमारे लिये ऐश्वर्य को और बल सम्पन्न, अन्न आदि पदार्थों को प्राप्त कराइये।

दूसरा खण्ड

७९०. अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ।।

छठा सूक्त—हम ज्ञानसन्देश तथा कर्मफल देने वाले स्वीकरणीय, संसारप्रसिद्ध, तथा इस उपासना-यज्ञ के उत्तम विधाता सर्वज्ञ परमात्मा को वरण करते हैं।

७९१. अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् । हव्यवाहं पुरुप्रियम् ।।

उपासकजन उस प्रकाशस्वरूप परमात्मा को स्तुति करने योग्य मन्त्रों से सदा स्मरण करते हैं, जो प्रजा का स्वामी, सबका प्यारा और भोग्यफल को पहुंचाने वाला है।

७९२. अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे । असि होता न ईड्यः ।।

हे अग्ने ! आप यहाँ हमारी उपासना में हमें दिव्य गुणों को प्राप्त कराइये। आप जीवन्मुक्त योगी के हृदय में साक्षात् प्रकट होते हैं। आप हमारे कर्मफलदाता और एकमात्र स्तुतियोग्य हैं।

७९३. मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये । या जाता पूतदक्षसा ।।

सातवाँ सूक्त—हम उपासकजन ब्रह्मानन्द पाने के लिये प्राण और अपान को परस्पर में आहुति देते हैं, जो दोनों पवित्र कर्म करने वाले हो जाते हैं।

७६४. ऋतेन यावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती । ता मित्रावरुणा हुवे ।।

जो प्राणायाम आदि यज्ञ से वास्तविक जीवन की वृद्धि करने वाले हैं और जो आत्मा की आनन्दमय शोकरहित ज्योति के पालन करनेवाले हैं, उन प्राण और अपान को मैं स्वीकार करता हूँ।

७६५. वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः । करतां नः सुराधसः ।।

रक्षक होता हुआ अपान और मित्र प्राण ये दोनों सब प्रकार की रमणशक्तियों से हमारी उत्तम साधनाओं को सिद्ध करें।

७६६. इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ।।

आठवाँ सूक्त—सामगायक, ऋचापाठक आदि उपासकजन अपनी वाणियों से परमेश्वर की ही उपासना करते हैं।

७६७. इन्द्र इद्धर्योः सचा सम्मिश्ल आ वचो युजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ।।

परमेश्वर ही वाणी से मेल रखने वाली ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों को सम्मिलित रूप से चलाने वाला है। परमेश्वर ही दुष्टों को दण्ड देने वाला और ज्योतिःस्वरूप है।

७६८. इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरूतिभिः ।।

हे उग्र परमेश्वर! आप अपनी उग्र शक्तियों से ज्ञान के कार्यों में युद्धोंमें भी हमारी रक्षा कीजिये।

७६९. इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद्दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ।।

परमेश्वर ने दीर्घदृष्टि के लिये द्योलोक में सूर्य को स्थापित किया है, वह सूर्यकिरणों द्वारा इन्द्रियों को विशेष प्रेरित करता है।

८००. इन्द्रे अग्ना नमो बृहत् सुवृक्तिमेरयामहे । धिया धेना अवस्यवः ।।

नवाँ सूक्त—हम इन्द्र=ऐश्वर्यशाली शासक और अग्नि=विद्वान् आचार्य के लिये नमस्कार और महान् उत्तम स्तुति का प्रयोग करें तथा अपनी रक्षा चाहते हुए बुद्धिपूर्वक वाणियों का उच्चारण करें।

८०१. ता हि शश्वन्त ईडत इत्था विप्रास ऊतये । सबाधो वाजसातये ।।

विद्वान्-उपासक अपनी रक्षा तथा ज्ञानप्राप्ति के लिये इन्द्र=सूर्य और अग्नि के प्रति सदा इसी प्रकार की वाणियों द्वारा परस्पर प्रेम-बद्ध होकर स्तुति किया करते हैं।

८०२. ता वां गीर्भिर्विपन्युवः प्रयस्वन्तो हवामहे । मेधसाता सनिष्यवः ।।

विशेष बुद्धिमान् और विद्वान् हम उपासक ज्ञान तथा बुद्धि की प्राप्ति के लिये, इन्द्र और अग्नि के सेवन करने की इच्छा करते हुए, वाणियों द्वारा उनकी स्तुति करते हैं।

तीसरा खण्ड

८०३. वृषा पवस्व धारया मरुत्वते चमत्सरः । विश्वा दधान ओजसा ।।

दसवाँ सूक्त—विश्व को ओज से धारण करते हुए, हे परमेश्वर ! आप सर्वश्रेष्ठ हैं, और प्राणायाम करनेवाले उपासक के लिये आनन्द के सरोवर हैं। आप अपनी आनन्द की धारा से हमें पवित्र कीजिये।

८०४. तं त्वा धर्त्तारमोण्यो३ः पवमान स्वर्दृशम् । हिन्वे वाजेषु वाजिनम् ।।

हे पवित्र करनेवाले प्रभो ! द्यु और पृथिवी के धारण करनेवाले, सबके दर्शक, ज्ञान और बल के भण्डार आपको ज्ञान और बल के लिये मैं स्मरण करता हूँ।

८०५. अया चित्तो विपानया हरिः पवस्व धारया । युजं वाजेषु चोदय ।।

हे दुःख दूर करनेवाले चेतन प्रभो ! इस विशेष पान करने योग्य आनन्द की धारा से, हमें पवित्र कीजिये। ज्ञान-यज्ञों में संलग्न मुख्य उपासक को प्रेरणा दीजिये।

८०६. वृषा शोणो अभि कनिक्रदद् गा नदयन्नेषि पृथिवीमुत द्याम् ।
इन्द्रस्येव वग्नुरा शृण्व आजौ प्रचोदयन्नर्षसि वाचमेमाम् ।।

ग्यारहवाँ सूक्त—सुखवर्षक, सर्वव्यापक परमात्मा, संसार में ध्वनि का विस्तार करता हुआ, चित्तभूमियों को प्रतिध्वनित करता हुआ, पृथिवी और द्युलोक में व्यापक है। मैं उपासक अपने हृदय में विद्युद् ध्वनि के समान, परमेश्वर की वाणी को सुनता हूँ। वह प्रेरणा देनेवाला प्रभु इस वाणी को प्रकट करता है।

८०७. रसाय्यः पयसा पिन्वमान ईरयन्नेषि मधुमन्तमंशुम् ।
पवमान सन्तनिमेषि कृण्वन्निन्द्राय सोम परिषिच्यमानः ।।

हे परमात्मन् ! रस से पूर्ण आप, ज्ञान से तृप्त करते हुए, मधुर भक्ति से युक्त आत्मा को प्राप्त होते हैं। उपासक को पवित्र करते हुए तथा उसके लिए सब ओर प्रकट होते हुए और निरन्तर बँधी धारणा को दृढ़ करते हुए आप उसके हृदय में विराजमान होते हैं।

८०८. एवा पवस्व मदिरो मदायोदग्राभस्य नमयन् वधस्नुम् ।
परि वर्णं भरमाणो रुशन्तं गव्युर्नो अर्ष परि सोम सिक्तः ।।

हे परमेश्वर ! हर्ष को देनेवाले आप ज्ञान को ग्रहण करनेवाले उपासक के चित्त को (जो वश में करने पर आनन्द देने वाला है) अपने अधीन करते हुए हृदय में प्रकट होइये और तेजस्वी, वरणीय स्वरूप को सब ओर से धारण करते हुए, सर्वव्यापक होकर, इन्द्रियों को प्रेरित करते हुए अपना साक्षात्कार कराइये।

चौथा खण्ड

८०९. त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः॥

बारहवाँ सूक्त—हे परमेश्वर! ज्ञान आदि की प्राप्ति के लिये हम आपका ही स्मरण करते हैं। मनुष्य विघ्न उपस्थित होने पर और युद्धों में भी पालन करने वाले सच्चे स्वामी आप को ही स्मरण करते हैं।

८१०. स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया महः स्तवानो अद्रिवः।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र संकिर सत्रा वाजं न जिग्युषे॥

हे विचित्र तथा पूज्य, दुष्टों के लिये दण्डधारक, अभेद्य परमात्मन्! आप दुष्टों का घर्षण करने वाले, महान् स्तुतियोग्य हैं। आप जितेन्द्रिय पुरुष के लिए जिस प्रकार ज्ञान देते हैं, उसी प्रकार गौ, अश्व आदि भी दीजिये और ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों को शरीर के लिए हितकारी बनाइये।

८११. अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरुवसुः सहस्रेणेव शिक्षति॥

तेरहवाँ सूक्त—हे उपासको! तुम परमेश्वर को जिसप्रकार जान सको वैसे ही उसकी उपासना करो। वह सर्वव्यापक होकर स्तुतिकर्त्ताओं के लिये सहस्रों प्रकार से शिक्षा देता है।

८१२. शतानीकेव प्रजिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे।
गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः॥

तेजस्वी परमात्मा आत्म-समर्पण करनेवाले उपासक के सैकड़ों शत्रु सेनाओं के समान वर्तमान काम-क्रोध आदि वृत्रोंको जीतता व नष्ट करता है,जैसे पहाड़ से वा बादलसे जल की धारायें बहतीहैं, उसी प्रकार असंख्य धनवाले इस प्रभु से भक्त को ज्ञान, धन आदि के दान प्राप्त होते रहते हैं।

८१३. त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन् वज्रिन् भूर्णयः।
स इन्द्र स्तोमवाहस इह श्रुध्युप स्वसरमा गहि॥

चौदहवाँ सूक्त—हे शक्तिशाली परमेश्वर! आपके स्तोता साधारण मनुष्य तथा घूमनेवाले संन्यासी सदा आप की ही उपासना करते हैं। आप मुझ उपासक की भी प्रार्थना सुनिए और हृदय-रूपी घर में प्रकट होइए।

८१४. मत्स्वा सुशिप्रिन् हरिवस्तमीमहे त्वया भूषन्ति वेधसः।
तव श्रवांस्युपमान्युक्थ्य सुतेष्विन्द्र गिर्वणः॥

हे उत्तम ज्ञानी, हरणशील शक्ति से युक्त प्रभो ! आप स्वयं आनन्दस्वरूप हैं। ऐसे आप को हम चाहते हैं। विद्वान् आपके गुणों से अपने को सुशोभित किया करते हैं। हे स्तुत्य तथा वाणी से वर्णन करने योग्य परमेश्वर ! आप की श्रुतियाँ पुत्रतुल्य मनुष्यों को ज्ञान देनेवाली हैं।

पांचवाँ खण्ड

८१५. यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा। देवावीरघशंसहा ॥

पन्द्रहवाँ सूक्त—हे प्रभो ! जो आप का वरने योग्य आनन्द है उस प्राणप्रद शक्ति से मुझे पवित्र कीजिए। आप विद्वानों के रक्षक और पापियों के घातक हैं।

८१६. जघ्निर्वृत्रममित्रियं सस्निर्वाजं दिवेदिवे। गोषातिरश्वसा असि ॥

हे प्रभो ! आप शत्रु के तुल्य वर्तमान अज्ञान काम, क्रोध, आदि के नाशक हैं और प्रतिदिन ज्ञान और बल का देने वाले और इन्द्रियों तथा प्राणशक्ति को भी देनेवाले हैं।

८१७. सम्मिश्लो अरुषो भुवः सूपस्थाभिर्न धेनुभिः। सीदञ्छ्येनो न योनिमा ॥

उत्तमरूप से प्राप्त इन्द्रियों तथा वाणियों से ही मिलकर, योग के आसन करता हुआ जीवात्मा श्येन (बाज) पक्षी के समान कान्ति-सम्पन्न होकर अपने स्वरूपमें स्थिर होता है।

८१८. अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति। पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥

सोलहवाँ सूक्त—यह पोषक, ऐश्वर्यशाली तथा प्रेरक परमात्मा सर्वत्र गति करताहुआ उपस्थित है। विश्व का पति वह प्रभु द्यु और पृथिवी – दोनों लोकों को प्रकाशित करता है।

८१९. समु प्रिया अनूषत गावो मदाय घृष्वयः। सोमासः कृण्वते पथः पवमानास इन्दवः ॥

प्यारी इन्द्रियाँ और वाणियाँ तेजस्वी होकर आनन्द के लिये परमात्मा की स्तुति करती हैं। पवित्र, ऐश्वर्यशाली उपासक मुक्ति के मार्गों को तय्यार करते हैं।

८२०. य ओजिष्ठस्तमा भर पवमान श्रवाय्यम्। यः पञ्च चर्षणीरभि रयिं येन वनामहे ॥

हे पवित्र प्रभो ! आपका जो ओजस्वी तथा प्रसिद्ध आनन्द है, जो कि पांचों ज्ञानद्रष्टा इन्द्रियों में व्याप्त हो जाता है और जिससे हम ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं, वह हमें प्राप्त कराइये।

८२१. वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः।
प्राणा सिन्धूनां कलशाँ अचिक्रददिन्द्रस्य हार्द्या विशन्मनीषिभिः ॥

सत्रहवाँ सूक्त—श्रेष्ठ द्रष्टा, दिन, उषा और द्युलोक का विस्तार करने वाला, प्रेरक परमात्मा सर्वत्र गति कर रहा है। नाड़ियों में प्राणों का सञ्चार करनेवाला वह परमेश्वर उपासक के हृदय में मन की प्रेरणाओं द्वारा प्रकट होते हुए अव्यक्त नाद किया करता है।

८२२. **मनीषिभिः पवते पूर्व्यः कविर्नृभिर्यतः परि कोशाँ असिष्यदत् ।**
त्रितस्य नाम जनयन्मधु क्षरन्निन्द्रस्य वायुं सख्याय वर्धयन् ॥

सबसे प्रथम वर्तमान अज, कवि परमात्मा मनीषी उपासकों द्वारा ध्यान किये जाने पर, तीनों लोकों में फैले हुए और संसारसागर से पार उतरे जीवात्मा के यश को प्रकट करता हुआ, अमृत-रस को चुआता हुआ और प्राण को अनुकूल रूप में बढ़ाता हुआ उपासक के हृदय में प्रकट होता है और उसके पांचों कोशोंको व्याप्त कर लेता है ।

८२३. **अयं पुनान उषसो अरोचयदयं सिन्धुभ्यो अभवदु लोककृत् ।**
अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरं सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥

यह गति करता हुआ परमात्मा उपासक की बुद्धि को अधिक उज्ज्वल कर देता है, यही शरीर की नाड़ियों तथा ज्ञानधाराओं को भी अधिक कान्तिमान् कर देता है । यही प्रेरक परमात्मा १ मन, १० इन्द्रिय, १० प्राण—सब २१ पदार्थों को आनन्द-रस से भरता हुआ, उपासक के हृदय में आनन्द बहाता हुआ उत्तम रीति से प्रकट होता है ।

छठा खण्ड

८२४. **एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः । एवा ते राध्यं मनः ॥**

अठारहवाँ सूक्त—हे प्रभो ! आप सचमुच वीरों को चाहनेवाले तथा स्वयं वीर और स्थिर हैं । आपका विज्ञान भी उपासना के योग्य है ।

८२५. **एवा रातिस्तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः । अधा चिदिन्द्र नः सचा ॥**

हे बहुत धनवाले परमेश्वर ! सभी धारण करने वालों के द्वारा आपका दिया हुआ धन ही धारण किया जाता है, आप हमारे सहायक हों ।

८२६. **मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते । मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥**

हे ज्ञान और बल के स्वामी प्रभो ! जैसे चारों वेदों को जानने वाला पुरुष कभी आलसी नहीं होता, उसी प्रकार आप भी कभी तन्द्रालु नहीं होते । वेदवाणी से युक्त उपासना के सम्पादन से आप प्रसन्न होते हैं ।

८२७. **इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः । रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥**

उन्नीसवाँ सूक्त—सभी वाणियाँ आकाशवत् सर्वत्र व्यापक, ब्रह्माण्डरूपी रथ रखने वाले, ज्ञान के रक्षक, सच्चे स्वामी परमेश्वर को ही बड़ा बता रही हैं ।

८२८. **सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते । त्वामभि प्र णोनुमो जेतारमपराजितम् ॥**

परमेश्वर ! आपकी मित्रता में बलशाली होकर हम किसी से न डरें । हे बलों के रक्षक प्रभो ! सदा विजयशील, किसी से न हारने वाले आपको हम साक्षात् प्रणाम करते हैं ।

८२९. **पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्त्यूतयः । यदा वाजस्य गोमत स्तोतृभ्यो मंहते मघम्**

परमेश्वर के नित्य सनातन दान और रक्षायें तब भी कभी नष्ट नहीं होतीं, जब कि वह उपासकों के लिये ज्ञानयुक्त बल के धन को सदा दान किया करता है ।

चौथा अध्याय दूसरा अर्धप्रपाठक

(८३० मन्त्र से ८८५ मन्त्र तक)

सूक्तों के अनुसार ऋषि, देवता, छन्द और स्वर

ऋषि—१ जमदग्नि। २ भृगुवारुणि तथा जमदग्नि। ३ कवि भार्गव। ४ कश्यप। ५ मेधातिथि काण्व। ६, ७ मधुच्छन्दा वैश्वामित्र। ८ भरद्वाज। ९ विश्वामित्र तथा सात ऋषि। १० पराशर। ११ पुरुहन्मा। १२ मेधातिथि वा मेध्यातिथि काण्व। १३ वसिष्ठ। १४ त्रित (आप्त्य)। १५ ययाति नाहुष। १६ पवित्र। १७ सौभरि काण्व। १८ गोषूक्ति और अश्वसूक्ति काण्वायन। १९ तिरश्चीः॥

देवता—१-४, ९, १०, १४-१६ पावमान सोम। ५, १७ अग्नि। ६ मित्र और वरुण। ७ मरुत् और इन्द्र। ८ इन्द्र और अग्नि। ११-१३, १८-१९ इन्द्र।

छन्द—१—८, १४ गायत्री। ९ वें सूक्त के पहले मन्त्र का छन्द बृहती, दूसरे का सतोबृहती है। तीसरी द्विपदा है। १० त्रिष्टुप्। ११-१३ बृहती। १५. १९ अनुष्टुप्। १६ जगती। १७ ककुप् और सतो बृहती। १८ उष्णिक्।

स्वर—१—८, १४ षड्ज। ९, ११—१३ मध्यम। १० धैवत। १५, १९ गान्धार। १६ निषाद। १७, १८ ऋषभ।

पहला खण्ड

८३०. एते असृग्रमिन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः। विश्वान्यभि सौभगा॥

पहला सूक्त—भ्रमणशील, आह्लादकारक ये विद्वान् उपासक सत्स्वरूप शुद्ध चित् में सब ऐश्वर्यों के साक्षात् करने के लिये प्रवृत्त होत हैं।

८३१. विघ्नन्तो दुरिता पुरु सुगा तोकाय वाजिनः। त्मना कृण्वन्तो अर्वतः॥

ज्ञानी उपासक बहुत से दुष्ट कर्मों को नष्ट करते हुए, अपने सामर्थ्य से प्राणों की साधना करते हुए, अपनी सन्तान के लिये भी उत्तम मार्ग बना देते हैं।

८३२. कृण्वन्तो वरिवो गवेऽभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम्। इडामस्मभ्यं संयतम्॥

ऐसे ही विद्वान् अपनी वाणी तथा इन्द्रियों के लिये ऐश्वर्य-सम्पादन करते हुए और हम सभी के लिए उत्तम अन्न आदि की व्यवस्था करते हुए सुन्दर स्तुति को प्रकट किया करते हैं।

८३३. राजा मेधाभिरीयते पवमानो मनावधि। अन्तरिक्षेण यातवे॥

दूसरा सूक्त—प्रकाशमान तथा हृदय में प्रकट होता हुआ परमात्मा मुक्तिमार्ग द्वारा ले जाने के लिये उपासक के मननशील चित्त के भीतर बुद्धितत्त्वों के द्वारा व्याप्त होता है।

८३४. आ नः सोम सहो जुवो रूपं न वर्चसे भर। सुष्वाणो देववीतये॥

हे परमात्मन् ! विद्वानों की तृप्ति के लिये नाना पदार्थों को उत्पन्न करते हुए आप हमें तेजस्वी होने के लिये सहनशीलता, वेग और कान्ति प्राप्त कराइये।

८३५. आ न इन्द्रो शातग्विनं गवां पोषं स्वश्व्यम्। वहा भगत्तिमूतये ॥

हे परमेश्वर ! आप हमारी रक्षा के लिये हमें सैकड़ों गौओं और उत्तम घोड़ों के साथ पुष्टि-कारक और सेवन करने योग्य पदार्थों को प्राप्त कराइये।

८३६. तं त्वा नृम्णानि बिभ्रतं सधस्थेषु महो दिवः। चारुं सुकृत्यये महे ॥

तीसरा सूक्त—हे परमेश्वर ! नानाँ धनों को धारण करने वाले, द्युलोक में विद्यमान अनन्त स्थानों में व्यापक, महान् आपको हम उत्तम कर्मों के द्वारा प्राप्त होते हैं।

८३७. संवृक्तधृष्णुमुक्थ्यं महामहिव्रतं मदम्। शतं पुरो रुरुक्षणिम् ॥

हे प्रभो ! आत्मिक शत्रुओं के विनाशक, स्तुति के योग्य, महामहिमाशाली नियमवाले, आनन्द-रूप, सैकड़ों शरीरों के मृत्यु द्वारा विनाशक आपको हम प्राप्त करते हैं।

८३८. अतस्त्वा रयिरभ्ययद्राजानं सुक्रतो दिवः। सुपर्णो अव्यथी भरत् ॥

हे उत्तम कर्मों के अधिष्ठाता प्रभो ! क्योंकि आप उत्तम पालन करने की शक्ति से सम्पन्न होकर बिना व्यथा के संसार का पालन करते हैं, इसलिये द्योलोक के भी प्रकाशक आपको समस्त ऐश्वर्य प्राप्त हैं।

८३९. अधा हिन्वान इन्द्रियं ज्यायो महित्वमानशे। अभिष्टिकृद्विचर्षणिः ॥

और अभीष्ट फलदाता तथा विशेष द्रष्टा आप जीवात्मा को (शरीर-धारणार्थ) प्रेरित करते हुए महत्त्व को प्राप्त हो रहे हैं।

८४०. विश्वस्मा इत्स्वर्दृशे साधारणं रजस्तुरम्। गोपामृतस्य विर्भरत् ॥

इधर-उधर जानेवाले पक्षी के समान भिन्न-भिन्न योनियों में जानेवाला जीवात्मा, सब प्रकार के सुखों का दर्शन करने के लिये, सब लोकों को समान रूप से धारण करने वाले, लोकों को गति देनेवाले और गतिमान् पिण्डों तथा नियमों के रक्षक परमात्मा का ध्यान किया करे।

८४१. इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः। इन्दो रुचाभि गा इहि ॥

चौथा सूक्त—हे परमेश्वर ! मनीषियों द्वारा ध्यान किये गये आप आत्मिक तृप्ति के लिये आनन्द की धारा के साथ प्रकट होइए और ज्ञान के प्रकाश से उपासकों की इन्द्रियों तथा वाणियों में भी अपना स्वरूप दिखलाइये।

८४२. पुनानो वरिवस्कृध्यूर्जं जनाय गिर्वणः। हरे सृजान आशिरम् ॥

हे वाणियों से प्रशंसनीय मनोहर परमात्मन् ! शरीर तथा प्राण की रचना करते हुए, पवित्र तथा सर्वव्यापक आप मनुष्यों के लिये ज्ञानरूप उत्तम धन तथा बल उत्पन्न कीजिये।

८४३. **पुनानो देववीतय इन्द्रस्य याहि निष्कृतम् । द्युतानो वाजिभिर्हितः ॥**

हे प्रभो ! विद्वानों से धारण कियेगये, प्रकाशस्वरूप आप दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिए ऐश्वर्यशाली उपासक को पवित्र करते हुए उसके शुद्ध हृदयदेश में विराजमान होइये ।

दूसरा खण्ड

८४४. **अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा । हव्यवाड् जुह्वास्यः ॥**

पांचवाँ सूक्त—ज्ञानी, शरीररूपी घर का स्वामी स्वरूप से अजर, अमर, कर्मफल का भोग करने वाला, वाणीरूपी मुखवाला चेतन जीवात्मा अनन्त ज्ञानवाले परमात्मा से अच्छे प्रकार से तेज को प्राप्त करता है ।

८४५. **यस्त्वामग्ने हविष्पतिर्दूतं देव सपर्यति । तस्य स्म प्राविता भव ॥**

हे देव अग्ने परमात्मन् ! जो भोग्यपदार्थों का स्वामी जीवात्मा कर्मफल के पहुँचानेवाले आपकी उपासना करता है, उसके आप रक्षक होइये ।

८४६. **यो अग्निं देववीतये हविष्माँ आविवासति । तस्मै पावक मृडय ॥**

हे पवित्र करने वाले प्रभो ! जो अच्छे कर्म करने वाला जीवात्मा दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिये ज्ञानस्वरूप आपकी उपासना करता है, उसको आप सुखी कीजिये ।

८४७. **मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् । धियं घृताचीं साधन्ता ॥**

छठा सूक्त—मैं उपासक पवित्र बलवाले प्राणवायु का और कष्टदायक तत्त्वों के नष्ट करने-वाले अपानवायु का ज्ञान प्राप्त करता हूँ। ये दोनों वीर्यरूप-रस को शरीर में सर्वत्र पहुँचानेवाली क्रिया को सिद्ध करने वाले हैं ।

८४८. **ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा । क्रतुं बृहन्तमाशाथे ॥**

ऋतरूप ब्रह्म की शक्ति से बढ़नेवाले, नियमानुसार चलने वाले प्राण और अपान शरीरों में बड़े कर्म को व्याप्त किये हुए हैं ।

८४९. **कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया । दक्षं दधाते अपसम् ॥**

सब प्रकार के व्यवहारों को दिखलानेवाले उपकारक होकर उत्पन्न, अनेक स्थानों में निवास-वाले प्राण और अपान हमारे बल और कर्म को धारण करते हैं ।

८५०. **इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा । मन्दू समानवर्चसा ॥**

सातवाँ सूक्त—हे जीवात्मा ! तू मोक्ष में भयरहित परमात्मा के साथ गति करता हुआ दिखाई देता है। इस कारण तुम दोनों समान कान्तिवाले होकर आनन्दयुक्त होते हो ।

८५१. **आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् ॥**

जीवात्मा के साथ दश प्राण मोक्ष की अवधि के पश्चात्, फिर गर्भभाव को प्राप्त होते हैं और जीवन के योग्य नाम को धारण करते हैं।

८५२. वीड्ड चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः । अविन्द उस्रिया अनु ।।

हे जीवात्मन् ! तू इस प्रकार गुहारूप हृदय में वर्तमान होकर भी दृढ़ स्थानों को भेदन करके भी जीवन को धारण करानेवाले प्राणों को प्राप्त करके ज्ञानेन्द्रियों को प्राप्त करता है।

८५३. ता हुवे ययोरिदं पप्ने विश्वं पुरा कृतम् । इन्द्राग्नी न मर्धतः ।।

आठवाँ सूक्त—मैं उपासक उन जीवात्मा तथा परमात्मा—दोनों के गुणों का वर्णन करता हूँ जिनके आधार पर प्रत्येक सृष्टि के आरम्भ में बनाया गया यह विश्व व्यवहार योग्य होता है। वे दोनों दुःखदायक नहीं हैं।

८५४. उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे । ता नो मृडात ईदृशे ।।

वेगवाले शत्रुओं को विशेष रूप से नष्ट करने वाले, जीवात्मा और परमात्मा को हम उपासना के लिए स्वीकार करते हैं। वे दोनों हम उपासकों को सुखदायक हों।

८५५. हथो वृत्राण्यार्या हथो दासानि सत्पती । हथो विश्वा अप द्विषः ।।

हे श्रेष्ठ जीवात्मन् तथा परमात्मन् ! आप दोनों विघ्नों को दूर करने वाले हैं, सज्जनों के पालक होकर क्षयकारक पदार्थों का विनाश करते हैं और सभी द्वेष करने वाले दुष्टों को भी नष्ट करने वाले हैं।

तीसरा खण्ड

८५६. अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।
समुद्रस्याधि विष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः ।।

नवाँ सूक्त—शान्त, दीर्घजीवी, विचारशील, हर्षपूर्ण, भक्ति के आनन्द में मग्न उपासक आनन्द के समुद्र परमात्मा की उपासना में संलग्न होकर सर्वत्र आनन्द का संचार किया करते हैं।

८५७. तरत्समुद्रं पवमान ऊर्मिणा राजा देव ऋतं बृहत् ।
अर्षा मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्र हिन्वान ऋतं बृहत् ।।

मन को पवित्र करनेवाले, दीप्तिमान्, विद्वान्, उपासक अपनी उच्च गति द्वारा बड़े, सत्यरूप संसारसागर को पार करता हुआ और मित्र और वरणीय परमात्मा की व्यवस्था से श्रेष्ठ मार्ग में चलता हुआ महान् सत्यस्वरूप परमात्मा को प्राप्त होता है।

८५८. नृभिर्येमाणो हर्यतो विचक्षणो राजा । देवः समुद्रयः ।।

प्राणों के द्वारा सुव्यवस्थित दीप्तिमान् योगी सबके प्रेम का पात्र और कार्यकुशल होकर परमात्मा के आनन्दसागर में मग्न हो जाता है।

८५९. तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम्।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥

१० वाँ सूक्त—ज्ञान का धारक परमात्मा सत्य को धारण करनेवाली, मन की प्रेरक, ऋग्, यजु, और साम इन तीन प्रकार की वाणियों को प्रवृत्त करता है। उपासक की वाणियाँ वेदवाणी के पालक परमात्मा को प्राप्त होती हैं और उस उपासक की समस्त इच्छायें और बुद्धियाँ भी परमात्मा के अर्पित हो जाती हैं।

८६०. सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः।
सोमः सुत ऋच्यते पूयमानः सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः सं नवन्ते ॥

प्रसन्न करनेवाली और ज्ञानरस पिलानेवाली वेदवाणियाँ परमात्मा के प्रति कामना प्रकट करती हैं। विद्वान् अपनी बुद्धियों से परमात्मा को खोजते हैं। हृदय में प्रकटहुए शुद्ध परमात्मा की स्तुति की जाती है। वेद के विद्वान् परमात्मा के विषय में मन, वाणी, कर्म—तीनों प्रकार से उपासना करते हैं।

८६१. एवा नः सोम परिषिच्यमान आ पवस्व पूयमानः स्वस्ति।
इन्द्रमा विश बृहता मदेन वर्धया वाचं जनया पुरन्धिम् ॥

हे प्रभो! निदिध्यासन द्वारा साक्षात् किये गये और सर्वत्र अमृतवर्षा करने वाले विशुद्ध आप कल्याणकारी होकर हमें पवित्र कीजिये। महान् आनन्द के साथ जीवात्मा में व्याप्त होकर मेरी वाणी को बढ़ाइये और बुद्धियुक्त विज्ञान तथा चितिशक्ति को उत्पन्न कीजिये।

चौथा खण्ड

८६२. यद्द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥

११ वाँ सूक्त—हे शक्तिशाली परमेश्वर! यदि द्युलोक और पृथिवी सैकड़ों हो जावें तो भी वे सब और सहस्रों सूर्य भी आप का अन्त नहीं पा सकते।

८६३. आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा।
अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ॥

हे सुखवर्षक तथा बलशाली परमात्मन्! आप बड़ी शक्ति से समस्त सुखवर्षक और जलवर्षक पदार्थों को पूर्ण कर रहे हैं। हे ज्ञानरूपी शस्त्रधारी प्रभो! हमारे इन्द्रिय-सम्पन्न शरीर में अपनी नाना प्रकार की रक्षाओं से पालन कीजिये।

८६४. वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥

१२ वाँ सूक्त—विघ्नों के नाशक प्रभो ! हम उपासक ज्ञानद्वारा शरीर के बन्धन को काटकर अगाध जल के समान शान्त और पवित्र ज्ञान के प्रवाहों में शान्ति प्राप्त करते हुए स्थित हैं ।

८६५. स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥

हे निर्धनों के धन परमेश्वर ! इस जगत् में बहुत से स्तोता आपको ही पुकारते हैं जसे प्यासा जल के पास आता है। हे प्रभो ! उत्तम जल देनेवाले बादल के समान शुभागमनयुक्त होकर इस पुत्ररूप उपासक के हृदय में कब प्रकट होंगे ?

८६६. कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद्वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन्विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥

हे सबके ऊपर विराजमान धनों के स्वामी द्रष्टा परमेश्वर ! आप सहस्रों प्रकार के बल को मेधावियों के लिये शीघ्र प्रदान करते हैं । हम आपसे गौ, बैल आदि के साथ् चमकते हुए रूपवाले, पीले, पकेहुए अन्न की याचना करते हैं ।

८६७. तरणिरित्सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा ।
आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्रुवम् ॥

१३ वाँ सूक्त—दुःख से पार जाने का इच्छुक उपासक बुद्धि और योग से प्राप्त ज्ञान को स्वीकार करना चाहता है । जिस प्रकार बढ़ई पहिये की पुट्ठी को झुकाकर ठीक बनाता है, इसी प्रकार मैं उपासक, हे इन्द्रियो ! शरीर में बलसञ्चार करने वाले तुम्हारे स्वामी जीवात्मा को वेदवाणी के द्वारा ईश्वर के प्रति झुकाता हूँ ।

८६८. न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते न स्रेधन्तं रयिर्नशत् ।
सुशक्तिरिन् मघवन् तुभ्यं मावते देष्णं यत्पार्ये दिवि ॥

धन आदि के दानी पुरुषों की निन्दा अथवा झूठी खुशामद अच्छी नहीं कही जा सकती । हिंसा आदि करने वाले पापी को ऐश्वर्य प्राप्त नहीं होता । इस बन्धनरहित परलोक (मोक्ष) में मुझ जैसे उपासक के लिये जो आनन्द का दान है वह, हे अनन्त धनयुक्त प्रभो ! आपकी ही उत्तम शक्ति है ।

पांचवाँ खण्ड

८६९. तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः । हरिरेति कनिक्रदत् ॥

१४ वाँ सूक्त—(साम के अतिरिक्त) ऋग्, यजुः तथा अथर्व—तीनों वेदों की वाणियाँ अपना-अपना स्वरूप प्रकट कर रही हैं। प्रसन्न करनेवाली वे वाणियाँ उपासकों को अपनी ओर बुला रही हैं, मानों दुःखहर्त्ता परमेश्वर ही अपना शब्द सुनताहुआ हृदय में प्रकट हो रहा है।

८७०. अभि ब्रह्मीरनूषत यह्वीर्ऋतस्य मातरः। मर्जयन्तीर्दिवः शिशुम् ॥

सत्य का ज्ञान कराने वाली, ब्रह्म से प्रकट माता के समान पवित्र करने वाली बड़ी वेद की वाणियाँ दिव्यगुणों में व्यापक परमात्मा का सब प्रकार से गुण-वर्णन करती हैं।

८७१. रायः समुद्राँश्चतुरोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः। आ पवस्व सहस्रिणः ॥

हे परमात्मन्! हजारों पदार्थों से सम्पन्न, धन से पूर्ण, चारों महा समुद्रों को तथा धर्म, अर्थ, काम-मोक्ष-इन चारों पदार्थों को हमें प्राप्त कराइये।

८७२. सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः।
पवित्रवन्तो अक्षरन् देवान् गच्छन्तु वो मदाः ॥

१५ वाँ सूक्त—मधुर, जीवात्मा को आनन्द देनेवाली, पवित्र हृदय से की गई उपासनायें आत्मा में प्रकट हो रही हैं। उनके आनन्द विद्वानों को प्राप्त हों।

८७३. इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन्। वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसः ॥

विद्वानों का कथन है कि ऐश्वर्यशाली परमेश्वर जीवात्मा के लिये पवित्र करता है। समस्त बल-पराक्रम का स्वामी और वेदवाणी का रक्षक परमात्मा प्रत्येक यज्ञ में अभिप्रेत हैं।

८७४. सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः। सोमस्पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥

सहस्रों आनन्द-धाराओं से युक्त आनन्द-रस से पूर्ण, वेदवाणी प्रकट करने वाला, ऐश्वर्यों का स्वामी परमात्मा जीवात्मा का मित्र होकर उपासक को प्रतिदिन योगाभ्यास के समय पवित्र करता है।

८७५. पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तः सं तदाशत ॥

१६ वाँ सूक्त—हे ब्रह्मणस्पति! आपका पवित्र प्रभाव सर्वत्र फैला हुआ है, आप शरीर में अन्दर-बाहर सर्वत्र व्यापक हैं, शरीर का कष्ट सहन न करने वाला कच्चा मनुष्य आपकी भक्ति को नहीं पा सकता। उपासना में पक्के मनुष्य ही आप को धारण करते हुए आपकी भक्ति को पा सकते है।

८७६. तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदेऽर्चन्तो अस्य तन्तवो व्यस्थिरन्।
अवन्त्यस्य पवितारमाशवो दिवः पृष्ठमधि रोहन्ति तेजसा ॥

परम तपस्वी प्रभु का पवित्र स्वरूप सभी दिव्यपदार्थों में व्याप्त है। इसी के गुणों को प्रकट करते हुए सृष्टि के तन्तु नाना प्रकार से स्थित हैं। इसकी व्यापक शक्तियाँ सूर्य और वायु की भी रक्षा करती हैं। वे शक्तियाँ इसी के तेज से द्युलोक के उन्नत भाग तक भी पहुँची हुई हैं।

८७७. अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा मिमेति भुवनेषु वाजयुः ।
मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमा दधुः ।।

उस परमेश्वर की शक्ति से वर्षा कराने वाला मुख्य आदित्य सूर्य उषाकालों को प्रकाशित करना और लोकों में अन्न की उत्पत्ति के लिये जल बरसाता है। उसी की शक्ति से सृष्टि के सभी पदार्थ बने हैं और मनुष्यों को प्रकाश देने वाली किरणें तथा पालन करने वाली ऋतुएँ भी वनस्पतियों में गर्भाधान करती हैं।

छठा खण्ड

८७८. प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे । उपस्तुतासो अग्नये ।।

१७ वाँ सूक्त—हे स्तोताओ ! तुम श्रेष्ठ, सत्यनियमों का पालन करने वाले, महान्, शुद्ध, तेजस्वी, ज्ञानस्वरूप परमात्मा का गान करो।

८७९. आ वंसते मघवा वीरवद्यशः समिद्धो द्युम्न्या हुतः ।
कुविन्नो अस्य सुमतिर्भवीयस्यच्छा वाजेभिरागमत् ।।

सृष्टिरूपी यज्ञ का सम्पादक, प्रकाशमान, द्युतियुक्त, विद्वानों से स्मरण किया गया परमात्मा वीरतापूर्ण यज्ञ को प्रदान करता है। हमें उसका श्रेष्ठ ज्ञान, अन्न और बल के सहित बहुत प्रकार से प्राप्त हो।

८८०. तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृक्षु सासहिम् । उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ।।

१८ वाँ सूक्त—हे ज्ञानसम्पन्न प्रभो ! आपके सुखवर्षक, सांसारिक संघर्षों में भी नष्ट न होने वाले, संसार के उत्पादक, दुःखहारक, आश्रययोग्य आनन्द-रस का ही हम वर्णन करते हैं।

८८१. येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ । मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ।।

हे परमात्मन् ! जिस शक्ति से आप उपासक के प्राण और मन के लिये ज्योतियों को प्राप्त कराते हैं, उसी शक्ति से इस उपासनायज्ञ में आनन्दपूर्ण होकर विराजते हैं।

८८२. तदद्या चित्त उक्थिनोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा । वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ।।

हे प्रभो ! ज्ञानी लोग सदा ही सर्वदा की भाँति आप की स्तुति किया करते हैं। आप उपासक के धर्म को पालन करने वाली बुद्धियों तथा कर्मों को प्रतिदिन विजयी कीजिये।

८८३. श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति ।
सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि ।।

१९ वाँ सूक्त—हे परमेश्वर ! जो आपकी उपासना करता है आप उस साधक की पुकार को सुनिये और श्रेष्ठ, पराक्रमी, जितेन्द्रिय मनुष्य को ऐश्वर्य से पूर्ण कीजिए। आप महान् हैं।

८८४. यस्त इन्द्र नवीयसीं गिरं मन्द्रामजीजनत् । चिकित्विन्मनसं धियं प्रत्नामृतस्य पिप्युषीम्

हे परमेश्वर ! जो उपासक आपके लिये अतिसुन्दर, गम्भीर स्तुतिवचनों को प्रकट करता है, उसके लिये आप सत्यज्ञान-पोषाक सनातन वेदवाणी तथा ज्ञानयुक्त मनवाली बुद्धि को प्रकट करते हैं।

८८५. तमु ष्टवाम यं गिर इन्द्रमुक्थ्यानि वावृधुः । पुरूण्यस्य पौंस्या सिषासन्तो वनामहे ॥

हम उसी परमेश्वर की स्तुति किया करें जिसकी महिमा को वेदमन्त्ररूपी वाणियाँ बढ़ाती हैं। उसके अनन्त पुरुषार्थों को वर्णन करने की इच्छा रखते हुए हम उसकी उपासना करते हैं।

तीसरा प्रपाठक

(८८६ मन्त्र से १०३० मन्त्र तक)

पांचवाँ अध्याय पहला अर्धप्रपाठक

(८८६ मन्त्र से ९५४ मन्त्र तक)

सूक्तों के अनुसार ऋषि, देवता, छन्द और स्वर

ऋषि—१ आकृष्टामासा । २ अमहीयु । ३ मेध्यातिथि । ४, १२ बृहन्मति । ५ भृगु वारुणि जमदग्नि । ६ सुतंभर आत्रेय । ७ गृत्समद । ८, २१ गोतम राहूगण । ९, १३ वसिष्ठ । १० दृढच्युत आगस्त्य । ११ सात ऋषि । १४ रेभ काश्यप । १५ पुरुहन्मा । १६ असित काश्यप तथा देवल । १७ पहले का शक्ति, दूसरे का रुरु । १८ अग्नि । १९ प्रतर्दन दैवोदासि । २० प्रयोग भार्गव, अग्नि पावक, बार्हस्पत्य, अथर्व और अग्नि, गृहपति और यविष्ठ ।

देवता—१-५, १०-१२, १६-१९ पवमान सोम । ६, २० अग्नि । ७ मित्र वरुण । ८, १३-१५, २१ इन्द्र । ९ इन्द्र और अग्नि ।

छन्द—१, ६ जगती । २-५, ७-१०, १२, १६, २० गायत्री । ११ बृहती और सतोबृहती (क्रम से) । १३ विराट् । १४ अतिजगती । १५ प्रागाथ । १७ ककुप् और सतोबृहती (क्रम से) । १८ उष्णिक् । १९ त्रिष्टुप् । २१ अनुष्टुप् ।

स्वर—१, ६, १४ निषाद । २-५, ७-१०, १२, १६, २०, षड्ज । ११, १३, १५, १७ मध्यम । १८ ऋषभ । १९ धैवत । २१ गान्धार ।

प्रथम खण्ड

८८६. प्रत आश्विनीः पवमान धेनवो दिव्या असृग्रन् पयसा धरीमणि ।
प्रान्तरिक्षात् स्थाविरीस्ते असृक्षत ये त्वा मृजन्त्यृषिषाण वेधसः ॥

प्रथम सूक्त–हे पवित्र करनेवाले प्रभो ! आपकी सर्वव्यापक, दिव्य, स्थिर, तृप्त करने वाली शक्तियाँ ज्ञान और आनन्दरस के रूप में आत्मा में अच्छे प्रकार से प्रकट होती हैं। हे इन्द्रियों द्वारा

भजन करने योग्य परमात्मन् ! जो विद्वान् पुरुष आपके शुद्धरूप को साक्षात् करते हैं, वे स्थिर धारणाओं को अपने अन्तःकरण से सम्पादन करते हैं अर्थात् निदिध्यासन किया करते हैं।

८८७. **उभयतः पवमानस्य रश्मयो ध्रुवस्य सतः परि यन्ति केतवः ।**
यदी पवित्रे अधि मृज्यते हरिः सत्ता नि योनौ कलशेषु सीदति ।।

उस ध्रुव सत्यरूप सर्वव्यापक प्रभु की ज्ञान कराने वाली किरणें=शक्तियाँ जड़ और चेतन दोनों प्रकार की सृष्टि के प्रति व्याप्त होती हैं। संसार में गति देनेवाला परमेश्वर जब भी पवित्र अन्तःकरण में विवेक द्वारा साक्षात् किया जाता है, तब सत्यरूप वह शरीरों में उनके मूलकारण अन्तरात्मा में, विराजमान प्रकट होता है।

८८८. **विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वसः प्रभोष्टे सतः परि यन्ति केतवः ।**
व्यानशी पवसे सोम धर्मणा पतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजसि ।।

हे विश्व के द्रष्टा, सबके उत्पादक, सत्यस्वरूप प्रभु ! आप की महिमा को बताने वाले चिह्न सब भुवनों में फैले हुए हैं। सर्वव्यापक और सब संसार के स्वामी आप धारण करने वाले अपने नियम के कारण सबके ऊपर विराजमान हैं।

८८९. **पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम् । ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ।।**

दूसरा सूक्त - पवित्र करने वाले परमात्मा ने द्युलोक की विद्युत् के समान, विचित्र महान् समस्त मनुष्यों में व्याप्त ज्योति को भी उत्पन्न किया है।

८९०. **पवमान रसस्तव मदो राजन्नदुच्छुनः । वि वारमव्यमर्षति ।।**

हे प्रकाशक परमात्मन् ! आपका दोषरहित हर्षकारक आनन्दरूपी रस आत्मा के वरण करने योग्य स्वरूप को व्याप लेता है।

८९१. **पवमानस्य ते रसो दक्षो वि राजति द्युमान् । ज्योतिर्विश्वं स्वर्दृशे ।।**

हे प्रभो ! पवित्र आपका बलस्वरूप कान्तिमय आनन्दरस सब ज्योतियों और सुखों को दिखाने के लिये विशेषरूप से प्रकाशित हो रहा है।

८९२. **प्रयद् गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः । घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ।।**

तीसरा सूक्त—जैसे इधर-उधर फैलनेवाली किरणें सब ओर अन्धकार को दूर कर प्रकाश को फैलाती हैं, उसी प्रकार अज्ञान को दूर कर ज्ञान प्राप्त करने वाले उपासक-विद्वान् भी अज्ञान दूर करने के लिये पराक्रमशील होते हैं।

८९३. **सुवितस्य वनामहेऽति सेतुं दुराय्यम् । साह्याम दस्युमव्रतम् ।।**

हम संसार का उत्तम शासन करने वाले परमात्मा की शरण में आते हैं जिससे नियमों को

तोड़ने वाले, कठिनता से वश में आने वाले, कर्मों से गिरे हुए दस्युओं (दुष्टों) को हम विजय करसकें।

८९४. शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः। चरन्ति विद्युतो दिवि ॥

इस मन्त्रमें धर्ममेघ समाधि के अवसर पर अनाहत मेघध्वनि का वर्णन किया गया है (जिसका विस्तार योगशास्त्र में मिलता है)।

जैसे आकाश में बिजलियाँ चमकती हैं उसी प्रकार परमात्मा की विशेष दीप्तियाँ जब मूर्धा में वेग से गति करती हैं, तब मैं उपासक अतिबलवान् पवित्र करने वाले परमात्मा का अनाहत शब्द वृष्टि के शब्द के समान सुना करता हूँ।

८९५. आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत्। अश्ववत् सोम वीरवत् ॥

हे प्रेरक परमेश्वर! आप हमें गौओं, वाणियों तथा इन्द्रियों से सम्पन्न, घोड़ों तथा प्राणों से युक्त, वीर पुरुषों से युक्त अन्न आदि धन और प्रसिद्धि को प्राप्त कराइये।

८९६. पवस्व विश्वचर्षण आ मही रोदसी पृण। उषाः सूर्यो न रश्मिभिः ।

हे विश्व के द्रष्टा प्रभो! जैसे सूर्य किरणों से उषाओं को और द्यु तथा पृथिवी को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार आप अपनी शक्तियों से उषाओं को और द्यु तथा पृथिवी को पूर्ण किये हुए हैं।

८९७. परि णः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः। सरा रसेव विष्टपम् ॥

जिस प्रकार जल से भरी नदी मैदान में बहकर लाभ पहुँचाती है, उसी प्रकार हे परमात्मन्! आप सुख देने वाली अपनी आनन्द की धारा से सब ओर से हमें सुख प्राप्त कराइये।

दूसरा खण्ड

८९८. आशुरर्ष बृहन्मते परि प्रियेण धाम्ना। यत्रा देव इति ब्रुवन् ॥

चौथा सूक्त—हे महान् ज्ञान-सम्पन्न प्रभो! जहाँ-जहाँ दिव्यगुण हैं वहाँ-वहाँ आपकी ही महिमा है—यह उपदेश करते हुए आप सर्वव्यापक होकर प्रिय धारणशील तेज से मुझ उपासक के हृदय में अपना साक्षात्कार कराइये।

८९९. परिष्कृण्वन्ननिष्कृतं जनाय यातयन्निषः। वृष्टिं दिवः परि स्रव ॥

हे प्रभो! मनुष्यों के हित के लिये परिष्काररहित भूमि का परिष्कार करते हुए और अन्न आदि पुष्टिकारक पदार्थों को उत्पन्न करते हुए आप द्युलोक से वृष्टि को यथासमय करवाइये।

९००. अयं स यो दिवस्परि रघुयामा पवित्र आ। सिन्धोरूर्मा व्यक्षरत् ॥

जो परमात्मा द्युलोक में सूक्ष्म होकर विचरता है, वह समुद्रों की पवित्र लहर में और उपासक के पवित्र हृदय में विशिष्ट रीति से पहुँचता है।

९०१. सुत एति पवित्र आ त्विषिं दधान ओजसा। विचक्षाणो विरोचयन् ॥

सब का प्रेरक वह परमात्मा अपने ओज से पवित्र पदार्थों में कान्ति को प्रकाशित करता हुआ संसार का द्रष्टा होकर सर्वत्र व्यापक है।

९०२. आविवासन् परावतो अथो अर्वावतः सुतः। इन्द्राय सिच्यते मधु ॥

प्रेरक परमात्मा दूर और पास के सभी लोकों को प्रकाशित करता है। ऐश्वर्ययुक्त उपासक के लिये उसकी आत्मा में मधुररूप से प्रकाशित होता है।

९०३. समीचीना अनूषत हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः। इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥

श्रेष्ठ विद्वान् सर्वव्यापक परमेश्वर को दृढ़ साधनों से साक्षात् करते हैं और आत्मा की तृप्ति के लिये उसकी स्तुति करते हैं।

९०४. हिन्वन्ति सूरमुस्रयः स्वसारो जामयस्पतिम्। महामिन्दुं महीयुवः ॥

पांचवाँ सूक्त—गतिशील, स्वयं कार्य में अग्रसर होनेवाली, महत्त्व की आकांक्षा करती हुई इन्द्रियाँ, पत्नियों के समान, अपने महान्-आह्लादक, प्रेरक पति के समान पालक प्रभु को प्राप्त होती हैं।

९०५. पवमान रुचारुचा देव देवेभ्यः सुतः। विश्वा वसून्या विश ॥

हे परमात्मन्! विद्वान्-उपासकों के हृदय में विशेष रूप से प्रकट होनेवाले आप सभी वस्तुओं (निवासयोग्य स्थानों) में सब ओर व्याप्त हैं।

९०६. आ पवमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुवः। इषे पवस्व संयतम् ॥

हे पवित्र करने वाले प्रभो! विद्वानों की प्रार्थना से और दिव्य प्राकृतिक शक्तियों के द्वारा आप अन्न की उत्पत्ति के लिये ठीक समय पर नियमित तथा प्रशंसनीय वर्षा को प्रेरित कीजिये।

तीसरा खण्ड

९०७. जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे।
घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्विभाति भरतेभ्यः शुचिः ॥

छठा सूक्त—उत्पन्न हुए संसार का रक्षक सदा जागने वाला (सावधान), उत्तम चतुर, ओजस्विता से सर्वत्र पहचानने योग्य, शुद्ध, सर्वज्ञ, परमात्मा नवीन-नवीन सुख तथा कल्याण के लिये होता है। वह द्युलोक तक फैले हुए महान् तेज से प्रजापालक जनों के लिये ज्ञानमय होकर विशेष रूप से शोभा देता है।

९०८. त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहाहितमन्वविन्दञ्छिश्रियाणं वनेवने।
स जायसे मथ्यमानः सहो महत्त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ॥

हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! प्रत्येक जीव में व्यापक, हृदय में छिपे हुए आपको ज्ञानी उपासकः जन प्राप्त करते हैं। वह आप बड़े पुरुषार्थ से ध्यान किये जाने पर हृदय में साक्षात् होते हैं, अतः मनुष्य आपको, 'पुरुषार्थ का पुत्र' तथा 'सहनशक्ति द्वारा पापों से रक्षक' कहते हैं।

६०६. यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्थे समिन्धते ।
इन्द्रेण देवैः सरथं स बर्हिषि सीदन् नि होता यजथाय सुक्रतुः ॥

उपासक मनुष्य श्रेष्ठ कर्मों के बतलाने वाले, सब से पहले हितैषी, जीवात्मा तथा इन्द्रियों के साथ-साथ हृदयरूपी रथ में प्रत्यक्ष किये हुए परमात्मा को तीन प्राणों के एकत्र होने के स्थान त्रिपुटी में अथवा इडा, पिंगला, सुषुम्णा इन तीन नाड़ियों के संगमस्थान में अच्छी प्रकार साक्षात् करते हैं। श्रेष्ठ कर्मोंवाला होता, वह परमात्मा इस उपासनायज्ञ में संगति के लिये हृदयदेश में विराजमान होता है।

६१०. अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा । ममेदिह श्रुतं हवम् ॥

सातवां सूक्त— सत्यज्ञान और जीवन की वृद्धि करनेवाले हे मित्र और वरुण (परमात्मा और जीवात्मा तथा प्राण और अपान) ! यह जीवन का रस आप दोनों के लिये अर्पित है। आप मुझ उपासक की प्रार्थना को सुनें।

६११. राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे । सहस्रस्थूण आशाते ॥

इस शरीर के राजा, आपस में द्रोह करने वाले आप दोनों उत्तम, स्थिर, सहस्रदल कमल रूप स्थान में व्याप्त हैं।

६१२. ता सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती । सचेते अनवह्वरम् ॥

दीप्त तेज को उत्पन्न करने वाले प्रकाशमान, अखण्डित, उपासक की रक्षा करनेवाले आप दोनों इस उपासनारूपी कुटिलता-रहित यज्ञ में आपस में मिलकर कार्य करते हैं।

६१३. इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः । जघान नवतीर्नव ॥

आठवां सूक्त—उपासक जीवात्मा, किसी से भी पराजित न होकर, ध्यान द्वारा प्राप्त करने योग्य परमेश्वर की शक्तियों से ज्ञान पर परदा डालने वाली ८१० प्राकृतिक व्युत्थान-वृत्तियों का नाश करदेता है।

६१४. इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् । तद्विदच्छर्यणावति ॥

मेरुदण्ड के पर्वों में स्थित, शरीर में व्यापक जीवात्मा का जो शिर (चित्-केन्द्र) है, उसको चाहता हुआ उपासक जीवात्मा उसको आकाश वाले स्थान हृदयदेश अथवा मूर्धास्थान में प्राप्त करता हैं।

६१५. अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥

यहाँ त्वष्टा से सम्बन्ध रखने वाली सुषुम्णा नाड़ी का कुछ न ढका हुआ अंश ही चन्द्रमा के घर (भौओं के बीच वामभाग में या तालुके बीच में ऊपर की ओर मूर्धास्थान) में गया हुआ है, ऐसा माना जाता है।

६१६. इयं वामस्य मन्मन इन्द्राग्नी पूर्व्यस्तुतिः । अभ्राद्वृष्टिरिवाजनि ॥

नवाँ सूक्त—हे अग्नि तथा इन्द्र, ब्रह्म और जीवात्मन् अथवा शासक और विद्वान् तथा अध्यापक और उपदेशक ! आप दोनों का यह श्रेष्ठ गुणवर्णन इस मन्त्र से अथवा मननशील स्तोता से, मेघ से वर्षा के समान प्रकट होता है।

६१७. शृणुतं जरितुर्हवमिन्द्राग्नी वनतं गिरः । ईशाना पिप्यतं धियः ॥

हे इन्द्र तथा अग्नि ! आप दोनों स्तोता की पुकार को सुनिये, वेदवाणियों को स्वीकार कीजिये । आप दोनों ऐश्वर्यवान् होते हुए कर्मों को पूरा करते हैं ।

६१८. मा पापत्वाय नो नरेन्द्राग्नी माभिशस्तये । मा नो रीरधतं निदे ॥

हे नेतारूप इन्द्र और अग्नि ! आप दोनों हमें पाप, पराधीनता तथा निन्दायोग्य हिंसक कामोंमें कभी न प्रेरित होने दें ।

चौथा खण्ड

६१९. पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे । मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥

दसवाँ सूक्त—हे दुःख हरने वाले प्रभो ! कार्यसाधक आनन्दस्वरूप आप इन्द्रियों, प्राणों तथा जीवात्मा की तृप्ति के लिये प्रकट होइये ।

६२०. सं देवैः शोभते वृषा कविर्योनावधि प्रियः । पवमानो अदाभ्यः ॥

सुखवर्षक, पवित्र करने वाला, अहिंस्य, प्रिय, कवि परमात्मा अपने स्वरूप में प्राकृतिक शक्तियों के साथ शोभित होता है ।

६२१. पवमान धिया हितो३ऽभि योनिं कनिक्रदत् । धर्मणा वायुमारुहः ॥

हे गतिशील प्रभो ! धारणा तथा ध्यान द्वारा मूलस्थान हृदयदेश में धारण कियेगये, दिव्यनाद करते हुए आप अपने धारक नियमों से गतिशील जीवात्मा के भी अन्दर और बाहर वर्तमान हैं ।

६२२. तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे ।
पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीँ रति ताँ इहि ॥

११ वाँ सूक्त—हे परमात्मन् ! मैं आपकी मित्रता में प्रतिदिन आनन्द प्राप्त करता हूँ । बुरी प्रवृत्तियाँ तथा विपत्तियाँ मुझे पीड़ित करती हैं, उनसे मेरी रक्षा कीजिये ।

९२३. तवाहं नक्तमुत सोम ते दिवा दुहानो बभ्र ऊधनि ।
घृणा तपन्तमति सूर्यं परः शकुना इव पप्तिम ॥

हे विश्वम्भर परमात्मन् ! मैं आपके रसमय कोश में रात में और दिन में भी रस प्राप्त करता हूँ। दीप्ति से तपते हुए सूर्य के समान आपके पास, पक्षियों तथा किरणों के समान हम, कर्मबन्धन को पार करके, प्राप्त हो जावें।

९२४. पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः । शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥

१२ वाँ सूक्त—द्रष्टा परमात्मा, गति करता हुआ, सब संघर्षों में विजय करा देता है, उस सर्वज्ञ को उपासकजन स्तुतियों से सुशोभित करते हैं।

९२५. आ योनिमरुणो रुहद्गमदिन्द्रो वृषा सुतम् । ध्रुवे सदसि सीदतु ॥

कान्तिमान् परमात्मा हृदय में प्रकट होता है, श्रेष्ठ जीवात्मा हृदय में प्रकट हुए उसके प्रति झुक जाता है। वह परमात्मा स्थिर आश्रयस्थान आत्मा में सदा अनुभूत होता रहे।

९२६. नू नो रयिं महामिन्दोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणम् ॥

हे परमात्मन् ! आप हमारे लिये हजारों सुखों से युक्त विशाल ऐश्वर्य को सब ओर से पवित्र बनाइये।

पांचवाँ खण्ड

९२७. पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः । सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥

१३ वाँ सूक्त– ईश्वर कहता है कि हे जीवात्मन् ! भक्ति और ज्ञान को स्वीकार कर। इन्द्रिय-रूपी घोड़ों वाले उपासक ! वह मेरी भक्ति तुझको प्रसन्न करे, जिसको विद्वान् होकर मैंने तेरे लिये दृढ़ता से उसी प्रकार सम्पादित किया है, जैसे प्रेरक सारथि द्वारा घोड़ा उत्तमरूप से नियन्त्रित किया जाता है।

९२८. यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि । स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥

इन्द्रियों से शक्तिशाली जीवात्मन् ! जो तेरा योगाभ्यास में प्राप्त हुआ मनोहर आनन्द है, जिसके द्वारा तू काम-क्रोध आदि शत्रुओं को नष्ट करता है, वह तुझे आनन्दित करे।

९२९. बोधासु मे मघवन् वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।
इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥

हे ऐश्वर्यशाली उपासक ! तू मेरी इस उत्तम गुण वर्णन करने वाली वेदवाणी को अच्छी प्रकार समझ, जिसको कि तेरी वाणी प्रकट कर रही है। समाधि-अवस्था में इस वेदज्ञान का सेवन कर।

९३०. विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।
क्रत्वे वरे स्थेमन्यामुरीमुतोग्रमोजिष्ठं तरसं तरस्विनम् ॥

१४ वाँ सूक्त—श्रेष्ठ मनुष्य एकमत से, समस्त दुर्गुणों की सेनाओं को नष्ट कर देने वाले, विघ्नसंहारक, उग्र, ओजस्वी, वेगवान् तथा बलवान् परमेश्वर को ही दीप्ति तथा राज्य के लिये प्रत्येक उत्तम तथा स्थिर कार्य में अपना स्वामी स्वीकार करते हैं।

६३१. नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरे ।
सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ।।

ज्ञानी, सुन्दर दीप्ति वाले, द्रोहरहित, शीघ्र कार्य करने वाले पुरुष उपासना-यज्ञ के गायन में, प्रकाश में सूर्य के समान परमात्मा को नमस्कार करते हैं। तुम उपासक भी सब कार्यों में वेदमन्त्रों द्वारा उसको नमस्कार किया करो।

६३२. समु रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये ।
स्वः पतिर्यदी वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ।।

गायक विद्वान् आनन्दरस के पान करने के लिये परमेश्वर को ही लक्ष्य करके गान किया करते हैं जिससे कि व्रतधारी, सुखों का स्वामी परमेश्वर उनकी वृद्धि के लिए अपने तेज और रक्षाओं के द्वारा संगत हो जावे।

६३३. यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे ।।

१५ वाँ सूक्त—मैं उस परमात्मा की उपासना करता हूँ जो मनुष्यों का राजा है, रमणीय योगसाधनों से प्राप्त होनेवाला है, जिसकी गति को कोई रोक नहीं सकता, जो काम-क्रोध आदि की सेनाओं से उपासक को बचाने वाला, मनुष्यों को दुःखसागर से पार करने वाला, महान् और वृत्रों का नाशक है।

६३४. इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्त्तरि ।
हस्तेन वज्रः प्रति धायि दर्शतो महान्देवो न सूर्यः ।।

हे इन्द्रियों को वश में करने वाले उपासक! उस परमेश्वर को अपनी रक्षा के लिये पुकार, जिस—तेरे विशेष धारणकर्त्ता में स्वामी और सेवक का द्वैत भाव है। जिसने अपने अधिकार में ज्ञानरूपी वज्र धारण किया हुआ है, वह दर्शनीय, महान् देव सूर्य के समान प्रकाशक है।

छठा खण्ड

६३५. परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः । स्वानैर्याति कविक्रतुः ।।

१६ वाँ सूक्त— द्युलोक का क्रान्तदर्शी, द्यु और पृथिवी के बीच सर्वत्र स्थित प्रभु अपनी मधुर ध्वनियों के साथ सब लोकों के चारों ओर व्यापक है।

६३६. स सूनुर्मातरा शुचिर्जातो जाते अरोचयत् । महान्मही ऋतावृधा ।।

उत्पन्न हुए पुत्र के समान कान्तिमान् और महान् वह परमात्मा ज्ञान को बढ़ानेवाली, हमारे माता-पिता के समान वर्तमान, प्रसिद्ध द्यौ और पृथिवी को प्रकाशित करता है।

९३७. प्रप्रक्षयाय पन्यसे जनाय जुष्टो अद्रुहः । वीत्यर्ष पनिष्टये ॥

हे प्रभो ! स्तुति करने वाले उपासक के लिये सेव्य, द्रोहरहित आप अधिक से अधिक निवास और व्यवहारसिद्धि तथा सुखोपभोग के लिये हमें प्राप्त हों।

९३८. त्वां ह्या ३ ङ्ग दैव्यं पवमान जनिमानि द्युमत्तमः । अमृतत्वाय घोषयन् ॥

१७ वाँ सूक्त – हे पवित्र करनेवाले प्रभो ! सब से अधिक द्युतियुक्त आप ही हमें अमृतत्व प्राप्त कराने के लिये द्यु आदि लोकों और दिव्यगुणों के मूलकारणों का उपदेश किया करते हैं।

९३९. येना नवग्वा दध्यङ्ङपोर्णु ते येन विप्रास आपिरे ।
देवानां सुम्ने अमृतस्य चारुणो येन श्रवांस्याशत ॥

आप वह हैं जिस के द्वारा श्रेष्ठ वाणियों का ज्ञाता विद्वान् अपना ज्ञान प्रकट करता है, जिसके बल पर विद्वान् सुख प्राप्त करते हैं और जिससे विद्वानों के यज्ञ में सुन्दर अमृतत्व के रहस्यों को उपासकजन प्राप्त किया करते हैं।

९४०. सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं वि धावति । अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥

१८ वाँ सूक्त —परमात्मा पवित्र करता हुआ, ऊर्ध्वगति से, ज्ञान की लहर से, उपासक के अज्ञान के आवरण को पार कर देता है। वह हृदय में भावनापूर्ण रोमाञ्च के साथ विशेष प्रकार से दौड़ रहा है। वह वेदवाणी के आगे-आगे 'ओ३म्' के रूप में उच्चारण किया जाता है।

९४१. धीभिर्मृजन्ति वाजिनं वने क्रीडन्तमत्यविम् । अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन् ॥

जगत् में क्रीडा करते हुए, अति बलवान्, अतीन्द्रिय परमात्मा को मननशील उपासक अपनी बुद्धियों द्वारा और भी अधिक विवेक से दर्शन करते हैं, वे मन, वाणी और शरीर—तीनों स्थानों में व्यापक उसको सर्वत्र साक्षात् करते हुए स्तुति करते हैं।

९४२. असर्जि कलशाँ अभि मीढ्वान्त्सप्तिर्न वाजयुः । पुनानो वाचं जनयन्नसिष्यदत् ॥

आनन्दघन वह परमात्मा, युद्ध में घोड़े के समान, उपासकों की आत्माओं में प्रकट होता हैं और उनको पवित्र करता हुआ, शुद्ध वाणी को प्रकट करता हुआ उन पर कृपा किया करता है।

९४३. सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥

१९ वाँ सूक्त—बुद्धियों का जन्म देनेवाला, द्यु, पृथिवी, अग्नि, सूर्य, विद्युत् और यज्ञ का उत्पादक शरीर में तेज, वाणी, आँख, प्राण, श्रोत्र, हृदय आदि को पैदा करने वाला वह प्रेरक तथा शान्त परमात्मा सब जगह गति कर रहा है।

६४४. ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् ।
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ।।

इन्द्रियों का ब्रह्मा, विद्वानों के लिये चतुर्वेदज्ञाता, तत्त्वज्ञानियों का मार्गदर्शक, इन्द्रियों को गति देनेवाला, उपासकों के लिये महान् पूज्य, इन्द्रियों के बीच स्वतः चेतन, विषयोंरूपी वनों के लिये कुठार के समान नाशक, सोम परमात्मा अनाहत नाद करताहुआ शुद्ध हृदय में प्रकट होता है।

६४५. प्रावीविपद्वाच ऊर्मि न सिन्धुर्गिरस्तोमान् पवमानो मनीषाः ।
अन्तः पश्यन् वृजनेमावराण्या तिष्ठति वृषभो गोषु जानन् ।।

पवित्र करनेवाला, मन को प्रेरणा देने वाला परमात्मा नदी के प्रवाह के समान वाणी की तरंगों को प्रेरित करता है और वेदवाणियों के समूहों को भी प्रकट करता है। उपासना के अन्दर हृदय में देखता हुआ सुखवर्षक वह प्रभु ज्ञानेन्द्रियों में बोधशक्ति देता हुआ इन त्यागनेयोग्य पापवृत्तियों को वश में करता है तथा अदम्य बलों को प्राप्त कराता है।

सातवाँ खण्ड

६४६. अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम् । अच्छा नप्त्रे सहस्वते ।।

२०वाँ सूक्त—हे मनुष्यो ! तुम अपने हिंसारहित यज्ञों, परोपकार आदि कार्यों के बढ़ानेवाले पुरूतम=सब दुष्ट गुणों के नाशक, सबसे श्रेष्ठ, बन्धुओं के समान सहायक, सबसे अधिक बलवान् परमात्मा को सबसे अच्छा समझो।

६४७. अयं यथा न आभुवत् त्वष्टा रूपेव तक्ष्या । अस्य क्रत्वा यशस्वतः ।।

जिस प्रकार बढ़ई लकड़ी को काट-काटकर रूपयुक्त पदार्थों को बनाता है, उसी प्रकार परमात्मा भी सब रूपवाले पदार्थों को ठीक-ठीक बनाता है। हम भी यशस्वी के ज्ञान और कर्म से उत्पन्न हुए हैं।

६४८. अयं विश्वा अभि श्रियोऽग्निर्देवेषु पत्यते । आ वाजैरुप नो गमत् ।।

सब देवों में यही महान् देव परमात्मा समस्त लक्ष्मियों को प्राप्त होता है। वह ज्ञानों के साथ हमें प्राप्त हो।

६४९. इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् । शुक्रस्य त्वभ्यक्षरन् धारा ऋतस्य सादने ।।

२१वाँ सूक्त—हे इन्द्र=परमात्मन् ! आप मेरे द्वारा सम्पादित इस अमर भक्तिरस को स्वीकार कीजिये। सत्यज्ञान के उत्पन्न होने पर आप के निवासस्थान मेरे हृदय में शुद्धस्वरूप कान्ति की धारायें आपके प्रति बह रही हैं।

६५०. न किष्ट्वद्रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे ।
न किष्ट्वानु मज्मना न किः स्वश्व आनशे ।।

हे परमेश्वर ! क्योंकि आप ज्ञान और क्रियारूपी घोड़ों को नियम में रखते हैं अतः आप से बढ़कर रथी (सवार) कोई दूसरा नहीं है। बल में भी आपके बराबर कोई नहीं है और उत्तम व्यापनशक्ति से सम्पन्न भी कोई दूसरा आपके समान व्यापक नहीं है।

९५१. इन्द्राय नूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन। सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ॥

हे मनुष्यो ! उस प्रसिद्ध परमेश्वर की उपासना करो और वेदमन्त्रों का उच्चारण करो। जिसमें कि समस्त संसार के उत्पन्न हुए कान्तिमान् पदार्थ और उपासकजन भी आनन्द कर रहे हैं। उस सर्वशक्तिमान् श्रेष्ठ परमात्मा को नमस्कार करो।

९५२. इन्द्र जुषस्व प्रवहायाहि शूर हरिह। पिबा सुतस्य मतिर्न मधोश्चकानश्चारुर्मदाय ॥

२२वाँ सूक्त—हे ऐश्वर्यशाली जीवात्मन्। तू इस भक्ति का सेवन कर, काम-क्रोध आदि शत्रुओं पर चढ़ाई कर। हे शूर और इन्द्रियरूपी घोड़ों को ताड़ना देने वाले उपासक ! आ। मननशील के समान श्रेष्ठ होकर मधुर ब्रह्मरस के आनन्द को चाहता हुआ तू अपने द्वारा सम्पादित भक्ति के रस को पी।

९५३. इन्द्र जठरं नव्यं न पृणस्व मधोर्दिवो न।
अस्य सुतस्य स्वा३र्नोप त्वा मदाः सुवाचो अस्थुः ॥

हे ऐश्वर्यशाली उपासक ! जैसे द्युलोक प्रकाश से पूर्ण है, वैसे ही तू इस मधुर ब्रह्मानन्दरस से अपने को पूर्ण करले। ऐसा पूर्ण कर कि जैसे अभी पूर्णहुआ हो (आनन्द में कमी न रहे)। इस भक्ति के सुख के समान आनन्दयुक्त वेदवाणियाँ भी तुझ को प्राप्त होरही हैं।

९५४. इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो न जघान वृत्रं यतिर्न।
बिभेद बलं भृगुर्न ससाहे शत्रून् मदे सोमस्य ॥

भक्ति के आनन्द में मग्न, ऐश्वर्यशाली उपासक सूर्य के समान, हिंसकों का नाशक होकर और संन्यासी-सा होकर ज्ञान पर पर्दा डालनेवाले अज्ञान को नष्ट कर देता है। अग्नि के समान होकर वह आत्मिक शत्रुओं की सेना को छिन्न-भिन्न कर देता है और काम-क्रोध आदि सभी शत्रुओं को पराजित कर देता है।

--०--

छठा अध्याय   दूसरा अर्धप्रपाठक

ऋषि—१ तीन ऋषिगण। २ काश्यप। ३—४, १३ असित काश्यप तथा देवल। ५ अवत्सार। ६, १६ जमदग्नि। ७ अरुण वैतहव्य। ८ उरुचक्रि आत्रेय। ९ कुरुसुति काण्व। १० भरद्वाज बार्हस्पत्य। ११ भृगु वारुणि तथा जमदग्नि। १२ सात ऋषि। १४. १५, २३ गोतम राहूगण। १७ ऊर्ध्वसद्मा और कृतयशा (क्रम से)। १८ त्रित। १९ रेभ के पुत्र दो काश्यप। २० मन्यु वासिष्ठ। २१ वसुश्रुत आत्रेय। २२ नृमेध।

देवता—१–६, ११–१३, १६–२० पवमान सोम। ७, २१ अग्नि। ८ मित्र और वरुण। ६, १४, १५, २२, २३ इन्द्र। १० इन्द्र और अग्नि।

छन्द—१, ७ जगती। २–३, ८–११, १३, १६ गायत्री। १२ बृहती। १४, १५, २१ पंक्ति। १७ ककुप् और सतोबृहती (क्रम से)। १८, २२ उष्णिक्। १६,२३ अनुष्टुप्। २० त्रिष्टुप्।

स्वर—१, ७ निषाद। २–६, ८–११ १३, १६ षड्ज। १२ मध्यम। १४, १५, २१ पञ्चम। १७ ऋषभ और मध्यम (क्रम से)। १५, २२ ऋषभ। १६, २३ गान्धार। २० धैवत।

६५५. गोवित्पवस्व वसुविद्धिरण्यविद्रेतोधा इन्दो भुवनेष्वर्पितः।
त्वं सुवीरो असि सोम विश्ववित्तं त्वा नर उप गिरेम आसते॥

पहला सूक्त—हे शान्त सबके उत्पादक परमेश्वर! आप वसुओं में व्यापक, तेजस्वी हैं तथा लोकों में सृष्टि-उत्पन्न करने की शक्ति को धारण करके व्याप्त हो रहे हैं। आप सर्वज्ञ और सुन्दर वीर हैं। ऐसे आपकी ये समस्त मनुष्य अपने वाणी द्वारा उपासना करते हैं। आप सबको पवित्र कीजिये।

६५६. त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः पवमान वृषभ ता वि धावसि।
स नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवद्वयं स्याम भुवनेषु जीवसे॥

हे प्रेरक, पवित्रकारक, सुखवर्षक प्रभो! आप सब स्थानों में मनुष्यों के देखनेवाले हैं और उन प्रजाओं में सर्वत्र व्यापक हैं। वह आप हमारे लिये धन-धान्य और तेज से युक्त ऐश्वर्य की वर्षा कीजिये जिससे हम भुवनों में जीवित रहने के लिये समर्थ हों।

६५७. ईशान इमा भुवनानि ईयसे युजान इन्दो हरितः सुपर्ण्यः।
तास्ते क्षरन्तु मधुमद् घृतं पयस्तव व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः॥

हे अमृतस्वरूप परमेश्वर! आप हरणकरनेवाली वेगवान्, सुन्दर मार्ग में जानीवाली प्रजाओं को यथायोग्य कर्मों में युक्त करते हुए इन भुवनों में पहुँचे हुए हैं, वे सब प्रजायें आपके लिये मधुर, स्नेहयुक्त, वचनों को प्रकट करें और समस्त मनुष्य अपने नियम में चलें।

६५८. पवमानस्य विश्ववित् प्र ते सर्गा असृक्षत। सूर्यस्येव न रश्मयः॥

दूसरा सूक्त—हे सर्वज्ञ प्रभो! सर्वव्यापक आप के द्वारा निर्मित सृष्टियाँ और वेद-ऋचायें सूर्य की किरणों के समान सर्वत्र गति कर रही हैं।

६५६. केतुं कृण्वन्दिवस्परि विश्वा रूपाभ्यर्षसि। समुद्रः सोम पिन्वसे॥

हे सोम! सब लोकों को प्रकट करने वाले आप द्युलोक में आपकी महिमा को बतलाने वाले सूर्य को रचकर सभी कान्तिमान् पदार्थों को नियम में चला रहे हैं। और पूर्ण कर रहे हैं।

६६०. जज्ञानो वाचमिष्यसि पवमान विधर्मणि। क्रन्दन् देवो न सूर्यः॥

हे पवित्र करनेवाले प्रभो ! उदित सूर्य के समान प्रकाशक आप विशुद्ध आत्मा में वेदों की ध्वनि करते हुए वेदवाणी प्रकट करते हैं।

९६१. प्र सोमासो अधन्विषुः पवमानास इन्दवः । श्रीणाना अप्सु वृञ्जते ॥

तीसरा सूक्त—पवित्र ऐश्वर्यशाली, शान्त उपासक ज्ञान में पक्के होकर उपदेशार्थ लोकों में भ्रमण करते हैं।

९६२. अभि गावो अधन्विषुरापो न प्रवता यतीः । पुनाना इन्द्रमाशत ॥

ज्ञानी-उपासक, अच्छे मार्ग से जानेवाली जलधारा के समान, सर्वत्र जाया करते हैं और मनुष्यों को पवित्र करते हुए परमेश्वर को प्राप्त हो जाते हैं।

९६३. प्र पवमान धन्वसि सोमेन्द्राय मादनः । नृभिर्यतो वि नीयसे ॥

हे गतिशील, शान्त उपासक ! तू परमेश्वर के लिये प्रसन्नता का कारण बनकर उच्च दशा को प्राप्त होता है और अपने गुरुओं द्वारा नियम में चलाया जाकर विनीत होता है।

९६४. इन्दो यदद्रिभिः सुतः पवित्रं परिधीयसे । अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥

हे ऐश्वर्यशाली उपासक ! तू विद्वानों से प्रेरित होकर पवित्र प्रभु के लिये अर्पित किया जा रहा है क्योंकि तू परमेश्वर को हृदय में धारण करने के लिये योग्य है।

९६५. त्वं सोम नृमादनः पवस्व चर्षणीधृतिः । सस्निर्यो अनुमाद्यः ॥

हे सौम्य उपासक ! मनुष्यों को प्रसन्न करने वाला, प्रजा-द्वारा सम्मानित, शुद्ध और प्रशंसनीय तू सबको पवित्र कर।

९६६. पवस्व वृत्रहन्तम उक्थेभिरनुमाद्यः । शुचिः पावको अद्भुतः ॥

अज्ञान, काम, क्रोध आदि सभी आत्मिक शत्रुओं को पूर्णतया नष्ट कर देने वाले उपासक ! आदर करने योग्य, शुद्ध, आश्चर्यजनक, पवित्र करनेवाला तू वेदमन्त्रों तथा उत्तम वचनों से सबको पवित्र कर।

९६७. शुचिः पावक उच्यते सोमः सुतः स मधुमान् । देवावीरघशंसहा ॥

वही भक्त उपासक स्वयं शुद्ध तथा दूसरों को पवित्र करने वाला मधुर तथा सौम्य कहा जाता है जो दिव्यगुणों की रक्षाकरने वाला, विद्वानों की तृप्ति करने वाला और पापियों के पाखण्ड को दूर करनेवाला हो।

दूसरा खण्ड

९६८. प्र कविर्देववीतयेऽव्या वारेभिरव्यत । साह्वान्विश्वा अभि स्पृधः ॥

चौथा सूक्त—कवि परमात्मा सब बाधाओं को दूर करता हुआ विद्वानों की तृप्ति के लिये रक्षा करनेवाली विद्या के साधनों से युक्त करता है।

९६९. स हि ष्मा जरितृभ्य आ वाजं गोमन्तमिन्वति । पवमानः सहस्रिणम् ।।

वही सर्वव्यापक होकर स्तोताओं के लिये सहस्रों सुखों से युक्त, गौओं, वेदवाणियों तथा इन्द्रियों से सम्पन्न धन को देता है।

९७०. परि विश्वानि चेतसा मृज्यसे पवसे मती । स नः सोम श्रवो विदः ।।

हे परमात्मन् ! आप अपने ज्ञान से सबको शुद्ध करते हैं, और मनन करनेवाली शक्ति से पवित्र करते हैं। वही आप हमें वेदज्ञान को प्राप्त कराइये।

९७१. अभ्यर्ष बृहद्यशो मघवद्भ्यो ध्रुवं रयिम् । इषं स्तोतृभ्य आ भर ।।

हे सोम परमात्मन् ! आप यज्ञकर्ता तथा स्तोताओं के लिये एक बड़े यश और स्थिर धन को प्राप्त कराइये और अन्न से भी भरपूर कीजिये।

९७२. त्वं राजेव सुव्रतो गिरः सोमा विवेशिथ । पुनानो वह्ने अद्भुत ।।

हे ज्ञान को धारण करनेवाले अद्भुत प्रेरक प्रभो ! राजा के समान उत्तम कर्म करनेवाले तथा गति करते हुए आप वेदवाणियों में अच्छे प्रकार प्रवेश किये हुए हैं।

९७३. स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्योः । सोमश्चमूषु सीदति ।।

वही संसार का धारक, शान्त, तथा प्रजाओं में दुर्गमरूप से व्याप्त परमात्मा ज्ञान और कर्म द्वारा पवित्र करता हुआ प्रजा के हृदयों में स्थित है।

९७४. क्रीडुर्मखो न मंहयुः पवित्रं सोम गच्छसि । दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् ।।

हे व्यापक परमात्मन् ! संसार में क्रीडा करानेवाले तथा यज्ञ के समान प्रशंसनीय आप स्तोता के लिये उत्तम बल को धारण करते हुए उसके पवित्र हृदय में प्रकट होते हैं।

९७५. यवं यवं नो अन्धसा पुष्टं पुष्टं परि स्रव । विश्वा च सोम सौभगा ।।

पांचवाँ सूक्त—हे परमात्मन् ! हमारे लिये प्राणधारण करानेवाली शक्ति से खूब पुष्ट हुए जौ आदि अन्नों और सब सौभाग्यों को दीजिये।

९७६. इन्दो यथा तव स्तवो यथा ते जातमन्धसः । नि बर्हिषि प्रिये सदः ।।

हे परमेश्वर ! जैसी कि आपकी स्तुति है और जैसी कि आपके द्वारा प्राण-धारक अन्न की उत्पत्ति है, वैसे ही आप प्रिय उपासक के हृदय में भी विराजमान होते हैं।

९७७. उत नो गोविदश्ववित् पवस्व सोमान्धसा । मक्षूतमेभिरहभिः ।।

और इन्द्रियों तथा प्राणों के देनेवाले आप प्राणस्वरूप होकर शीघ्र ही समाप्त होनेवाले दिनोंमें हमें प्राप्त होइये।

९७८. यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य । स पवस्व सहस्रजित् ।।

जो स्वयं जीतता है, दूसरों से नहीं जीता जाता और आत्मिक शत्रुओं को घेरकर नाश कर देता है, ऐसे आप सहस्रों शत्रुओं को जीतनेवाले होकर हमें पवित्र कीजिये ।

९७९. यास्ते धारा मधुश्चुतोऽसृग्रमिन्द ऊतये । ताभिः पवित्रमासदः ।।

छठा सूक्त— हे परमेश्वर ! जो आपके मधुर आनन्द की धारायें प्रजा की रक्षा के लिये छोड़ी जा रही हैं, उनके साथ आप उपासक के पवित्र हृदय में विराजमान होइये ।

९८०. सो अर्षेन्द्राय पीतये तिरो वाराण्यव्यया । सीदन्नृतस्य योनिमा ।।

वह आप जीवात्मा की तृप्ति के लिये उसके प्रकृति के आवरणों को दूर कर सत्य के आश्रय-स्थान आत्मा में प्रकट हों ।

९८१. त्वं सोम परि स्रव स्वादिष्ठो अङ्गिरोभ्यः । वरिवोविद् घृतं पयः ।।

हे सोम परमात्मन् ! आप ज्ञानी उपासकों के लिये आनन्दप्रद और धन-धान्य आदि को प्राप्त कराने वाले होकर उनके लिये घी और दूध तथा मोक्षरूपी आनन्दरस की वर्षा कीजिये ।

तीसरा खण्ड

९८२. तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतोऽग्नेश्चिकित्र उषसामिवेतयः ।
यदोषधीरभिसृष्टो वनानि च परि स्वयं चिनुषे अन्नमासनि ।।

सातवाँ सूक्त— हे सर्वज्ञ परमात्मन् ! अग्नि के समान प्रकाशमान आपकी शोभाय, बादल की बिजुलियों और उषाकाल की किरणों के समान, जानी जा रही हैं, क्योंकि आप ओषधियों और वनस्पतियों आदि में व्यापक होकर, प्रलयकालरूपी अपने मुख में रखकर उनको स्वयं चुन लेते हैं ।

९८३. वातोपजूत इषितो वशाँ अनु तृषु यदन्ना वेविषद्वितिष्ठसे ।
आ ते यतन्ते रथ्यो३ यथा पृथक् शर्द्धांस्यग्ने अजरस्य धक्षतः ।।

हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! प्रिय वायु आदि प्राकृतिक शक्तियों से सेवित आप स्वयं शीघ्र ही उत्तम वनस्पतियों तथा अन्नों में व्याप्त होते हुए उनको अनेक प्रकार से प्रकाशित करते हैं । कभी बूढ़े न होने वाले, अज्ञान को भस्म करने वाले आपके बल और तेज, शूरवीर के शस्त्रों के समान, अलग-अलग स्थानों में लगकर सफल हो रहे हैं ।

९८४. मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनमग्निं होतारं परिभूतरं मतिम् ।
त्वामर्भस्य हविषः समानमित् त्वां महो वृणते नान्यं त्वत् ।।

हे परमात्मन् ! बुद्धि के उत्पादक, आत्मा को उत्कृष्ट साधना कराने वले सबके अग्रणी,

कर्मफलदाता, सब ओर अपनी शक्ति प्रकट करनेवाले, मननशील आप को ही, छोटे और बड़े ज्ञान के पाने के लिये, समान रूप से हम वरण करते हैं, आप से अन्य किसी को नहीं।

९८५. पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नूनं वां वरुण। मित्र वंसि वां सुमतिम् ॥

आठवाँ सूक्त—हे प्राण और अपान! आप दोनों के द्वारा की गई रक्षा बहुत अधिक है। आप निश्चय ही उत्तम ज्ञान को देते हैं।

९८६. ता वां सम्यगद्रुह्वाणेषमश्याम धाम च। वयं वां मित्रा स्याम ॥

हम उपासक द्रोहरहित तुम दोनों की प्रेरणा और धारण-सामर्थ्य को प्राप्त करें और तुम्हारे मित्र हों।

९८७. पातं नो मित्रा पायुभिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा। साह्याम दस्यून् तनूभिः ॥

तुम दोनों मित्र होकर अपनी रक्षाओं द्वारा तथा अन्य पालन करने वाले साधनों द्वारा हमें बचाओ। हम भी अपने शरीरों द्वारा दुष्टों तथा नाशकारी पदार्थों को पराजित कर सकें।

९८८. उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वा शिप्रे अवेपयः। सोममिन्द्र चमू सुतम् ॥

नवाँ सूक्त—हे जीवात्मन्! प्राण-अपानरूपी चमचों में उत्पन्न हुए जीवनरूपी रस को ग्रहण कर बल के साथ उन्नति करता हुआ तू अपने ज्ञान और कर्म की शक्तियों को बल देता है।

९८९. अनु त्वा रोदसी उभे स्पर्धमानमदूदेताम्। इन्द्र यद्दस्युहाभवः ॥

हे आगे बढ़ने में स्पर्धा करने वाले जीवात्मन्! तेरे कारण दोनों लोक आनन्द का अनुभव करते हैं जब कि तू दुष्टों तथा दुर्गुणों का नाश करने वाला होता है।

९९०. वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतावृधम्। इन्द्रात् परितन्वं ममे ॥

मैं उपासक चार वेद और चार उपवेद—इन आठ ज्ञान के स्थानोंवाली या ८ दिशाओं में फैली हुई, नौ प्रकार की (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, निघण्टु, धर्मशास्त्र, मीमांसा रूपी) रचनावाली वाणी को, और आठ चक्रवाले तथा नौ द्वार वाले शरीर को परमेश्वर से पूर्णतया प्राप्त करता हूँ।

९९१. इन्द्राग्नी युवामिमे३ऽभि स्तोमा अनूषत। पिबतं शम्भुवा सुतम् ॥

१० वाँ सूक्त—हे जीवात्मन् तथा परमात्मन्! आपके ये प्रशंसित कार्य वर्णन किये जा रहे हैं। कल्याणकारी आप दोनों इस सम्पादित की हुई भक्ति को स्वीकार करें।

९९२. या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा। इन्द्राग्नी ताभिरा गतम् ॥

हे दोनों नेताओ! उपासना के लिये प्रिय लगनेवाली आपकी जो निश्चित शक्तियाँ हैं उनके साथ ही आप प्राप्त होइये।

९९३. ताभिरा गच्छतं नरोपेदं सवनं सुतम् । इन्द्राग्नी सोमपीतये ।।

हे नेताओ ! आप दोनों उन शक्तियों के साथ ही इस सम्पादित उपासना-यज्ञ में आनन्द प्राप्त कराने के लिये प्राप्त होइये ।

चौथा खण्ड

९९४. अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत् । सीदन्योनौ वनेष्वा ।।

११वाँ सूक्त—हे प्रकाशमान सौम्य जीवन ! तू इन सूखे हुए शरीरों में अव्यक्त ध्वनि करते हुए सेवन योग्य उपासना-यज्ञों में अपनी उत्पत्ति के स्थान में विराजमान होकर, व्याप्त हो जा ।

९९५. अप्सा इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमा अर्षन्तु विष्णवे ।।

ज्ञानों तथा कर्मों में व्याप्त मेरी सौम्य उपासनायें आत्मा, प्राण, अपान, ज्ञानेन्द्रियों तथा सर्वव्यापक परमात्मा के लिए प्राप्त हो ।

९९६. इषं तोकाय नो दधदस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणम् ।।

हे मेरे सौम्य जीवन ! हमारी सन्तान के लिये और हमारे लिए सहस्रों सुख देने वाले अन्न आदि धन को धारण करता हुआ तू हमें पवित्र कर ।

९९७. सोम उ ष्वाणः सोतृभिरधिष्णुभिरवीनाम् ।
अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ।।

१२वाँ सूक्त—उपासकों द्वारा चेतनाओं के मार्गों से अनुभव किया जाता हुआ वह परमात्मा धारणा द्वारा, व्यापक चेतना को आनन्दजनक धारा के साथ हृदय में प्रकट होता है ।

९९८. अनूपे गोमान् गोभिरक्षाः सोमो दुग्धाभिरक्षाः ।
समुद्रं न संवरणान्यग्मन् मन्दी मदाय तोशते ।

जैसे गोपाल दुही हुई गौओं के साथ जलपूर्ण प्रदेश में जाता है, उसी प्रकार वाणी का स्वामी परमात्मा दुही हुई वेदवाणियों के साथ उपासक के भक्तिपूर्ण हृदय में प्रकट होता है । जैसे पानीपानी भरे नीचे स्थान समुद्र की ओर बहता है, उसी प्रकार हर्षकारक प्रभु जीवात्मा के आनन्द के लिये भक्तिपूर्ण हृदय में प्रकट होता है ।

९९९. यत्सोम चित्रमुक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसु । तन्नः पुनान आ भर ।।

१३वाँ सूक्त—हे परमात्मन् जो द्युलोक और पृथिवी का विचित्र और प्रशंसनीय धन है, उसको आप हमें पवित्र करते हुए प्राप्त कराइये ।

१०००. वृषा पुनान आयूंषि स्तनयन्नधि बर्हिषि । हरिः सन्योनिमासदः ।।

हे परमात्मन् ! सुखवर्षक आप उपासकों की आयुओं को पवित्र करते हुए, उनके हृदय देश में अव्यक्त ध्वनि करते हुए और दुःखों को दूर करने वाले होकर आत्मा में प्रकट होइये ।

१००१. युवं हि स्थः स्वःपती इन्द्रश्च सोम गोपती । ईशाना पिप्यतं धियः ॥

हे प्रेरक परमात्मन् ! आप और जीवात्मा दोनों सुख के स्वामी और इन्द्रियों के पोषक हैं। इस शरीर के ईश होते हुए आप हमारी बुद्धियों को बढ़ाइये ।

पांचवाँ खण्ड

१००२. इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
तमिन्महत्स्वाजिषूतिमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥

१४वाँ सूक्त—श्रेष्ठ मनुष्यों द्वारा दुष्टों को नष्ट करने वाला परमेश्वर आनन्द और बल को देने के लिये बड़ी शक्ति है। बड़े और छोटे ज्ञानयज्ञों तथा युद्धों में हम अपनी रक्षा के लिये उसे स्मरण करते हैं। वह हमारी रक्षा करता है।

१००३. असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि परादिदः ।
असि दभ्रस्य चिद्वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ॥

हे वीर परमेश्वर ! आप जीवात्मासहित इन्द्रियों के हितकारी हैं और बहुत प्रकार से शत्रुओं को पराजित करने वाले हैं। आप छोटे व्यक्ति की भी वृद्धि करने वाले हैं। आप ज्ञान-यज्ञ करने वाले उपासक के लिये अपना बहुत-सा ज्ञानरूपी धन दे देते हैं।

१००४. यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धनम् ।
युङ्क्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ॥

हे परमात्मन् ! जब काम-क्रोध आदि शत्रुओं के साथ आत्मिक युद्ध होते हैं, तो उन्हें हरानेवाले उपासक के लिये आप के द्वारा आत्मिक ज्ञानरूपी धन दिया जाता है। आप हमारे हर्षवर्षक, दुःख हारक प्राण और अपान को योगाभ्यास में लगाइये। आप उस-उसके कर्मानुसार किसी को तो दण्ड देते हैं और किसी को अनन्त धन (मोक्ष अवस्था) में रखते हैं। हे परमेश्वर ! हमें आप मोक्ष के आनन्द में आश्रय दीजिये ।

१००५. स्वादोरित्था विषूवतो मधोः पिबन्ति गौर्यः ।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभथा वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥

१५वाँ सूक्त—जीवन्मुक्त उपासक की शुद्ध इन्द्रियाँ सर्वव्यापक, मधुर, तृप्तिकारक, आनन्द-रस का इस प्रकार पान करती हैं कि वे सुखवर्षक आत्मा के साथ जातीं हुई आनन्दमग्न हो जाती हैं और शरीर में वास करनेवाली वे आत्मा के राज्य की शोभा बढ़ाती हैं।

१००६. ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥

इस जीवात्मा का सन्निकर्ष चाहती हुई, रस तक पहुँचनेवाली, प्रिय वे शुद्ध इन्द्रियाँ ज्ञान को और भी पक्का कर देती हैं, मोहनाशक वैराग्य को उत्पन्न करती हैं और शरीरवासी आत्मा की शक्ति के रूप में होकर वे जीवात्मा की प्रकाशमय सत्ता के अनुकूल होकर ही रहती हैं।

१००७. ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥

श्रेष्ठ चेतनायुक्त वे इन्द्रियाँ आत्मा की सहनशक्ति को अपने अनुभव से और भी अधिक बढ़ाती हैं और पूर्ण-ज्ञान-प्राप्ति के लिये देहवासी जीव से सम्बद्ध वे इन्द्रियाँ उसके व्रतों को आत्मिक प्रकाश की वृद्धि के लिये पालन करती हैं।

छठा खण्ड

१००८. असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः । श्येनो न योनिमासदत् ॥

१६वाँ सूक्त सर्वत्र व्यापक परमात्मा अपने प्रकट होने के स्थान हृदय में, श्येनरूपी आत्मा के समान ही, प्रकट होकर विराजमान है।

१००९. शुभ्रमन्धो देववातमप्सु धौतं नृभिः सुतम् । स्वदन्ति गावः पयोभिः ॥

जीवन्मुक्त उपासक की शुद्ध इन्द्रियाँ, प्राणों के साथ, उस शुद्ध, दिव्य गुणों द्वारा उत्पादित जीवनधारक परमेश्वर के आनन्दरस का आस्वाद लेती हैं।

१०१०. आदीमश्वं न हेतारमशूशुभन्नमृताय । मधो रसं सधमादे ॥

उपासकजन उपासना-यज्ञ में इस मधुर परमेश्वर के आनन्दरस को मोक्ष पाने के लिये नाना साधनाओं से उसी प्रकार सुशोभित करते हैं जैसे शीघ्रगामी घोड़े को अश्वारोही सजाते हैं।

१०११. अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुम् । विकोशं मध्यमं युव ॥

१७वाँ सूक्त—हे ज्ञान के स्वामी देव ! आप दिव्य स्वभाव की कामना करने वाले महान् यश को प्रकाशित कीजिये। बीच के आवरण करने वाले कोश—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय तथा विज्ञानमय को काटकर आनन्दमय कोश का दर्शन कराइये।

१०१२. आ वच्यस्व सुदक्ष चम्वोः सुतो विशां वह्निर्न विश्पतिः ।
वृष्टिं दिवः पवस्व रीतिमपो जिन्वन् गविष्टये धियः ॥

हे उत्तम बलसंपन्न प्रभो ! प्रजाओं को धारण करने वाले, दो सेनाओं के बीच विराजमान

राजा के समान, द्यु तथा पृथ्वी के बीच व्यापक आप गतिशील जीवों के हित के लिये अन्नों को देने-वाली जलवृष्टि को प्रेरित कीजिये और हमारी बुद्धियों को पवित्र कीजिये।

१०१३. प्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम्। विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता॥

१८वाँ सूक्त—प्राणसंचारक बड़ी शक्तियों का दाता, सूप्तरूप से वर्तमान प्रभु सत्यज्ञान की भावना को प्रेरित करता हुआ सब प्रिय वस्तुओं में वर्तमान हो रहा है, उन्हें दुगुनी प्यारी बना रहा है।

१०१४. उप त्रितस्य पाष्योऽरभक्त यद् गुहा पदम्। यज्ञस्य सप्त धामभिरध प्रियम्॥

जब मन वाणी, शरीर तीनों से साधना करने वाले उपासक के प्राण और अपान के बीच में प्रकट होकर वह परमात्मा हृदय-गुहा में स्थिति को प्राप्त होता है, तब वह पूजनीय परमात्मा के वर्णन करने वाले सातों प्रकार के छन्दों से प्रशंसित किया जाता है।

१०१५. त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्वैरयद्रयिम्। मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः॥

उपासक आत्मा की धारणा से तीन रसस्थान ब्रह्मरन्ध्र आज्ञाचक्र और स्वाधिष्ठान चक्र प्रकट होते हैं। उन तीनों मर्म-केन्द्रों में परमात्मा अपने ऐश्वर्य को प्रकट करता है। उत्तम योगी इस आत्मा के योग से जागृत तीनों स्थानों को विशेष रूप से जानकर सिद्ध करता है।

१०१६. पवस्व वाजसातये पवित्रे धारया सुतः। इन्द्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तरः॥

१९वाँ सूक्त - हे परमात्मन्! ज्ञान के पाने के लिए धारणा वाली बुद्धि द्वारा साक्षात् किये गये आप और भी अधिक आनन्द के देने वाले होकर जीवात्मा, यज्ञ, तथा विद्वानों के लिये पवित्र कीजिए।

१०१७. त्वां रिहन्ति धीतयो हरिं पवित्रे अद्रुहः। वत्सं जातं न मातरः पवमान विधर्मणि॥

हे पवित्रकर्त्ता प्रभो! जैसे गौएँ उत्पन्न हुए बछड़े को चाटती हैं, उसी प्रकार ध्यान-वृत्तियाँ विशेष धारणा के स्थल पवित्र धारणा-स्थान में आपस में द्रोह न करती हुई, मनोहर आपका आस्वाद लेती हैं।

१०१८. त्वं द्यां च महिव्रत पृथिवीं चाति जभ्रिषे। प्रति द्रापिममुञ्चथाः पवमान महित्वना॥

महान् व्रतोंवाले प्रभो! आप द्यु और पृथिवीलोकों को धारण किये हुए हैं। हे व्यापक परमात्मन्! आप अपनी महिमा से सब बन्धनों को पार करके व्याप्त हैं।

१०१९. इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय।
हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातिं वरिवस्कृण्वन् वृजनस्य राजा॥

२०वाँ सूक्त—बलशाली परमेश्वर जीवात्मा में सहनशीलता को प्रेरित करता हुआ उसके आनन्द के लिये इन्द्रियों को नम्रता की ओर प्रेरित करके पवित्र करता है। वह विघ्नों को दूर

करता और काम-क्रोध आदि शत्रुओं को नष्ट करता है। बल का राजा वह प्रभु श्रेष्ठ धन (आनन्द) को प्रदान करता है।

१०२०. अध धारया मध्वा पृचानस्तिरो रोम पवते अद्रिदुग्धः ।
इन्दुरिन्द्रस्य सख्यं जुषाणो देवो देवस्य मत्सरो मदाय ॥

और दृढ साधनों द्वारा साक्षात् किया गया परमेश्वर, मधुर आनन्द की धारा से संयुक्त होकर, अज्ञानरूपी परदे को पार करके हृदय में प्रकट होता है। वह आत्मा की मित्रता प्राप्त करता हुआ दिव्य आत्मा के हर्ष के लिये प्रकाशमान हो जाता है।

१०२१. अभि व्रतानि पवते पुनानो देवो देवान्त्स्वेन रसेन पृञ्चन् ।
इन्दुर्धर्माण्यृतुथा वसानो दश क्षिपो अव्यत सानो अव्ये ॥

अपने आनन्दरस से विद्वानों को तृप्त करता हुआ सर्वव्यापक देव-परमेश्वर सब कर्मों को पवित्र कर देता है। वह ऋतुओं के अनुसार नियमों को सम्पादन करता हुआ, स्थिर उच्च-प्रदेश (शिर) में सम्बद्ध, शीघ्र गतियुक्त दस इन्द्रियों तथा १० प्राणों (५ प्राण ५ उपप्राणों) में भी सर्वत्र प्राप्त होता है।

सातवाँ खण्ड

१०२२. आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आ भर ॥

२१वाँ सूक्त—हे ज्ञानस्वरूप प्रभो ! आपके लिये हम प्रकाशयुक्त, सदा युवा अपने आत्मा को प्रकाशित करते हैं। आपकी वह प्रशंसनीय द्युति द्युलोक में चमक रही है। आप स्तोताओं को अन्न और ज्ञान से भरपूर कीजिये।

१०२३. आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य ज्योतिषस्पते ।
सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् तुभ्यं हूयत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥

हे सूर्य आदि प्रकाशों के स्वामी परमात्मन् ! शुद्ध आपकी स्तुति के साथ, दानयोग्य वह आत्मा आपके लिये अर्पित किया जाता है। हे उत्तम आह्लादक, सर्वव्यापक, विघ्नहर्ता, संसार-धारक, कर्मफल प्रापक, प्रजाओं के स्वामी ! स्तोताओं के लिये ज्ञान और अन्न प्राप्त कराइये।

१०२४. ओभे सुश्चन्द्र विश्पते दर्वी श्रीणीष आसनि ।
उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥

हे श्रेष्ठ तथा हर्षित करनेवाले प्रजापति, शक्ति के स्वामी परमात्मन् ! आप द्यु और पृथिवी दोनों लोकों को अपने मुखरूपी तप में परिपक्व करते हैं और प्रशंसनीय कार्यों में हमें उत्तम फलों से पूर्ण करते हैं। आप विद्वानों के लिये अन्न और ज्ञान प्राप्त कराइये।

१०२५. इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् । ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ।

२२वाँ सूक्त—हे उपासको ! सर्वज्ञ, महान्, वेदज्ञान-प्रकाशक, ज्ञान-दाता, पूज्य इन्द्र के लिये महान् साम का गान करो।

१०२६. त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः । विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ।।

हे परमेश्वर ! आप सबसे अधिक शक्तिवाले हैं। आप ही सूर्य को प्रकाशित करते हैं, आप ही विश्व के निर्माता और विश्व के उपास्य तथा महान् हैं।

१०२७. विभ्राजञ्ज्योतिषा स्वा३रगच्छो रोचनं दिवः । देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ।।

हे परमेश्वर ! अपनी ज्योति से प्रकाश पहुँचाते हुए आप द्युलोक के भी प्रकाशक आनन्दमय मोक्षस्थानमें व्याप्त हैं। विद्वान् आपकी मित्रता के लिये प्रयत्न किया करते हैं।

१०२८. असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः ।।

२३वाँ सूक्त— हे परमेश्वर ! आपके लिये यह भक्ति सम्पादित की गई है। हे बलशाली तथा अज्ञाननाशक प्रभो ! आप हमारे हृदय में प्रकट होइये। आप हमारे मन को अपने ज्ञान से उसी प्रकार भर दीजिये जैसे सूर्य अपनी किरणों से लोकों को भर देता है।

१०२९. आ तिष्ठ वृत्रहन् रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी ।
अर्वाचीनं सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ।।

हे विघ्ननाशक ! आप मेरे रमणीय हृदय में प्रकट होइये। मैंने मन और वाणी को वेद-ज्ञान के द्वारा आप में लगाया है। मेरा मन और वाणी मनोहर ध्वनि द्वारा मुझे उत्तम प्रकार से आपके अभिमुख करे।

१०३०. इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम् । ऋषीणां सुष्टुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् ।

मेरा मन और वाणी बलवान् आत्मा को, ऋषियों की उत्तम अभिलाषाओं को और मनुष्यों के श्रेष्ठतम कार्य को प्राप्त कर रही हैं।

—०—

चतुर्थ प्रपाठक

(१०३१ मन्त्र से ११७६ मन्त्र तक)

सातवाँ अध्याय पहला अर्धप्रपाठक

(१०३१ मन्त्र से १११५ मन्त्र तक)

ऋषिः—१ आकृष्टामाषाः सिकता निवावरी, पृश्नयोऽजाश्च, २, ११ कश्यपः, ३ मेधातिथिः, ४ हिरण्यस्तूपः, ५ अवत्सारः, ७, २१ कुत्स आङ्गिरसः, ८ वसिष्ठः, ९ त्रिशोकः काण्वः, १० श्यावाश्वः, १२ सप्तर्षयः, १३ अमहीयुः, १४ शुनःशेप आजीगर्तिः, १५ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः, १६ (१, २—पूर्वार्धस्य, ३) मान्धाता यौवनाश्वः, (२—उत्तरार्धस्य) गोधा, १७ असित काश्यपो देवलो वा, १८ (१) ऋणञ्चयः, (२) शक्तिः, १९ पर्वत-नारदौ, २० मनुः सांवरणः, २२ बन्धुः सुबन्धु श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च गौपायना लौपायना वा, २३ भुवन आप्त्यः साधनो वा भौवनः, २४ वामदेवः ॥

देवता—१—६, ११—१३, १७—२१ पवमानः सोमः, ७, २२, अग्निः, ८ आदित्यः, ९, १४—१६, २४ इन्द्रः, १० इन्द्राग्नी, २३ विश्वेदेवाः ॥

छन्द—१, ७ जागती २—६, ८ ११, १३, १५, १७ गायत्री, १२ बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती+२ सतोबृहती), १६ महापङ्क्तिः, १८ (१) यवमध्या गायत्री, (२) सोतबृहती, १९ उष्णिक्, २० अनुष्टुप्, २१ त्रिष्टुप्, २२, २४ द्विपदा विराट्, २३ द्विपदा त्रिष्टुप् ॥

स्वर—१, ७, १६, निषादः, २—६, ८—११, १३—१५, १७, १८ (१) षड्जः, १२ (१) मध्यमः, १२ (२), १८ (२), २२, २४ पञ्चमः, १९ ऋषभः, २० गान्धारः, २१, २३ धैवतः ॥

प्रथम खण्ड

१०३१. ज्योतिर्यज्ञस्य पवते मधु प्रियं पिता देवानां जनिता विभूवसुः ।
दधाति रत्नं स्वधयोरपीच्यं मदिन्तमो मत्सर इन्द्रियो रसः ॥

पहला सूक्त—सृष्टि के प्रकाशक, प्रिय, ज्ञान प्राप्त करने योग्य, देवों के पालक, उत्पादक, सर्वव्यापक, जीवात्मा और प्रकृति में अन्दर भी व्यापक, सबसे अधिक आनन्दयुक्त और उपासकों के हृदय में आनन्द की वर्षा करने वाला, जीवों का हितकारी रसस्वरूप परमात्मा मोक्षसुख को धारण करता है।

१०३२. अभिक्रन्दन् कलशं वाज्यर्षति पतिर्दिवः शतधारो विचक्षणः ।
हरिर्मित्रस्य सदनेषु सीदति मर्मृजानोऽविभिः सिन्धुभिर्वृषा ॥

ज्ञानी और बलवान्, सूर्य आदि का पालक, सैकड़ों आनन्द-धाराओं से युक्त, द्रष्टा परमात्मा अव्यक्त ध्वनि करता हुआ जीवधारियों के शरीरों में व्याप्त रहता है। सुखवर्षक वही तापहारी

प्रभु अपने मित्र जीवत्मा के शरीरों में व्यापक होकर स्थित है और उस ओर जाने वाली मन की शक्तियों द्वारा बार-बार खोजा जाता है।

१०३३. अग्रे सिन्धूनां पवमानो अर्षस्यग्रे वाचो अग्रियो गोषु गच्छसि।

अग्रे वाजस्य भजसे महद् धनं स्वायुधः सोतृभिः सोम सूयसे॥

हे सब के प्रेरक परमात्मन्! पवित्र करनेवाले आप मन की शक्तियों से भी आगे जाने वाले हैं, वाणी और इन्द्रियों के भी नेता के समान होकर आगे जाते हैं, अन्न और बल से भी आगे बड़े भारी आनन्दरूपी धन को धारण करते हैं और उत्तम शक्तियोंसे सम्पन्न आप योगी उपासकों के द्वारा साक्षात् किये जाते हैं।

१०३४. असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया। शुक्रासो वीरयाशवः॥

दूसरा सूक्त — शुद्ध, संजीवनरस का सञ्चार करनेवाले, आलस्य रहित, योगी उपासकजन व्यापक और वीरतापूर्ण वाणी के द्वारा शक्तिशाली होकर व्यापक प्रभाववाले हो जाते हैं।

१०३५. शुम्भमाना ऋतायुभिर्मृज्यमाना गभस्त्योः। पवन्ते वारे अव्यये।

सत्य को चाहनेवाले शिष्यों से सुशोभित, तथा अन्धकारनाशक ज्ञान और योगाभ्यास से शुद्ध उपासकजन निर्विकार रक्षास्थान परमात्मा में विचरण करते हैं।

१०३६. ते विश्वा दाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा। पवन्तामान्तरिक्ष्या॥

वे सौम्य योगी उपासक अपने शिष्य उपासक के लिये द्यु, अन्तरिक्ष और पृथिवी के ज्ञानरूप धन की वर्षा करें।

१०३७. पवस्व देववीरति पवित्रं सोम रंह्या। इन्द्रमिन्दो वृषाविश॥

तीसरा सूक्त—हे प्राकृतिक शक्तियों तथा विद्वानों को प्रेरित करनेवाले परमेश्वर! आप वेग से उपासक के पवित्र हृदय में अत्यधिक प्रकाशित होइये। सुखवर्षक आप उपासक जीवात्मा के हृदय में प्रकट होइये।

१०३८. आ वच्यस्व महि प्सरो वृषेन्दो द्युम्नवत्तमः। आ योनिं धर्णसिः सदः॥

हे प्रभो! श्रेष्ठ आप अत्यधिक तेजस्वी होकर वेदज्ञान को प्रकट कीजिए और विश्व के धारक होकर अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित होइये।

१०३९. अधुक्षत प्रियं मधु धारा सुतस्य वेधसः। अपो वसिष्ट सुक्रतुः॥

सृष्टि के विधाता और हृदय में प्रकाशित परमात्मा की आनन्दधारा प्रिय मधुररस को प्रकट करती है। श्रेष्ठ कर्मों का कर्त्ता वह प्रभु सब लोकों को तथा प्राणियों के कर्मों को वश में रखता है।

१०४०. महान्तं त्वा महीरन्वापो अर्षन्ति सिन्धवः। यद्गोभिर्वासयिष्यसे॥

हे प्रभो! जब आप हमें वेदवाणियों से आच्छादित करते हैं, तब हमारे आनन्ददायक महान कर्म आपका अनुसरण करते हैं।

१०४१. समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टम्भो धरुणो दिवः। सोमः पवित्रे अस्मयुः॥

आनन्द-रस-पूर्ण, सबका आधार, द्युलोक का धारक और हमारा हित चाहनेवाला परमात्मा उपासक के कर्मों में और पवित्र हृदय में विशेष रूप से भासित होता है।

१०४२. अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः। सं सूर्येण दिद्युते॥

सुखवर्षक, दुःखहरण करनेवाला सूर्य तथा मित्र के समान दर्शनीय परमात्मा अपने प्रेरक बल से प्रकाशित हो रहा है।

१०४३. गिरस्त इन्द्र ओजसा मर्मृज्यन्ते अपस्युवः। याभिर्मदाय शुम्भसे॥

हे ऐश्वर्यशाली परमात्मन्! आपके ओज से ये पुरुषार्थ चाहनेवाली वाणियाँ शुद्ध की जाती हैं जिनके द्वारा आनन्दप्राप्ति के लिये, आपकी चर्चा की जाती है।

१०४४. तं त्वा मदाय घृष्वय उलोककृत्नुमीमहे। तव प्रशस्तये महे॥

हे प्रभो! हम उपासकजन अपने आत्मिक आनन्द के लिये और आपकी बड़ी प्रशंसा करने के लिये लोकों के बनाने वाले प्रसिद्ध आपकी प्रार्थना करते हैं।

१०४५. गोषा इन्दो नृषा अस्यश्वसा वाजसा उत। आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः॥

हे परमेश्वर! आप गौओं (वाणी, इन्द्रिय, सूर्यकिरण, गौ पशु आदि) के देने वाले श्रेष्ठ पुरुषों तथा वीर सन्तानों को उत्पन्न करनेवाले, अश्वों (घोड़ों, तथा प्राणों) के दाता अन्न तथा बल के दाता सृष्टि की आत्मा और सबसे पूर्व—सदा से वर्तमान हैं।

१०४६. अस्मभ्यमिन्दविन्द्रियं मधोः पवस्व धारया। पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव॥

हे परमेश्वर! वर्षा करनेवाले बादल के समान आप मधुर भक्ति की धारा से हमारे लिये जीवात्मा के बल-वर्धक आनन्दरस की वर्षा कीजिये।

दूसरा खण्ड

१०४७. सना च सोम जेषि च पवमान महिश्रवः। अथा नो वस्यसस्कृधि॥

चौथा सूक्त—हे पवित्र तथा प्रेरक परमात्मन्! आप हमारे लिये महान् ज्ञान का दान कीजिये तथा विजय प्राप्त कराइये और हमें ज्ञानियों में श्रेष्ठ बनाइये।

१०४८. सना ज्योतिः सना स्वा३र्विश्वा च सोम सौभगा। अथा नो वस्यसस्कृधि॥

हे प्रेरक प्रभो! हमें प्रकाश और सुख दीजिये तथा समस्त सौभाग्य प्राप्त कराइये और हमें सर्वश्रेष्ठ बनाइये।

१०४९. सना दक्षमुत क्रतुमप सोम मृधो जहि। अथा नो वस्यसस्कृधि।

हे परमेश्वर ! आप हमें बल और पुरुषार्थ दीजिये तथा हिंसकों का विनाश कीजिये। और हमें सर्वश्रेष्ठ कीजिये।

१०५०. पवीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे। अथा नो वस्यसस्कृधि ॥

हे परमेश्वर के उपासको ! तुम ऐश्वर्यशाली जीवात्मा के लिये—उसको आनन्दरस का पान कराने के लिये—परमात्मा को हृदय में प्रकट करो और हमें श्रेष्ठ बनाओ।

१०५१. त्वं सूर्ये न आ भज तव क्रत्वा तवोतिभिः। अथा नो वस्यसस्कृधि।

हे प्रभो ! आप अपनी स्वाभाविक क्रिया और रक्षाओं के द्वारा हमें सूर्यलोक (कर्मण्यलोक) में तथा अपने प्रेरक स्वरूप में शरण दीजिये और हमें श्रेष्ठस्थान का निवासी बनाइये।

१०५२. तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योक् पश्येम सूर्यम्। अथा नो वस्यसस्कृधि ॥

हे प्रभो ! आपकी क्रिया तथा रक्षाओं से हम चिरकाल तक सूर्य का दर्शन करते रहें। आप हमें श्रेष्ठ बनाइये।

१०५३. अभ्यर्ष स्वायुध सोम द्विबर्हसं रयिम्। अथा नो वस्यसस्कृधि ॥

हे उत्तम बलयुक्त प्रभो ! आप हमें दोनों लोकों में बढ़े-चढ़े ऐश्वर्य को प्राप्त कराइये और हमें उत्तम बनाइये।

१०५४. अभ्या३र्षानपच्युतो वाजिन्त्समत्सु सासहिः। अथा नो वस्यसस्कृधि ॥

हे अनन्तबल परमेश्वर ! अविचल तथा आत्मिक युद्धों में काम, क्रोध आदि को दबानेवाले आप हमारे हृदय में प्रकट होइये और हमें श्रेष्ठ बनाइये।

१०५५. त्वां यज्ञैरवीवृधन् पवमान विधर्मणि। अथा नो वस्यसस्कृधि ॥

हे पवित्र, व्यापक प्रभो ! हम उपासकजन योगाभ्यास में, विशेष शक्तिशाली अपने आत्मा में यज्ञों के द्वारा आपकी भक्ति को बढ़ाते हैं और आप हमें श्रेष्ठ बनाते हैं।

१०५६. रयिं नश्चित्रमश्विनमिन्दो विश्वायुमा भर। अथा नो वस्यसस्कृधि ॥

हे परमेश्वर ! आप हमें अनेक प्रकार के इन्द्रिय तथा प्राणों के हितकारी, पूरी आयु प्राप्त करानेवाले ऐश्वर्य से भरपूर कीजिये और हमें धनिकों तथा ज्ञानियों में सर्वश्रेष्ठ बनाइये।

१०५७. तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः। तरत्स मन्दी धावति ॥

पांचवाँ सूक्त – वह स्तोता इस संसार से तर जाता है, प्राप्त किये हुए ज्ञान और भक्ति की धारा से आनन्दित वह उपासक ब्रह्मकी ओर दौड़ता है और शरीर के बन्धनसे छूटकर मोक्ष प्राप्ति के लिये शीघ्र गति करता है।

१०५८. उस्रा वेद वसूनां मर्तस्य देव्यवसः। तरत्स मन्दी धावति ॥

ऊर्ध्वगति कराने वाली, दिव्यगुणयुक्त उपासना मनुष्य को प्राणों की रक्षा करने की शक्ति को प्राप्त कराती है। वह उपासक कष्टों को छोड़कर आनन्दित होता हुआ मोक्ष प्राप्त करता है।

१०५९. ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योरा सहस्राणि दद्महे । तरत्स मन्दी धावति ।।

हम उपासकजन गतिशील तथा पुरुषार्थयुक्त प्राण और अपान के सहस्रों बलों को ग्रहण करते हैं। उपासक का जीवात्मा दुःख से पार उतरकर परमात्मा की ओर जाता है।

१०६०. आ ययोस्त्रिंशतं तना सहस्राणि च दद्महे । तरत्स मन्दी धावति ।।

जिन प्राण-अपान के बल पर जो मनुष्य ३००००० तीन लाख दिन-रात अर्थात् लगभग ४११वर्ष तक जीवित रहते हैं उनको धारण करनेवाला योगी उपासक आनन्दमग्न होकर प्रकृति से हटकर परमात्मा की ओर जाता है।

१०६१. एते सोमा असृक्षत गृणानाः शवसे महे । मदिन्तमस्य धारया ।।

छठा सूक्त—आनन्दित करनेवाले परमात्मा की धारणा के द्वारा महान् ज्ञान प्राप्त करने के लिये पदार्थों का गुणवर्णन करते हुए ये सौम्य उपासक-विद्वान् संसार में उत्पन्न हुए हैं।

१०६२. अभिगव्यानि वीतये नृम्णा पुनानो अर्षसि । सनद्वाजः परि स्रव ।।

हे परमात्मन् ! ज्ञान का प्रकाश करने के लिये श्रेष्ठ इन्द्रियों से युक्त, वेदवाणी के योग्य मनुष्यों को पवित्र करते हुए आप हृदयमें प्रकाशित होते हैं। हे ज्ञानदाता प्रभो ! आप ज्ञान की वर्षा कीजिये।

१०६३. उत नो गोमतीरिषो विश्वा अर्ष परिष्टुभः । गृणानो जमदग्निना ।।

हे परमेश्वर ! आत्मा का साक्षात्कार करनेवाले उपासक के द्वारा स्तुति किये गये आप इन्द्रियों को बलदायक और प्रशंसनीय ज्ञान तथा अन्न को और समस्त कामनाओं को भी प्राप्त कराइये !

१०६४. इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।।

सातवाँ सूक्त—पूज्य तत्त्वज्ञाता परमात्मा के लिए हम उपासकजन रथ के समान लक्ष्य तक पहुंचानेवाले स्तुतिसमूह की वृद्धि करें। उसकी उपासना में लगी हुई हमारी बुद्धि कल्याणकारिणी हो। हे सर्वज्ञ प्रभो ! हम आपकी मित्रता में कभी कष्ट न पावें।

१०६५. भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणा पर्वणा वयम् ।
जीवातवे प्रतरां साधया धियोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।।

ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! आपके लिये हम अपने आपको समर्पित करते हैं और पूरे-पूरे साधनों द्वारा आपका चिन्तन करते हुए आपकी भक्ति करते हैं। आप हमारे जीवन के लिए बुद्धियों और कर्मों का उत्तम प्रकार से सिद्ध कीजिये। हम आपकी मित्रता में कभी पीड़ित न हों।

१०६६. शकेम त्वा समिधं साधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ।
त्वमादित्याँ आ वह तान् ह्यू३श्मस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।।

हे परमात्मन् ! हम आप को हृदय में प्रकाशित करने में समर्थ हों, आप हमारे कर्मों को सिद्ध कीजिये । आपके आधार पर विद्वज्जन प्राप्त पदार्थों का भोग करते हैं । प्रभो ! आप की मित्रता में हम कभी दुःख को न भोगें ।

तीसरा खण्ड

१०६७. प्रति वां सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम् । अर्यमणं रिशादसम् ।।

८वाँ सूक्त—सूर्य के उदय होने के समय में, मैं विघ्नों के नाशक और न्याय के अनुसार शरीर के रक्षक प्राण और अपान—दोनों के गुणों का वर्णन कर उनका संयम करता हूँ ।

१०६८. राया हिरण्यया मतिरियमवृकाय शवसे । इयं विप्रा मेधसातये ।।

हे विद्वानो ! यह बुद्धि तथा विचारणा हितकारी ऐश्वर्य के लिये, हिंसा-रहित बल के लिये और दूसरों को ज्ञान देने के लिये हो ।

१०६९. ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह । इषं स्वश्च धीमहि ।।

हे दिव्य प्राण और अपान ! हम उपासक-जन आपके तत्त्व को जानने वाले विद्वानों के साथ रहें और ज्ञान तथा आनन्द को धारण करें ।

१०७०. भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः । वसु स्पार्हं तदा भर ।

नवाँ सूक्त—हे परमेश्वर ! आप सभी द्वेषों को नष्ट कीजिये, बाधाओं को दूर कीजिये और आत्मिक शत्रुओं को भी नष्ट कीजिये । हमें उस अभिलषणीय मोक्ष को प्राप्त कराइये ।

१०७१. यस्य ते विश्वमानुषग्भूरेर्दत्तस्य वेदति । वसु स्पार्हं तदा भर ।।

हे प्रभो ! आपके दिये हुए जिस वेदज्ञान को संसार बराबर सदा से जानता है, उसी वेद-रूपी धन को हमें प्राप्त करायें ।

१०७२. यद्वीडाविन्द्र यत् स्थिरे यत् पर्शाने पराभृतम् । वसु स्पार्हं तदा भर ।।

हे परमेश्वर ! जो बल अदम्य पुरुष के पास, जो स्थिरता स्थिरबुद्धि के पास और जो ज्ञान विचारशील पुरुष में रहता है, उसी बल, स्थिरता और ज्ञान से हमें भरपूर कीजिये ।

१०७३. यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा सस्नी वाजेषु कर्मसु । इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ।।

दसवाँ सूक्त—हे जीवात्मन् तथा परमात्मन् ! आप दोनों इस उपासना-यज्ञ के प्रत्येक ऋतु में प्रवर्तक हैं और ज्ञान-यज्ञों में तथा सब कर्मों में स्नातक=चतुर हैं । आप दोनों हमें उस उपासना का बोध कराइये ।

१०७४. तोशासा रथयावाना वृत्रहणापराजिता । इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥

हे जीव और परमेश्वर ! आप दोनों विघ्नों के नाशक, रमणीय गति वाले, अज्ञान के नष्ट करने वाले और किसी से भी पराजित न होने वाले हैं। आप उस उपासना का हमें ज्ञान कराइये।

१०७५. इदं वां मदिरं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः । इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥

हे आत्मन् और परमात्मन् ! उपासकजन अखण्ड व्रतों से आप दोनों के इस मधुर-रस को प्राप्त करते हैं, उसका हमें बोध कराइये ।

चौथा खण्ड

१०७६. इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः । अर्कस्य योनिमासदम् ॥

११वाँ सूक्त—हे सब से अधिक आनन्दप्रद परमेश्वर ! आप जितेन्द्रिय उपासक के लिये पवित्र कीजिये, मैं उपासक पूजा के पात्र आप के पास ही स्थिर हो रहा हूँ ।

१०७७. तं त्वा विप्रा वचोविदः परिष्कृण्वन्ति धर्णसिम् । सं त्वा मृजन्त्यायवः ॥

हे प्रभो ! वेदवाणी को जानने वाले बुद्धिमान् उपासक संसार के धारक उस प्रसिद्ध आप को अनेक प्रकार से वर्णन करते हैं। योगी उपासक भी आप को ही खोजते हैं।

१०७८. रसं ते मित्रो अर्यमा पिबन्तु वरुणः कवे । पवमानस्य मरुतः ॥

हे कवि परमात्मन् ! प्राण, अपान, समान और अन्य प्राण (व्यान तथा उदान) भी पवित्र करने वाले आप के आनन्द-रस का पान करें ।

१०७९. मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि ।
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥

१२वाँ सूक्त—हे पवित्र प्रभो ! खोजे जाने पर आप आनन्द-रस से पूर्ण हृदय में वेदवाणी को प्रेरित करते हैं और चाहे हुए सुन्दर सुवर्ण आदि लोकप्रिय ऐश्वर्य को सब प्रकार से प्राप्त कराते हैं।

१०८०. पुनानो वारे पवमानो अव्यये वृषो अचिक्रदद्वने ।
देवानां सोम पवमान निष्कृतं गोभिरञ्जानो अर्षसि ॥

प्रकृति के प्राणमय अथवा कर्ममय आवरण में से पवित्र होता हुआ, तथा अपने अविनाशी स्वरूप में गति करता हुआ सुखपूर्वक परमात्मा ब्रह्माण्ड में अव्यक्त नाद करता है। हे पवित्र सर्वव्यापक प्रभो ! आप वेदबाणियों तथा ज्ञान-किरणों के द्वारा अभिव्यक्त होते हुए इन्द्रियों के संस्कृत आश्रय-स्थान जीवात्मा के हृदय-देश में प्रकट होते हैं।

१०८१. एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम्। समादित्येभिरख्यत ॥

१३वां सूक्त—द्रवणशील प्राणों के परिज्ञाता उसी प्रसिद्ध जीवात्मा को दस प्राण और दस इन्द्रियां शुद्ध करने में सहायक होती हैं। वह ज्ञानेन्द्रियों द्वारा देखा करता है।

१०८२. समिन्द्रेणोत वायुना सुत एति पवित्र आ। सं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥

जीवात्मा और प्राण के द्वारा ध्यान किया गया वह परमात्मा मुख्य प्राण की शक्तियों से पवित्र किये हुए हृदय-देश में उत्तम रीति से अनुभव किया जाता है।

१०८३. स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान्। चारुर्मित्रे वरुणे च ॥

वह मधुर, आनन्द-प्रद, मनोहर परमात्मा ऐश्वर्यशाली, गति और ज्ञान से सम्पन्न, भक्ति के पोषक जीवात्मा के लिये और प्राण तथा अपान के लिए पवित्र करे।

पांचवां खण्ड

१०८४. रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः। क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥

१४वां सूक्त—योग द्वारा परमेश्वर के अनुकूल होने पर हमारी इन्द्रियां बलपूर्ण हो जावें। जिनके साथ हम घर, अन्न तथा ज्ञान आदि के सुख से युक्त होकर आनन्दित होवें।

१०८५. आ घ त्वावान् त्मना युक्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवीयानः। ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥

काम, क्रोध आदि को नष्ट करने वाले प्रभो! अपने समान आप, सत्, चित्, आनन्दस्वरूप से युक्त, प्रार्थना किये गये, सब की इच्छा को जानते हुए आप स्तोताओं के लिये, स्वयं साथ में रहकर, उसी प्रकार मोक्ष तक पहुंचा देते हैं, जैसे रथ के पहियों का धुरा पहियों के बीच में लगा रहकर भी पहियों को चलाकर लक्ष्य तक पहुंचा देता है।

१०८६. आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम्। ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥

जिस प्रकार रथ का धुरा उसमें लगे हुए अरों द्वारा रथ को लक्ष्य तक पहुंचा देता है, उसी प्रकार हे सैकड़ों प्रज्ञानों से युक्त परमेश्वर! आप अपनी शक्तियों से स्तोताओं के लिये कामना के अनुसार धन तथा मोक्ष को प्राप्त कराइये।

१०८७. सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे। जुहूमसि द्यविद्यवि ॥

१५वाँ सूक्त—दूध दुहने के लिये जिस प्रकार उत्तम दूध देने वाली गौ को ध्यान में रक्खा जाता है, उसी प्रकार हम रक्षा के लिये उत्तम ज्ञान और कर्म वाले परमेश्वर को प्रतिदिन ध्यान में रखते हैं।

१०८८. उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब। गोदा इद्रेवतो मदः ॥

सब पदार्थों का रक्षक, उपासकों का पालक परमात्मा भक्ति के लिये और उत्पन्न हुए जगत्

के पदार्थों को प्रकाशित करने के लिये हमारे समीप हृदय में प्रकट हो और हमारी भक्ति को स्वीकार करे। वेदवाणी का दाता वही प्रभु ऐश्वर्यशाली जीवात्मा को आनन्दित करता है।

१०८९. अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् । मा नो अति ख्य आ गहि ।।

हे प्रभो ! आप के अत्यन्त पास पहुंचे हुए अच्छी बुद्धि वाले पुरुषों से हम आप का ज्ञान प्राप्त करें, आप हमारी उपेक्षा न कीजिये, अपितु हमारे हृदय में प्रकट होइये।

१०९०. उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव । महान्तं त्वा महीनां सम्राजं चर्षणीनाम् । देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ।।

१६वाँ सूक्त--हे परमेश्वर ! आप द्यु तथा पृथिवी दोनों लोकों को, उषा के समान, अच्छे प्रकार से प्रकाशित करते हैं। बड़ों से भी बड़े, मनुष्यों के महाराजा आप की दिव्य वेदवाणी प्रकट करती है, कल्याण करनेवाली बुद्धि हृदय में आप का साक्षात्कार कराती है।

१०९१. दीर्घं ह्यङ्कुशं यथा शक्तिं बिभर्षि मन्तुमः । पूर्वेण मघवन् पदा वयामजो यथा यमः । देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ।।

हे ज्ञानी परमेश्वर! आप महान् ज्ञान के अङ्कुश के समान शक्ति के अंकुश को भी धारण करते हैं। जिस प्रकार जितेन्द्रिय और अजन्मा जीवात्मा पहले अर्जित किये हुए ज्ञान से आश्रय-योग्य प्रकृति को ग्रहण करता है, उसी प्रकार आप अपने पूर्ण ज्ञान और सामर्थ्य से प्रकृति को वश में करते हैं। इस दिव्य और कल्याण करनेवाली प्रकृति ने संसार को पैदा किया है।

१०९२. अव स्म दुर्हणायतो मर्तस्य तनुहि स्थिरम् । अधस्पदं तमीं कृधि यो अस्माँ अभिदासति । देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ।।

हे प्रभो ! दुःखदायी चोर-मनुष्यों के बलको कम कर दीजिये और जो हम उपासकों की हिंसा करता है, उसको भी नीचा कीजिये। आपकी दिव्य और कल्याण करनेवाली ज्योति आपकी महिमा को प्रकट कर रही है।

छठा खण्ड

१०९३. परिस्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत् । मदेषु सर्वधा असि ।।

१७ वाँ सूक्त - सबका प्रेरक, स्वयं प्रकाशित वेदवाणी में वर्णित परमात्मा पवित्र हृदय में प्रकट होता है। हे परमात्मन् ! आप समस्त आनन्दों में सब प्रकार विद्यमान हैं।

१०९४. त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु प्र जातमन्धसः । मदेषु सर्वधा असि ।।

हे प्रभो ! आप विद्वान् तथा कवि हैं। आप अन्न से उत्पन्न हुए मधुररस को देनेवाले हैं और सब आनन्दों में वर्तमान होकर सबको धारण करनेवाले हैं।

१०९५. ते विश्वे सजोषसो देवासः पीतिमाशत । मदेषु सर्वधा असि ॥

समान प्रीतिवाले सभी विद्वान् आपमें मग्न होकर तृप्ति को प्राप्त करते हैं। आप ही आनन्दों में सबको धारण करनेवाले हैं।

१०९६. स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इडानाम् । सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥

१८वां सूक्त—जो वसुओं का तथा ऐश्वर्यों का प्राप्त करानेवाला और महात्मा के निवास-योग्य शरीरों का निर्माता है, वह सबका प्रेरक परमात्मा हृदय में साक्षात् किया जाता है।

१०९७. यस्य न इन्द्रः पिबाद्यस्य मरुतो यस्य वार्यमणा भगः ।
आ येन मित्रावरुणा करामह एन्द्रमवसे महे ।

जिस परमात्मा के आनन्द को ऐश्वर्यशाली जीवात्मा भोगता है, जिसके बल से १० इन्द्रियां, और समान वायु के साथ उदान वायु स्थित है और जिसके बल से प्राण तथा अपान को मनुष्य चलाते हैं, वह परमात्मा हमारी महान् रक्षा करता है।

१०९८. तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत । शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥

१९वां सूक्त—हे मित्रो ! तुम उस पवित्र करनेवाले परमात्मा का गान करो। जैसे बच्चे स्वाद लेते हुए मिठाइयां खाते हैं, वैसे ही तुम सर्वव्यापक परमात्मा की भक्ति का स्वाद लेते हुए स्तुतियों द्वारा उस तक पहुंचो।

१०९९. सं वत्स इव मातृभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते । देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः ॥

जैसे माताओं द्वारा प्रेरित और प्रेम किया जाता हुआ बच्चा विद्या आदि गुणों से प्रकट होता है, वैसे ही विद्वान् ज्ञानियों द्वारा भक्ति किया जाता परमात्मा हृदय में प्रकाशित होता है। विद्वानों का रक्षक, आनन्ददाता वह प्रभु बुद्धियों से परिष्कृत होता है।

११००. अयं दक्षाय साधनोऽयं शर्धाय वीतये । अयं देवेभ्यो मधुमत्तरः सुतः ॥

यह परमात्मा बल के लिए साधन हैं और ज्ञान के कार्य की प्राप्ति के लिए साधन हैं। विद्वानों के लिये माधुर्य गुणों से युक्त यह हृदय में प्रकट होता है।

११०१. सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।
मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥

२०वां सूक्त—उत्तम मार्ग को दिखलानेवाले मित्रतापूर्ण, निष्पाप, शुभसंकल्पवाले, स्वाध्यायशील, मोक्ष-सुख को प्रान्त करने वाले उपासक-विद्वान् हमारे लिये पवित्र करते हैं।

११०२. ते पूतासो विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः ।
सूरासो न दर्शतासो जिगत्नवो ध्रुवा घृते ॥

वे पवित्र, विद्वान्, सौम्य, ब्रह्म-तेज में जाने वाले, स्थिरचित्त, दृढ़, सूर्य के समान प्रकाशित, आदित्य ब्रह्मचारी उपासकजन देखने योग्य होते हैं।

११०३. सुष्वाणासो व्यद्रिभिश्चिताना गोरधि त्वचि ।
इषमस्मभ्यमभितः समस्वरन् वसुविदः ॥

पृथिवी के तल पर, तथा सूर्य के समान तेजस्वी गुरु और वेदवाणी की संरक्षकता में, ज्ञानवान् और सुप्रतिष्ठित होते हुए आत्म-ज्ञानी विद्वान् हमें सब ओर से ज्ञान का उपदेश करते हैं।

११०४. अया पवा पवस्वैना वसूनि मांश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व ।
ब्रध्नश्चिद्यस्य वातो न जूतिं पुरुमेधाश्चित्तकवे नरं धात् ॥

हे परमेश्वर ! आप इस पवित्र ज्ञानधारा से इन जीवनों को पवित्र कीजिये और भक्तिपूर्ण मनोहर हृदय में प्रकट होइये। वायु के समान गतिशील, इन्द्रियों को बाँधकर रखनेवाला जीवात्मा भी आपके वेग को धारण कर और बुद्धिमान् होकर, अपने नेता आपको हृदय में साक्षात् करता है।

११०५. उत न एना पवया पवस्वाधि श्रुते श्रवाय्यस्य तीर्थे ।
षष्टिं सहस्रा नैगुतो वसूनि वृक्षं न पक्वं धूनवद्रणाय ॥

और हे प्रभो ! श्रवण करने योग्य आपके, संसार-सागर से पार लगाने वाले वेद में वर्तमान इस पवित्र ज्ञान-धारा से हमें पवित्र कीजिये। जैसे वृक्ष के नीचे खड़ा व्यक्ति वृक्ष को हिलाकर पके फल गिराता है, उसी प्रकार गूढ़जनों के रक्षक आप आत्मिक आनन्द के लिये हमें १०६० अथवा ६० हजार वसुओं को प्राप्त कराइये।

११०६. महीमे अस्य वृष नाम शूषे मांश्चत्वे वा पृशने वा वधत्रे ।
अस्वापयन् निगुतः स्नेहयच्चापामित्राँ अपाचितो अचेतः ॥

इस प्रभु के दोनों काम – सुखों का वर्षण तथा दुष्टों का नमन महान् सुखदायक, अत्यधिक बलयुक्त, दिव्य तथा मृत्यु से बचानेवाले हैं। वह परमात्मा काम-क्रोध आदि गूढ़ शत्रुओं को नष्ट करता है, शरणागतों से स्नेह करता है, यज्ञ के विरोधी नास्तिकों तथा मूर्खों को चिताता है और दुष्ट शत्रुओं को दूर करता है।

सातवाँ खण्ड

११०७. अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भुवो वरूथ्यः ।

२२वाँ सूक्त – हे ज्ञानसम्पन्न प्रभो ! आप हमारे सबसे अधिक पास रहनेवाले और रक्षक, कल्याणकरनेवाले तथा स्वीकार किये जाने योग्य हैं।

११०८. वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमो रयिं दाः ।

हे परमात्मन् ! सब में वास करनेवाले, ज्ञानपूर्ण, अति प्रकाशमान आप हमें प्राप्त होइये और ऐश्वर्य दीजिये।

११०९. तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः। सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥

हे तेज से युक्त, प्रकाशमान परमात्मन् ! उस प्रसिद्ध आपसे हम लोग मित्रों के लिये सुख की अवश्य ही प्रार्थना करते हैं।

१११०. इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश्च विश्वे च देवाः।

२३वाँ सूक्त—जीवात्मा तथा समस्त प्राण और इन्द्रियाँ सब पदार्थों से सुख को प्राप्त करें।

११११. यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधातु।

परमेश्वर हमारे यज्ञ की, शरीर की और प्रजा की आदित्यस्वरूप विद्वानों के साथ रक्षा करे।

१११२. आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भेषजा करत्।

अपनी सहायक प्राकृतिक शक्तियों सहित परमेश्वर सूर्य-किरणों और ऋतुओं तथा प्राणों के द्वारा हमारे लिये स्वास्थ्यदायक उपायों को करे।

१११३. प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गाथं गायत यं जुजोषते।

२४वाँ सूक्त—हे मनुष्यो ! तुम वृत्रों को नष्ट करनेवाले सर्वज्ञ परमात्मा के लिये उस वेद का गान करो, जिसको वह चाहता है।

१११४. अर्चन्त्यर्कं मरुतः स्वर्का आ स्तोभति श्रुतो युवा स इन्द्रः।

दीप्तियुक्त ज्ञानी उपासक पूज्य परमेश्वर की स्तुति करते हैं और वह नित्य तथा प्रसिद्ध परमात्मा उनकी रक्षा करता है।

१११५. उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः पुष्येम रयिं धीमहे त इन्द्र ॥

हे परमेश्वर ! हम आनन्दयुक्त आपके स्वरूप में मग्न रहते हुए ऐश्वर्य को प्राप्त करें। हम आपको ही धारण करते हैं।

आठवाँ अध्याय दूसरा अर्धप्रपाठक

(१११६ मन्त्र से ११७४ मन्त्र तक)

ऋषि—१ (१—३) वृषगणो वासिष्ठः, १ (४—१२), २ (१—९) असितः काश्यपो देवलो वा, २ (१०—१२), ११ भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा, ३, ६ भरद्वाजो बार्हस्पत्य; ४ यजत आत्रेयः; ५ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ७ सिकता निवावरी; ८ पुरुहन्मा; ९ पर्वतनारदौ शिखण्डिन्यावप्सरसौ काश्यपो वा; १० अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः; १२ वत्सः काण्वः; १३ नृमेधः; १४ अत्रिः॥

देवता—१, २, ७, ९—११ पवमानः सोमः; ३ वैश्वानरः; ४ मित्रावरुणौ ; ५, ८, १३, १४ इन्द्रः; ६ इन्द्राग्नी; १२ अग्निः ।

छन्दः—१ (१—३), ३ त्रिष्टुप्; १ (४—१२, २, ४—६, ११, १२ गायत्री; ७ जगती; ८ बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती+२सतोबृहती.); ९ उष्णिक्; १० द्विपदा विराट्, १३ १—२ ककुबुष्णिक् (३) पुर उष्णिक्; १४ अनुष्टुप् ।

स्वरः—१ (१—३), धैवत; १ (४—१२), २, ४—६, ११, १२ षड्जः; ७ निषादः; ८ (१) मध्यमः; ८ (२), १० पञ्चमः; ९, ११ ऋषभः; १४ गान्धारः ।

प्रथम खण्ड

१११६. प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति ।

महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥

पहला सूक्त विद्वान् ज्ञानी के समान योगी स्तोता वेदरहस्य को वर्णन करता हुआ समस्त देवों की उत्पत्ति के रहस्य को स्पष्टतया बताता है । महान् व्रतवाला, पवित्रों का बन्धु, अपनी शुद्धता से सबको प्रेम में बाँधनेवाला, पवित्रकर्त्ता श्रेष्ठ वाणी बोलनेवाला वह ज्ञानोपदेश करता हुआ विभिन्न स्थानों पर भ्रमण करता है ।

१११७. हंसासस्तृपला वग्नुमच्छामादस्तं वृषगणा अयासुः ।

आङ्गोषिणं पवमानं सखायो दुर्मर्षं वाणं प्र वदन्ति साकम् ॥

सत्य-असत्य पहचाननेवाले, परमहंस, काम-क्रोध आदि को शीघ्र नष्ट कर देने वाले उत्तम योगी जन अपने बल से, अव्यक्त से हटकर शरणयोग्य परमात्मा को प्राप्त होते हैं । मित्र के समान वे सबके साथ-साथ मिलकर पवित्र असह्य तेजोयुक्त, शरीरवासी भोक्ता आत्मा के विषय में उपदेश करते हैं ।

१११८. स योजत उरुगायस्य जूतिं वृथा क्रीडन्तं मिमते न गावः ।

परीणसं कृणुते तिग्मश्रृङ्गो दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृज्रः ॥

वह उपासक बहुत स्तुतियोग्य परमात्मा की ज्योति का योगद्वारा साक्षात् करता है । प्रभु की वेदवाणियाँ बेकार क्रीड़ा करने वाले को नहीं प्राप्त होतीं , मनोहर स्वरूपवाला वह योगी तीक्ष्ण तेज से युक्त होकर अनेक प्रकार के तेज को प्रकट करता है और रात-दिन स्पष्ट प्रकाशमान दिखाई देता है ।

१११९. प्र स्वानासो रथा इवार्वन्तो न श्रवस्यवः । सोमासो राये अक्रमुः ॥

रथ के समान मनोहर शब्द करते हुए (उपदेश देते हुए) और घोड़ों के समान वेगयुक्त उपासक जन ऐश्वर्य के लिये भ्रमण करते हैं ।

११२०. हिन्वानासो रथा इव दधन्विरे गभस्त्योः । भरासः कारिणामिव ॥

रथों के समान गति करते हुए, यज्ञकर्त्ताओं के यज्ञ के समान कार्यव्यस्त तथा योद्धाओं के संग्राम के समान संघर्षशील सौम्य उपासक प्राण और अपान द्वारा साधना करते हैं।

११२१. राजानो न प्रशस्तिभिः सोमासो गोभिरञ्जते। यज्ञो न सप्त धातृभिः॥

जैसे राजा लोग प्रशंसाओं से और यज्ञ सात ऋत्विजों से तथा आत्मा सात मुख्य प्राणों से युक्त होते हैं, उसी प्रकार उपासकजन वेदवाणियों से युक्त होते हैं।

११२२. परि स्वानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा। मधो अर्षन्ति धारया॥

ऐश्वर्यशाली उपासकजन परमात्मा के आनन्दरस से पूर्ण होते हुए, महती वेदवाणी के द्वारा मधुर आत्मा की धारक शक्ति से युक्त होकर, आनन्द पाने के लिये सब ओर आगे बढ़ते हैं।

११२३. आपानासो विवस्वतो जिन्वन्त उषसो भगम्। सूरा अण्वं वि तन्वते॥

सूर्य की किरणों को धारण करनेवाले, उषा की शोभा को ग्रहण करने वाले, सूर्य के समान प्रकाशमान उपासकजन सूक्ष्म ज्ञान की विस्तृत व्याख्या किया करते हैं।

११२४. अप द्वारा मतीनां प्रत्ना ऋण्वन्ति कारवः। वृष्णो हरस आयवः॥

पुराने अभ्यासी, कार्यशील, सुखवर्षक परमात्मा के धारण करनेवाले उपासक-मनुष्य बुद्धि के दरवाजों को खोल देते हैं।

११२५. समीचीनास आशत होतारः सप्त जानयः। पदमेकस्य पिप्रतः॥

यज्ञ में सात होताओं के समान, उत्तम ज्ञान-सम्पादन करनेवाले सात प्रसर्पणशील प्राण और आत्मा का अनुसन्धान करनेवाले ज्ञानोत्पादक इन्द्रियसमूह एक आत्मा के सामर्थ्य को पूरा करते हुए विद्यमान रहते हैं।

११२६. नाभा नाभिं न आ ददे चक्षुषा सूर्यं दृशे। कवेरपत्यमा दुह्हे।

मैं संसार में अपने केन्द्र परमात्मा को अपने शरीर के केन्द्र—मन द्वारा धारण करता हूँ और ज्ञानरूपी आँख से सबके प्रेरक परमात्मा का साक्षात् करता हूँ तथा कवि-परमात्मा के अविनाशी आनन्दरस का ग्रहण करता हूँ।

११२७. अभि प्रियं दिवस्पदमध्वर्युभिर्गुहा हितम्। सूरः पश्यति चक्षसा॥

सूर्य के समान ज्ञान से प्रकाशित विद्वान् अत्यन्त प्रिय, अहिंसक उपासकों के द्वारा हृदय में धारण किये गये, सुख, प्रकाश तथा ज्ञान के स्थान परमात्मा को ज्ञानरूपी आँख से देखता है।

दूसरा खण्ड

११२८. असृग्रमिन्दवः पथा धर्मन्नृतस्य सुश्रियः। विदाना अस्य योजना॥

दूसरा सूक्त—ऐश्वर्यशाली उपासकजन ऋतधारक परमात्मा में आश्रय ग्रहण करते हुए उत्तम

मार्ग से इस परमात्मा की योजनाओं को जानते हुए कृतकृत्य हो जाते हैं।

११२९. प्र धारा मधो अग्रियो महीरपो वि गाहते । हविर्हविःषु वन्द्यः ॥

समस्त अभिलाषा-योग्य वस्तुओं में उत्तम, स्तुतियुक्त श्रेष्ठ भक्ति तथा ज्ञान, आनन्द की धाराओं और महान् कर्मों को विलोडन करता है।

११३०. प्र युजा वाचो अग्रियो वृषो अचिक्रदद्वने । सद्माभि सत्यो अध्वरः ॥

सच्चा, अहिंसक-उपासक अपने आश्रयस्थान परमात्मा का ध्यान करताहुआ, मुख्य और श्रेष्ठ होकर, भक्तियोग्य परमात्मा के सम्बन्ध में उत्तम वाणी का उपदेश करता है।

११३१. परि यत्काव्या कविर्नृम्णा पुनानो अर्षति । स्वर्वाजी सिषासति ॥

जब बुद्धिमान् उपासक अपने मननशील साधनों को पवित्र करता हुआ वेद काव्य का ज्ञान प्राप्त करता है, तब ज्ञानी होकर सुख का सेवन करता है।

११३२. पवमानो अभि स्पृधो विशो राजेव सीदति । यदीमृण्वन्ति वेधसः ॥

जब उस परमात्मा को योगी उपासक प्राप्त करते हैं, तब पवित्र तथा व्यापक वह परमात्मा दुष्ट विघ्नों को उसी प्रकार दबा देता है, जैसे विद्रोही-प्रजा को राजा।

११३३. अव्या वारे परि प्रियो हरिर्वनेषु सीदति । रेभो वनुष्यते मती ॥

दुःखहरण करने वाला प्यारा परमात्मा चितिशक्ति के आवरणकारी त्रिपुटी आदि स्थानों में सर्वत्र विराजता है और अप्रतिहत नाद करनेवाला वह मनन के द्वारा प्राप्त किया जाता है।

११३४. स वायुमिन्द्रमश्विना साकं मदेन गच्छति । रणा यो अस्य धर्मणा ॥

जो उपासक इस परमात्मा की धारणा के द्वारा आनन्दित होता है वह प्राणवायु, जीवात्मा और ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों को हर्ष के साथ वश में कर लेता है।

११३५. आ मित्रे वरुणे भगे मधोः पवन्त ऊर्मयः । विदाना अस्य शक्मभिः ॥

इस परमात्मा की शक्तियों से ज्ञान का लाभ प्राप्त कराती हुई आनन्दरस की लहरें प्राण, अपान और समान वायुओं में गति कराती हैं।

११३६. अस्मभ्यं रोदसी रयिं मध्वो वाजस्य सातये । श्रवो वसूनि सञ्जितम् ॥

द्यो और पृथिवी, प्राण और अपान हमें ज्ञान और आनन्द की प्राप्ति के लिये ऐश्वर्य, सुयश और धन प्रदान करें।

११३७. आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥

हे परमात्मन् ! हम आज शान्ति को देनेवाले, बल को धारण करने वाले, पालनकर्ता तथा सबसे अभिलषणीय आपके बल को वरण करते हैं।

११३८. आ मन्द्रमा वरेण्यमा विप्रमा मनीषिणम् । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥

हम वरनेयोग्य, मेधावी, मनीषी, पालक, सबसे अधिक चाहे गये परमात्मा को वरण करते हैं।

११३९. आ रयिमा सुचेतुनमा सुक्रतो तनूष्वा । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥

हे उत्तम ज्ञानयुक्त प्रभो ! हम समस्त शरीरों में व्याप्त, ऐश्वर्यशाली, उत्तम चेतना देनेवाले, रक्षक और सब उपासकों के अभिलाषा के पात्र आपको वरण करते हैं।

तीसरा खण्ड

११४०. मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् ।
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्नः पात्रं जनयन्त देवाः ॥

तीसरा सूक्त—सर्वश्रेष्ठ, द्यु तथा पृथिवी के स्वामी, सब प्राणियों में व्यापक, वेदों में तथा सत्यनियमों में प्रसिद्ध, कवि, सम्राट्, निरन्तर गतिशील, सर्वप्रमुख, हम उपासकों के प्रेमपात्र तथा रक्षक उस परमात्मा को प्राकृतिक शक्तियाँ सर्वत्र प्रकट कर रही हैं और विद्वज्जन अपने हृदय में प्रकाशित करते हैं।

११४१. त्वां विश्वे अमृत जायमानं शिशुं न देवा अभि सं नवन्ते ।
तव क्रतुभिरमृतत्वमायन् वैश्वानर यत्पित्रोरदीदेः ॥

हे अमृत, परमात्मन् ! हृदय में प्रकट हुए, शिशु के समान प्यारे आपके प्रति सभी इन्द्रियाँ और प्राण झुके रहते हैं। सब मनुष्यों में व्यापक प्रभो ! जब आप प्राण-अपान के मध्य सुषुम्णा में प्रकाशित होते हैं तो आपके ज्ञान द्वारा उपासकजन अमृतत्व=मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

११४२. नाभिं यज्ञानां सदनं रयीणां महामाहावमभि सं नवन्त ।
वैश्वानरं रथ्यमध्वराणां यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः ॥

विद्वज्जन समस्त श्रेष्ठकर्मों के केन्द्र, ऐश्वर्यों के स्थान, महान्, आनन्दरस के समुद्र, समस्त हृदयों में व्यापक, हिंसारहित उपासकों के आश्रय, आत्मा को ज्ञान कराने वाले परमात्मा की स्तुति करते हैं तथा उसको अपने हृदय में प्रकट करते हैं और मनुष्यों को उसका उपदेश करते हैं।

११४३. प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा । महिक्षत्रावृतं बृहत् ॥

चौथा सूक्त—हे मनुष्यो ! तुम महाबली, बड़े भारी सत्यनियमपालक प्राण और अपान का विस्तृत वेदवाणी के द्वारा वर्णन करो।

११४४. सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च । देवा देवेषु प्रशस्ता ॥

जो दोनों प्राण और अपान तेज से उत्पत्ति स्थान, अच्छे प्रकार दीप्त और देवों में प्रशंसनीय देव हैं।

११४५. ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य । महि वाँ क्षत्रं देवेषु ॥

वे दोनों हमारे लिये पृथिवी और द्युलोक के महान् ऐश्वर्य को देने में समर्थ हैं। हे देवो ! आप दोनों का बल महान् है।

११४६. इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः । अण्वीभिस्तना पूतासः ॥

पांचवाँ सूक्त—हे विचित्र प्रकाश-सम्पन्न परमेश्वर ! आप हमें प्राप्त होइये । ये सूक्ष्म ज्ञान-शक्तियों से सदा पवित्र हम उपासकजन पुत्र के समान आपके आश्रित और चाहनेवाले हैं।

११४७. इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः । उप ब्रह्माणि वाघतः ॥

हे परमेश्वर ! बुद्धि और श्रेष्ठकर्मों द्वारा प्राप्त करने योग्य, विद्वानों से जानेगये आप ज्ञान से युक्त वेदमन्त्रों को जाननेवाले उपासकों को प्राप्त होइये।

११४८. इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्चनः ॥

हे हरणशील शक्तियों के स्वामी प्रभो ! वेगवान् आप वेदों के द्वारा हम उपासकों को प्राप्त होइये और हमारे लिये इस जगत् में अन्न आदि धारण कराइये।

११४९. तमीडिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत् । कृष्णा कृणोति जिह्वया ॥

सूक्त ६—हे मनुष्य ! तू उस परमात्मा की उपासना कर, जो अपने तेज से सब भोगों (कर्म-बन्धनों) को लपेटता और छिन्न-भिन्न कर देता है।

११५०. य इद्ध आ विवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः । द्युम्नाय सुतरा अपः ॥

जो मनुष्य ज्ञान से प्रदीप्त होकर आत्मा के सुखदायक ज्ञान का अच्छे प्रकार सेवन करता है, उस ज्ञान से प्रकाशमान के लिये कर्म दुःख से पार पहुँचाने वाले हो जाते हैं।

११५१. ता नो वाजवतीरिष आशून् पिपृतमर्वतः । एन्द्रमग्निं च वोढवे ॥

हम जीवात्मा और परमात्मा को सुख से धारण कर सकें। वे दोनों ज्ञानयुक्त इच्छाओं को और शीघ्रगामी ज्ञानेन्द्रियों को तृप्त करें।

चौथा खण्ड

११५२. प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न प्र मिनाति सङ्गिरम् ।
मर्य इव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयामना पथा ॥

सातवाँ सूक्त—परमेश्वर का मित्र ऐश्वर्यशाली जीवात्मा जब मोक्ष प्राप्त कर लेता है, तब भी वह अपने मित्र परमेश्वर की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता। वह सौम्य उपासक सैकड़ों ज्ञान-वृत्तियों के साथ परब्रह्म में वैसे ही विचरण करता है, जैसे मनुष्य युवतियों (बहिन, माता, पत्नी आदि) के साथ अनेक प्रकार के सम्बन्ध रखता है।

११५३. प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवः पनस्युवः संवरणेष्वक्रमुः ।
हरिं क्रीडन्तमभ्यनूषत स्तुभोऽभि धेनवः पयसेदशिश्रयुः ॥

हे उपासको ! परमेश्वर की ओर लगी हुई, स्तुति करने की इच्छावाली और स्तुति करती हुई तुम्हारी वाणियाँ मण्डपों में फैलती हैं । स्तोता विद्वज्जन खेल-के समान सरलता से संसार के निर्माता तथा प्रलयकर्त्ता परमात्मा की ही स्तुति करते हैं और आनन्दरस का पान करनेवाले उपासक भी अपने भक्तिरस से उसी का आश्रय लेते हैं ।

११५४. आ नः सोम संयतं पिप्युषीमिषमिन्दो पवस्व पवमान ऊर्मिणा ।
या नो दोहते त्रिरहन्नसश्चुषी क्षुमद्वाजवन्मधुमत्सुवीर्यम् ॥

हे पवित्र तथा ऐश्वर्ययुक्त सौम्य उपासक ! तू उस संयत तथा वृद्धि करने वाले अन्न को अपनी शक्ति से पवित्र कर, जो दिन में सेवित होकर हमारे लिये निर्विघ्न रूप से कीर्तियुक्त, ज्ञानयुक्त, मधुर-आनन्दयुक्त सुन्दर तिगुने बल को प्राप्त करावे ।

११५५. न किष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम् ।
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णुमोजसा ॥

आठवाँ सूक्त – उस उपासक को कोई भी विचलित नहीं कर सकता जो अपने कर्म से सदा वृद्धि की ओर जाने का यत्न करता है, और श्रेष्ठतम कर्मों से अपने को परमेश्वर के समान सब से प्रशंसित, ज्ञान-सम्पन्न, किसी से पराजित न होनेवाला, ओज से पूर्ण, और सहनशील बना लेता है ।

११५६. अषाढमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन्महीरुरुज्रयः ।
सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामीरनोनवुः ॥

जिस उपासक के प्रसिद्ध होने पर, बहुत वेगवाली, बड़ी धन देनेवाली प्रजायें उसके प्रति झुकती हैं और उस असह्य, उग्र तथा इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखनेवाले उपासक को द्यु और पृथिवी के निवासी धन-सम्पन्न व्यक्ति भी नमस्कार करते हैं ।

पांचवाँ खण्ड

११५७. सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत । शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥

नवाँ सूक्त—मित्रो ! आओ, योग के आसन करो, पवित्र आत्मा के गुणों का गान करो और बच्चे के समान अबोध तथा निष्पाप आत्मा को शोभा के लिये श्रेष्ठकर्मों से अलङ्कृत करो ।

११५८. समी वत्सं न मातृभिः सृजता गयसाधनम् । देवाव्यां३ मदमभि द्विशवसम् ॥

हे मनुष्यो ! जैसे बच्चे को माताओं (जननी, गौमाता, वेदमाता आदि) से मिलाया जाता है, उसी प्रकार प्राणों के साधन दिव्य कान्ति के रक्षक, हृष्ट, ज्ञान तथा कर्म–दोनों बलों के धारक, सौम्य जीवात्मा को ज्ञान के साधन मनन शक्तियों से संयोजित करो ।

११५९. पुनाता दक्षसाधनं यथा शर्धाय वीतये। यथा मित्राय वरुणाय शन्तमम् ॥

हे उपासको! बल के साधन इस आत्मा को इस प्रकार पवित्र करो जिस से कि वह बल तथा कान्ति के लिये और प्राण तथा अपान के लिये सुखदायक हो।

११६०. प्र वाज्यक्षाः सहस्रधारस्तिरः पवित्रं वि वारमव्यम् ॥

दसवाँ सूक्त—बलवान्, हजारों धारक शक्तियों से युक्त, परमात्मा नित्य, पवित्र, काम-क्रोधादि के निवारण करनेवाले आत्मा में विविध प्रकार से प्रकट होता है।

११६१. स वाज्यक्षाः सहस्ररेता अद्भिर्मृजानो गोभिः श्रीणानः ॥

वह ज्ञानवान्, असंख्य पदार्थों का मूलकारण परमात्मा उपासकों की बुद्धियों के द्वारा शुद्ध करता हुआ और वाणियों द्वारा आश्रय किया गया हृदय में प्रकट होता है।

११६२. प्र सोम याहीन्द्रस्य कुक्षा नृभिर्येमाणो अद्रिभिः सुतः ॥

हे सबके प्रेरक परमात्मन्! मनुष्यों से यम-नियमों द्वारा ध्यान किये गये और अखण्डित तपों द्वारा प्राप्त किये हुए आप हृदयरूपी कुक्षि में आकर प्राप्त होइये।

११६३. ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे। ये वादः शर्यणावति ॥

११६४. य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम्। ये वा जनेषु पञ्चसु ॥

११६५. ते नो वृष्टिं दिवस्परि पवन्तामा सुवीर्यम्। स्वाना देवास इन्दवः ॥

ग्यारहवाँ सूक्त—जो सौम्य विद्वान् दूर देश में हैं, जो पास में हैं और जो विषम वनप्रदेशों में हैं, जो सरल समदेशों में हैं, जो घरों के मध्य में हैं, जो बनाई हुई कुटियों में रहते हैं और जो पञ्चायतों में हैं, वे ज्ञानी, ऐश्वर्यशाली विद्वान् द्युलोक से उपयुक्त वृष्टि को और सुन्दर बल को हमें सब प्रकार से प्राप्त करावें।

छठा खण्ड

११६६. आ ते वत्सो मनो यमत् परमाच्चित् सधस्थात्। अग्ने त्वां कामये गिरा ॥

बारहवाँ सूक्त—हे ज्ञान-सम्पन्न प्रभो! आप का प्रिय बालक मैं परम उत्कृष्ट स्थान से सत्यज्ञान को प्राप्त कर रहा हूँ, मैं वाणी द्वारा आप की कामना करता हूँ।

११६७. पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि दिशो विश्वा अनु प्रभुः। समत्सु त्वा हवामहे ॥

हे परमात्मन्! आप सबको समान दृष्टि से देखनेवाले हैं, सब दिशाओं में आप ही प्रभु हैं। हम आनन्द तथा कठिनता के अवसरों पर आपका स्मरण करते हैं।

११६८. समत्स्वग्निमवसे वाजयन्तो हवामहे। वाजेषु चित्रराधसम् ॥

हम संग्रामों में तथा ज्ञान, बल, अन्न की उत्पत्ति के कार्यों में, उन-उन वस्तुओं की कामना करते हुए, रक्षा के लिये परमात्मा को पुकारते हैं।

११६९. त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे। आ वीरं पृतनासहम् ॥

तेरहवाँ सूक्त—हे सैकड़ों कर्मोंवाले, सबके द्रष्टा परमेश्वर! आप हमें ओज से भरपूर कीजिये और वीर तथा संघर्षों में सहनशील बनाइये।

११७०. त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ। अथा ते सुम्नमीमहे ॥

हे सर्वव्यापक! आप हमारे पिता हैं। वे बहुत से कर्मों (सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय) के करनेवाले! आप माता सदा से ही हैं। इसलिये आपके ही आनन्द को हम माँगते हैं।

११७१. त्वां शुष्मिन् पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे सहस्कृत। स नो रास्व सुवीर्यम् ॥

हे बलवान्, बहुतों से पुकारे हुए, सब बलों के दाता प्रभो! ज्ञान, बल और अन्न को देनेवाले आपसे मैं प्रार्थना करता हूँ। आप हमें सुन्दर बल-वीर्य दीजिये।

११७२. यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः। राधस्तन्नो विदद्वस उभया हस्त्या भर ॥

चौदहवाँ सूक्त—हे पूज्य, अज्ञान-नाशक, विद्वानों के प्राणस्वरूप, परमेश्वर! जो आपके द्वारा दिये जाने योग्य धन (मोक्ष) यहाँ अभी तक मुझे नहीं मिला है, उसको आप मुझे पूर्णतया प्राप्त कराइये।

११७३. यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र द्युक्षं तदा भर। विद्याम तस्य ते वयमकूपारस्य दावनः ॥

हे परमेश्वर! जिसको आप ग्रहण करने योग्य मानते हैं उस ज्ञान, अन्न, तथा यश से हमें भरपूर कीजिये। हम अति सुन्दर, उत्तम पालक तथा दानशील आप को जानें तथा प्राप्त करें।

११७४. यत्ते दिक्षु प्रराध्यं मनो अस्ति श्रुतं बृहत्।
तेन दृढा चिदद्रिव आ वाजं दर्षि सातये ॥

हे सर्वशक्तिमन् प्रभो! जो आपका ज्ञान सब दिशाओं में उत्तमरूप से सेवन करने योग्य, विशाल तथा श्रवण करने योग्य है, उसके द्वारा ही आप हमें पुष्ट ज्ञान तथा बल को दूसरों को देने के लिये प्रदान करते हैं।

—o—

पांचवाँ प्रपाठक

(११७५ मन्त्र से १३४६ मन्त्र तक)

नवम अध्याय पहला अर्धप्रपाठक

(११७५ मन्त्र से १२५२ मन्त्र तक)

सूक्तों के अनुसार ऋषि, देवता, छन्द और स्वर

ऋषिः—१ प्रतर्दनो देवोदासिः; २—४ असितः काश्यपो देवलो वा; ५, ११ उचथ्यः; ६, ७ अमहीयुः; ८, १५ निध्रुविः काश्यपः; ९ वसिष्ठः; १० सुकक्षः १२ कविः; १३ देवातिथिः काण्वः; १४ भर्गः प्रागाथः; १६ अम्बरीषः; ऋजिश्वा च; १७ अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वरः; १८ उशना काव्यः; १९ नृमेधः; २० जेता माधुच्छन्दसः ॥

देवता—१-८ ११, १२, १५–१७ पवमानः सोमः; ९, १८ अग्निः, १०, १३, १४, १६, २० इन्द्रः ।

छन्दः—१, ९, त्रिष्टुप्; २–८, १०, ११, १५, १८ गायत्री; १२ जगती; १३, १४ बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती+२ सतोबृहती); १६। २० अनुष्टुप्; १७ द्विपदा विराट् पङ्क्तिः; १९ उष्णिक् ।

स्वरः— १, ९ धैवतः—२—८, १०, ११, १५, १८ षड्जः; १२ निषादः; १३ (१), १४ (१) मध्यमः; १३ (२), १४ (२), १७ पञ्चमः; १६, २० गान्धारः; १९ ऋषभः ॥

पहला खण्ड

११७५. शिशु जज्ञानं हर्यतं मृजन्ति शुम्भन्ति विप्रं मरुतो गणेन ।
कविर्गीर्भिः काव्येन कविः सन्त्सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥

पहला सूक्त—विद्वान्-उपासक समस्त प्राणों के समूह के द्वारा, देह के अन्दर निवासी, ज्ञान प्राप्त करने वाले, मनोहर और मेधावी जीवात्मा को शुद्ध करते और सुशोभित करते हैं। कवि-उपासक वाणियों और काव्य द्वारा अपने ज्ञान को दूसरों को देता हुआ और पवित्र परमात्मा की अर्चा करता हुआ कर्म-बन्धन के पार चला जाता है।

११७६. ऋषिमना य ऋषिकृत् स्वर्षाः सहस्रनीथः पदवीः कवीनाम् ।
तृतीयं धाम महिषः सिषासन्त्सोमो विराजमनु राजति ष्टुप् ॥

जो ऋषि के समान मनन करनेवाले, अपने को मन्त्रद्रष्टा बनाने वाले, उत्तम ज्ञानयुक्त, सहस्रों प्रकार के ज्ञान तथा स्तुतियाँ रखनेवाला, कवियों को सन्मार्ग दिखानेवाला महान् जीवात्मा तीसरे धाम (सुख-दुख-रहित मोक्ष) को प्राप्त करता हुआ और विराट् परमात्मा की स्तुति करता हुआ प्रकाशित होता है।

११७७. चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि बिभ्रत् ।
अपामूर्मि सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति ॥

इन्द्रिय-शक्तियों में विराजमान, गतिशील शक्तिसम्पन्न, स्वतन्त्र विहार करता हुआ, जितेन्द्रिय, ज्ञान-रश्मियों तथा वेदवाणी को प्राप्त करने वाला, सूर्य के समान प्रकाशमान, महान् मुक्त जीवात्मा शक्तियों को धारण करता हुआ सब लोकों के प्रेरक, सबके आश्रय, आनन्द के समुद्र परमात्मा की स्तुति करता हुआ मोक्ष के आनन्द को प्राप्त करता है।

११७८. एते सोमा अभि प्रियमिन्द्रस्य काममक्षरन् । वर्धन्तो अस्य वीर्यम् ।।

दूसरा सूक्त—ये सौम्य उपासक इस परमेश्वर के यश को फैलाते हुए उसके प्यारे अभिलषित धर्म को प्रकाशित करते हैं।

११७९. पुनानासश्चमूषदो गच्छन्तो वायुमश्विना । ते नो धत्त सुवीर्यम् ।।

स्वयं पवित्र तथा दूसरों को पवित्र करते हुए, इन्द्रियों की शक्तियों के साथ वर्तमान उपासक प्राण-अपान को तथा ज्ञानयुक्त गतिशील परमात्मा को प्राप्त करते हुए उसी के बल पर उत्तम बल को धारण करते हैं।

११८०. इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्दि चोदय। देवानां योनिमासदम् ।।

हे सौम्य उपासक ! तू परमेश्वर की अराधना के लिये हृदय में विराजमान दिव्यशक्तियों के आश्रयस्थान मूलकारण चितशक्ति को प्रेरित कर।

११८१. मृजन्ति त्वा दश क्षिपो हिन्वन्ति सप्त धीतयः । अनु विप्रा अमादिषुः ।।

हे उपासक! तुझको दस यम-नियम तथा धर्म के लक्षण पवित्र करते हैं और सात प्राण-शक्तियाँ तथा सात स्थानों में लगाई गई ध्यान-वृत्तियाँ लक्ष्य तक पहुँचाती हैं। बुद्धिमान् तुझको देखकर प्रसन्न होते हैं।

११८२. देवेभ्यस्त्वा मदाय कं सृजानमति मेष्यः । सं गोभिर्वासयामसि ।।

हे सौम्य जीवात्मन् ! इन्द्रियों को आनन्ददायक, प्रकृति की प्रवृत्तियों को पार वर्तमान तुझको हम वेदवाणियों से आच्छादित और सुशोभित करते हैं।

११८३. पुनानः कलशेष्वा वस्त्राण्यरुषो हरिः । परि गव्यान्यव्यत ।।

हृदयों में प्रकट होता हुआ, पवित्र, कान्तिमान्, सर्वव्यापक, दुःखहारक परमात्मा वेदवाणीरूपी वस्त्रों को धारण करता हैं।

११८४. मघोन आ पवस्व नो जहि विश्वा अप द्विषः । इन्दो सखायमा विश ।।

हे परमेश्वर ! आप आत्मिक सम्पत्तियों से युक्त हमको पवित्र कीजिये और हमसे द्वेषों को दूर कीजिये और अपने मित्र मुझ जीवात्मा में प्रकट होइये।

११८५. नृचक्षसं त्वा वयमिन्द्रपीतं स्वर्विदम् । भक्षीमहि प्रजामिषम् ।।

हे परमात्मन्! सुख को प्राप्त करानेवाले, जीवात्मा द्वारा सेवित, मनुष्यों के द्रष्टा आपका आश्रय लेकर हम प्रकृष्टता से उत्पन्न अन्न का भक्षण करें।

११८६. वृष्टिं दिवः परि स्रव द्युम्नं पृथिव्या अधि। सहो नः सोम पृत्सु धाः।

हे परमात्मन्! आप द्युलोक से पृथिवी पर अन्न की वृष्टि कीजिये और हमारी इन्द्रियों में सहनशक्ति को धारण कराइये।

दूसरा खण्ड

११८७. सोमः पुनानो अर्षति सहस्रधारो अत्यविः। वायोरिन्द्रस्य निष्कृतम्॥

तीसरा सूक्त— हजारों शक्तियों से सम्पन्न, प्रकृति के आवरण से परे वर्तमान परमात्मा पवित्र करता हुआ गतिशील ऐश्वर्यशाली जीवात्मा के हृदयदेश में प्रकट होता है।

११८८. पवमानमवस्यवो विप्रमभि प्र गायत। सुष्वाणं देववीतये॥

हे रक्षा चाहने वाले विद्वानो! दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिये उस पवित्र करने वाले, मेधावी, उत्तम प्रेरणा करनेवाले परमात्मा का गान करो।

११८९. पवन्ते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजसः। गृणाना देववीतये॥

सहस्रों ज्ञानों से युक्त सौम्य उपासक जन परमेश्वर की प्राप्ति के लिये उसकी स्तुति करते हुए आत्मा को पवित्र करते हैं।

११९०. उत नो वाजसातये पवस्व बृहतीरिषः। द्युमदिन्दो सुवीर्यम्॥

और हे परमात्मन्! आप हमें ज्ञान को प्राप्त कराने के लिये बड़ी शक्तियाँ और दिव्यगुणयुक्त बल प्रदान कीजिये।

११९१. अत्या हियाना न हेतृभिरसृग्रं वाजसातये। वि वारमव्यमाशवः॥

ज्ञान और सुख के लाभ के लिए प्रयत्न करनेवाले और मोक्ष की ओर शीघ्र जानेवाले उपासक-जन साधनों से प्राकृतिक अवरण को पार कर जाते हैं।

११९२. ते नः सहस्रिणं रयिं पवन्तामा सुवीर्यम्। स्वाना देवास इन्दवः।

वे ऐश्वर्यशाली विद्वान्! अपनी साधना को करते हुए हमारे लिये उत्तम बलदायक, हजारों तत्त्वों को बताने वाले ऐश्वर्ययुक्त ज्ञान का उपदेश करें।

११९३. वाश्रा अर्षन्तीन्दवोऽभि वत्सं न मातरः। दधन्विरे गभस्त्योः॥

उपदेश करनेवाले सौम्य उपासक प्रिय परमात्मा से उसी प्रकार प्रेम करते हैं, जैसे मातायें अपने प्यारे बच्चे से। वे प्राण और अपान के बल से अपने को दृढ़ बनाते हैं।

११९४. जुष्ट इन्द्राय मत्सरः पवमानः कनिक्रदत् । विश्वा अप द्विषो जहि ॥

परमेश्वर से प्रेम करनेवाला सौम्य उपासक अपने आत्मिक आनन्द में मग्न होकर अन्यों को उपदेश करता है और सब द्वेषों को नष्ट कर देता है।

११९५. अपघ्नन्तो अराव्णः पवमानाः स्वर्दृशः । योनावृतस्य सीदत ॥

पवित्र करने वाले मोक्षसुख को दिखानेवाले उपासकजन बुरी वृत्तियों और धर्मविरोधी भावों को नष्ट करते हुए सत्य ज्ञानस्वरूप परब्रह्म के आश्रयस्थान में प्राप्त हो जाते हैं।

तीसरा खण्ड

११९६. सोमा असृग्रमिन्दवः सुता ऋतस्य धारया । इन्द्राय मधुमत्तमाः ॥

चौथा सूक्त—परमेश्वर के लिये मधुर उपासना से युक्त ऐश्वर्यशाली सौम्य उपासकजन सत्यज्ञान (वेद) की व्यवस्था से प्रेरित हुए निषन्न होते हैं।

११९७. अभि विप्रा अनूषत गावो वत्सं न धेनवः । इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥

जिस प्रकार गौएँ अपने बच्चे से प्रेम करती हैं, उसी प्रकार बुद्धिमान् लोग आनन्दरस के पान के लिये परमेश्वर की स्तुति करते हैं।

११९८. मदच्युत् क्षेति सादने सिन्धोरूर्मा विपश्चित् । सोमो गौरी अधिश्रितः ॥

बुद्धिमान् तथा हर्ष प्रकट करने वाला सौम्य उपासक वेदवाणी का आश्रय पाकर अपने आश्रयभूत परमात्मा के आनन्दसमुद्र की लहर में निवास करता है।

११९९. दिवो नाभा विचक्षणोऽव्या वारे महीयते । सोमो यः सुक्रतुः कविः ॥

विशेष चतुर कवि तथा उत्तम कर्मवाला उपासक द्युलोक को अपनी शक्ति में बाँधने वाले, प्रकृति के आवरण करने वाले परमात्मा में महिमा पाता है।

१२००. यः सोमः कलशेष्वा अन्तः पवित्र आहितः । तमिन्दुः परि षस्वजे ॥

जो परमात्मा हृदय-कलशों में और पवित्र अन्तःकरण में विशेषरूप से प्रकट होता है, ऐश्वर्यशाली उपासक उसी का आश्रय लेता है।

१२०१. प्र वाचमिन्दुरिष्यति समुद्रस्याधि विष्टपि । जिन्वन् कोशं मधुश्चुतम् ॥

ऐश्वर्यशाली उपासक आनन्द के समुद्र परमेश्वर के परमतेज में विराजमान होकर, आनन्दमय कोश को वश में करता हुआ वेदवाणी को प्राप्त करता है।

१२०२. नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर्धेनामन्तः सबर्दुघाम् । हिन्वानो मानुषा युजा ।

नित्य स्तुति-योग्य, सब लोकों का स्वामी परमात्मा योगी मनुष्यों के भीतर अमृत दुहनेवाली वाणी को प्रेरित करनेवाला है।

१२०३. आ पवमान धारया रयिं सहस्रवर्चसम् । अस्मे इन्दो स्वाभुवम् ॥

हे पवित्र करनेवाले, ऐश्वर्यशाली प्रभो ! आप हमारे लिये सहस्रों तेजों से युक्त, उत्तम सामर्थ्य-सम्पन्न ऐश्वर्य को प्राप्त कराइये।

१२०४. अभि प्रिया दिवः कविर्विप्रः स धारया सुतः । सोमो हिन्वे परावति ॥

परम रक्षास्थान परमात्मा में धारणा द्वारा ज्ञानसम्पन्न, कवि और बुद्धिमान् उपासक द्युलोक के प्यारे स्थानों में विहार करता है।

चौथा खण्ड

१२०५. उत्ते शुष्मास ईरत सिन्धोरूर्मेरिव स्वनः । वाणस्य चोदया पविम् ॥

पांचवां सूक्त—हे परमात्मन् ! समुद्र की तरङ्गों की ध्वनि के समान आपकी शक्तियों की तरङ्गें प्रकट होती हैं। आप इस शरीर की शक्ति को प्रेरित कीजिये।

१२०६. प्रसवे त उदीरते तिस्रो वाचो मखस्युवः । यदव्य एषि सानवि ॥

हे प्रभो ! जब आप चितिशक्ति के उन्नत प्रदेश में ध्यान द्वारा प्राप्त होते हैं, उस समय आपके प्रकट होने पर ज्ञान, कर्म, उपासना की प्रतिपादक तथा ऋग्, यजुः, सामरूप तीनों प्रकार की वेदवाणियाँ प्रकट होती हैं।

१२०७. अव्या वारैः परि प्रियं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । पवमानं मधुश्चुतम् ॥

उपासकजन, प्रिय, दुःखहर्त्ता, पवित्रकर्ता, आनन्दवर्षक परमात्मा को योग-साधनों से, चितिशक्ति की वृत्तियों द्वारा साक्षात् करते हैं।

१२०८. आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे । अर्कस्य योनिमासदम् ॥

वे सब से अधिक आनन्द-युक्त बुद्धिमान् उपासक ! तू पूज्य परमात्मा के परमपद-स्थान (मोक्ष) को पाने के लिये अपनी धारणाशक्ति से पवित्र परमात्मा के प्रति गति कर।

१२०९. स पवस्व मदिन्तम गोभिरञ्जानो अक्तुभिः । एन्द्रस्य जठरं विश ॥

हे सब से अधिक आनन्द-सम्पन्न विद्वान् ! तू ज्ञान के साधनों और वेदवाणियों द्वारा प्रकाशमान होकर गति कर और सर्वव्यापक परमेश्वर के भीतर प्रवेश कर।

पांचवां खण्ड

१२१०. अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा । अवाहन्नवतीर्नव ॥

छठा सूक्त— हे परमात्मन् ! आप इस प्रकार हृदय में प्रकट होइये कि जिससे आपके आनन्द में मग्न रहते हुए जीवात्मा ९९ वर्ष अच्छे प्रकार व्यतीत करे ।

१२११. पुरः सद्य इत्थाधिये दिवोदासाय शंबरम् । अध त्यं तुर्वशं यदुम् ॥

हे परमात्मन् ! आप सत्यकर्मवाले और सूर्यवत् प्रकाशमान उपासक के लिये उसकी शान्ति के विनाशक, पास में स्थित आत्मिक शत्रु काम-क्रोध आदि के समूह को शीघ्र नष्ट कर देते हैं।

१२१२. परिणो अश्वमश्वविद्गोमदिन्दो हिरण्यवत् । क्षरा सहस्रिणीरिषः ॥

मन, प्राणों तथा इन्द्रियों को लाभ पहुँचाने वाले हे परमेश्वर ! आप हमारे मन को इन्द्रियों की शक्ति से युक्त तथा तेज से पूर्ण करके हमारी सहस्रों प्रकार की कामनाओं को पूरी कीजिये ।

१२१३. अपघ्नन् पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥

सातवां सूक्त— हे परमात्मन् ! आनन्ददायक आप आत्मिक शत्रुओं को नष्ट करते हुए हमें पवित्र करते हैं । दिव्यगुणों तथा विद्वानों को न चाहनेवाले मनुष्य को हमसे दूर कीजिये ।

१२१४. महो नो राय आ भर पवमान जही मृधः । रास्वेन्दो वीरवद्यशः ॥

हे प्रकाशमान पवित्र परमात्मन् ! आप हमारे लिये महान् ऐश्वर्यों को दीजिये, आत्मिक शत्रुओं को नष्ट कीजिये और वीरसन्तानों के साथ वीरतायुक्त यश दीजिये ।

१२१५. न त्वा शतं च न ह्रुतो राधो दित्सन्तमा मिनन् । यत्पुनानो मखस्यसे ।

हे परमात्मन् ! हमारे सुख को हरण करनेवाले सैकड़ों भी कुटिल शत्रु मोक्षरूपी धन को देने की इच्छावाले आपका खण्डन नहीं कर सकते, क्योंकि आप सर्वव्यापक होकर हमें पवित्र करते हुए मोक्ष प्रदान करना चाहते हैं ।

१२१६. अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः । हिन्वानो मानुषीरपः ॥

आठवाँ सूक्त— हे परमात्मन् ! मनुष्यों के कर्मों को प्रेरित करते हुए आप अपनी जिस तेजस्वी शक्ति से सूर्य को प्रकाशित करते हैं, उसी से मुझे पवित्र कीजिये ।

१२१७. अयुक्त सूर एतशं पवमानो मनावधि । अन्तरिक्षेण यातवे ॥

अपने को पवित्र करता हुआ सूर्य के समान प्रकाशमान उपासक मोक्षमार्ग में जाने के लिये अपने गमनशील मन को सर्वज्ञ परमात्मा में लगाता है ।

१२१८. उत त्या हरितो रथे सूरो अयुक्त यातवे । इन्दुरिन्द्र इति ब्रुवन् ॥

और वह ज्ञानी उपासक 'परमेश्वर सर्वज्ञ तथा प्रकाशमान है, उसका नाम 'इन्द्र' है,' इस प्रकार कहता हुआ हरणशील प्राणों को रमणीय ब्रह्म में योग द्वारा लगाता है ।

छठा खण्ड

१२१९. अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे कृणुध्वम् ।
यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः ॥

नवाँ सूक्त— हे मनुष्यो ! तुम अग्नि, सूर्य, विद्युत्, विद्वानों आदि के साथ समान प्रीति करनेवाले होकर भी उस सबसे अधिक पूजनीय दिव्य-अग्नि परमात्मा को ही हिंसारहित उपासनायज्ञ में ज्ञान का सन्देश और कर्मफल देनेवाला दूत समझो, जो मरणधर्मा प्राणियों में निरन्तर स्थिर, सत्यकर्मा, दुष्टों का तापक, सबमें मुख्य, तेजस्वी सूर्यादि को प्रलयकाल में लीन करनेवाला और उपासकों को पवित्र करनेवाला है।

१२२०. प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन् यदा महः संवरणाद्व्यस्थात् ।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥

शब्द करता हुआ घोड़ा जिस प्रकार खाने की इच्छा से घास के पास आता है, उसी प्रकार अनाहत ध्वनि करते हुए महान् परमात्मा उपासक की भक्ति को स्वीकार करता हुआ जब उसके हृदय में प्रकट होता है, तब इसके तेज के अनुकूल ही उपासक के प्राण गति करते हैं। हे प्रभो ! आपकी गति बड़ी आकर्षक है।

१२२१. उद्यस्य ते नवजातस्य वृष्णोऽग्ने चरन्त्यजरा इधानाः ।
अच्छा द्यामरुषो धूम एषि सं दूतो अग्न ईयसे हि देवान् ॥

हे परमात्मन् ! उपासक के हृदय में नये प्रकट हुए सुखवर्षक आपके जरा-रहित (नित्य) तेज प्रकट होते हैं। प्राणों को गति देनेवाले, प्रकाशमान तथा तेजस्वी आप द्युलोक तक व्यापक हैं और विद्वानों तक ज्ञान का सन्देश पहुँचाने वाले हैं।

१२२२. तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषा वृषभो भुवत् ॥

दसवाँ सूक्त— काम-क्रोध आदि महान् वृत्रों के नाश के लिये हम परमेश्वर का ज्ञान प्राप्त करते हैं। वह सुखवर्षक है।

१२२३. इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स बले हितः । द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥

वह परमेश्वर समस्त सुख देने में समर्थ और ओजस्वी है। वह बल से किये जानेवाले कार्यों (सृष्टि की उत्पत्ति आदि) में लगा हुआ, यशस्वी, ज्ञानी तथा उत्तम गुणसम्पन्न है।

१२२४. गिरा वज्रो न सम्भृतः सबलो अनपच्युतः । ववक्ष उग्रो अस्तृतः ॥

वह बलवान्, कभी अपने नियमों से च्युत न होनेवाला, कभी हिंसित न होनेवाला, उत्तम शस्त्र के समान धारण किया गया परमात्मा वेदवाणी के द्वारा सबको धारण करता है।

सातवाँ खण्ड

१२२५. अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ नय। पुनाहीन्द्राय पातवे ॥

ग्यारहवाँ सूक्त— हिंसारहित उपासान-यज्ञ के करनेवाले मनुष्य ! तू वेदवाणियों तथा गुरुओं द्वारा बनाये हुए ज्ञान को पवित्र हृदय में धारण कर और ज्ञान का सेवन करने वाले जीवात्मा के के लिये पवित्र कर।

१२२६. तव त्य इन्दो अन्धसो देवा मधोर्व्याशत। पवमानस्य मरुतः ॥

हे जीवात्मन् ! पवित्र तथा अमृतस्वरूप तेरी जीवनधारक शक्ति को प्राण-देवता उपभोग करते हैं।

१२२७. दिवः पीयूषमुत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे। सुनोता मधुमत्तमम् ॥

हे मनुष्यो ! तुम मोक्ष के अमृत-रस-स्वरूप अत्यन्त आनन्दकारी ज्ञान तथा भक्ति को शक्ति-सम्पन्न आत्मा के लिये उत्पन्न करो।

१२२८. धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः।
हरिः सृजानो अत्यो न सत्त्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुषे नदीष्वा।

बारहवाँ सूक्त— द्युलोक का धारक, जाननेयोग्य, आनन्द-रस-स्वरूप, देवों को बलदायक, मनुष्यों द्वारा हर्ष से स्तुति किया गया परमात्मा सब जगह गति कर रहा है। सृष्टिकर्त्ता वह प्रभु अपनी सात्त्विक विभूतियों के द्वारा उपासना की अव्यक्त शब्द करनेवाली नाड़ियों में स्वभावत: नाना प्रकार के बल प्रकट करता है, जैसे अश्व नाना प्रकार की शक्तियों को दिखाया करता है।

१२२९ शूरो न धत्त आयुधा गभस्त्योः स्वा३ः सिषासन् रथिरो गविष्टिषु।
इन्द्रस्य शुष्ममीरयन्नपस्युभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते मनीषिभिः ॥

जैसे शूर-रथी दोनों हाथों में शस्त्रों को धारण करता है, वैसे ही द्यु और पृथिवी-लोकों में शक्तियों को धारण करनेवाला परमेश्वर इन्द्रियों तथा वेदवाणियों के इष्टमार्गों में सुख का विभाग करता हुआ, आत्मा के बल को प्रेरित करता हुआ और मनीषी कर्मयोगियों द्वारा ध्यान किया जाता हुआ प्रकट होता है।

१२३०. इन्द्रस्य सोम पवमान ऊर्मिणा तविष्यमाणो जठरेष्वा विश।
प्र नः पिन्व विद्युदभ्रेव रोदसी धिया नो वाजाँ उप माहि शश्वतः ॥

हे पवित्र परमात्मन् ! आप महान् सामर्थ्यवान् होकर जीवात्मा की भक्तियों में आनन्द की लहरों के साथ प्रकट होइये। जैसे बिजुली बादलों को प्रकाश से पूर्ण कर देती है, उसी प्रकार आप द्यु और पृथिवी तथा उपासक के प्राण तथा अपान को पूर्ण कर हमारे लिये अत्यधिक ज्ञान प्राप्त कराइये।

१२३१. यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः ।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥

तेरहवाँ सूक्त— हे परमेश्वर ! क्योंकि आप पूर्व, पश्चिम, ऊपर, नीचे, सर्वत्र देहधारियों में, प्राणधारियों में और जितेन्द्रियों में नेता और पूजित हैं।

१२३२. यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा ।
कण्वासस्त्वा स्तोमेभिर्ब्रह्मवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥

हे परमेश्वर ! आप रमणीय, हिंसक गतिमान् तथा शक्तिशाली पुरुषों में समान भाव से आनन्द प्राप्त कराते हैं। ज्ञान को धारण करनेवाले मेधावी-उपासक आपको स्तुतियों के द्वारा ढूँढते हैं। आप हमें प्राप्त होइये।

१२३३. उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।
सत्राच्या मघवान्त्सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥

१४वाँ सूक्त—हमारे मन के अन्दर के तथा बाहर के दोनों प्रकार के वचनों को सुननेवाला ऐश्वर्य-सम्पन्न परमात्मा सौम्य उपासक की तृप्ति के लिये सत्य के पीछे चलनेवाली बुद्धि के साथ प्राप्त हो।

१२३४. तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसा धिषणे निष्टतक्षतुः ।
उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः ॥

हे परमात्मन् ! उस स्वयं प्रकाशमान, सुखवर्षक आपको द्यु और पृथिवी के निवासी पुरुषार्थ से ढूँढ़ पाते हैं, क्योंकि आप जानने योग्य पदार्थों में प्रथम होकर सर्वत्र व्यापक हैं और प्रेरक होकर रहने की अभिलाषा ही आपका मनन संकल्प है।

आठवाँ खण्ड

१२३५. पवस्व देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः । वायुमारोह धर्मणा ॥

१५वाँ सूक्त— हे देव ! हमें पवित्र कीजिये। आपका आनन्द जीवात्मा को प्राप्त हो। आप धारकशक्ति से वायु आदि को वश में करते हैं।

१२३६. पवमान नि तोशसे रयिं सोम श्रवाय्यम् । इन्दो समुद्रमा विश ॥

हे पवित्र परमात्मन् ! आप यशपूर्ण ऐश्वर्य को प्रदान करते हैं। हे ऐश्वर्यशाली उपासक ! तू आनन्द के समुद्र परमात्मा में तन्मय हो।

१२३७. अपघ्नन् पवसे मृधः क्रतुवित्सोम मत्सरः । नुदस्वादेवयुं जनम् ॥

हे प्रेरक प्रभो ! आनन्द के सरोवर आप दुष्टों का नाश करते हुए सर्वत्र व्यापक हैं। आप विद्वानों के विरोधी मनुष्य को सच्चे मार्ग में प्रेरित कीजियें।

१२३८. अभी नो वाजसातमं रयिमर्ष शतस्पृहम् । इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभासहम् ॥

१६वाँ सूक्त — हे परमेश्वर ! आप हमें सैकड़ों मनुष्यों से अभिलषित उस ज्ञानपूर्ण ऐश्वर्य को प्राप्त कराइये जो सहस्रों का पोषण करनेवाला, बहुत यशसम्पन्न और आपके तेज को सहन करनेवाला हो।

१२३९. वयं ते अस्य राधसो वसोर्वसो पुरुस्पृहः ।
नि नेदिष्ठतमा इषः स्याम सुम्ने ते अध्रिगो ॥

हे अचल, व्यापक परमात्मन् ! हम आपके इस बहुतों से चाहे हुए धन, अन्न आदि ऐहिक सुखों के अत्यन्त समीप रहनेवाले हों और आपके मोक्षसुख में स्थिर हों।

१२४०. परि स्य स्वानो अक्षरदिन्दुरव्ये मदच्युतः ।
धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा न याति गव्ययुः ॥

वेदवाणी को चाहनेवाला उपासक अहिंसामय उपासना में जिस प्रकार दीप्ति के साथ योग की धारणा-द्वारा उच्चगति (मोक्ष) को प्राप्त होता है, वैसे ही वह मुक्ति से लौटकर, आनन्द से च्युत होकर प्रकृति से सम्बद्ध शरीर में सूक्ष्म नाडीसमूहों में क्षरित होता है।

१२४१. पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम ॥

१७वाँ सूक्त — हे सबके प्रेरक परमात्मन् ! आप महान् आनन्द के समुद्र हैं, देवों के पालक हैं। आप समस्त मनुष्यों के हृदयों को पवित्र कीजिये।

१२४२. शुक्रः पवस्व देवेभ्यः सोम दिवे पृथिव्यै शं च प्रजाभ्यः ॥

हे शान्त प्रभो ! तेजस्वी आप विद्वानों के लिये तथा द्यु-पृथिवी लोकों के लिये पवित्र कीजिये और वहाँ की प्रजाओं के लिये कल्याण कीजिये।

१२४३. दिवो धर्तासि शुक्रः पीयूषः सत्ये विधर्मन् वाजी पवस्व ॥

हे परमेश्वर! आप द्युलोक के धारण करने वाले हैं, शुद्ध, अमृतस्वरूप सर्वज्ञ तथा बलवान् हैं। आप हमें विश्व को धारण करने वाले अपने सत्यस्वरूप में रखकर पवित्र कीजिये।

नवाँ खण्ड

१२४४. प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम् । अग्ने रथं न वेद्यम् ॥

१८वाँ सूक्त — हे ज्ञान-सम्पन्न प्रभो ! मैं मित्र के समान प्रिय, सर्वत्र व्यापक, रमणीय वस्तु के समान प्राप्त करने योग्य आपकी स्तुति करता हूँ।

१२४५. कविमिव प्रशंस्यं यं देवास इति द्विता । नि मर्त्येष्वादधुः ॥

कवि के समान प्रशंसनीय जिस अग्नि को विद्वज्जन मनुष्यों में दो प्रकार से (एक भौतिक अग्नि और दूसरी आध्यात्मिक=परमेश्वर रूप में) धारण करते हैं, मैं उसकी स्तुति करता हूँ।

१२४६. त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँः पाहि शृणुही गिरः । रक्षा तोकमुत त्मना ॥

हे सर्वव्यापक, सबसे अधिक बलवान् प्रभो ! आप भक्ति का दान करने वाले उपासकों का पालन कीजिये, उनकी वाणियों को सुनिये और अपने सामर्थ्य से उनके पुत्र आदि की रक्षा कीजिये।

१२४७. एन्द्र नो गधि प्रिय सत्राजिदगोह्य । गिरिर्न विश्वतः पृथुः पतिर्दिवः ॥

१९वाँ सूक्त— हे परमेश्वर ! आप हमारे पास आइये। हे प्रिय, सबको विजय करनेवाले प्रशंसनीय प्रभो ! आप सूर्यलोक के भी स्वामी हैं और पर्वत के समान विशाल हैं।

१२४८. अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी । इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥

हे सत्यस्वरूप प्रभो ! आप सौम्य उपासकों के पालन करनेवाले हैं और द्यु तथा पृथिवी दोनों लोकों को वश में करके रखनेवाले हैं और शक्ति से प्रेरणा देनेवाले सूर्य के भी बड़े स्वामी हैं।

१२४९. त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र धर्ता पुरामसि । हन्ता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः ॥

हे परमेश्वर आप चिरकाल से चले आनेवाले शरीररूपी नगरों के विदारण करनेवाले अर्थात् मोक्ष देनेवाले हैं। नाशकारी दुर्गुणों के नष्ट करनेवाले और मननशील आत्मा की वृद्धि करनेवाले तथा ज्ञानरूपी प्रकाश के स्वामी हैं।

१२५०. पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥

बीसवाँ सूक्त— मोक्ष देने के लिये शरीरों का भेदन करनेवाला, नित्य, कवि, अनन्त बलयुक्त परमात्मा सबके कर्मों को धारण करनेवाला, शक्तिशाली और सबसे स्तुति किया गया है।

१२५१. त्वं बलस्य गोमतोऽपावरद्रिवो बिलम् । त्वां देवा अबिभ्युषस्तुज्यमानास आविषुः ॥

हे अविनाशी प्रभो ! आप पृथिवी आदि सहित शक्ति के समूह को व्याप्त किये हुए हैं। सब विद्वान् आपको भय मानते हुए पीडित होने पर आपकी ही शरण में आया करते हैं।

१२५२. इन्द्रमीशानमोजसाभि स्तोमैरनूषत । सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥

हे मनुष्यो ! ओज के द्वारा सबके ईश उस परमेश्वर का वेदमन्त्रों से गुणगान करो, जिस के तुम्हारे लिये दिये हुए हजारों दान हैं, प्रत्युत और भी बहुत अधिक हैं।

—o—

दसवाँ अध्याय दूसरा अर्धप्रपाठक

(१२५३ मन्त्र से १३४६ मन्त्र तक)

सूक्तों के अनुसार ऋषि, देवता, छन्द और स्वर

ऋषिः— १ पराशरः; शुनःशेपः; ३ असित काश्यपो देवलो वा; ४, ७ राहूगणः, ५ प्रियमेधः; ६, १४ नृमेधः; ८ पवित्रो वसिष्ठो वोभौ वा; ९ वसिष्ठः; १० वत्सः काण्वः; ११ शतं वैखानसाः; १२ सप्तर्षयः; १३ वसुर्भारद्वाजः; १५ भर्गः प्रागाथः, १६ भरद्वाजः; १७ मनुराप्सवः; १८ अम्बरीष ऋजिश्वा च; १९ अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः; २० अमहीयुः; २१ त्रिशोकः काण्वः; २२ गोतमो राहूगणः; २३ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः ॥

देवता— १—७, ११—१३, १६—२० पवमानः सोमः; ८ पावमानाध्येतृस्तुतिः; ९ अग्निः; १०, १४, १५, २१—२३ इन्द्रः ।

छन्दः—१, ९ त्रिष्टुप्; २—७, १०, ११, १६, २०, २१ गायत्री, ८, १८, २३ अनुष्टुप्; १२ (१—२), १४, १५ बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती + २ सतोबृहती), १२ (३), १९ द्विपदा विराट् पङ्क्तिः; १३ जगती, १७-२२, उष्णिक् ॥

स्वरः— १, ९ धैवतः; २—७, १०, ११, १६, २०, २१ षड्जः; ८, १८, २३ गान्धारः, १२ (१) १४, (१), १५ (१) मध्यमः; १२ (२—३), १४ (२), १५ (२), १९ पञ्चमः, १३ निषादः; १७, २२ ऋषभः ॥

प्रथम खण्ड

१२५३. अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मन् जनयन् प्रजा भुवनस्य गोपाः ।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे स्वानो अद्रिः ॥

पहला सूक्त— प्रथम उत्पन्न आकाश में प्रजाओं को उत्पन्न करता हुआ, संसार का रक्षक, आनन्द का समुद्र परमात्मा सब में व्यापक है। चेतना के पवित्र शिखर पर ध्यान किये गये, पवित्र आत्मा में प्रकट हुए, श्रेष्ठ, सुखवर्षक परमात्मा की महिमा अधिकता से अनुभव की जाती है।

१२५४. मत्सि वायुमिष्टये राधसे नो मत्सि मित्रावरुणा पूयमानः ।
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान् मत्सि द्यावापृथिवी देव सोम ॥

हे देव, सब के प्रेरक, शान्त प्रभो ! सर्वत्र प्रकाशित आप हमें सब प्रकार के धन तथा अभीष्ट सुख की प्राप्ति कराने के लिये वायु को, प्राण-अपान तथा सूर्य-मेघ को, प्राणों के बल को, विद्वानों तथा इन्द्रियों को और द्यु तथा पृथिवी लोकों को आनन्दयुक्त बनाते हैं।

१२५५. महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान् ।
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत् सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥

महान् परमात्मा ने यह महान् कार्य किया है कि सब लोकों को अपने अन्दर धारण करनेवाले तथा सर्वव्यापक उसने जीवात्मा में ओज को धारण कराया है और सूर्य में ज्योति उत्पन्न की है।

१२५६. एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयते । अभि द्रोणान्यासदम् ॥

दूसरा सूक्त— यह अमर देव जीवात्मा, पक्षी के समान गति के स्थान शरीरों में स्थित होने को इधर-उधर जाता है।

१२५७. एष विप्रैरभिष्टुतोऽपो देवो वि गाहते । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥

यह विद्वानों द्वारा ठीक प्रकार से वर्णन किया गया देव जीवात्मा उपासना के लिये समर्पित मन में रमणीय गुणों को धारण करता हुआ कर्मों का आलोडन करता है और लोकों में भ्रमण करता है।

१२५८. एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्त्वभिः । पवमानः सिषासति ॥

शूर सेनापति के समान मोक्षमार्ग में जाता हुआ जीवात्मा सात्त्विक वृत्तियों से पवित्र होता हुआ सब वरणीय धन आदि को दान कर देना चाहता है।

१२५९. एष देवो रथर्यति पवमानो दिशस्यति । आविष्कृणोति वग्वनुम् ॥

यह देव जीवात्मा शरीररूपी रथ द्वारा आता-जाता है। स्वयं पवित्र होता हुआ उपदेश करता है और श्रेष्ठ वाणी का आविष्कार करता है।

१२६०. एष देवो विपन्युभिः पवमान ऋतायुभिः । हरिर्वाजाय मृज्यते ॥

अपने दुःखों को स्वयं हरनेवाला, स्वयं पवित्र होता हुआ यह जीवात्मा सत्य की कामनावाले विद्वान् गुरुओं द्वारा ज्ञान की प्राप्ति के लिये और भी शुद्ध किया जाता है।

१२६१. एष देवो विपा कृतोऽति ह्वरांसि धावति । पवमानो अदाभ्यः ॥

विशेष पालकशक्ति से सम्पन्न, पवित्र होता हुआ, हिंसारहित यह देव जीवात्मा कुटिल कर्मों को दूर भगाता है।

१२६२. एष दिवं वि धावति तिरो रजांसि धारया । पवमानः कनिक्रदत् ॥

यह पवित्र जीवात्मा वेदवाणी का उच्चारण करता हुआ, धारणा द्वारा रजोगुण-युक्त कर्मों और लोकों को तिरस्कृत करके प्रकाशमानलोक (मोक्ष) की ओर विशिष्टता से शीघ्र जाया करता है।

१२६३. एष दिवं व्यासरत्तिरो रजांस्यस्तृतः । पवमानः स्वध्वरः ॥

पवित्र और अच्छे प्रकार अहिंसक होकर तथा किसी से भी हिंसित न होकर यह जीवात्मा रजोयुक्त लोकों को छोड़कर प्रकाशमान द्युलोक तथा मोक्ष की ओर विशेषरूप से जाया करता है।

१२६४. एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः । हरिः पवित्रे अर्षति ॥

यह पुराने उपार्जित जन्म द्वारा दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिये उत्पन्न हुआ देव जीवात्मा स्वयं दुखों को हरनेवाला होकर पवित्र परमात्मा में पहुँच जाता है।

१२६५. एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञानो जनयन्निषः । धारया पवते सुतः ॥

यही वह अनेक व्रतोंवाला जीवात्मा, जन्म लेकर इच्छाओं को तथा अन्न आदि को उत्पन्न करता हुआ, परमेश्वर की ओर प्रेरित होकर, धारणा द्वारा अपने को पवित्र करता है।

दूसरा खण्ड

१२६६. एष धिया यात्यण्व्या शूरो रथेभिराशुभिः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥

तीसरा सूक्त – जैसे शीघ्रगामी रथों से शूर योद्धा जाता है, वैसे ही यह सौम्य जीवात्मा इस संसार से जाताहुआ सूक्ष्मबुद्धि तथा कर्म द्वारा परमेश्वर के धाम (मोक्ष) को प्राप्त होता है।

१२६७. एष पुरु धियायते बृहते देवतातये । यत्रामृतास आशत ॥

यह उपासक उस बड़े देव (परमात्मा) की प्रसन्नता के लिये ध्यान करता है, जहाँ कि मुक्त आत्मायें अमृत होकर आनन्द भोगते हैं।

१२६८. एतं मृजन्ति मर्ज्यमुप द्रोणेष्वायवः । प्रचक्राणं महीरिषः ॥

बड़ी आयु चाहनेवाले उपासक बड़ी-बड़ी इच्छायें करने वाले अपने इस शुद्ध करने योग्य आत्मा को गतिशील शरीरों में अत्यधिक शुद्ध किया करते हैं।

१२६९. एष हितो वि नीयतेऽन्तः शुन्ध्यावता पथा । यदी तुञ्जन्ति भूर्णयः ॥

जब भी प्राणायाम करनेवाले उपासक प्राण और अपान की एक-दूसरे में आहुति देते हैं, तब यह अन्दर छिपा हुआ जीवात्मा शुद्धियुक्त मार्ग से विनीत किया जाता है।

१२७०. एष रुक्मिभिरीयते वाजी शुभ्रेभिरंशुभिः । पतिः सिन्धूनां भवन् ॥

वेगयुक्त यह जीवात्मा, गतिशील इच्छाओं का स्वामी और नाड़ियों का पालक होता हुआ, कान्तियुक्त, उज्ज्वल, ज्ञानरूपी प्रकाश की किरणों के साथ गति करता है।

१२७१. एष शृङ्गाणि दोधुवच्छिशीते यूथ्यो३ वृषा । नृम्णा दधान ओजसा ॥

अपने ओज से शक्तियों को धारण करता हुआ यह उपासक ज्ञान की किरणों में वैसे ही कम्पन उत्पन्न करता है, जैसे कि समूह के मध्य में स्थित साँड सींगों को हिलाता हुआ पास के मनुष्यों को कँपाता है।

१२७२. एष वसूनि पिब्दनः परुषा ययिवाँ अति । अव शादेषु गच्छति ॥

प्राणों को प्रेरित करता हुआ यह उपासक क्रम से प्रत्येक विघ्न को पार करता हुआ कठिन तपस्याओं में प्रविष्ट होता है।

१२७३. एतमु त्यं दश क्षिपो हरिं हिन्वन्ति यातवे । स्वायुधं मदिन्तमम् ।।

दसों इन्द्रियाँ दुःख हरनेवाले, मनोहर, उत्तम साधनारूपी शस्त्रवाले, अत्यन्त आनन्दयुक्त उसी प्रसिद्ध उपासक जीवात्मा को मोक्ष तक पहुँचाने के लिये प्रेरणा करती हैं।

तीसरा खण्ड

१२७४. एष उ स्य वृषा रथोऽव्या वारेभिरव्यत । गच्छन् वाजं सहस्रिणम् ।।

चौथा सूक्त— यही वह श्रेष्ठ वीर्यवान्, गति-शील हृष्ट उपासक जीवात्मा हजारों बलों को प्राप्त करता हुआ चितिशक्ति के वरणयोग्य साधनों से परमात्मा की ओर जाता है।

१२७५. एतं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ।।

इसी मनोहर ऐश्वर्यशाली जीवात्मा को मुख्य प्राण के साथ प्रेम करनेवाली इन्द्रियों की वृत्तियाँ परमेश्वर के आनन्द पाने के लिये, अखण्ड उपासनाओं के द्वारा प्रेरित करती हैं।

१२७६. एष स्य मानुषीष्वा श्येनो न विक्षु सीदति । गच्छञ्जारो न योषितम् ।।

यही वह जीवात्मा मनुष्य-प्रजाओं में श्येन (बाज, गरुड़) पक्षी के समान वेगवान् होकर, स्त्री का सङ्ग करनेवाले जार के समान गुप्तरूप से स्थित है।

१२७७. एष स्य मद्यो रसोऽव चष्टे दिवः शिशुः । य इन्दुर्वारमाविशत् ।।

यही वह आनन्दमग्न, रसमय जीवात्मा प्रकाशमान परमात्मा का पुत्र-सा होकर सबको देखता है जो कि ऐश्वर्यशाली उपासक होकर वरणीय मोक्षमार्ग में प्रविष्ट होता है।

१२७८. एष स्य पीतये सुतो हरिरर्षति धर्णसिः । क्रन्दन् योनिमभि प्रियम् ।।

यही वह आनन्द-रस पीने के लिये उत्पन्न हुआ,. अपना दुःख हरने वाला, प्राणों को धारण करनेवाला उपासक, वेदपाठ तथा स्तुति करताहुआ, अपने प्यारे आश्रय परमात्मा की ओर जाता है।

१२७९. एतं त्यं हरितो दश मर्मृज्यन्ते अपस्युवः । याभिर्मदाय शुम्भते ।।

इसी प्रसिद्ध सौम्य उपासक को वे हरणशील तथा कर्म करती हुई दस इन्द्रियाँ और प्राणवृत्तियाँ निरुद्ध होकर शुद्ध करती हैं। जिनके द्वारा आनन्द पाने के लिये वह स्वयं शुद्ध होता है।

चौथा खण्ड

१२८०. एष वाजी हितो नृभिर्विश्वविन् मनसस्पतिः । अव्यं वारं वि धावति ।।

पांचवाँ सूक्त— यह शक्तिशाली, उपासकजनों द्वारा हृदय में धारण किया हुआ, मन का रक्षक तथा स्वामी परमात्मा प्रकृति तथा जीवात्मा के आवरण तथा सीमा को पार किये हुए है और जीवात्मा के वरणीय हृदय में विशेष रूप से शीघ्र प्रकट होता है।

१२८१. एष पवित्रे अक्षरत् सोमो देवेभ्यः सुतः । विश्वा धामान्याविशन् ।।

यह सबका प्रेरक तथा विद्वानों के लिये सर्वत्र प्रकट परमात्मा सब स्थानों में व्यापक होता हुआ पवित्र हृदय में प्रकट होता है।

१२८२. एष देवः शुभायतेऽधि योनावमर्त्यः । वृत्रहा देववीतमः ।।

कभी न मरनेवाला, विघ्न-नाशक, सब में व्यापक और सब का प्रकाशक यह देव परमात्मा मूलकारण-रूप प्रकृति में तथा अपने स्वरूप में सब के लिये शुभ है।

१२८३. एष वृषा कनिक्रदद् दशभिर्जामिभिर्यतः । अभि द्रोणानि धावति ।।

सुखवर्षक यह परमात्मा वेद-शब्दों का उपदेश करता हुआ, दसों दिशाओं से धारण किया हुआ, सब लोकों में व्यापक हो रहा है।

१२८४. एष सूर्यमरोचयत् पवमानो अधि द्यवि । पवित्रे मत्सरो मदः ।।

इस सर्वव्यापक परमात्मा ने द्युलोक में सूर्य को प्रकाशित किया है। यही परमात्मा पवित्र हृदय में आनन्द सरसानेवाला तथा हर्षकारक है।

१२८५. एष सूर्येण हासते संवसानो विवस्वता । पतिर्वाचो अदाभ्यः ।।

दीप्तिमान् सूर्य के द्वारा संसार को अच्छी प्रकार से बसाता हुआ यह परमात्मा निश्चय ही वेदवाणी का अद्वितीय स्वामी होकर विराजता है।

पांचवाँ खण्ड

१२८६. एष कविरभिष्टुतः पवित्रे अधि तोशते । पुनानो घ्नन्नप द्विषः ।।

छठा सूक्त—यह कवि तथा उत्तम प्रकार से स्तुति कियागया परमात्मा पवित्र करता हुआ तथा काम-क्रोध आदि को नष्ट करता हुआ उपासक के पवित्र हृदय में विराजता है।

१२८७. एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित् परि षिच्यते । पवित्रे दक्षसाधनः ।।

सुख को उत्कृष्टता से रखनेवाला, सब बलों को सिद्ध करनेवाला यह परमात्मा गतिशील तथा ऐश्वर्यशाली, जीवात्मा के लिये पवित्र हृदय-देश में सब प्रकार से प्रवाहित अर्थात् मनन कियाजाता है।

१२८८. एष नृभिर्वि नीयते दिवो मूर्धा वृषा सुतः । सोमो वनेषु विश्ववित् ।।

द्युलोक का शिर अर्थात् सञ्चालक, सुखवर्षक, प्रेरक, सर्वज्ञ तथा हृदय में प्रकट हुआ परमात्मा उपासकों द्वारा सेवन करने योग्य कार्यों में विशेष तथा विविध प्रकार से प्राप्त अर्थात् स्मरण किया जाता है।

१२८९. एष गव्युरचिक्रदत् पवमानो हिरण्ययुः । इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ।।

वेदवाणी में व्यापक, पवित्र करनेवाला, समस्त प्रकाशमान लोकों में व्यापक, सदा जीतनेवाला, किसी से न हारने वाला यही परमेश्वर वेद, द्वारा उपदेश करता है।

१२६०. एष शुष्म्यसिष्यददन्तरिक्षे वृषा हरिः । पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥

यही बलवान्, सुखवर्षक, दुःखहारक परमेश्वर, उपासक-जीवात्मा को पवित्र करता हुआ, हृदयरूपी आकाश में प्रवाहित होता है।

१२६१. एष शुष्म्यदाभ्यः सोमः पुनानो अर्षति । देवावीरघशंसहा ॥

यही सर्वशक्तिमान्, अहिंसित, अद्वितीय, प्रेरक, सब देवों में व्यापक और उनका रक्षक तथा पाप की बात करनेवालों का नाशक परमात्मा सबको प्रकाशित करता हुआ सर्वत्र पहुँचा हुआ है।

छठा खण्ड

१२६२. स सुतः पीतये वृषा सोमः पवित्रे अर्षति । विघ्नन्रक्षांसि देवयुः ॥

सातवाँ सूक्त—आनन्द-प्राप्ति के लिये ध्यान कियागया, सुखवर्षक, प्रेरक और देवों को चाहने वाला तथा कार्य में नियुक्त करने वाला परमात्मा काम-क्रोध आदि राक्षसों को नष्ट करता हुआ उपासक के पवित्र हृदय में प्रकट होता है।

१२६३. स पवित्रे विचक्षणो हरिरर्षति धर्णसिः । अभि योनिं कनिक्रदत् ॥

सब का द्रष्टा, सब का धारक तथा दुःखनाशक परमात्मा पवित्र हृदय में वेदशब्दों का उपदेश करता हुआ संसार के मूलकारण प्रकृति मे सर्वत्र व्यापक है।

१२६४. स वाजी रोचनं दिवः पवमानो वि धावति । रक्षोहा वारमव्ययम् ॥

वह बलवान्, द्युलोक का प्रकाशक, सर्वव्यापक तथा दुष्टसंहारक परमात्मा जीवात्मा के वरणीय हृदय में विशेष रूप से प्रकट होता है।

१२६५. स त्रितस्याधि सानवि पवमानो अरोचयत् । जामिभिः सूर्यं सह ॥

वह सर्वव्यापक परमात्मा दुःख-सागर से पार उतरे हुए जीवात्मा को विशेष उन्नत अवस्था में तथा पवित्र करता हुआ, ज्ञानोत्पादक इन्द्रिय-वृत्तियों के साथ वर्तमान मुख्य प्राण को प्रकाशित करता है।

१२६६. स वृत्रहा वृषा सुतो वरिवोविददाभ्यः । सोमो वाजमिवासरत् ॥

वृत्रों का नाशक, सुखवर्षक, हृदय में प्रकाशित, श्रेष्ठतम आनन्द का लाभ कराने वाला, अद्वितीय तथा प्रेरक परमात्मा, बलवान् योद्धा तथा युद्ध के घोड़े के समान वेग से सर्वत्र गति कर रहा है।

१२६७. स देवः कविनेषितो३ऽभि द्रोणानि धावति । इन्दुरिन्द्राय मंहयन् ॥

बुद्धिमान् उपासक द्वारा चाहा हुआ वह देव-परमेश्वर जीवात्मा के लिये आनन्दित करता हुआ सब लोकों में परिपूर्ण होकर वर्तमान है।

सातवाँ खण्ड

१२९८. यः पावमानीरध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम् । सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना ॥

आठवाँ सूक्त—जो मनुष्य मन्त्र-द्रष्टाओं द्वारा संगृहीत, ज्ञानरस से पूर्ण पावमानी (पवित्र करने-वाले सर्वव्यापक परमात्मा का और पवित्र-होने वाले उपासक जीवात्मा का वर्णन करने वाली) ऋचाओं का अध्ययन करता है, वह परमात्मा द्वारा स्वादु बनाये गये और मन द्वारा आस्वादित पवित्र ज्ञान का उपयोग करता है।

१२९९. पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम् ।
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ॥

जो ऋषियों से संगृहीत रसरूपी पावमानी ऋचाओं का अध्ययन करता है, उसके लिये वेदवाणी शुद्ध आत्मज्ञान, स्नेहपूर्ण आत्मदर्शन, मधुर ब्रह्मानन्द तथा शीतल शान्तिरस को देती है। वेदानुकूल चलनेवाले के लिये दूध, घी, मधु तथा शुद्ध जल भी प्रचुरता से प्राप्त होता है।

१३००. पावमानीः स्वस्त्ययनीः सुदुघा हि घृतश्चुतः ।
ऋषिभिः संभृतो रसो ब्राह्मणेष्वमृतं हितम् ।

पावमानी ऋचायें कल्याण करनेवाली, सरलता से आनन्द-रस को दुहनेवाली तथा ज्ञान और भक्ति को उत्पन्न करनेवाली हैं। वे ऋषियों द्वारा संगृहीत रस हैं और ईश्वर तथा वेद के जाननेवालों में स्थापित किया हुआ अमृत (अविनाशी ज्ञान) है।

१३०१. पावमानीर्दधन्तु न इमं लोकमथो अमुम् ।
कामान्त्समर्धयन्तु नो देवीर्देवैः समाहृताः ॥

पावमानी ऋचायें हमारे लिये इस लोक और परलोक को धारण करें। विद्वानों द्वारा अच्छे प्रकार से सर्वत्र प्रचारित वे दिव्यज्ञानयुक्त ऋचायें हमारी कामनाओं को पूरा करें।

१३०२. येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा । तेन सहस्रधारेण पावमानीः पुनन्तु नः ॥

विद्वान्-मनुष्य जिस पवित्र ज्ञान से अपने को सदा पवित्र करते हैं, उसी सहस्रों आनन्द-धाराओं से पूर्ण ज्ञान से पावमानी ऋचायें हमें पवित्र करें।

१३०३. पावमानीः स्वस्त्ययनीस्ताभिर्गच्छति नान्दनम् ।
पुण्यांश्च भक्षान् भक्षयत्यमृतत्वं च गच्छति ॥

पावमानी ऋचायें कल्याण को प्राप्त कराने वाली हैं। मनुष्य उनसे आनन्द को प्राप्त होता है और पूर्ण भोगों को भोगता है तथा अमृतत्व (मोक्ष) को प्राप्त हो जाता है।

आठवाँ खण्ड

१३०४. अगन्म महा नमसा यविष्ठं यो दीदाय समिद्धः स्वे दुरोणे।
चित्रभानुं रोदसी अन्तरुर्वी स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चम्॥

नवाँ सूक्त – सबसे अधिक बलवान्, सर्वव्यापक उस परमात्मा को हम महान् विनय और नमस्कार के साथ प्राप्त होवें, जो इस ब्रह्माण्ड में दीप्तियुक्त होकर प्रकाशित हो रहा है, विचित्र प्रकाशवाला है, सब जगह व्यापक है और महान् द्यु तथा पृथिवी के अन्दर सर्वत्र स्वयं सबका आदान करनेवाला है।

१३०५. स मह्ना विश्वा दुरितानि साह्वानग्निष्टवे दम आ जातवेदाः।
स नो रक्षिषद् दुरितादवद्यादस्मान् गृणत उत नो मघोनः॥

अपने महत्त्व से सब दुर्गुणों को दूर करने वाला और सब पदार्थों को जानने वाला ज्ञानसम्पन्न वह परमात्मा इस ब्रह्माण्ड में तथा उपासक के हृदय में अच्छे प्रकार से स्तुति किया जाता है। वह परमात्मा गुणवर्णन करनेवाले और ज्ञान सम्पादन करनेवाले हमको निन्दनीय पापाचरण से बचावें।

१३०६. त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः।
त्वे वसु सुषणनानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥

हे परमात्मन्! आप पापनिवारक तथा वरणीय हैं और मित्र हैं, मन को वश में करने वाले विद्वान् उपासकजन आपकी महिमा को मननशक्तियों द्वारा बढ़ाते हैं। आप में वर्तमान समस्त वेद-ज्ञानरूपी धन अच्छे प्रकार से दान करने योग्य हो जावें। हे विद्वानो! तुम कल्याणकारी कार्यों से सदा हमारी रक्षा करो।

१३०७. महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव। स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे॥

१०वाँ सूक्त— स्वयं वर्षा करनेवाले बादल के समान जो परमेश्वर स्वयं अपने ओज से महान् है, उसकी महिमा प्रिय वेदपाठी उपासक की स्तुतियों से और अधिक प्रकट हो जाती है।

१३०८. कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम्। जामि ब्रुवत आयुधा॥

बुद्धिमान् उपासकजन जब परमात्मा को ही उपसना-यज्ञ का साधन बना लेते हैं, तब वे अन्य प्राकृतिक साधनों (शरीर, इन्द्रिय आदि) को व्यर्थ बताते हैं।

१३०९. प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद्भरन्त वह्नयः। विप्रा ऋतस्य वाहसा॥

अपने को पूर्ण करते हुए ज्ञानी उपासक जब सत्यज्ञान की शक्ति को अच्छे प्रकार से धारण करते हैं, तब उस सत्यज्ञान के बल से ही मेधावी हो जाते हैं।

नौवाँ खण्ड

१३१०. पवमानस्य जिघ्नतो हरेश्चन्द्रा असृक्षत । जीरा अजिरशोचिषः ॥

११वाँ सूक्त— पवित्र करनेवाले, अज्ञाननाशक और दुःखहरण करनेवाले, परमात्मा की प्रसन्न करनेवाली, दुःखनाशिनी और अविनश्वरं कान्तियाँ तथा आनन्द की धारायें फैल रही हैं।

१३११. पवमानो रथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः । हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः ॥

सर्वत्र व्यापक परमात्मा सबसे उत्तम रूप में ब्रह्माण्ड-रूपी रथ को चलानेवाला, उज्ज्वल तेजों के कारण सबसे अधिक प्रकाशमान, दुःख को हरनेवाला, तथा प्रसन्नता को देनेवाला है। प्राकृतिक शक्तियाँ उसकी सहायक तथा अधीन हैं।

१३१२. पवमान व्यश्नुहि रश्मिभिर्वाजसातमः । दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥

हे पवित्र करनेवाले प्रभो ! स्तोता के लिये सुन्दर बल को धारण कराते हुए अत्यन्त बलदायक आप ज्ञान की किरणों से सर्वत्र व्यापक हो रहे हैं।

१३१३. परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः ।
दधन्वां यो नर्यो अप्स्वा३ऽन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥

१२वाँ सूक्त— हे उपासक ! तू उस प्राप्त हुए भक्तिमय तथा प्रेरक ज्ञान को सर्वत्र फैला जो कि उत्तम तथा ग्रहण करने योग्य है, जो मनुष्यों का हितकारी होकर प्रजाओं तथा उनके कर्मों में विद्यमान रहकर उनको धारण करता है और जो अखण्ड साधनों से आत्मा के अन्दर उत्पन्न किया जाता है।

१३१४. नूनं पुनानोऽविभिः परि स्रवादब्धः सुरभितरः ।
सुते चित्वाप्सु मदामो अन्धसा श्रीणन्तो गोभिरुत्तरम् ॥

हे मेरे आत्मिक ज्ञान ! अहिंसित और यशस्वी तू निश्चय ही चितशक्तियों से पवित्र होता हुआ सब ओर कार्यशील हो। तेरे उत्पन्न होने पर अन्न और गौ के दूध आदि से तुझे पुष्ट करते हुए हम सब कर्मों में आनन्दलाभ करते हैं।

१३१५. परि स्वानश्चक्षसे देवमादनः क्रतुरिन्दुर्विचक्षणः ॥

स्वयं निष्पन्न, इन्द्रियों तथा विद्वानों को आनन्दित करने वाला, कर्म में प्रेरक, ऐश्वर्यशाली, विशेष दर्शन करानेवाला आत्मिक ज्ञान सब प्रकार से देखने के लिये साधन है।

१३१६. असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत् ।
पुनानो वारमत्येष्यव्ययं श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदत् ॥

१३वाँ सूक्त— कान्तिमान्, श्रेष्ठ स्वयं दुःखनाशक, सौम्य उपासक राजा के समान दर्शनीय रूप में प्रकट होता है। वह वेदवाणियों का उपदेश करता है और पवित्र होता हुआ प्राकृतिक आवरण को पार करके प्रकाशयुक्त आश्रय परमेश्वर को उसी प्रकार प्राप्त कर लेता है जैसे गरुड़ अपने आश्रय को पा जाता है।

१३१७. पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो नाभा पृथिव्या गिरिषु क्षयं दधे।
स्वसार आपो अभि गा उदासरन्त्सं ग्रावभिर्वसते वीते अध्वरे ॥

ज्ञान-सम्पन्न महान् उपासक का पालनकर्त्ता-आनन्दरसवर्षक परमात्मा ही है। वह उपासक पृथिवी पर विद्वानों में निवास करता है। उसके स्वयं प्रकट होनेवाले कर्म वेदवाणियों को लक्ष्य करके उन्नत होते जाते हैं और वह शोभापूर्ण, अहिंसामय उपासना-यज्ञ में विद्वान् उपासकों के साथ ही निवास करता है।

१३१८. कविर्वेधस्या पर्येषि माहिनमत्यो न मृष्टो अभि वाजमर्षसि।
अपसेधन् दुरिता सोम नो मृड घृता वसानः परि यासि निर्णिजम् ॥

हे जीवन्मुक्त ! कवि (मेधावी) तू विशिष्ट शक्ति के द्वारा पूज्य परमात्मा की ओर जाता है। जैसे सजा हुआ सुन्दर घोड़ा युद्ध की ओर जाये, वैसे ही अत्यन्त शुद्ध तू ज्ञान को लक्ष्य करके मोक्ष की ओर जा रहा है, तू अपने उपदेश से हमारे दुर्गुणों को दूर कर, हमें सुखी कर। परमात्मा के तेज के अन्दर वसता हुआ तू शुद्ध स्वरूप को प्राप्त करता है।

दसवाँ खण्ड

१३१९. आयन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत।
वसूनि जातो जनिमान्योजसा प्रति भागं न दीधिमः ॥

१४वाँ सूक्त— सूर्य के समान प्रकाशमान तथा प्रेरक परमेश्वर का आश्रय लिये हुए ही सभी प्राणी भोगों को भोगते हैं और उसी के बल से अपने-अपने भाग के अनुसार धनों को ग्रहण करते हैं, जैसे पुत्र अपने पिता से दायभाग में प्राप्तधन को ग्रहण करता है।

१३२०. अलर्षिरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः।
यो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् ॥

हे मनुष्य ! तू दोषरहित दानवाले, धनदाता उस परमेश्वर की उपासना और स्तुति कर, जिनके दान कल्याण करने वाले हैं और जो मन को दान के लिये प्रेरित करता हुआ इस अपने सेवक स्तोता की कामना को नष्ट नहीं करता।

१३२१. यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि।
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि ॥

१५वाँ सूक्त— हे परमेश्वर ! हम जिससे भयभीत हैं, उससे हमें अभय कीजिये । हे सब धनों से युक्त प्रभो ! आप समर्थ हैं । अतः हमारी रक्षा के लिये द्वेष करनेवाले दुष्टों को नष्ट कीजिये ।

१३२२. त्वं हि राधसस्पते राधसो महः क्षयस्यासि विधर्ता ।
तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे ॥

हे धनों के स्वामिन् ! आप ही तो महान् धन के और निवासस्थान (ब्रह्माण्ड) के विशेषरूप से धारण करनेवाले हैं । हे धनसम्पन्न तथा वाणी द्वारा प्रशंसनीय परमेश्वर ! भक्तिसम्पन्न हम आपको पुकारते हैं ।

ग्यारहवाँ खण्ड

१३२३. त्वं सोमासि धारयुर्मन्द्र ओजिष्ठो अध्वरे । पवस्व मंहयद्रयिः ॥

१६वाँ सूक्त— हे प्रेरक परमात्मन् ! आप आनन्द-धारायुक्त, आह्लादित करनेवाले तथा ओज-पूर्ण हैं । आप अहिंसामय उपासना-यज्ञ में ऐश्वर्य देतेहुए हमें पवित्र कीजिये ।

१३२४. त्वं सुतो मदिन्तमो दधन्वान्मत्सरिन्तमः । इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥

हृदय में ध्यान किया गया, आनन्ददाता, हर्ष का प्रसारक, सबसे अधिक उत्कृष्ट और अन्यों से अहिंसित परमेश्वर सबको धारण कर रहा है ।

१३२५. त्वं सुष्वाणो अद्रिभिरभ्यर्ष कनिक्रदत् । द्युमन्तं शुष्ममा भर ॥

हे परमेश्वर ! अखण्ड उपासनाओं द्वारा हृदय में ध्यान कियेगये, वेदशब्दों का उपदेश करते हुए आप हमें दीप्तियुक्त बल को प्राप्त कराइये ।

१३२६. पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा । आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥

१७वाँ सूक्त— हे परमेश्वर ! आप दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिये हमें आनन्द-धाराओं और ओज से पवित्र कीजिये और हमारे मधुर भक्ति-पूर्ण हृदय में प्रकट होइये ।

१३२७. तव द्रप्सा उदप्रुत इन्द्रं मदाय वावृधुः । त्वां देवासो अमृताय कं पपुः ॥

हे प्रभो ! रस से प्रवाहित करनेवाली, शीघ्रगतिशील आप की आनन्द-तरङ्गें जीवात्मा को आनन्दप्राप्ति के आगे बढ़ाती हैं । विद्वान्-उपासक अमृत (मुक्त) होने के लिये सुखस्वरूप आप का सेवन करते हैं ।

१३२८. आ नः सुतास इन्दवः पुनाना धावता रयिम् । वृष्टिद्यावो रीत्यापः स्वर्विदः ॥

भक्ति-सम्पन्न, ऐश्वर्यशाली, स्वयं पवित्र, शुभकर्मों के उपदेष्टा, ज्ञानरूपी प्रकाश की वर्षा करने-वाले और सुख को प्राप्त करनेवाले उपासक विद्वान् हमें विद्या आदि ऐश्वर्य को प्राप्त करावें ।

१३२९. परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।
यो देवान्विश्वां इत्परि मदेन सह गच्छति ।।

१८वाँ सूक्त उपासकजन उस मनोहर, कान्तिमान् तथा भरण करनेवाले आत्मा को वरणीय ज्ञान द्वारा पवित्र करते हैं, जो आत्मा सब इन्द्रियों को आनन्द से पूर्ण कर देता है।

१३३०. द्विर्यं पंच स्वयशसं सखायो अद्रिसंहतम् । प्रियमिन्द्रस्य काम्यं प्रस्नापयन्त ऊर्मयः ।।

जिस स्वयं यशस्वी, अभेद्य बल-युक्त, कमनीय तथा परमेश्वर के प्यारे जीवात्मा को दस प्राण परस्पर सखा बनकर और ऊर्ध्वगति होकर भक्ति-जल से स्नान कराते हैं (उसको उपासक पवित्र करते हैं)।

१३३१. इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे । नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे ।।

हे प्रेरक ज्ञान ! तू विघ्ननाशक, क्रियाशक्ति-सम्पन्न, शरीररूपी घर में स्थित, वीर और नेता जीवात्मा के लिये प्रवाहित किया जाता है।

१३३२. पवस्व सोम महे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ।।

१९वाँ सूक्त— हे सौम्य जीवात्मन् ! शुद्धस्वरूप, विद्युत् के समान बलिष्ठ तू बड़े बल तथा ज्ञान की प्राप्ति के लिये अपने को पवित्र कर।

१३३३. प्र ते सोतारो रसं मदाय पुनन्ति सोमं महे द्युम्नाय ।।

वे साधक उपासकजन भक्तिरस से पूर्ण अपने सौम्य आत्मा को, बड़े ज्ञान तथा आनन्द को पाने के लिये, पवित्र करते हैं।

१३३४. शिशुं जज्ञानं हरिं मृजन्ति पवित्रे सोमं देवेभ्य इन्दुम् ।।

उपासकजन शरीर में स्थित, बच्चे के समान अबोध, शरीरधारी, ऐश्वर्यशाली और सौम्य जीवात्मा को दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिये पवित्र परमात्मा में लगाकर पवित्र करते हैं।

१३३५. उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भंगं परिष्कृतम् । इन्दुं देवा अयासिषुः ।।

२०वाँ सूक्त विद्वान्-जन सुप्रसिद्ध, प्रजाओं में व्यापक, गतिमान्, दुःखों को भङ्ग करनेवाले तथा हर्षित करनेवाले परमेश्वर के पास वेदवाणियों द्वारा पहुँचते हैं।

१३३६. तमिद्वर्धन्तु नो गिरो वत्सं संशिश्वरीरिव । य इन्द्रस्य हृदं सनिः ।।

जैसे मातायें बच्चे को प्रेम से पुष्ट करती हैं, वैसे ही हमारी वाणियाँ उसी परमेश्वर की ही महिमा को बढ़ावें जो जीवात्मा के हृदय में वर्तमान रहता है।

१३३७. अर्षा नः सोम शं गवे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् वर्धा समुद्रमुक्थ्य ।।

हे प्रशंसनीय तथा प्रेरक परमात्मन् ! आप हमारी इन्द्रियों के लिये सुख को प्रेरित कीजिये, निरन्तर बढ़ने वाले ज्ञान को प्राप्त कराइये और आनन्द के समुद्र को बढ़ाइये।

बारहवाँ खण्ड

१३३८. आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् । येषामिन्द्रो युवा सखा ।।

२१वाँ सूक्त-- जो मनुष्य अच्छे प्रकार से परमात्मा की उपासना करते हैं और अमर परमेश्वर जिनका सखा है, वे अनेक जन्मों तक बार-बार वर्तमान रहनेवाले शरीरों के बन्धन को काट देते हैं।

१३३९. बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्त्रं पृथुः स्वरुः । येषामिन्द्रो युवा सखा ।।

परमेश्वर जिन उपासकों का श्रेष्ठ मित्र बनगया है, उनका तेज बड़ा है, महिमा बड़ी है और शक्ति तथा स्वर का बल भी बड़ा है।

१३४०. अयुद्ध इद्युधा वृतं शूर आजति सत्वभिः । येषामिन्द्रो युवा सखा ।।

वलवान् परमेश्वर जिनका मित्र हो जाता है, उन उपासकों में से प्रत्येक शूर-उपासक बिना युद्ध किये हुए ही योद्धाओं से युक्त आत्मिक शत्रु को अपने सतोगुणयुक्त बल से झुका देता है।

१३४१. य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे । ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ।

२२वाँ सूक्त— हे मनुष्यो ! जो परमेश्वर एक अकेला ही दानी तथा आत्मसमर्पण करने वाले उपासक के लिये ज्ञान आदि धन प्रदान करता है, वह स्वयं अपराजित होकर सबका ईश है।

१३४२. यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति । उग्रं तत् पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ।।

हे प्रभो ! बहुत से मनुष्यों में से जो कोई भक्तिरस का निष्पादक होकर आपकी उपासना करता है, परमैश्वर्ययुक्त आप उसे उग्र बल प्रदान करते हैं।

१३४३. कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् । कदा नः शुश्रवद् गिर इन्द्रो अङ्ग ।।

हे प्रभो ! परम ऐश्वर्य सम्पन्न आप उपासना यज्ञ-विरोधी मनुष्य को, जैसे क्षुम्प (खुम=गली लकड़ी से निकले छत्र) को पैर से कुचल देते हैं ऐसे ही, कब नष्ट करेंगे ? और हमारी वाणियों को कब सुनेंगे ?

१३४४. गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः । ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ।।

२३वाँ सूक्त— हे सैकड़ों कर्मोंवाले प्रभो ! गायत्री छन्दवाले आपका गान करते हैं, स्तोता आपकी अर्चा करते हैं और वेदवेत्ता-जन आपको, अपने वंश के पूर्वपुरुष के समान, उच्च मानते हैं।

१३४५. यत्सानोः सान्वारुहो भूर्यस्पष्ट कर्त्वम् । तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति ।।

जो उपासक ऊँची से ऊँची चित्तभूमि में चढ़ जाता है और बड़े उपासना-कार्य का अनुष्ठान

करता है, उसके उस अभिप्राय को सुखवर्षक परमेश्वर जानता है और प्राकृतिक शक्तियों के द्वारा पूरा कराता है।

१३४६. युङ्क्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा।
अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर॥

सौम्य भक्ति को स्वीकार करने वाले प्रभो ! आप ज्ञान साधन-सम्पन्न, सुखवर्षक और कक्षों को पूर्ण करने वाले हमारे प्राण-अपान को योगाभ्यास में लगाइये और हमारी प्रार्थनारूप वाणियों को सुनिये।

–०–

छठा प्रपाठक

(१३४७ मन्त्र से १४३४ मन्त्र तक)

ग्यारहवाँ अध्याय पहला अर्धप्रपाठक

(१३४७ मन्त्र से १३७८ मन्त्र तक)

सूक्तों के अनुसार ऋषि, देवता, छन्द और स्वर

ऋषिः—१ मेधातिथिः काण्वः; २, १० वसिष्ठः; ३ प्रगाथः काण्वः; ४ पराशरः; ५ प्रगाथो घोरः काण्वः; ६ मेध्यातिथिः काण्वः; ७ त्र्यरुणत्रसदस्यू; ८ अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः; ९ हिरण्यस्तूपः; ११ सार्पराज्ञी॥

देवता—१ (१) इध्मः समिद्धो वाग्निः, १ (२) तनूनपात्, १ (३) नराशंसः, १ (४) इडः; २ आदित्यः; ३, ५, ६ इन्द्रः; ४, ७—९ पवमानः सोमः; १० अग्निः; ११ सूर्यः॥

छन्दः—१—३, ११ गायत्री; ४ त्रिष्टुप्; ५, ६, बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती + २ सतोबृहती) ७ पिपीलिकामध्या अनुष्टुप्; ८ द्विपदा विराट् पङ्क्तिः; ९ जगती; १० विराडनुष्टुप्॥

स्वर—१—३, ११ षड्जः; ४ धैवतः; ५ (१), ६ (१) मध्यमः; ५ (२), ६(२), ८ पञ्चमः; ७, १० गान्धारः, ९ निषादः॥

पहला खण्ड

१३४७. सुषमिद्धो न आ वह देवाँ अग्ने हविष्मते। होतः पावक यक्षि च॥

पहला सूक्त—हे ज्ञान-सम्पन्न, सब पदार्थों के दाता तथा पवित्र करनेवाले परमात्मन् ! आप हम में से ज्ञानी तथा भक्त मनुष्य के लिये, अच्छे प्रकार हृदय में प्रकाशित होकर, दिव्य गुणों को प्राप्त कराइये। आप सब गुणों का दान करनेवाले हैं।

१३४८. मधुमन्तं तनूनपाद्यज्ञं देवेषु नः कवे । अद्या कृणुह्यूतये ॥

हे कवि, तथा शरीर के छोटे से छोटे भागों की रक्षा करनेवाले प्रभो ! आप हमारी रक्षा के लिये इस मधुर उपासनारूपी यज्ञ को विद्वान् जनों में सम्पादित कराइये ।

१३४९. नराशंसमिह प्रियमस्मिन्यज्ञ उप ह्वये । मधुजिह्वं हविष्कृतम् ॥

मैं इस उपासना यज्ञ में मनुष्यों द्वारा स्तुत, प्रिय, मधुर वेदवाणी वाले परमात्मा के अत्यन्त समीप होकर स्तुति करता हूँ ।

१३५०. अग्ने सुखतमे रथे देवां ईडित आ वह । असि होता मनुर्हितः ॥

हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! स्तुति किये गये आप इस सुखदायक तथा रमणीय शरीर में दिव्य गुणों को प्राप्त कराइये । आप कर्मफलदाता और उपासक मनुष्य द्वारा हृदय में धारण किये जाते हैं ।

१३५१. यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा । सुवाति सविता भगः ॥

दूसरा सूक्त— जो सदा सेवनयोग्य पदार्थ हैं, उनको निष्पाप, मित्र, न्यायकारी और संसार का उत्पादक परमात्मा ज्ञान का सूर्य उदय होने पर उत्पन्न कर देता है ।

१३५२. सुप्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन्त्सुदानवः । ये नो अंहोऽतिपिप्रति ॥

जो हमको पाप से पार करते हैं, वे विद्वान् प्रतिदिन उत्तम उपदेश देनेवाले हों और निवास के साथ साथ हमारी रक्षा का भी उत्तम प्रबन्ध हो ।

१३५३. उत स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये । महो राजान ईशते ॥

और जो अखण्डित भक्ति वाले उपासक अच्छे प्रकार किये गये व्रत के कारण स्वयं प्रकाशमान हो जाते हैं, वे ही दीप्तिमान् होकर शरीर के स्वामी होते हैं ।

१३५४. उ त्वा मंदन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः । अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥

तीसरा सूक्त - हे अखण्डनीय तथा प्रलयकर्ता प्रभो ! सौम्य उपासक आपको प्रसन्न करें, आप विद्या आदि धन को प्रदान कीजिये और वेद-विरोधियों को नष्ट कीजिये ।

१३५५. पदा पणीनराधसो नि बाधस्व महाँ असि । न हि त्वा कश्चन प्रति ॥

हे प्रभो ! आप आराधना न करनेवाले लोभियों को ज्ञान देकर उनके लोभ को नष्ट कीजिये । आप महान् हैं और कोई भी आपके बराबर नहीं है ।

१३५६. त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् । त्वं राजा जनानाम् ॥

हे परमेश्वर! आप शिक्षित, अशिक्षित भक्त, अभक्त सभी के ईश हैं । आप सब मनुष्यों के राजा हैं ।

दूसरा खण्ड

१३५७. आ जागृविर्विप्र ऋतं मतीनां सोमः पुनानो असदच्चमूषु ।
सपन्ति यं मिथुनासो निकामा अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ॥

चौथा सूक्त— सदा सावधान, मेधावी, बुद्धियों तथा वेदवाणियों के सत्यज्ञान का प्रेरक और पवित्र वह उपासक प्रजाओं में सुशोभित होता है, जिसका कामनायुक्त गृहस्थ स्त्री-पुरुष, यज्ञ करने वाले विद्वान्, रथी योद्धा और उत्तम हाथ की शिल्पक्रिया जानने वाले-सभी सत्कार करते हैं।

१३५८. स पुनान उप सूरे दधान ओभे अप्रा रोदसी वी ष आवः ।
प्रिया चिद्यस्य प्रियसास ऊती सतो धनं कारिणे न प्र यंसत् ॥

वह पवित्र जीवन्मुक्त, परमेश्वर में ध्यान लगाता हुआ, द्यु-पृथिवी—दोनों लोकों को स्वतन्त्रता से प्राप्त कर सकता है, और वह सर्वत्र जा सकता है। जिस सच्चे उपासक की प्रिय और कल्याण करने वाली कामनायें संसार की रक्षा के लिये होती हैं वह, सेवक के समान वर्तमान हमें, आत्मिक ज्ञान-रूपी धन प्रदान करे।

१३५९. स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढ्वाँ अभि नो ज्योतिषावीत् ।
यत्र नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः स्वर्विदो अभि गा अद्रिमिष्णन् ॥

सब की वृद्धि करनेवाला, स्वयं भी बढ़नेवाला, पवित्र और सुखवर्षक वह सौम्य जीवन्मुक्त अपनी ज्ञान की ज्योति से हमें उस मोक्ष तक पहुँचावे जहाँ वेद और सुख को प्राप्त करनेवाले हमारे पूर्व पुरुष वेदवाणियों को साक्षात् करके उस अखण्ड ब्रह्म को प्राप्त हुए हैं।

१३६०. मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥

पाँचवां सूक्त— हे मित्रो ! अन्य किसी की स्तुति न करो। अपने शुद्ध मन में तथा साथ मिलकर, सुखवर्षक परमेश्वर की ही स्तुति करते हुए बार-बार वेदमन्त्रों का गान करो और उपदेश करो।

१३६१. अवक्रक्षिणं वृषभं यथा जुवं गां न चर्षणीसहम् ।
विद्वेषणं संवननमुभयङ्करं मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥

हे मनुष्यो ! तुम सब लोकों को आकर्षण में रखनेवाले, वृषभ के समान वेगवान्, गौ के समान मनुष्यों की चेष्टाओं के सहनशील, द्वेषरहित, शरणयोग्य, पालन और संहार—दोनों के करनेवाले, सबसे महान् दाता, और सज्जन तथा दुर्जन दोनों के जीवन की रक्षा करने वाले परमात्मा की उपासना करो।

१३६२. उदु त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते ।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥

छठा सूक्त— वे अत्यन्त मधुर वेदवाणियाँ तथा स्तोत्र परमेश्वर के लिये वैसे ही उच्च भाव से प्रकट किये जा रहे हैं जैसे सदा विजयी, धन प्राप्त करने वाले, अक्षय बलशाली और वेगवान् रथ उच्च ध्वनि करते हुए लक्ष्य की ओर जाते हैं ।

१३६३. कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमाशत ।
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥

मेधावियों के समान और सूर्य-किरणों के समान, दुष्कर्मों को भून डालने वाले उपासकजन व्यापक तथा ध्यान कियेगये परमेश्वर को ही प्राप्त होते हैं । प्रिय बुद्धिवाले वे मनुष्य, स्तुतियों से परमेश्वर की अर्चना करतेहुए, वेद का सस्वर गान करते हैं ।

१३६४. पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः । द्विषस्तरध्या ऋणया न ईरसे ॥

सातवाँ सूक्त— हे प्रभो ! हमारे ज्ञान आदि धन को सब ओर से अच्छे प्रकार से बढ़ाइये । अज्ञाननाशक आप हमारे अज्ञान को दूर कीजिये । सब प्रकार के ऋणों से बचाने वाले आप दुष्टों को नष्ट करने के लिये सब ओर व्याप्त हैं और हमें प्रेरित किया करते हैं ।

१३६५. अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः । गोजीरया रंहमाणः पुरन्ध्या ॥

हे प्रेरक प्रभो ! गति के वेग से युक्त ब्रह्माण्ड धारक शक्ति से सब को गति देनेवाले आप अपनी शक्ति से निरालम्ब आकाश में द्रव वाष्प-रूप अग्निपिण्ड सूर्य को तथा सूक्ष्म जल को धारण करते हैं ।

१३६६. अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये । वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे ॥

हे पवित्र प्रभो ! श्रेष्ठपुरुषों के महान् राज्य में, हृदय में साक्षात् किये गये आपकी आज्ञा का पालन कर हम आनन्द प्राप्त करें । आप समस्त ज्ञानकार्यों में गति कर रहे हैं ।

१३६७. परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ॥

आठवाँ सूक्त— हे सोम परमात्मन् ! आनन्दरूप आप अपने मित्र ज्ञान-पोषक और ऐश्वर्यशाली उपासक के लिये ज्ञान दीजिये ।

१३६८. एवामृताय महे क्षयाय स शुक्रो अर्ष दिव्यः पीयूषः ॥

हे प्रभो ! दिव्य आनन्दस्वरूप आप अमृत मोक्षरूपी महान् शरण देने के लिये कृपा कीजिये ।

१३६९. इन्द्रस्ते सोम सुतस्य पेयात् क्रत्वे दक्षाय विश्वे च देवाः ॥

हे सब के प्रेरक परमात्मन् ! यह आत्मा और इन्द्रियाँ तथा समस्त विद्वान् ज्ञान और बल की प्राप्ति के लिये हृदय में प्रकट हुए आपके आनन्द-रस का पान करें ।

तीसरा खण्ड

१३७०. सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो मत्सरासः प्रसुतः साकमीरते ।
तन्तुं ततं परि सर्गास आशवो नेन्द्रादृते पवते धाम किं चन ।।

नवाँ सूक्त— सूर्य की किरणों के समान शीघ्र जानेवाले, निरपेक्ष गति करते हुए तथा प्रेरित हुए और इधर-उधर फैले हुए समस्तलोक, विशाल तन्तु (परमात्मा) को लक्ष्य करके ही, एक ही साथ परिक्रमा कर रहे हैं। परमेश्वर के अतिरिक्त कहीं से भी कुछ भी शक्ति और तेज नहीं प्रकट होता।

१३७१. उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि ।
पवमानः सन्तनिः सुन्वतामिव मधुमान् द्रप्सः परि वारमर्षति ।।

जब मननशक्ति परमात्मा में लगती है, तब आनन्दरस अन्तःकरण में प्रवाहित होता है। आनन्द देनेवाली रसधारा योगाभ्यास द्वारा मुख के भीतर (तालुमूल में) भी प्रेरित होती है। सर्वत्र समानरूप से विस्तृत तथाप्रकट होनेवाला ओजःस्वरूप और आनन्दयुक्त परमात्मा वरणीय प्रदेश में प्रकट होता है।

१३७२. उक्षा मिमेति प्रति यन्ति धेनवो देवस्य देवीरुप यन्ति निष्कृतम् ।
अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्ययमत्कं न निक्तं परि सोमो अव्यत ।।

भक्ति में समर्थ जीवात्मा भक्ति के शब्दों को प्रकट करता है, इन्द्रियाँ उसके पीछे चलती हैं। उसकी दिव्य शक्तियाँ देव परमात्मा के गुप्तस्थान तक भी पहुँची हुई हैं। सौम्य जीवात्मा देह के ह्रास तथा वृद्धि करने में समर्थ प्राणमय आवरणकारी कोष को अतिक्रमण करता है और शुद्ध कवच के समान रक्षक तथा वज्र के तुल्य प्रकाशमान, और शरणयोग्य परमात्मा को प्राप्त होता है।

१३७३. अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत प्रशस्तम् । दूरेदृशं गृहपतिमथव्युम् ।।

दसवाँ सूक्त— मनुष्य दीप्तियुक्त योगक्रियाओं से अरणियों (आत्मा और ओ३म्) के द्वारा समाधिरूप हाथों से प्रत्यक्ष किये हुए, दूर से दूर विद्यमान, ब्रह्माण्ड के स्वामी और गतियुक्त परमात्मा को हृदय में प्रकट करते हैं।

१३७४. तमग्निमस्ते वसवो न्यृण्वन्त्सुप्रतिचक्षमवसे कुतश्चित् ।
दक्षाय्यो यो दम आस नित्यः ।।

विद्वज्जन संसार का अच्छे प्रकार दर्शन करानेवाले उस प्रकाशस्वरूप परमात्मा को, सब ओर से अपनी रक्षा के लिये, अपने हृदय रूपी घट में योग-समाधि द्वारा खोजते हैं। व्रत प्राप्त कराने में चतुर नित्य परमात्मा ब्रह्माण्ड रूप घर में सर्वत्र व्यापक है।

१३७५. प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ ।
त्वां शश्वन्त उप यन्ति वाजाः ।।

हे बलशाली तथा प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! योग साधनों से प्रकाशित हुए आप निरन्तर प्रकाशमान ज्ञानमय ज्योति से हमारे हृदय में प्रकाश कीजिये। निरन्तर यत्नशील बहुत से ज्ञानीपुरुष आपके समीप तक पहुँच जाते हैं।

१३७६. आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः पितरं च प्रयन्त्स्वः॥

११ वाँ सूक्त— यह सर्वत्र गतिशील, सर्वान्तर्यामी परमात्मा हमारी पृथिवी-माता, सूर्य-पिता, और मध्य में स्थित अन्तरिक्ष—इन सब स्थानों को प्राप्त हुआ भक्त के हृदय में प्रकट होता है।

१३७७. अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती। व्यख्यन्महिषो दिवम्॥

इस परमात्मा की सब से रूचिकर शक्ति जीवात्मा के लिये प्राणवायु को अन्दर ग्रहण कराती और बाहर करती हुई विचरती है। महान् परमात्मा सूर्य को भी प्रकाशित करता है।

१३७८. त्रिंशद्धाम वि राजति वाक्पतङ्गाय धीयते। प्रति वस्तोरह द्युभिः॥

वह परमात्मा दिन के तीसों स्थानों, तीसों घड़ियों तक अपनी दीप्तियों से उपासक के हृदय में बराबर विराजता है। यह वेदवाणी और स्तुति उसी सर्वव्यापक ईश्वर के लिये पाठ की जाती और मनन की जाती है।

—:०:—

बारहवाँ अध्याय दूसरा अर्धप्रपाठक

(१३७९ मन्त्र से १४३४ मन्त्र तक)

सूक्तों के अनुसार ऋषि, देवता, छन्द और स्वर

ऋषिः—१ (१, २, ४) गोतमो राहूगणः' १ (३), ८ ११ वसिष्ठः; २, ७ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ३ प्रजापतिः; ४, १३ सोभरिः काण्वः; ५ मेधातिथिमेध्यातिथि काण्वौ; ६ (१) ऋजिश्वा; ६ (२) ऊर्ध्वसद्मा; ९ तिरश्चीः; १० सुतम्भर आत्रेयः; १२, १९ नृमेधपुरुमेधौ; १४ शुनःशेप आजीगर्तिः; १५ नोधाः, १६ मेध्यातिथिः काण्वः; १७ रेणुर्वैश्वामित्रः; १८ कुत्सः; २० अगस्त्यः॥

देवता—१, २, ७, १०, १३, १४ अग्निः; ३, ६, ८, ११, १५, १७, १८ पवमानः सोमः; ४, ५, ९, १२, १६, १९, २० इन्द्रः॥

छन्दः—१, २, ७, १०, १४ गायत्री; ३, ९, १९ (१, २), २० (२, ३) अनुष्टुप्; ४, ६, १३ काकुभः प्रगाथः (१ ककुबुष्णिक्+२ सतोबृहती); ५, १९ (३) बृहती; ८, ११, १५, १८ त्रिष्टुप्; १२, १६, बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती+२ सतोबृहती); १७ जगती; २० (१) स्कन्धोग्रीवी बृहती॥

स्वरः—१, २, ७, १०, १४ षड्जः; ३, ९, १९ (१, २), २० (२, ३) गान्धारः; ४ (१), ६ (१) १३ (१) ऋषभः; ४ (२), ६ (२), १२ (२), १३ (२), १६ (२) पञ्चमः; ५, १२ (१), १६ (१), १९ (३), २० (१), मध्यमः; ८, ११, १५, १८ धैवतः १७ निषादः॥

पहला खण्ड

१३७९. उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये । आरे अस्मे च शृण्वते ॥

पहला सूक्त— हिंसारहित (यज्ञ परोपकार आदि) कार्यों को करते हुए हमलोग दूर और पास में सर्वत्र हमारी प्रार्थना को सुनने वाले प्रकाशस्वरूप परमात्मा के लिये वेदमन्त्रों का उच्चारण करें।

१३८०. यः स्नीहितीषु पूर्व्यः सञ्जग्मानासु कृष्टिषु । अरक्षद्दाशुषे गयम् ॥

जो परमात्मा समानरूप से गति करनेवाली तथा परस्पर प्रेम और संघर्ष करनेवाली प्रजाओं में सबसे प्रथम तथा अधिक आदरणीय है। वही आत्मसमर्पण करने वाले दानी उपासक के लिये प्राण और धन की रक्षा करता है।

१३८१. स नो वेदो अमात्यमग्नी रक्षतु शन्तमः । उतास्मान् पात्वंहसः ॥

वह शान्तिदायक परमेश्वर हमारे सहायक वेदज्ञान और धन की रक्षा करे और हमको पापों से बचावे।

१३८२. उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि । धनञ्जयो रणे रणे ॥

और सब मनुष्य इस प्रकार संसार में प्रचार करें कि परमात्मा ही प्रत्येक संग्राम में, प्रत्येक रमणीय स्थान में तथा प्रत्येक शरीर में ज्ञान और धन का विजय करानेवाला होकर विघ्न, अज्ञान तथा काम-क्रोध आदि सब शत्रुओं को नष्ट करनेवाला है।

१३८३. अग्ने युङ्क्ष्वा हि येतवाश्वासो देव साधवः । अरं वहन्त्याशवः ॥

दूसरा सूक्त— हे देव परमात्मन् ! जो आप के शीघ्रगामी व्यापक साधन है उनको सृष्टि के कार्यों में नियुक्त कीजिये, वे साधन पर्याप्त रूप से आप के सन्देश तथा कार्यों को सब जगह ले जा रहे हैं।

१३८४. अच्छा नो याह्या वहाभि प्रयांसि वीतये । आ देवान्त्सोमपीतये ॥

हे परमात्मन् ! आप हमको अच्छे प्रकार से प्राप्त होइये, तत्त्व-साक्षात्कार कराने और आनन्द-रस का पान कराने के लिये विद्वानों को तथा हमारी इन्द्रियों को ज्ञानों तक पहुँचाइये।

१३८५. उदग्ने भारत द्युमदजस्रेण दविद्युतत् । शोचा वि भाह्यजर ॥

हे सबके भरण-पोषण करनेवाले तथा अजर परमात्मन् ! निरन्तर प्रकाशमान होते हुए आप निरन्तर वर्तमान अपने तेज से स्वयं प्रकाशित होते हुए हमको भी प्रकाशित कीजिये।

१३८६. प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः । अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥

तीसरा सूक्त—भक्ति को सम्पादित करने वाले उपासक के लिये जो दिव्यवाणी प्राप्त होती

है उसको साधारण-जन नहीं पा सकते। अज्ञान को नष्ट करने वाले तुम उपासना-यज्ञ की हिंसा मत करो, लोभ-रूपी कुत्ते को मार कर भगा दो।

१३८७. आ जामिरत्के अव्यत भुजे न पुत्र ओण्योः।
सरज्जारो न योषणां वरो न योनिमासदम्॥

जैसे पुत्र माता-पिता की गोद में, जैसे जार स्त्री के पास, और जैसे वर कन्या के पास तथा कन्या-गृह को प्रेम से पहुँचता है, वैसे ही भक्तिरस से पूर्ण तथा शुद्ध अन्तःकरणवाला जीवात्मा आच्छादक हृदय तथा आनन्दमय कोष में ध्यान करके प्रेम से अपने आश्रयस्थान परमात्मा में स्थित होने को पहुँच जाता है।

१३८८. स वीरो दक्षसाधनो वि यस्तस्तम्भ रोदसी।
हरिः पवित्रे अव्यत वेधा न योनिमासदम्॥

जो उपासक प्राण और अपान के वेगों को वश में कर लेता है, वह आत्मिक बल का साधक, इन्द्रियों का विजय करने वाला, ज्ञानी तथा वीर-उपासक पवित्र परमात्मा में अपने घर के समान आश्रय को प्राप्त करता है।

दूसरा खण्ड

१३८९. अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि। युधे दापित्वमिच्छसे॥

चौथा सूक्त—परमेश्वर! आप स्वभाव से सदा ही शत्रु-रहित, नेता-रहित, तथा बन्धु-बान्धव रहित हैं तो भी योग के द्वारा उपासक की बन्धुता को स्वीकार करते हैं।

१३९०. न की रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः।
यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित्पितेव हूयसे॥

हे परमेश्वर! केवल धनी व्यक्ति को आप अपनी मित्रता के लिये नहीं रखते क्यों कि शराब आदि व्यसनों से फूले हुए वे हिंसा किया करते हैं। जब आप सत्यगुणों के उपदेशक पुरुष को मित्र बनाते हैं और अच्छे प्रकार से उसकी उन्नति करते हैं तब आप पिता के समान पुकारे जाते हैं।

१३९१. आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये।
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये।

पाँचवाँ सूक्त—हे जीवात्मन्! हरणशील शरीर में लगी हुई अन्न की शक्ति से जुड़ी हुई, ब्रह्म (ईश्वर और वेद) से सम्बद्ध करने वाली, ज्ञान तन्तुओं से सम्पन्न, सैंकड़ों, हजारों शक्तियाँ तुझ को धारण करें।

१३९२. आ त्वा रथे हिरण्यये हरी मयूरशेप्या।
शितिपृष्ठा वहतां मध्वो अन्धसो विवक्षणस्य पीतये॥

हे जीवात्मन् ! हरणशील इस शरीर में मोरपंखों के समान रंगवाले और नीली झलक को स्पर्श करने वाले प्राण तथा अपान अत्यन्त प्रशंसनीय, मधुर, अमृतरसरूप जीवनशक्ति के पान करने के लिये तुझे धारण करें।

१३९३. पिबा त्वाऽ३स्य गिर्वणः सुतस्य पूर्वपा इव ।
परिष्कृतस्य रसिन इयमासुतिश्चारुर्मदाय पत्यते ॥

हे वाणी से प्रशंसा के योग्य उपासक ! तू इस आनन्दरस को शीघ्र ही प्राण-वायु के समान पान कर, क्योंकि परिशोधित ब्रह्मास्वाद-रस का यह निष्कर्ष आनन्द-प्राप्ति के लिये सर्वोत्तम माना जाता है।

१३९४. आ सोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम् । वनप्रक्षमुदप्रुतम् ॥

छठा सूक्त—हे मनुष्यो ! एक स्तुतियोग्य, ज्ञान तथा कर्मों से प्राप्त करने योग्य, लोकों में व्यापक, जीवात्माओं में भी व्यापक, ज्ञान से परिपूर्ण परमात्मा को अपने हृदय में प्रकट करो और उसके आनन्द-रस का अच्छे प्रकार परिसिञ्चन करो।

१३९५. सहस्रधारं वृषभं पयोदुहं प्रियं देवायजन्मने ।
ऋतेनय ऋतजातो विवावृधे राजा देव ऋतं बृहत् ॥

सहस्रों आनन्द-धाराओं से युक्त, सुखवर्षक, आनन्द का दोहन करनेवाले उस प्यारे परमेश्वर की, अपना श्रेष्ठ जन्म बनाने के लिये, उपासना करो, जो सत्य नियमों से प्रसिद्ध है और सच्चे वेदज्ञान के कारण महिमा को प्राप्त होता है तथा ज्ञान से प्रकाशित, देव, सत्य-स्वरूप और सब से बड़ा है।

तीसरा खण्ड

१३९६. अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धः शुक्र आहुतः ॥

सातवाँ सूक्त—श्रेष्ठ व्यवहार-द्वारा उपासकों के बल और धन की कामना वाला, दीप्तियुक्त, शुद्ध, अच्छे प्रकार स्तुत परमात्मा दुःख तथा अज्ञान का नाश करे।

१३९७. गर्भे मातुः पितुष्पिता विदिद्युतानो अक्षरे । सीदन्नृतस्य योनिमा ॥

पिता परमात्मा, पिता द्युलोक और माता पृथिवी के न नष्ट होने वाले गर्भ में (अन्दर) प्रकाश करता हुआ सत्यज्ञान के मूल-आश्रय वेद की स्थापना करता हुआ वर्तमान है।

१३९८. ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे । अग्ने यद्दीदयद्दिवि ॥

हे ज्ञानोत्पादक तथा सबके द्रष्टा परमात्मन् ! आप हमें सन्तानों के साथ-साथ वेदज्ञान को भी प्राप्त कराइये जो दिव्य श्रेष्ठलोक में प्रकाशित रहे।

१३९९. अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम् ।
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन् मितेव सद्म पशुमन्ति होता ।।

आठवाँ सूक्त—इस परमेश्वर की दिव्य प्रेरणा से पवित्र होता हुआ विद्वान् उपासक अन्य विद्वानों के साथ ज्ञानरस का परस्पर मिश्रण, विनिमय करता है। वह भक्त विद्वान् पवित्र वेदों का गान करता हुआ विचरता है और इन्द्रियों से युक्त इस शरीर को वैसे ही वश में कर लेता है जैसे पशुपालक पशुओं को वाड़े में बन्द करके वश में रखता है।

१४००. भद्रा वस्त्रा समन्या३ वसानो महान् कविर्निवचनानि शंसन् ।
आ वच्यस्व चम्वोः पूयमानो विचक्षणो जागृविर्देववीतौ ।।

सुन्दर और परस्पर मिलने योग्य वस्त्रों को धारण किये हुए, महान् कवि-उपासक, वेद के सूक्तों का उपदेश देता हुआ और स्वयं पवित्र होता हुआ, तथा परमात्मा की प्राप्ति में चतुर और सावधान होकर द्युलोक तथा पृथिवी-लोक में भ्रमण करता है।

१४०१. समु प्रियो मृज्यते सानो अव्ये यशस्तरो यशसां क्षैतो अस्मे ।
अभि स्वर धन्वा पूयमानो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।।

हे उपासक ! यशस्वियों में भी अधिक यशस्वी, पृथिवी पर उत्पन्न हो कर भी प्रकृति के उच्चतम प्रदेश पर जाने वाले प्रिय योगी आप, हमारे लाभ के लिये ही, अच्छे प्रकार शुद्ध होते हैं। आप संन्यासी होकर, स्वयं पवित्र रहते हुए, हमें उपदेश कीजिये। हे विद्वानों ! आप कल्याणकारी उपदेशों से हमारी रक्षा कीजिये।

१४०२. एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना ।
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्धैराशीर्वान् ममत्तु ।।

नवाँ सूक्त—आओ मित्रों ! शुद्ध सामगान तथा शुद्ध मन्त्रों से हम अपनी वृद्धि करने वाले परमेश्वर की स्तुति करें, और हमें आशीर्वाद देने वाला वह शुद्ध ज्ञानों के द्वारा आनन्दित करे।

१४०३. इन्द्र शुद्धो न आ गहि शुद्धः शुद्धाभिरूतिभिः ।
शुद्धो रयिं नि धारय शुद्धो ममद्धि सोम्य ।।

हे शान्त तथा प्रेरक परमेश्वर ! आप शुद्ध हैं, हमें प्राप्त होइये, और शुद्ध प्राणात्मक शक्तियों से मैं शुद्ध होजाऊँ। शुद्धस्वरूप आप समस्त ऐश्वर्य को पूर्णतया धारण कर रहे हैं और सदा आनन्द-स्वरूप रहते हैं।

१४०४. इन्द्र शुद्धो हि नो रयिं शुद्धो रत्नानि दाशुषे ।
शुद्धो वृत्राणि जिघ्नसे शुद्धो वाजं सिषाससि ।।

हे परमेश्वर ! शुद्धस्वरूप आप हमारे लिये ऐश्वर्य दीजिये और आत्मसमर्पण करने वाले दानी के लिये रत्न तथा रमणीय पदार्थ और ज्ञान दीजिये। स्वयं शुद्ध होने के कारण ही आप वृत्रों का नाश करते हैं और शुद्धस्वरूप ही आप अन्न तथा ज्ञान को बाँटते हैं।

चौथा खण्ड

१४०५. अग्ने स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृशः। देवस्य द्रविणस्यवः ॥

दसवाँ सूक्त—सब प्रकार के धन को पाने के इच्छुक हम लोग सदा द्युलोक तक पहुँचे हुए सर्वव्यापक परमात्मदेव के नित्य तथा पुरुषार्थ-साधक वेद का मनन करते हैं।

१४०६. अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा । स यक्षद् दैव्यं जनम् ॥

जो ज्ञानवान् परमात्मा मनुष्यों के कर्मफल को देनेवाला होकर हमारी वाणियों को सुनता है, वही श्रेष्ठ जन को आनन्द प्रदान करता है।

१४०७. त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः। त्वया यज्ञं वि तन्वते ॥

हे परमात्मन् ! आप वरने योग्य, सृष्टि के कर्त्ता तथा धर्त्ता, सबसे सेवित और सर्वत्र व्यापक हैं। आपसे ही उपासनारूपी यज्ञ का सम्पादन तथा विस्तार किया जाता है।

१४०८. अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामङ्गोषिणमवावशन्त वाणीः।

वना वसानो वरुणो न सिन्धुर्विरत्नधा दयते वार्याणि ॥

ग्यारहवाँ सूक्त— भक्त उपासक की वाणियाँ, तीनों लोकों में व्यापक, सुखवर्षक, अन्न-धारक अङ्ग-अङ्ग में निवास करनेवाले तथा स्तुतियोग्य परमात्मा को चाहती हुई प्रकारती हैं और वरणीय श्रेष्ठ परमात्मा भक्तों के अन्दर निवास करता हुआ सभी श्रेष्ठ वस्तुओं को उसी प्रकार प्रदान करता है, जैसे रत्नाकर समुद्र रत्नों को देता है।

१४०९. शूरग्रामः सर्ववीरः सहावाञ्जेता पवस्व सनिता धनानि ।

तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वषाढः साह्वान् पृतनासु शत्रून् ॥

हे परमात्मन् ! गतिमें शूर, सबसे अधिक वीर, दुष्टों को दबाने वाले, विजेता, धनों के दाता तीक्ष्ण शक्तियों वाले, शीघ्र गतिवाले, किसी से न दबनेवाले और संघर्षों में सब प्रकार के शत्रुओं को तिरस्कृत करनेवाले आप हमें पवित्र कीजिये।

१४१०. उरुगव्यूतिरभयानि कृण्वन्त्समीचीने आ पवस्वा पुरन्धी ।

अपः सिषासन्नुषसः स्वाऽ३र्गाः सं चिक्रदो महो अस्मभ्यं वाजान् ॥

हे परमात्मन् ! वेदवाणी तथा लोकों के महान् रक्षक आप उपासकों को भयरहित करते हुए, द्यु और पृथिवी-लोकों को तथा प्राण और अपान को सुखदायक और पवित्र कीजिये। आप कर्मों और

बुद्धियों का यथावत् विभाग करते हुए हमें सुख, वाणी, अन्न और श्रेष्ठज्ञानतत्त्वों को प्राप्त कराने के लिये वेद-शब्दों का उपदेश करते हैं।

१४११. त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पतिः ।
त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इत्पुर्वनुत्तश्चर्षणीधृतिः ।

१२वाँ सूक्त— हे इन्द्र! आप यशस्वी, सरलमार्ग में प्रेरक तथा बल के स्वामी हैं। आप अशरीरी, अप्रेरित, अकेले ही मनुष्यों के धर्ता होकर, न दबने वाले भी सभी वृत्रों का नाश करते हैं।

१४१२. तमु त्वा नूनमसुर प्रचेतसं राधो भागमिवेमहे ।
महीव कृत्तिः शरणा त इन्द्र प्र ते सुम्ना नो अश्नुवन् ॥

हे प्राणदाता परमेश्वर ! उस प्रसिद्ध उत्तमज्ञानवान् आपसे ही हम, अपने भाग में आये अन्न के समान, सब प्रकार के धन की याचना करते हैं। आपकी कीर्ति ही बड़ी भारी शरण है। आपसे मिलनेवाले समस्त सुख-साधन हमें प्राप्त हों।

१४१३. यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥

१३वाँ सूक्त— हे परमात्मन् ! उपासना योग्य, देवों के भी देव, यज्ञों के सम्पादक, अमर और इस सृष्टि के उत्तम रूप से रचने वाले आपको हम वरण करते हैं!

१४१४. अपां नपातं सुभगं, सुदीदितिमग्निमु श्रेष्ठशोचिषम् ।
स नो मित्रस्य वरुणस्य सो अपामा सुम्नं यक्षते दिवि ॥

प्रजाओं के रक्षक, ऐश्वर्यशाली, उत्तम कान्ति से युक्त और श्रेष्ठ तेज से सम्पन्न परमात्मा को हम वरण करते हैं। वह परमात्मा प्राण, अपान तथा आकाशस्थ जलों का सुख हमारे लिये देता है।

पांचवां खण्ड

१४१५. यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः । स यन्ता शश्वतीरिषः ॥

१४वाँ सूक्त— हे परमात्मन् ! आप जिस मनुष्य की रक्षा करते हैं और जिसको ज्ञान, कार्यों में प्रेरित करते हैं, वह सदा से चली आनेवाली प्रेरणाओं को वश में कर लेता है।

१४१६. न किरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित् । वाजो अस्ति श्रवाय्यः ॥

हे सब विघ्नों के नाशक प्रभो ! आपके किसी उपासक को कष्ट देनेवाला कोई भी, नहीं है, क्योंकि आपका ज्ञान श्रवण करने योग्य है।

१४१७. स वाजं विश्वचर्षणिरर्वद्भिरस्तु तरुता । विप्रेभिरस्तु सनिता ॥

विश्व का द्रष्टा वह परमात्मा प्राणों के द्वारा हमारे जीवनसंग्राम को पार करनेवाला है और विद्वानों द्वारा इष्टफल का दाता है।

१४१८. साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।
हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥

१५वाँ सूक्त— सुख का सिञ्चन करनेवाली धीर उपासक की दस प्रेरक ध्यान-वृत्तियाँ उसको शुद्ध करती हैं। मनोहर प्रभु, सूर्य के समान प्रकाशित उपासक की चित्तवृत्तियों में व्याप्त होता है और वेगवान् घोड़े समान शीघ्रता से उपासक की आत्मा में प्रकट होता है।

१४१९. सं मातृभिर्न शिशुर्वावशानो वृषा दधन्वे पुरुवारो अद्भिः ।
मर्यो न योषामभि निष्कृतं यन्त्सं गच्छते कलश उस्त्रियाभिः ॥

माता के द्वारा पोषित और धारित शिशु के समान, विषयों तक पहुँचने वाली तथा ज्ञान देने-वाली इन्द्रियों से वरण किया हुआ तथा उनको निरन्तर चाहने वाला सौम्य जीवात्मा उनसे धारित किया जाता है। स्त्री के पास जानेवाले पुरुष के समान प्रेम से पूर्ण उपासक जीवात्मा हृदय में या मूर्धभाग में, ऊपर गति करनेवाली प्रकाश तथा आनन्द की किरणों से सङ्गत होता है।

१४२०. उत प्र पिप्य ऊधरघ्न्याया इन्दुर्धाराभिः सचते सुमेधाः ।
मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभि श्रीणन्ति वसुभिर्न निक्तैः ॥

और वह आनन्दरस कभी नष्ट न होनेवाली चितिशक्ति के रस के भण्डाररूप ऊर्ध्व भाग को भर देता हैं तब बुद्धिमान् और प्रकाशमान योगी आनन्द-धाराओं से मिलता है और इन्द्रियों की शक्तियाँ अपने-अपने स्थानों में स्थित होकर आनन्द-रस से मूर्धस्थान को उसी प्रकार आच्छादित कर लेती हैं जैसे श्वेत वस्त्रों से कोई वस्तु ढक दी जावे।

१४२१. पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः ।
आपिर्नो बोधि सधमाद्ये वृधे३ऽस्माँ अवन्तु ते धियः ॥

१६वाँ सूक्त— हे परमेश्वर ! आप जितेन्द्रिय हमारी रसपूर्ण उपासना को स्वीकार कर हमें प्रसन्न कीजिये, सर्वव्यापक आप हमको बोध दीजिये। उपासना-यज्ञ में वृद्धि के लिये आपकी दी हुई बुद्धियाँ हमारी रक्षा करें।

१४२२. भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा न स्तरभिमातये ।
अस्माञ्चित्राभिरवतादभिष्टिभिरा नः सुम्नेषु यामय ॥

हे परमेश्वर ! हम आपकी उत्तम मति में स्थित होकर ज्ञान तथा अन्न से युक्त होवें। आप काम क्रोध आदि शत्रुओं, दुष्टों तथा रोगों में हमे मत फँसाइये। अपनी विचित्र प्रेरणाओं से हमारी रक्षा कीजिये और सुखकारी मार्गों में हमें चलाइये।

१४२३. त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे सत्यामाशिरं परमे व्योमनि ।
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत ॥

१७वाँ सूक्त— इस उपासक की ७ इन्द्रियाँ या ७ प्राण परमरक्षास्थान मूर्धा में जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं में उसे सुख पहुँचाते हैं। जब वह सत्यज्ञानों से अपनी वृद्धि करता है तो इन्द्रियों से अन्य चार भुवनों को (ओ३म् के चार पादों को) अथवा जागृत, स्वप्पन, सुषुप्ति तथा तरीय--इन चारों अवस्थाओं अथवा देह की चारों अवस्थाओं तथा चारो आश्रमों को सुन्दर बना लेता है।

१४२४. स भक्षमाणो अमृतस्य चारुण उभे द्यावा काव्येना विशश्रथे।
तेजिष्ठा अपो मंहना परि व्यत यदी देवस्य श्रवसा सदो विदुः॥

यदि उपासक परमात्मदेव के आश्रय स्थान हृदय को अन्तर्यामित्व ज्ञान द्वारा जान लेता है तो वह सुन्दर अमृत रस का सेवन करता हुआ; वेद काव्य द्वारा दिव्य गुणयुक्त अपने आत्मा तथा परमात्मा दोनों को प्राप्त करता है और तेजःसम्पन्न होकर लोकों में यथेच्छ विचरता है।

१४२५. ते अस्य सन्तु केतवोऽमृत्यवोऽदाभ्यासो जनुषी उभे अनु।
येभिर्नृम्णा च देव्या च पुनत आदिद्राजानं मनना अगृभ्णत॥

उस उपासक के इस और अगले दोनों लोकों में अमर तथा अखण्डित ज्ञान-रश्मियाँ उत्पन्न हो जाती हैं जिन से वह मनुष्यों के चाहे हुए दिव्य लोकों को भी प्राप्त करता है और फिर उस दीप्त उपासक को वेद मन्त्र तथा उनका ज्ञान उसी अवस्था में धारण किये रहते हैं।

छठा खण्ड

१४२६. अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानो३ऽभिमित्रावरुणा पूयमानः।
अभी नरं धीजवनं रथेष्ठामभीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम्॥

१८वाँ सूक्त—हे सौम्य उपासक! तू प्राणवायु को सब शरीर में व्याप्त होने के लिये प्रेरित कर। प्राण और अपान को पवित्र करता हुआ उनको भी प्रेरित कर, शरीर का सञ्चालन कर। ध्यान के वेग से जाने वाले मन को भी प्रेरित कर और फिर अज्ञाननाशक, सुखवर्धक परमेश्वर को साक्षात् कर।

१४२७. अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षाभि धेनूः सुदुघाः पूयमानः।
अभि चन्द्रा भर्तवे नो हिरण्याभ्यश्वान् रथिनो देव सोम॥

हे सौम्य उपासक! तू पवित्र होता हुआ उत्तम रूप से आच्छादित करने वाले पञ्च कोषों को वश में कर, उत्तम आनन्द-रस को देने वाली सुषुम्णा आदि नाड़ियों को भी वश में कर और अपने पालन के लिये चाँदी, सोना और आनन्ददायक ज्ञान प्राप्त करने के लिये शरीर के स्वामी इन्द्रियरूपी घोड़ों को अच्छे मार्ग से प्रेरित कर।

१४२८. अभी नो अर्ष दिव्या वसून्यभि विश्वा पार्थिवा पूयमानः ।
अभि येन द्रविणमश्नवामाभ्यार्षेयं जमदग्निवन्नः ।।

हे योगिन् ! आप हमें दिव्य-ज्ञानरूपी धन प्राप्त कराइये। पवित्र होते हुए आप हमें सब पृथिवी के पदार्थों को भी प्राप्त कराइये। जिस ज्ञान के द्वारा हम सब प्रकार के धन को प्राप्त कर सकें और उत्तम रीति से भोग सकें ऐसे, ऋषियों=मन्त्र द्रष्टाओं द्वारा समझने योग्य वेदज्ञान को उसी रूप में उपदेश कीजिये जिस रूप में परमात्मा ने उसे दिया है।

१४२९. यज्जायथा अपूर्व्य मघवन् वृत्रहत्याय । तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उतो दिवम् ।।

१९वाँ सूक्त—सबके मूलकारण, हे परमेश्वर ! जब आप प्रलयके अन्धकार को नष्ट करने के लिये जगत् उत्पन्न करने को उद्यत होते हैं, तब आप प्रकृति से इस पृथ्वी को उत्पन्न कर विस्तृत करते हैं और आकाशस्थ ग्रहों तथा पिण्डों को भी स्तम्भित करते हैं।

१४३०. तत्ते यज्ञो अजायत तदर्क उत हस्कृतिः । तद्विश्वमभिभूरसि यज्जातं यच्च जन्त्वम् ।।

और तभी आपके द्वारा देवों का सङ्गठन-रूप यह सृष्टियज्ञ पैदा होता है, तभी सूर्य और साथ ही दिन की उत्पत्ति होती है। यह विश्व जो उत्पन्न हो चुका है और आगे प्रवाह से जो उत्पन्न होगा, उसके सब ओर व्याप्त होकर उसके मूल कारण आप ही हैं।

१४३१. आमासु पक्वमैरय आ सूर्यं रोहयो दिवि ।
घर्मं न सामं तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे बृहत् ।।

हे परमेश्वर ! आप ही कच्चे पदार्थों में पकता को पैदा करते हैं। आपने ही द्युलोक में सूर्य को अपने आकर्षण से ऐसे स्थापित किया है कि जिससे वह वर्षभर के ताप को ऋतुरूप विभागों से तपे। हे उपासको ! तुम वाणी से प्रशंसनीय परमेश्वर के लिये प्रीतिपूर्वक बृहत् सामगान करो।

१४३२. मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।
वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः ।।

बीसवाँ सूक्त—हे शक्तिशाली परमेश्वर! सुखवर्षक आपके महान् हर्षकारक, श्रेष्ठ, बलदायक, सहस्रों अपरिमित शक्तियों से युक्त आनन्द-रस को हम उपासकों ने उसी प्रकार सेवन किया है, जैसे किसी पात्र में भरकर किसी आनन्ददायक बलवर्धक पेय को पिया जावे। हे भगवन् ! आप हमें हृष्ट-पुष्ट करने वाले हैं।

१४३३. आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः । सहावाँ इन्द्र सानसिः पृतनाषाडमर्त्यः ।।

हे ईश्वर ! हर्ष कारक, सुखवर्षक, तृप्तिकारक, वरण करके योग्य, बलवान्, सेवन करने योग्य और आत्मिक शत्रुओं को तिरस्कृत करने वाला आपका अमर आनन्द-रस हमें प्राप्त हो।

१४३४. त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् ।
सहावान् दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा ।।

हे परमेश्वर ! आप शूर, सब पदार्थों के पाता हैं। आप हमारे मनोरथ को तथा मननशील जीव के रथ=शरीर को सुमार्ग में प्रेरित कीजिये। शक्तिशालिन् आप नियम-विरुद्ध चलनेवाले हिंसक, अधर्मी को ऐसे तपाइये जैसे कि अशुद्धपात्र को अग्नि से तपा कर शुद्ध करते हैं।

—:o:—

तेरहवाँ अध्याय तीसरा अर्धप्रपाठक

(१४३५ मन्त्र से १४८८ मन्त्र तक)

सूक्तों के अनुसार ऋषि, देवता, छन्द और स्वर

ऋषि—१ कविर्भार्गव; २, ६, १४ भरद्वाजो बार्हस्पत्य; ३ असित: काश्यपो देवलो वा, ४ सुकक्ष:; ५ विभ्राट् सौर्य:, ८ वसिष्ठ:, ७ भर्ग: प्रागाथ:; १० शतं वैखानसा:; ११ यजत आत्रेय:, १२ मधुच्छन्दा वैश्वामित्र:; १३ उशना:, १५ विश्वामित्र:; १६ हर्यत: प्रागाथ:; १७ बृहद्दिव आथर्वण:, १८ गृत्समद: ।।

देवता—१, ३, १३ पवमान: सोम; २, ४, ६, ७, १२, १७, १८ इन्द्र:; ५ सूर्य:; ८ सरस्वान्; ९ सरस्वती; १०, १४, १५ अग्नि:; ११ मित्रावरुणौ; १६ अग्निर्हवींषि वा ।।

छन्द:—१, ३, ४, ८—१२, १४ (२—३), १५—१६, गायत्री; २(१—३) अनुष्टुप्; २ (४) बृहती: ५ जगती, ६, ७ बार्हत: प्रगाथ: (१ बृहती+२ सतोबृहती); १३, १७ त्रिष्टुप्। १४ (१) वर्धमाना गायत्री; १८ (१) अष्टि:; १८ (२, ३) अतिशक्करी ।।

स्वर:—१, ३, ४, ८—१२, १४—१६ षड्ज:; २ (१—३) गान्धार; २ (४), ६ (१), ७ (१), १८ (१) मध्यम:; ५ निषाद:, १३, १७ धैवत: ।।

पहला खण्ड

१४३५. पवस्व वृष्टिमा सु नोऽपामूर्मिं दिवस्परि । अयक्ष्मा बृहतीरिषः ।।

पहला सूक्त—हे परमात्मन्! आप हमारे लिये आकाश से सुन्दर वृष्टि को, ज्ञान तथा कर्मों की तरङ्गों को और रोगरहित बहुत से अन्नों को तथा दुष्टविचारों से रहित इच्छाओं को प्रेरित कीजिये।

१४३६. तया पवस्व धारया यया गाव इहागमन् । जन्यास उप नो गृहम् ।।

हे प्रभो ! आप हमें उस ज्ञान-धारा से पवित्र कीजिये जिससे वेदवाणियाँ तथा ज्ञान की किरणें यहाँ प्राप्त हों और जनोपयोगी पदार्थ भी हमारे घर में उपलब्ध हों।

१४३७. घृतं पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः । अस्मभ्यं वृष्टिमा पव ॥

हे प्रभो ! आप यज्ञों में दिव्य गुणों को प्राप्त करानेवाले ज्ञान तथा कर्म को योग की धारणाओं द्वारा पवित्र कीजिये और हमारे लिये जल तथा आनन्द की वर्षा को प्रेरित कीजिये।

१४३८. स न ऊर्जे व्या३व्ययं पवित्रं धाव धारया । देवासः शृणवन् हि कम् ॥

हे परमात्मन् ! वह प्रसिद्ध आप, हमारे बल के लिये पवित्र अविनश्वर आत्मा में प्रकट होने के लिये विशिष्ट गति कीजिये। विद्वान्-लोग सुखस्वरूप आपके गुणों का श्रवण करते हैं।

१४३९. पवमानो असिष्यदद्रक्षांस्यपजङ्घनत् प्रत्नवद्रोचयन्नु चः ॥

पवित्र करने वाला परमात्मा दुष्टों तथा दुर्गुणों का नाश करता हुआ और अपनी सनातन कान्तियों को प्रकाशित करता हुआ आनन्द की वर्षा करता है।

१४४०. प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर । अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चादध्वने नरः ॥

दूसरा सूक्त— हे उपासक ! तू इस भक्ति को स्वीकार करने की इच्छा वाले, सर्वज्ञ विद्वान्, सर्वव्यापक तथा पीछे न हटनेवाले अर्थात् सबके नेता और मनुष्यों को सन्मार्ग पर लेजानेवाले परमेश्वर के लिये प्रतिदिन अपने को समर्पण कर।

१४४१. एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम् । अमत्रेभिर्ऋजीषिणमिन्द्रं सुतेभिरिन्दुभिः ॥

हे मनुष्यो ! इस ज्ञान के भण्डार, संसार के रक्षक तथा बलवान् परमेश्वर का अपने ज्ञानों, तथा धारणा-बुद्धि के सङ्कल्पों द्वारा और सम्यक् प्रेरित तथा ज्ञान से प्रकाशित विद्वानों की सहायता से, सत्यज्ञान प्राप्त करो।

१४४२. यदी सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषथ । वेदा विश्वस्य मेधिरो धृषत्तं तमिदेषते ।

हे मनुष्यो ! यदि तुम प्रेरक ज्ञानियों के उपदेशों द्वारा तथा ज्ञानों के द्वारा आत्मा को भूषित करो, तो वह मेधावी जीवात्मा आत्मिक शत्रुओं को वश में करता हुआ। विश्व का ज्ञान प्राप्त कर उस-उस सङ्कल्प को पूर्ण कर सकता है।

१४४३. अस्माअस्मा इदन्धसोऽध्वर्यो प्र भरा सुतम् ।
कुवित्समस्य जेन्यस्य शर्धतोऽभिशस्तेरवस्वरत् ॥

हे अहिंसक उपासक ! तू इसी जीवात्मा के लिये, जीवनधारक मूलतत्त्व से निष्पादित आनन्द-रस को समर्पित कर। यही तुझको उत्साहपूर्ण, जीतने योग्य, अभिमानी तथा घातक काम-क्रोध आदि सब शत्रुओं से सब प्रकार बचाता और पालता है।

दूसरा खण्ड

१४४४. बभ्रवे नु स्वतवसेऽरुणाय दिविस्पृशे । सोमाय गाथमर्चत ॥

तीसरा सूक्त— हे मनुष्यो ! सबका पालन करनेवाले, स्वयं बलशाली, द्युलोक, ब्रह्माण्ड आदि में व्यापक तथा प्रेरक परमात्मा के लिये तुम गुणों का गान करो ।

१४४५. हस्तच्युतेभिरद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन । मधावा धावता मधु ॥

हे उपासको ! तुम प्रेरक साधनों से प्रेरित हुए स्थिर विद्वानों द्वारा निष्पादित ज्ञान को उन्नत तथा पवित्र बनाओ और आनन्ददायक परमात्मा में भक्ति से मधुर जीवात्मा को लगाओ ।

१४४६. नमसेदुप सीदत दध्नेदभि श्रीणीतन । इन्दुमिन्द्रे दधातन ॥

हे भक्तो ! तुम नमस्कार द्वारा परमात्मा की उपासना करो, धारणा के बल से उसे साक्षात् करो और सब प्रकार से ऐश्वर्यशाली जीवात्मा को परमेश्वर में लगाओ ।

१४४७. अमित्रहा विचर्षणिः पवस्व सोम शं गवे । देवेभ्यो अनुकामकृत् ॥

हे सबके प्रेरक प्रभो ! द्वेषी दुष्टों के नाशक, विशेष द्रष्टा, और विद्वानों के लिये उनकी कामना को पूर्ण करनेवाले आप गो आदि पशुओं, इन्द्रियों, लोकों तथा ज्ञानशील जीवात्मा के लिये कल्याण की वर्षा कीजिये ।

१४४८. इन्द्राय सोम पातवे मदाय परि षिच्यसे । मनश्चिन्मनसस्पतिः ॥

हे सबके प्रेरक ज्ञान-आनन्द-रस ! तू जीवात्मा के सेवन के लिये तथा आनन्द के लिये हृदय में सब प्रकार से धारण किया जाता है । तू मन की शक्ति को बढ़ानेवाला और मन का रक्षक है ।

१४४९. पवमान सुवीर्यं रयिं सोम रिरीहि णः । इन्दविन्द्रेण नो युजा ॥

हे शुद्ध, प्रेरक तथा प्रकाशक परमात्मन् ! आप हमारे सहायक जीवात्मा के द्वारा हम उपासकों को सुन्दर बल तथा ऐश्वर्य प्रदान कीजिये ।

१४५०. उद्धेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् । अस्तारमेषि सूर्य ॥

चौथा सूक्त— हे सबके प्रेरक प्रभो ! आप ज्ञान और कीर्ति से सम्पन्न, श्रेष्ठ मनुष्य-हितकारी तथा आत्मिक शत्रुओं के नाशक उपासक को ही प्राप्त होते हैं ।

१४५१. नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा । अहिं च वृत्रहावधीत् ॥

जो साधनों के बल से ९९ आयु के वर्षों को, मोक्ष-दानार्थ, भेदन कर देता है अथवा (१७९ संख्या वाले मन्त्र में दिखलाये ढंग से) ८१० शत्रुओं को नष्ट कर देता है, और जो वृत्रों का नाशक है तथा सर्प के समान वर्तमान अज्ञान और काम-क्रोध आदि को नष्ट कर देता है, वही परमेश्वर है ।

१४५२. स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद्गोमद्यवमत् । उरुधारेव दोहते ॥

वही कल्याणकारी परमेश्वर हमारा मित्र है और बड़ी दूध देने वाली गौ के समान वह अश्व, गौ, यव (अन्न) आदि सब प्रकार के धन को प्रदान करता है ।

तीसरा खण्ड

१४५३. विभ्राड् बृहत् पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविहुतम् ।
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पिपर्त्ति बहुधा वि राजति ।।

पाँचवाँ सूक्त — विशेषरूप से प्रकाशित हुआ उपासक परमात्मा के ब्रह्मानन्द-रस का पान करें, यज्ञ के पति परमात्मा में अपनी सरलतापूर्ण आयु (जीवन) को लगावे। जो प्राणायाम से पुष्ट और प्रेरित होकर स्वयं अपनी रक्षा करता है और प्रजा का पालन करता है, वह योगी बहुत प्रकार से विशेष प्रकाशित होता है।

१४५४. विभ्राड् बृहत्सुभृतं वाजसातमं धर्मं दिवो धरुणे सत्यमर्पितम् ।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहन्तमं ज्योतिर्जज्ञे असुरहा सपत्नहा ।।

विशेष प्रकाशमान, महान्, उत्तम रूप से पालित, ज्ञान को देनेवाली, आनन्द को धारण करनेवाली, द्युलोक के आश्रय परमात्मा में अर्पित, सत्यस्वरूप, काम-क्रोधादि शत्रुओं की नाशक, अज्ञान को दूर करनेवाली, हिंसक दुष्टों की हन्त्री, प्राणों में रमण करनेवाले रोगों को दूर करने वाली और प्रतिस्पर्द्धियों की विनाशक ज्योति उपासक में उत्पन्न होती है।

१४५५. इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं विश्वजिद्धनजिदुच्यते बृहत् ।
विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृश उरु पप्रथे सह ओजो अच्युतम् ।।

योगी उपासक की यह श्रेष्ठ ज्योति सब ज्योतियों में उत्तम, विश्व को जीतनेवाली, धन को जीतनेवाली तथा विशाल कही जाती हैं। विश्व का पालक, स्वयं प्रकाशित तथा सूर्य के समान् महान् प्रेरक परमात्मा अविनश्वर सहनशक्ति और ओज को बहुत अधिक विस्तीर्ण करता है।

१४५६. इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ।।

छठा सूक्त— हे परमेश्वर ! जैसे पिता पुत्रों के लिये मार्गदर्शन कराता है वैसे ही आप हमारे लिये ज्ञान का उपदेश कीजिये। हे सर्वस्मरणीय प्रभो ! इस व्यवस्था में हमें शिक्षा दीजिये। समस्त जीवगण आपकी ज्योति का उपभोग करें।

१४५७. मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो३माशिवासोऽव क्रमुः ।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ।।

हे शूर परमात्मन् ! बिना जाने हुए, पापी, कुटिल और नीच पुरुष हमें कभी न दबा सकें। आपके द्वारा हम विनीत होकर समस्त कार्यों को निरन्तर पूरा किया करें।

१४५८. अद्याद्या श्वःश्व इन्द्र त्रास्व परे च नः ।
विश्वा च नो जरितृन्त्सत्पते अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः ।।

७वाँ सूक्त— हे सज्जनों के पालक परमेश्वर ! आप आज, कल, परसों और सभी दिन हमारी रक्षा कीजिये । हम स्तोताओं की रात-दिन रक्षा कीजिये ।

१४५९. प्रभङ्गी शूरो मघवा तुवीमघः सम्मिश्लो वीर्याय कम् ।
उभा ते बाहू वृषणा शतक्रतो नि या वज्रं मिमिक्षतुः ।।

हे असंख्य प्रज्ञानों से युक्त प्रभो ! आप प्रलयकाल में सबको भङ्ग करनेवाले, शूर, परोपकारी, यज्ञ सम्पादक, ऐश्वर्यशाली, सबमें मिले हुए, व्यापक, वीरता के कार्यों में समर्थ और सुखस्वरूप प्रजापति हैं । आपके ज्ञान और कर्मरूपी दोनों बाहें, जो विद्यारूपी वज्र (शक्ति) को धारण करती है ।

चौथा खण्ड

१४६०. जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्त सुदानवः । सरस्वन्तं हवामहे ।।

आठवाँ सूक्त— हम गृहस्थ उपासक गृहाश्रम में पत्नी तथा पुत्रों की कामना करते हुए उन्नतिशील तथा उत्तम दानी होकर आनन्द के समुद्र सर्वज्ञ परमात्मा को पुकारते हैं ।

१४६१. उत नः प्रिया प्रियासु सप्त स्वसा सुजुष्टा । सरस्वती स्तोम्याऽभूत् ।

नवाँ सूक्त— और हमारी प्यारी वस्तुओं में भी सबसे प्यारी, सात छन्द तथा सात इन्द्रिय (२ आँख, २ नासिका २ कान, १ जिह्वा) रूपी ७ बहिनोंवाली अच्छे प्रकार से सेवित वेदवाणी हमारी स्तुति योग्य है ।

१४६२. तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ।।

दसवाँ सूक्त— सबके प्रेरक तथा उत्पादक स्वयं प्रकाशमान तथा सबके प्रकाशक परमात्मा के उस वरण करने योग्य तथा अविद्या आदि दुर्गुणों को भस्म कर डालनेवाले तेज का हम ध्यान करते हैं और उसे धारण करते हैं, जो हमारी बुद्धियों और कर्मों को अच्छे मार्ग में प्रेरित करे ।

१४६३. सोमानां स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कक्षीवन्तं य औशिजः ।।

ग्यारहवाँ सूक्त— हे वेदवाणियों के पति ! जो मनुष्य आपके वश में रहनेवाला, भक्ति की कामनावाला और बुद्धिमान् का पुत्र है उसको आप ज्ञान तथा भक्ति का सञ्चय करनेवाला कीजिये और उसके प्राणों को बलवान् बनाइये ।

१४६४. अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ।।

बारहवाँ सूक्त— हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप हमारी आयु, बल तथा अन्न को पवित्र करते हैं । बुरे, लोभी तथा क्रोधियों को हमसे दूर करके पीड़ित कीजिये ।

१४६५. ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य । महि वां क्षत्रं देवेषु ।।

तेरहवाँ सूक्त— वे दोनों आप (परमात्मा और जीवात्मा, आत्मा-दमन, और प्राण और अपान) हमारे लिये पृथिवी और द्युलोक के बडे भारी धन को देने में समर्थ हैं। देवताओं में आप दोनों का बड़ा बल है।

१४६६. ऋतमृतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते । अद्रुहा देवौ वर्धेते ।।

सत्य को वेदज्ञान से मिलाते हुए, आप दोनों देव (प्राण-अपान) सबके प्रेरक बल को प्राप्त होते हैं और परस्पर द्रोहरहित होकर बढ़ते हैं।

१४६७. वृष्टिद्यावा रीत्यापेषस्पती दानुमत्याः बृहन्तं गर्तमाशाते ।।

वर्षण और प्रकाश से युक्त, गति द्वारा ही इष्ट को प्राप्त करनेवाले, देने योग्य अन्न के पालक, प्राण तथा अपान देहरूपी रथ में व्याप्त रहते हैं।

१४६८. युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ।।

चौदहवाँ सूक्त— विद्वान् उपासक-जन देह में व्यापक आत्मा को योग में लगाते हैं और सब स्थावर तथा जंगम पदार्थों में व्यापक, सबके प्रति स्नेहवान् ब्रह्म को योग द्वारा प्राप्त करते हैं और प्रकाशमान मोक्ष में तेजोमय होकर विराजमान होते हैं।

१४६९. युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ।।

उपासक योगी इस जीवात्मा के रमण करने के साधन शरीररूपी रथ में कान्तियुक्त, प्रिय, हरणशील, विविध पार्श्वों में गति करनेवाले, स्वतः गतिशील, शरीर को धारण करनेवाले और आत्मा के धारण करनेवाले प्राण तथा अपान को योग-द्वारा वश में करते हैं।

१४७०. केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे समुषद्भिरजायथाः ।

हे मनुष्यो ! यह आत्मा, प्रज्ञान-रहित शरीर आदि संघात के निमित्त चेतना प्रकट करता हुआ और रूपरहित अपने लिये इस रूपवान् देह को प्रकट करता हुआ, सन्ताप देनेवाले कर्म-विपाकों द्वारा पुनः उत्पन्न होता है।

पांचवाँ खण्ड

१४७१. अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्वे तुभ्यं पवते त्वमस्य पाहि ।
त्वं ह यं चकृषे त्वं ववृष इन्दुं मदाय युज्याय सोमम् ।।

१५वाँ सूक्त— हे परमेश्वर ! यह सौम्य जीवात्मा तेरे लिये साधना करके निष्पन्न होता है, तेरे लिये शुद्ध किया जाता है आप इसकी रक्षा कीजिये। जिसको आप इस योग्य बनाते हैं, उसी ऐश्वर्यशाली सौम्य उपासक को आनन्द के लिए तथा अपने साथ रखने के लिये वरण करते हैं।

१४७२. स ईं रथो न भूरिषाडयोजि महः पुरूणि सातये वसूनि ।
आदीं विश्वा नहुष्याणि जाता स्वर्षाता वन ऊर्ध्वा नवन्त ॥

वह अति सहनशील महान् उपासक बहुत-सी सिद्धियों को पाने के लिए युद्ध के रथ के समान योगाभ्यास में लग जाता है और फिर मनुष्यों को प्राप्त होने योग्य सभी उत्कृष्ट पदार्थ स्वतः उसके आगे आकर झुकते तथा प्राप्त हो जाते हैं।

१४७३. शुष्मी शर्धो न मारुतं पवस्वानभिशस्ता दिव्या यथा विट् ।
आपो न मक्षू सुमतिर्भवा नः सहस्राप्साः पृतनाषाड् न यज्ञः ॥

हे परमात्मन् ! जैसे बलवान् पुरुष अपने बल को गति देता तथा पवित्र करता है, वैसे ही आप हमारे प्राणबल को गतियुक्त तथा पवित्र कीजिये जिससे सब प्रजा तथा इन्द्रियाँ दिव्यगुणयुक्त और निन्दारहित हो जावें। आप जल के समान शीघ्रगामी तथा सहस्रों कर्मों वाले और सेनापति के समान अनेक प्रकार से उपकारक होकर हमें सुमति बनाइये।

१४७४. त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः । देवेभिर्मानुषे जने ॥

१६वाँ सूक्त—हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! आप सब यज्ञों के होता और विद्वानों द्वारा मनुष्यमात्र के लिये उपदेश दिये गये सबके हितकारक है।

१४७५. से नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजा महः । आ देवान् वक्षि यक्षि च ॥

वह आप सृष्टिरूपी यज्ञ में प्रशंसनीय शक्तियों से महान् होकर सब पदार्थों को परस्पर यथायोग्य मिलाते हैं तथा उपासना में जीवात्मा को अपने से सङ्गत करते हैं और आप विद्वानों को उन्नति की ओर लेजाते तथा अभीष्ठ मोक्षसुख से सङ्गत करते हैं।

१४७६. वेत्था हि वेधो अध्वनः पथश्च देवाञ्जसा । अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो ॥

हे शुभ ज्ञान तथा कर्मों से सम्पन्न तथा संसार के विधाता परमात्मन् ! आप सभी श्रेष्ठतम कर्मों में बड़े और छोटे सभी मार्गों के उत्तम रीति से जाननेवाले हैं।

१४७७. होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया । विदथानि प्रचोदयन् ॥

१७वाँ सूक्त—अमरदेव परमात्मा जानने योग्य उत्तम कर्मों को हृदय में प्रेरित करता हुआ विशेष ज्ञानशक्ति से साक्षात् प्रत्यक्ष होता है।

१४७८. वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्र णीयते । विप्रो यज्ञस्य साधनः ॥

ज्ञानवान् तथा बलवान् परमेश्वर का ज्ञानकार्यों में ध्यान किया जाता है, वह उपासना आदि यज्ञों में अच्छे प्रकार से धारण किया जाता है और मेधावी वह सृष्टि का तथा सभी श्रेष्ठतम कर्मों का साधन है।

१४७९. धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमा दधे । दक्षस्य पितरं तना ।।

वरण करने योग्य परमेश्वर सब पदार्थों को अपने वश में धारण करता है और बुद्धि के द्वारा, बल के पालन करनेवाले धन को उत्पन्न कराता है ।

छठा खण्ड

१४८०. आ सुते सिञ्चत श्रियं रोदस्योरभिश्रियम् । रसा दधीत वृषभम् ।।

१८वाँ सूक्त— हे मनुष्यो ! प्राण तथा अपान में आश्रित बल को साधित चित्त में धारण करो और सुखवर्षक परमात्मा को भक्तिरस में धारण करो ।

१४८१. ते जानत स्वमोक्यां३ सं वत्सासो न मातृभिः । मिथो नसन्त जामिभिः ।।

बच्चों के समान वे प्यारे प्राण प्रमातृरूप इन्द्रियों से मिलकर रहते हैं और अपने स्थान को तथा वहाँ रहनेवाले साथियों को अच्छे प्रकार से जानते हैं ।

१४८२. उप स्रक्वेषु बप्सतः कृण्वते धरुणं दिवि । इन्द्रे अग्ना नमः स्वः ।।

ज्ञान तथा उपासना के उत्साहपूर्ण स्थानों में ज्ञान का सेवन करते हुए उपासकजन प्रकाशमान, परमैश्वर्ययुक्त तथा ज्ञानस्वरूप परमात्मा में सुखदायक आश्रय लेकर उसे नमस्कार करते हैं ।

१४८३. तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः ।।

१९वाँ सूक्त—वही ब्रह्म भुवनों में सबसे बड़ा है जिससे प्रकाशित तथा बलशाली उपासक तेजस्वी बन जाता हैं । तेजस्वी होकर वह सब प्रकार के शत्रुओं को दूर करता है । उसको देखकर समस्त प्राणी प्रसन्न होते हैं ।

१४८४. वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति ।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ।।

अपने बल से बढ़ा हुआ, प्रतापी, विघ्नों को नष्ट करनेवाला तथा अति ओजस्वी परमेश्वर हानिकारक दुष्ट के लिये भय को धारण कराता है । प्राण-रहित पदार्थों तथा प्राण-सहित चेतनों को वह पवित्र कर रहा है अर्थात् उनमें व्यापक है । उससे धारण किये हुए सभी उसके आगे झुकते हैं ।

१४८५. त्वे क्रतुमपि वृञ्जन्ति विश्वे द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः ।
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ।।

हे प्रभो ! ये सभी प्राणी जब एक से दो और दो से तीन हो जाते हैं तब भी अपने कर्म को आप में ही समाप्त करते हैं । आप स्वादु से भी अधिक स्वादिष्ट इस ब्रह्मानन्द रस को स्वादु=प्रिय आत्मा से मिलाइये और इस मधुर आत्मा को सुमधुर मोक्ष आनन्द से मिलाकर आनन्दित कीजिये ।

१४८६. त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृम्पत्सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशम् ।
स ईं ममाद महि कर्म कर्त्तवे महामुरुं सैनं सश्चद्देवो देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥

२०वाँ सूक्त— महान्, बलशाली तथा अपने को तृप्त करनेवाला जीवात्मा तीनों लोकों में व्यापक परमात्मा से प्रेरित तथा उत्पादित यव आदि अन्नों से मिले हुए योग्य पदार्थ तथा ज्ञान को अपनी शक्ति के अनुसार सेवन करता है। वही महान् कार्य करने के लिये भी प्रसन्न रहता है वही सच्चा ऐश्वर्यवान् तथा देव (ज्ञानवान्) होकर महान् तथा नाना शक्तियों के स्वामी सच्चे देव परमेश्वर को प्राप्त होता है।

१४८७. साकंजातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ साकंवृद्धो वीर्यैः सासहिर्मृधो विचर्षणिः ।
दाता राधः स्तुवते काम्यं वसु प्रचेतन सैनं सश्चद्देवो देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥

हे प्रकृष्ट ज्ञानवान् प्रभो ! वेदज्ञान के साथ वर्तमान आप अपने ओज से संसार को धारण करते हैं, शक्तियों के साथ संसार में व्यापक तथा महान् आप शत्रुओं को वश में करनेवाले तथा सबके द्रष्टा हैं। आप स्तोता के लिये ज्ञान आदि धन के दाता हैं। वह सच्चा देव तथा प्रकाशमान उपासक इस सर्वव्यापक, सच्चे देव परमेश्वर को प्राप्त करता है।

१४८८. अध त्विषीमाँ अभ्योजसा क्रिविं युधाभवदा रोदसी अपृणदस्य मज्मना प्र वावृधे ।
अधत्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत प्र चेतय सैनं सश्चद्देवो देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥

इस प्रकार वह प्रकाशमान परमेश्वर अपने ओज से, विघ्ननाशक प्रयत्न-द्वारा जीव के बन्धनरूप कोषों को तोड़ देता है। वह परमेश्वर द्यु और पृथिवी तथा प्राण और अपान दोनों को व्याप्त करता है, उसकी शक्ति से उपासक भी बढ़ता है। वह परमेश्वर उस उपासक को अपनी शरण में लेता है और उसको विशेष शक्तिशाली तथा ज्ञानी बनाता है। इस प्रकार वह दिव्य ज्ञानवान् सच्चा योगी जीव उस सच्चे देव-परमेश्वर को प्राप्त करता है।

--o--

सातवाँ प्रपाठक

(१४८९ मन्त्र से १६१६ मन्त्र तक)

चौदहवाँ अध्याय पहला अर्धप्रपाठक

(१४८९ मन्त्र से १५३२ मन्त्र तक)

सूक्तों के अनुसार ऋषि, देवता, छन्द तथा स्वर

ऋषिः— १, ९ प्रियमेधः; २ नृमेधपुरुमेधौ; ३, ७ त्र्यरुणत्रसदस्यू; ४ शुनःशेप आजीगर्तिः; ५ वत्सः काण्वः; ६ अग्निस्तापसः; ८ विश्वमना वैयश्वः; १० वसिष्ठः; ११ सौभरिः काण्वः, १२ शतवैखानसाः; १३ वसूयव आत्रेयाः; १४ गोतमो राहूगणः, १५ केतुराग्नेयः, १६ विरूप आङ्गिरसः ॥

देवता— १,२,५,८,९, इन्द्रः; ३,७ पवमानः सोमः; ४, १०, ११, १३—१६ अग्निः, ६ विश्वेदेवा १२ अग्निः पवमानः ॥

छन्दः— १, ४, ५, १२—१६ गायत्री, २,१० बार्हतः प्रगाथः (१बृहती + २ सतोबृहती), ३, ७ ऊर्ध्वा बृहती, ६ अनुष्टुप्, ८ उष्णिक्, ९ निचृदुष्णिक्, ११ बृहती ॥

स्वरः— १,४,५, १२—१६ षड्जः, २ (१), ३, ७, १० (१), ११ मध्यम, २ (२) १० (२) पञ्चमः, ६ गान्धारः; ८ ऋषभः ॥

पहला खण्ड

१४८९. अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे । सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥

पहला सूक्त— हे उपासक ! तू वेदवाणी के पालक और सत्य के रक्षक अपने आतमा को यथावत् जानने और दूसरों को बताने के लिये वाणी-द्वारा वर्णन कर।

१४९०. आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि । यत्राभि संनवामहे ॥

इस देह बन्धन में कान्तिमान् तथा गतिशील इन्द्रियाँ गति कर रही हैं जहाँ स्थित होकर हम परमातमा की प्रशंसा करते हैं।

१४९१. इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु । यत्सीमुपह्वरे विदत् ॥

शक्तिशाली उपासक के लिये उसकी इन्द्रियाँ तथा वाणियाँ जीवन के आश्रयरूपी हर्षंकर ज्ञान को उत्पन्न करती हैं जिसको वह भीतरी कोश में सब ओर से प्राप्त करता है।

१४९२. आ नो विश्वासु हव्यमिन्द्रं समत्सु भूषत ।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन्परमज्या ऋचीषम ॥

दूसरा सूक्त— हे मनुष्यो ! तुम सभी अवसरों पर पूज्य परमेश्वर का गुण-गान करो। हे विघ्ननाशक, शत्रु-जेता तथा स्तुति-योग्य प्रभो! आप हमारे स्तात्रों को शोभा-युक्त कीजिये।

१४९३. त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत् ।
तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ॥

हे परमेश्वर ! आप विद्या आदि धनों के सब से पहले दाता हैं और सच्चे ऐश्वर्य-सम्पन्न करने वाले हैं। हम बलस्वरूप, पुरुषों के त्राता, महान् तथा बहुत ऐश्वर्यसम्पन्न आपकी संगति को योग-द्वारा स्वीकार करते हैं।

१४९४. प्रत्नं पीयूषं पूर्व्यं यदुक्थ्यं महो गाहाद्दिव आ निरधुक्षत ।
इन्द्रमभि जायमानं समस्वरन् ॥

तीसरा सूक्त— योगी उपासक जब अत्युत्तम, पुरातन तथा प्रशंसनीय अमृतरूप ब्रह्म के आनन्द-रस को अतिगम्भीर मूर्धास्थल से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त करते हैं, तब वे हृदय में ज्ञान द्वारा साक्षात् होनेवाले परमेश्वर की अच्छे प्रकार से स्तुति करते हैं।

१४९५. आदीं केचित् पश्यमानास आप्यंवसुरुचो दिव्या अभ्यनूषत ।
दिवो न वारंसविता व्यूर्णुते ॥

जब सूर्य के समान प्रकाशमान परमात्मा प्रकाशित आत्मा के आवरण को हटा देता है तब प्रकाश में वर्तमान कोई आत्मा के साधक-जन इस प्राप्त करने योग्य आनन्द को जानते हुए उस परमात्मा की स्तुति करते हैं ।

१४९६. अध यदिमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनाभि मज्मना ।
यूथे न निष्ठा वृषभो वि राजसि ॥

हे पवित्र परमात्मन् ! जब आप इन द्यु और पृथिवी में तथा सब भुवनों में अपने बल से भीतर व्याप्त होते हैं, तब झुण्ड में स्थित बैल के समान, विशेष रूप से शोभित होते हैं ।

१४९७. इममू षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम् । अग्ने देवेषु प्र वोचः ।

चौथा सूक्त— हे परमात्मन् ! आप हमारे लिये नवीन सम्पन्न किये, प्राणरक्षक अन्न का तथा गानकर्ता के रक्षक वेद का विद्वानों में, उत्तम रूप से प्रकाश करते हैं ।

१४९८. विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ । सद्यो दाशुषे क्षरसि ॥

हे विचित्र प्रकाशयुक्त प्रभो ! आप आत्म-समर्पक भक्त के लिये नदी के पास से नहरों के समान, अपने भण्डार से कुछ ज्ञान बाँट देते हैं और शीघ्र ही आनन्द की वर्षा करते हैं ।

१४९९. आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु । शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ॥

हे प्रभो ! उत्कृष्ट द्युलोक के तथा मध्यम अन्तरिक्ष के बलयुक्त पदार्थों को हमें प्राप्त कराइये और समीपस्थ पृथिवी के धन को भी दीजिये ।

१५००. अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह । अहं सूर्य इवाजनि ।

पाँचवाँ सूक्त— क्योंकि मैंने पिता परमेश्वर से सत्य-ज्ञान वेद की बुद्धि को ग्रहण कर लिया है, अतः मैं सूर्य के समान तेजस्वी हो गया हूँ ।

१५०१. अहं प्रत्नेन जन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत् । येनेन्द्रः शुष्ममिद्दधे ॥

मैं अपने प्रवाह से अनादि जन्म के द्वारा, मेधावी के समान, वाणियों को प्रकट करता हूँ जिससे परमेश्वर अवश्य मुझे बलधारण करावे ।

१५०२. ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः । ममेद् वर्धस्व सुष्टुतः ।

हे परमेश्वर ! जो आपकी अच्छे प्रकार स्तुति नहीं करते और जो मन्त्रों के द्रष्टा अच्छे प्रकार स्तुति करते हैं । उन दोनों से स्तुत आप मेरी अवश्य वृद्धि कीजिये ।

दूसरा खण्ड

१५०३. अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्जोषि ब्रह्म सहस्कृत ।
ये देवत्रा य आयुषु तेभिर्नो महया गिरः ।।

छठा सूक्त -- हे योगबल के साक्षात्कृत परमात्मन् ! आप सब विद्वान् उपासकों के साथ वेद-ज्ञान का सबको सेवन कराते हैं। विद्वानों में तथा बड़ी आयु वाले मनुष्यों में जो उपासक हैं, उनके द्वारा हमें वेदवाणी का उपदेश दिलाइये।

१५०४. प्र स विश्वेभिरग्निभिरग्निः स यस्य वाजिनः ।
तनये तोके अस्मदा सम्यङ्वाजैः परीवृतः ।।

जिसकी ज्ञानी प्रशंसा करते हैं ऐसे आप, तथा सब विद्वानों सहित तथा भौतिक-सूर्य, विद्युत् आदि अग्नियों द्वारा अच्छे प्रकार ज्ञान और कर्म से युक्त हुए आप हमारे पुत्र-पौत्रों के लिये भी उपास्य-रूप में प्राप्त होइये।

१५०५. त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय । त्वं नो देवतातये रायो दानाय चोदय ।।

हे परमात्मन् ! आप विद्वानों द्वारा हमारे वेदज्ञान और यज्ञ की वृद्धि कीजिये। आप हमें देवयज्ञ तथा धन का दान करने के लिये प्रेरित कीजिये।

१५०६. त्वे सोम प्रथमा वृक्तबर्हिषो महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः ।
स त्वं नो वीर वीर्याय चोदय ।।

सातवाँ सूक्त—हे प्रेरक तथा वीर परमात्मन् ! देह-बन्धन को काटने वाले मुख्य उपासक-जन महान् ज्ञान, बल तथा यश के लिये आपमें अपनी बुद्धि लगाते हैं। वह प्रसिद्ध आप हमें बल-प्राप्ति के लिये प्रेरित कीजिये।

१५०७. अभ्यभि हि श्रवसा ततर्दिथोत्सं न कंचिञ्जनपानमक्षितम् ।
शर्याभिर्न भरमाणो गभस्त्योः ।।

हे प्रभो ! जैसे कोई जल भरने वाला व्यक्ति मनुष्यों के पीनेयोग्य अक्षय जल-भण्डार में से, बाहों से पकड़ी ढेंकुल द्वारा, जलको बाहर निकालता है, उसी प्रकार आप मनुष्यों के सेवनयोग्य अपने अक्षय आनन्द-भण्डार को ज्ञान-द्वारा उद्भिन्न कर देते हैं।

१५०८. अजीजनो अमृत मर्त्याय कमृतस्य धर्मन्नमृतस्य चारुणः ।
सदासरो वाजमच्छा सनिष्यदत् ।।

हे अमृत परमेश्वर ! आप अविनाशी, सुन्दर और सच्चे धर्ममार्ग में मनुष्य के लिये अमृत-सुख को प्रकट करते हैं और ज्ञान प्रदान करते हुए अच्छे प्रकार से प्रकट होते हैं।

१५०९. एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु । प्र राधांसि चोदयते महित्वना ।।

आठवाँ सूक्त— हे उपासको ! अपने ऐश्वर्यपूर्ण आत्मा को परमेश्वर की प्राप्ति के लिये ज्ञान से सींचो। वह परमेश्वर के आनन्द का भोग करता है। वह परमेश्वर अपनी महिमा से ज्ञान तथा धन को प्रदान करता है।

१५१०. उपो हरीणां पतिं राधः पृञ्चन्तमब्रवम्। नूनं श्रुधि स्तुवतो अश्व्यस्य ॥

हे प्रभो ! प्राणों तथा इन्द्रियों के स्वामी और ज्ञान तथा धन को देनेवाले आपकी उपासना करके मैं यह कह रहा हूँ कि आप स्तुति करने वाले तथा गतिशील उपासक की प्रार्थना को अवश्य सुनिये।

१५११. न ह्या३ऽङ्गपुरा च न जज्ञे वीरतरस्त्वत्। न की राया नैवथा न भन्दना ॥

हे प्रिय परमेश्वर ! पहले कल्पों में भी, ऐश्वर्य में, रक्षकता तथा व्यापकता में और स्तुति की योग्यता में आपसे अधिक श्रेष्ठ वीर कोई नहीं हुआ।

१५१२. नवं व ओदतीनां नदं योयुवतीनाम्। पतिं वो अघ्न्यानां धेनूनामिषुध्यसि ॥

हे मनुष्यो ! अध्यात्म-ज्ञान का उपदेश करने वाली और कर्म का आदेश करने वाली ऋचाओं के उपदेश करनेवाले परमेश्वर की याचना करो।

तीसरा खण्ड

१५१३. देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्वासिचम्।
उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते ॥

१०वाँ सूक्त— हे मनुष्यो ! ज्ञान आदि धन को देने वाला देव परमात्मा तुम्हारे भरपूर भक्ति-दान को स्वीकार करे। तुम अपने को ज्ञान से सींचो और उपासना से पूर्ण करो। वह परमात्मा तत्काल ही अभिलषित फल देगा तथा वृद्धि करेगा।

१५१४. तं होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत।
दधाति रत्नं विधते सुवीर्यमग्निर्जनाय दाशुषे ॥

हिंसारहित उपासना के सम्पादक तथा सर्वज्ञ उस परमात्मा को विद्वज्जन अपना धारण-कर्त्ता बनाते हैं। वह ज्ञानवान् परमेश्वर दानशील उपासक-मनुष्य के लिये रमणीय धन तथा सुन्दर बल को धारण करता है।

१५१५. अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन् व्रतान्यादधुः।
उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्तु नो गिरः।

११वाँ सूक्त—उपासकों को सबसे श्रेष्ठ मार्ग-दर्शक वह परमात्मा हृदय में साक्षात् हो जाता है, जिसके आधार पर वे अपने व्रतों का धारण करते हैं। उत्तम गुणयुक्त श्रेष्ठों की वृद्धि करनेवाले उस परमात्मा के प्रति हमारी वाणियाँ प्रकट हों।

१५१६. यस्माद्रेजन्त कृष्टयश्चर्कृत्यानि कृण्वतः ।
सहस्रसां मेधसाताविव त्मनाग्निं धीभिर्नमस्यत ।।

हे मनुष्यो ! तुम कर्त्तव्यकर्म करानेवाले जिस परमात्मा से मनुष्य काँपते हैं, उस सहस्रों धनों के दाता प्रभु की, मेधा (बुद्धि) की प्राप्ति के कार्य में, अपने कर्मों तथा बुद्धि के द्वारा स्वयं उपासना करो।

१५१७. प्र दैवोदासो अग्निर्देव इन्द्रो न मज्मना ।
अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि ।।

स्वयं द्योतमान तथा प्रकाश का दाता परमात्मा विद्युत् तथा सूर्य के समान, अपनी सामर्थ्य से पृथिवी माता के चारों ओर सर्वत्र, और दुःखरहित अपने आनन्दस्वरूप में स्थित है।

१५१८. अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ।

१२वाँ सूक्त—हे परमात्मन् ! आप हमारी आयु को पवित्र करते हैं, आप हमें बल तथा अन्न प्रदान कीजिये और बुरे, लोभी तथा क्रोधी जनों को दूर रखकर दण्ड दीजिये।

१५१९. अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयम् ।।

परमात्मा ज्ञानस्वरूप, वेदवाणी तथा संसार का द्रष्टा, पवित्र, पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के लिये तथा सब जनों के लिये हितकारी है, उस महान् प्राणों के भी प्राण से हम याचना करते हैं।

१५२०. अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधद्रयिं मयि पोषम् ।।

हे परमात्मन् ! उत्तम कर्मों के साधक आप हमें पवित्र कीजिये तथा तेज और उत्तम बल प्राप्त कराइये। मुझ में ऐश्वर्य, प्राण, बल तथा पुष्टि को धारण कराइये।

१५२१. अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया । आ देवान् वक्षि यक्षि च ।।

तेरहवाँ सूक्त-- हे पवित्र करने परमात्मन् ! आप दीप्तिस्वरूप तथा आनन्द-दायक दान-प्रतिदान करने की शक्ति से सब देवों को धारण करते और नियम में सङ्गत रखते हैं।

१५२२. तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम् । देवाँ आ वीतये वह ।।

हे विचित्र प्रकाशयुक्त तथा प्रकाशमान, पदार्थों के प्रेरक प्रभो ! सब के द्रष्टा तथा मोक्षमार्ग दिखानेवाले आपकी हम प्रार्थना करते हैं कि सुखप्राप्ति के लिये हमें दिव्यगुण प्राप्त कराइये।

१५२३. वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि । अग्ने बृहन्तमध्वरे ।।

हे कवि परमात्मन् ! हम यज्ञों में व्यापक, प्रकाशमान तथा महान् आपको हिंसारहित उपासना-यज्ञ में अच्छे प्रकार सन्दीप्त करते हैं।

चौथा खण्ड

१५२४. अवा नो अग्न ऊतिभिर्गायत्रस्य प्रभर्मणि । विश्वासु धीषु वन्द्य ॥

चौदहवाँ सूक्त— समस्त कर्मों में वन्दना-योग्य परमेश्वर ! आप अपनी रक्षाओं के द्वारा, प्राण-रक्षक शरीर के पोषण-कार्य में हमारी रक्षा कीजिये।

१५२५. आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यम् । विश्वासु पृत्सु दुष्टरम् ॥

हे प्रकाशस्वरूप प्रभो ! आप हमारे लिये विपत्तिनाशक, वरण करने योग्य तथा सब मनुष्यों में और संग्रामों में न समाप्त होनेवाले ऐश्वर्य को प्राप्त कराइये।

१५२६. आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुपोषसम् । मार्डीकं धेहि जीवसे ॥

हे परमात्मन्! आप हमारे जीवन के लिये उत्तम ज्ञान के द्वारा समस्त आयु के पोषक और सुख-दायक ऐश्वर्य को हमें धारण कराइये।

१५२७. अग्निं हिन्वन्तु नो धियः सप्तिमाशुमिवाजिषु । तेन जेष्म धनं धनम् ॥

१५वाँ सूक्त— हमारे कर्म और स्तुतियाँ परमात्मा का, संग्रामों में शीघ्रगामी अश्व के समान, हमारे प्रति प्रेरित करें जिससे हम बहुत धन को विजय करें।

१५२८. यया गा आकरामहै सेनयाग्ने तवोत्या । तां नो हिन्व मघत्तये ॥

हे प्रभो ! आपकी जिस रक्षारूप सेवा से हम वेदवाणियों तथा इन्द्रियों को साक्षात् प्राप्त करते हैं, उस अपनी शक्ति को हमें धन प्राप्त कराने के लिये प्रेरित कीजिये।

१५२९. आग्ने स्थूरं रयिं भर पृथुं गोमन्तमश्विनम् । अङ्धि खं वर्तया पविम् ॥

हे परमेश्वर ! आप हमें गौओं तथा अश्वों से युक्त बहुत-सा स्थिर धन और ऐश्वर्य प्राप्त कराइये, हमारे लिये सुख को प्रकाशित कीजिये और पापनाशक यज्ञ तथा ज्ञानरूपी वज्र को प्रयोग कीजिये।

१५३०. अग्ने नक्षत्रमजरमा सूर्यं रोहयो दिवि । दधज्ज्योतिर्जनेभ्यः ॥

हे परमात्मन् ! आपने द्युलोक में सदा गतिशील सूर्य को स्थापित कर रक्खा है, वह मनुष्यों के लिये प्रकाश को धारण करता है।

१५३१. अग्ने केतुर्विशामसि प्रेष्ठः श्रेष्ठ उपस्थसत् । बोधा स्तोत्रे वयो दधत् ॥

हे परमेश्वर ! आप सब प्राणियों के लिये ज्ञान देने वाले, सब से प्रिय और श्रेष्ठ होकर सबके पास (हृदय में) विराजमान हैं; स्तोता के लिये बोध देने वाले होकर अन्न और जीवन को धारण कराते हैं।

१५३२. अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् । अपां रेतांसि जिन्वति ।।

१६वाँ सूक्त— ज्ञान-सम्पन्न तथा अग्रणी-परमात्मा सब का शिरोमणि, द्युलोक से भी ऊँचा तथा पृथिवी का रक्षक और स्वामी है। वह लोकों तथा कर्मों की बीज सत्ताओं को शरीर आदि में प्रेरित कर उनको यथासमय जीवनदान देता है।

१५३३. ईशिषे वार्यस्य हि दात्रस्याग्ने स्वःपतिः । स्तोता स्यां तव शर्मणि ।।

हे परमात्मन् ! आप सुख के रक्षक तथा स्वामी हैं, आप दान देने और स्वीकार करने योग्य धन के ईश हैं। मैं आपकी शरण में रहकर आप का स्तोता होऊँ—(यही इच्छा है)।

१५३४. उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते । तव ज्योतींष्यर्चयः ।।

हे परमेश्वर ! आपकी शुद्ध दीप्तियाँ सबको प्रकाशित करती हुई सदा स्वयं उदय होती हैं। ये सब कान्तियाँ आप की ही ज्योतियाँ हैं।

—०—

पन्द्रहवाँ अध्याय दूसरा अर्धप्रपाठक

(१५३५ मन्त्र से १५७२ मन्त्र तक)

सूक्तों के अनुसार ऋषि, देवता, छन्द और स्वर

ऋषिः— १, ११ गोतमो राहूगणः, २, ९ विश्वामित्रः, ३ विरूप आङ्गिरसः, ४, ७ भर्गः प्रागाथः, ५ त्रित आप्त्यः, ६ उशना काव्यः; ८ सुदीतिपुरुमीढौ अथवा दो में एक; १० सोभरिः काण्वः; १२ गोपवन आत्रेयः; १३ भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा; १४ प्रयोगो भार्गवः, पावकोऽग्निर्बार्हस्पत्यो वा, गृहपतियविष्ठौ सहसः सुतौ अथवा दोनों में से एक ।।

देवता—अग्निः ।।

छन्दः— १—३, ६, ९, १२ (२, ३), १४ गायत्री; ४, ७, ८ बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती+२ सतोबृहती); ५ त्रिष्टुप्; ; १० काकुभः प्रगाथः (१ ककुबुष्णिक्+२ सतोबृहती, ११ उष्णिक्, १२ आनुष्टुभः प्रगाथः (१ अनुष्टुप्+२, ३ गायत्री); १३ जगती ।।

स्वरः—१—३, ६, ९, १२ (२—३), १४ षड्जः; ४ (१), ७ (१), ८ (१) मध्यमः, ४ (२), ७ (२), ८ (२), १० (२) पञ्चमः; ५ धैवतः, १० (१) ११ ऋषभः; १२ (१) गान्धारः; १३ निषादः ।।

प्रथम खण्ड

१५३५. कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वरः । को ह कस्मिन्नसि श्रितः ।

पहला सूक्त— हे परमात्मन् ! मनुष्यों में आपका बन्धु कौन है ? आपकी प्रजाओं का आपके अतिरिक्त बन्धु कौन है ? अर्थात् कोई नहीं। प्रजाओं के बन्धु सुखस्वरूप आप ही हैं। यज्ञ को जन्म

देनेवाला कौन है ? सुखस्वरूप आप ही हैं, अन्य कोई नहीं । आप कौन हैं, और किस पर आश्रित हैं ? अर्थात किसी पर नहीं, किन्तु आप स्वयं सुखस्वरूप हैं और अपने आनन्दस्वरूप में आश्रय किये हुए हैं।

१५३६. त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः । सखा सखिभ्य ईड्यः ॥

हे प्रभो ! आप मनुष्यों के बन्धु और प्यारे मित्र हैं तथा सखा जीवों के द्वारा स्तुति किये जाने योग्य समानरूप से चेतन और उनके मित्र हैं ।

१५३७. यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऋतं बृहत् । अग्ने यक्षि स्वं दमम् ।

हे परमात्मन् ! आप हमारे प्राण और अपान को संगत कीजिये । विद्वानों तथा हमारी इन्द्रियों को महान् सत्य ज्ञान दीजिये और अपने घर (ब्रह्माण्ड तथा हृदय में) संगत होइये तथा बल दीजिये ।

१५३८. ईडेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः । समग्निरिध्यते वृषा ॥

दूसरा सूक्त— ज्ञानरूपी प्रकाश से सम्पन्न परमात्मा, अज्ञानरूपी अन्धकारों को दूर करता हुआ, साक्षात् करने योग्य, स्तुति योग्य और नमस्कार के योग्य है । वही श्रेष्ठ सुखवर्षक प्रभु हृदय में प्रकाशित किया जाता है ।

१५३९. वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः । तं हविष्मन्त ईडते ।

प्राकृतिक शक्तियों को धारण करनेवाला, प्राण के समान वर्तमान परमेश्वर हृदय में प्रकाशित किया जाता है । भक्तलोग उसकी स्तुति करते हैं ।

१५४०. वृषणं त्वा वयं वृषन् वृषणः समिधीमहि । अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥

हे ज्ञानों के वर्षक प्रभो ! सुखवर्षक, बलवान् और प्रकाशमान आपका हम उपासक हृदय में अच्छे प्रकार से ध्यान करते हैं ।

१५४१. उत्ते बृहन्तो अर्च्चयः समिधानस्य दीदिवः । अग्ने शुक्रास ईरते ॥

तीसरा सूक्त— हे परमात्मन् ! प्रदीप्त आपकी बड़ी-बड़ी तेजोमय सूर्य आदि ज्वालायें आकाश में गति कर रही हैं ।

१५४२. उप त्वा जुह्वो३ मम घृताचीर्यन्तु हर्यत । अग्ने हव्या जुषस्व नः ॥

प्रलय के समय सबको आहरण करनेवाले प्रभो ! मेरी तेज को धारण करनेवाली तथा दान-प्रतिदान करनेवाली इन्द्रियाँ आपके प्रति ही गति करें । आप हमारी स्तुतियों को स्वीकार करें ।

१५४३. मन्द्रं होतारमृत्विजं चित्रभानुं विभावसुम् । अग्निमीडे स उ श्रवत् ॥

मैं उपासक आनन्दस्वरूप, सृष्टि के सम्पादक, प्रत्येक ऋतु में उपास्य, विचित्र प्रकाशयुक्त, तथा विशेष दीप्ति से जीवों को वास देनेवाले उस परमात्मा की स्तुति करता हूँ । वही परमेश्वर अवश्य सुनता है ।

१५४४. पाहि नो अग्न एकया पाह्यू३त द्वितीयया।
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥

चौथा सूक्त — हे बलों के रक्षक तथा सबको वास देनेवाले परमात्मन्! आप एक ऋग्, दूसरी—यजु; तीसरी—साम और चौथी अथर्वरूपी वेदवाणी से तथा वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती और परा—इन चारों वाणियों से हमारी रक्षा कीजिये।

१५४५. पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराव्णः प्र स्म वाजेषु नोऽव।
त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतातय आपिं नक्षामहे वृधे ॥

हे प्रभो! आप दान न करनेवाले यज्ञविरोधी सभी राक्षसों से हमको बचाइये और संग्रामों में भी हमारी रक्षा कीजिये। हम अत्यन्त समीप में स्थित आपको ही विद्वानों की रक्षा और अपनी वृद्धि के लिये अपना बन्धु जानकर शरण में आते हैं।

दूसरा खण्ड

१५४६. इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमाँ अदर्शि।
चिकिद्वि भाति भासा बृहतासिक्नीमेति रुशतीमपाजन् ॥

पाँचवाँ सूक्त— हे दीप्तियुक्त परमात्मन्! आप सबके स्वामी तथा सबके भीतर व्यापक हैं और प्रकाशमान तथा दुष्टों को रुलानेवाले दण्ड-विधाता होकर उपासक जीवात्मा के लिये आनन्द के उत्पादक दिखाई देते हैं।—आप सर्वज्ञ होकर बड़े ज्ञानमय प्रकाश से प्रकाशमान हो रहे हैं और संसार की जागृत अवस्था को दूरकर प्रलय रूप में और प्रलय अवस्था को दूरकर जागृत रूप में प्राप्त कराते हैं।

१५४७. कृष्णां यदेनीमभि वर्पसाभूज्जनयन्योषां बृहतः पितुर्जाम्।
ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्य स्तभायन् दिवो वसुभिररतिर्वि भाति ॥

सदा गतिशील परमात्मा जब सबका कर्षण करनेवाली अन्धकाराच्छन्न प्रकृति को अपने तेज से व्याप्त करता है और महान् पालक स्वयं अपने से उत्पन्न, परमाणुओं के मिश्रण तथा अमिश्रणवाली सृष्टि को उत्पन्न करता है। उस समय द्युलोक के लोकों के साथ-साथ सूर्य के दीप्तिमय पिण्ड को ऊपर आकाश में स्थापित करता हुआ स्वयं सबसे अधिक प्रकाशमान होता है।

१५४८. भद्रो भद्रया सचमान आगात् स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात्।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन् रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात् ॥

कल्याणकारी परमात्मा कल्याणकारी प्रकृति के साथ युक्त होकर सृष्टि की उत्पत्ति के समय सर्वत्र अन्दर गति करता है और फिर वही प्रलय से पूर्व, सृष्टि की आयु का नाशक होकर, स्वयं आगे दौड़नेवाली प्रकृति में व्याप्त हुआ रहता है। इस प्रकार विज्ञानमय नियमों से सर्वत्र व्याप्त होकर रमण करने योग्य इस जगत् को नाना रूपों में चलाता है।

१५४६. कया ते अग्ने अङ्गिर ऊर्जो नपादुपस्तुतिम् । वराय देव मन्यवे ।।

छठा सूक्त—हे सबमें बल और रसरूप में वर्तमान, ज्ञान-सम्पन्न तथा बल के भण्डार देव ! श्रेष्ठ तथा मन्युस्वरूप आपकी किस वाणी से स्तुति करूँ।

१५५०. दाशेम कस्य मनसा यज्ञस्य सहसो यहो । कदु वोच इदं नमः ।।

हे सहनशीलता से स्मरण करने योग्य प्रभो ! हम किस आत्मा को मन से आपके समर्पण कर दें ? और किस प्रकार 'यह नमस्कार है' ऐसा कहें ? (मन, वाणी तथा आत्मा सब आपके लिये पहले ही अर्पित की जा चुकी हैं)।

१५५१. अधा त्वं हि नस्करो विश्वा अस्मभ्यं सुक्षितीः । वाजद्रविणसो गिरः ।।

हे परमात्मन् ! निश्चय ही आपने हमारे लिए उत्तम निवास भूमियाँ बनाई हैं और हमारे लिये ही ज्ञान-धन से सम्पन्न वेदवाणियाँ उत्पन्न की हैं।

१५५२. अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे ।।

सातवाँ सूक्त—हे परमात्मन् ! आप ज्ञान आदि प्रकाशमान शक्तियों के साथ हमें प्राप्त होइये। दान और आदान करनेवाले आपको हम स्वीकार करते हैं। श्रेष्ठ आपको हम अच्छे प्रकार से एकाग्र की हुई ज्योतिष्मती प्रज्ञा से अपने हृदय में प्राप्त करके जानें।

१५५३. अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश्चरन्त्यध्वरे ।
ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ।।

हे योगबल से ज्ञान प्राप्त करने योग्य, स्वयं प्रकाशमान परमात्मन् ! आपको प्राप्त करने के लिये ही इस हिंसा रहित उपासना-यज्ञ में गतिशील प्राण तथा इन्द्रियाँ विचरण करती हैं। हम आनन्द-रस से आत्मा का पालन करने वाले, दीप्तिरूप किरणों से युक्त सर्वश्रेष्ठ परमात्मा की ही समस्त श्रेष्ठतम कार्यों में याचना करते हैं।

१५५४. अच्छा नः शीरशोचिषं गिरो यन्तु दर्शतम् ।
अच्छा यज्ञासो नमसा पुरुवसुं पुरुप्रशस्तमूतये ।।

आठवाँ सूक्त—हमारी वाणियाँ शान्तप्रकाश तथा ज्ञानद्वारा मार्गदर्शक परमात्मा को अच्छे प्रकार प्राप्त हों। हमारे ज्ञान-यज्ञ भी श्रद्धासहित, उसी सबको वास देने वाले तथा सब से श्रेष्ठ परमात्मा को अच्छे प्रकार प्राप्त हों।

१५५५. अग्निं सूनुं सहसो जातवेदसं दानाय वार्याणाम् ।
द्विता यो भूदमृतो मर्त्येष्वा होता मन्द्रतमो विशि ।।

उपासना के बल से प्राप्त करने योग्य, सर्वव्यापक तथा सर्वज्ञ उस परमात्मा को, धरणीय पदार्थों के दान के लिये, हम प्राप्त हों। जो अमृत होकर दो प्रकार से अनुभव में आता है—एक, मनुष्यों में कर्म-फलों का दाता होकर और दूसरे प्रजाओं में परम आनन्द का दाता होकर।

तीसरा खण्ड

१५५६. अदाभ्यः पुर एता विशामग्निर्मानुषीणाम् । तूर्णी रथः सदा नवः ॥

नवाँ सूक्त--शीघ्रगामी, रमण-शील तथा सदा नवीन यह गतिशील तथा अमर जीवात्मा की मनुष्य–योनिकी प्रजाओं में अगले शरीरों में भी प्राप्त होता है।

१५५७. अभि प्रयांसि वाहसा दाश्वाँ अश्नोति मर्त्यः । क्षयं पावकशोचिषः ॥

दानशील मनुष्य वहन करने वाले आत्मा के द्वारा ही सब सुखों और भोग्य पदार्थों को प्राप्त करता है और पवित्र तेज वाले परमात्मा के आश्रय—मोक्ष को भी प्राप्त करता है।

१५५८. साह्वान् विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानाममृक्तः । अग्निस्तुविश्रवस्तमः ॥

अन्न आदि भोग्य साधनों से सम्पन्न जीवात्मा सब आक्रामक काम-क्रोध आदि को वश में करता हुआ इन्द्रियों का कार्य सम्पादक और अविनाशी है।

१५५९. भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः । भद्रा उत प्रशस्तयः ॥

दसवाँ सूक्त--ध्यान किया हुआ परमात्मा हमारा कल्याण करने वाला हो। हे उत्तम ऐश्वर्य-शाली प्रभो ! हमारा दान, हिंसा–रहित कार्य और संकीर्तन आदि सभी कल्याणकारी हों।

१५६०. भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये येना समत्सु सासहिः ।
अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां वनेमा ते अभिष्टये ॥

हे प्रभो ! अज्ञान आदि के नष्ट करने के काम में आप हमारे मन को कल्याणकारी कीजिये जिससे आत्मिक संग्रामों में उपासक समर्थ हो सके। समस्त प्रकार के शत्रुओं के स्थिर बल को आप दबा दीजिये। अभीष्ट प्राप्ति के लिये हम आपकी भक्ति करते हैं।

१५६१. अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो । अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ॥

ग्यारहवाँ सूक्त—हे आत्मबल के पालक तथा सर्वज्ञ प्रभो ! आप पशु, प्रकाश, अन्न और विज्ञान के स्वामी हैं। हमें महान् ज्ञान तथा अन्न प्रदान कीजिये।

१५६२. स इधानो वसुष्कविरग्निरीडेन्यो गिरा । रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥

वह प्रकाशशील, सबको वास देने वाला, कवि तथा ज्ञानसम्पन्न परमात्मा वाणी द्वारा स्तुति योग्य है। हे बहुशक्ति-सम्पन्न प्रभो ! आप हमारे लिये ऐश्वर्ययुक्त ज्ञान को दीजिये।

१५६३. क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोपसः । स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ।

हे प्रकाशमान, तीक्ष्ण स्वरूप तथा ज्ञानसम्पन्न परमात्मन् ! आप स्वयं अपने बल से दिन और रात सब समयों में दुष्ठों और दुष्ट भावों को दूर भगा दीजिये और समूल भस्म कर दीजिये ।

चौथा खण्ड

१५६४. विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।
अग्निं वो दुर्यं व चः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥

१२वाँ सूक्त—हे मनुष्यो ! तुम प्राणी-मात्र के पूज्य, व्यापक, अत्यन्त प्रिय- तथा शरीर के हितकारी जिस परमात्मा से ज्ञान तथा अन्न की याचना करते हो उसी के ज्ञान को मैं सुख के लिये मनन करने योग्य मन्त्रों द्वारा वर्णन करता हूँ ।

१५६५. यं जनासो हविष्मन्तो मित्रं न सर्पिरासुतिम् । प्रशंसन्ति प्रशस्तिभिः ।

ज्ञानी भक्त-पुरुष मित्र के समान, सर्पणशील मनको प्रेरित करने वाले जिस परमात्मा की प्रशंसा करते हैं (उसका वर्णन करता हूँ)

१५६६. पन्यांसं जातवदेसं यो देवतात्युद्यता । हव्यान्यैरयद् दिवि ॥

हम उस अति प्रशंनीय, जगत् के व्यवहार को चलाने वाले तथा सर्वज्ञ परमात्मा की स्तुति करते हैं, जो देवों के हितकर द्युलोक में, सदा नियम तथा कार्य में उद्यत सूर्य आदि लोकों को प्रेरित करता है ।

१५६७. समिद्धमग्निं समिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो अध्वरे ध्रुवम् ।
विप्रं होतारं पुरुवारमद्रुहं कविंसुम्नैरीमहे जातवेदसम् ॥

तेरहवाँ सूक्त—अहिंसामय उपासना में सबसे पहले स्थिररूप से धारण किये गये सर्वत्र अच्छे प्रकार से प्रकाशमान, शुद्ध तथा पवित्र परमात्मा को मैं ज्ञानयुक्त वाणी से वर्णन करता हूँ । हम उस मेधावी सुखदाता, प्रजारक्षक, द्रोहरहित, कवि तथा सर्वज्ञ परमात्मा की उत्तम मनन द्वारा उपासना करते हैं ।

१५६८. त्वां दूतमग्ने अमृतं युगे युगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम् ।
देवासश्च मर्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे ॥

हे परमात्मन् ! विद्वान् तथा साधारण मनुष्य प्रत्येक युग में अमृतस्वरूप, कर्मफल को पहुँचानेवाले ज्ञान-सन्देश के वाहक, रक्षक तथा स्तुति के योग्य आपको धारण करते हैं और सदा जागनेवाले सर्वव्यापक तथा प्रजापालक आपकी ही, नमस्कार द्वारा, श्रद्धासहित, उपासना करते हैं ।

१५६९. विभूषन्नग्न उभयाँ अनु व्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे ॥
यत्ते धीतिं सुमतिमावृणीमहेऽध स्मा नस्त्रिवरूथः शिवो भव ॥

हे प्रकाशमान परमेश्वर! बद्ध और मुक्त दोनों प्रकार के जीवों को ज्ञान से विभूषित करते हुए तथा मुक्त जीवों को साक्षात् प्राप्त हुए आप द्यु तथा पृथिवी में व्यापक रहते हैं। क्योंकि हम आप के अनुकूल रहकर आपकी उत्तम मति और ध्यान को स्वीकार करते हैं। अतः उत्पादक, पालक तथा सहारक—इन तीन रूपों वाले आप हमारे लिये कल्याणकारी होवें।

१५७०. उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः। वायोरनीके अस्थिरन् ॥

चौदहवाँ सूक्त— हे प्रभो! आपके भक्त की वाणियाँ बार-बार उपदेश करती हुई तथा अपने भावों को प्रकट करती हुई अनन्त आकाश में आपके पास पहुँच रही हैं।

१५७१. यस्य त्रिधात्ववृतं बर्हिस्तस्थावसन्दिनम्। आपश्चिन्नि दधा पदम् ॥

जिस परमात्मा का, सत्त्व, रजस्, तमस् इन तीनों से बना हुआ, अनावृत्त, नाशयुक्त प्रत्यक्ष ब्रह्माण्ड गतिमान् होकर स्थित हैं, उसमें सब लोक स्थान पाये हुए हैं।

१५७२. पदं देवस्य मीळ्हुषोऽनाधृष्टाभिरूतिभिः। भद्रा सूर्य इवोपदृक् ॥

सुखवर्षक परमात्मा का परम पद (मोक्ष) बाधारहित रक्षाओं से युक्त है। उसका साक्षात्कार सूर्य के समान कल्याणकारी है।

—:०:—

सोलहवाँ अध्याय तीसरा अर्धप्रपाठक

(१५७३ मन्त्र से १६१६ मन्त्र तक)

सूक्तों के अनुसार ऋषि, देवता, छन्द और स्वर

ऋषिः— १, ८, १८ मेधातिथिः काण्वः; २ विश्वामित्रः; ३, ४ भर्गः प्रागाथः; ५ सोभरिः काण्वः; ६, १५ शुनःशेप आजीगर्तिः; ७ सुकक्षः; ९ विश्वकर्मा भौवनः; १० अनानतः पारुच्छेपिः; ११ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; १२ गोतमो राहूगणः; १३ ऋजिश्वा; १४ वामदेवः; १६ हर्यतः प्रागाथः; १७ देवातिथिः काण्वः; १९ श्रुष्टिगुः काण्वः; २० पर्वतनारदौ, २१ अत्रिः ॥

देवता— १, ३, ४, ७ ८, १५, १७—१९ इन्द्रः; २ इन्द्राग्नी; ५ अग्निः; ६ वरुणः; ९ विश्वकर्मा १०, २०, २१ पावमानः सोमः; ११ पूषा, १२ मरुतः; १३ विश्वेदेवाः, १४ द्यावापृथिव्यौ, १६ अग्निर्हवींषि वा ॥

छन्दः— १, ३—५, ८, १७—१९ बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती+२ सतोबृहती), २, ६, ७, ११—१६ गायत्री ९ त्रिष्टुप्, १० अत्यष्टिः, २० उष्णिक्, २१ जगती ॥

स्वरः— १ (१), ३ (१), ४ (१). ५ (१), ८ (१) १७ (१), १८ (१), १६ (१) मध्यमः; १ (२), ३ (२), ४ (२), ५ (२), ८ (२), १७ (२), १८ (२), १६ (२), पञ्चमः; २, ६, ११—१६ षड्जः; ६ धैवतः; १० गान्धारः; २० ऋषभः २१ निषादः ॥

पहला खण्ड

१५७३. अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।

समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥

पहला सूक्त — हे जीवात्मन् ! अपनी पूर्ण तृप्ति के लिये, सच्चे, मेधावी तथा प्राण-विद्या के जाननेवाले विद्वान् आपका अच्छे स्वर से गान करते हैं और प्राणायाम द्वारा साधना करते हैं।

१५७४. अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।

अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ॥

जीवात्मा स्वनिष्पादित भक्ति के व्यापक आनन्द में सुख-वर्षक बल को बढ़ा लेता है। मनुष्य पूर्वकल्प के समान इस कल्प में भी इस जीवात्मा की महिमा को वर्णन करते हैं।

१५७५. प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः । इन्द्राग्नी इष आवृणे ।

दूसरा सूक्त— हे जीवात्मन् और परमात्मन् ! वेदज्ञानी तथा सामगायक स्तोता आप दोनों का गुण-वर्णन करते हैं। मैं भी ज्ञान तथा अन्न की प्राप्ति के लिये आपको स्वीकार करता हूँ।

१५७६. इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् । साकमेकेन कर्मणा ॥

हे ब्रह्म और जीव ! आप एक ही योगाभ्यासरूपी कर्म से, विनाशक भावों से पालित ६० पुरों (कामनाओं) को एकसाथ कँपा देते हैं। (१० इन्द्रियों के सत्त्व, रजस् तमस् भेद से और फिर अन्नमय प्राणमय, मनोमय भेद से ६० पुर होते हैं। १० प्राण, १० इन्द्रियाँ, ६ रस, ४ अन्तःकरण इन ३० पुरों के सत्त्व, रजस्, तमस् भेद से भी ६० प्रकार के पुर माने जाते हैं।)

१५७७. इन्द्राग्नी अपसस्पर्युप प्र यन्ति धीतयः । ऋतस्य पथ्या३ अनु ॥

हे परमात्मन् और जीवात्मन् ! ध्यान करने वाले जन सत्यज्ञान (वेद) के मार्गों का अनुगमन करते हुए कर्मों के पार पहुँचते हैं।

१५७८. इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च । युवोरप्तूर्यं हितम् ।

हे ब्रह्म और जीव ! आप दोनों के बल और ज्ञान हृदय में साथ-साथ स्थित हैं। आप दोनों का कर्मों को प्रेरित करने वाला बल भी एकत्र स्थापित है।

१५७९. शग्ध्यू३ षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।

भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥

तीसरा सूक्त— हे शक्तियों के स्वामी परमात्मन् ! आप समस्त रक्षाओं से हमारी अच्छे प्रकार से रक्षा कीजिये। हे शूर ! सब प्रकार के धनों को प्राप्त करनें वाले आप से हम ऐश्वर्य के समान यश भी चाहते हुए आपके अनुकूल आचरण करते हैं।

१५८०. पौरो अश्वस्य पुरुकृद्गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः।
न किर्हि दानं परि मर्धिषत् त्वे यद्यद्यामि तदा भर ॥

हे दिव्य परमेश्वर ! आप भोक्ता जीव के तथा प्राणों के पालन करनेवाले तथा पूर्ण करने वाले हैं, इन्द्रियों के भी पूर्ण करने वाले हैं और तेजस्वी ज्ञान के भण्डार हैं। आपके दिये दान को कोई भी नष्ट नहीं कर सकता। मैं जो-जो माँगता हूँ, उस-उस को भरपूर दीजिये।

१५८१. त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये।
उद्वावृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥

चौथा सूक्त— हे विद्या आदि-धन-सम्पन्न प्रभो ! आप ज्ञानी उपासक के लिये, समस्त प्रकार के धन देने के लिये, ऐश्वर्य प्राप्त कराइये। इन्द्रियों के निरोध के लिये जीवात्मा, मन तथा प्राणों को सुख से पूर्ण कीजिये।

१५८२. त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे।
आ पुरन्दरं चकृम विप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे ॥

हे परमेश्वर ! आप बहुत से सैकड़ों, हजारों धन-समूह को दानी के लिये देते हैं। श्रेष्ठ वचनों से युक्त तथा सामगान करते हुए हम रक्षा के लिये जीवात्मा तथा परमात्मा की, शरीररूपी नगर को भेदन करने वाले (मोक्षदायक) के रूप में, साधना करते हैं।

१५८३. यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम्।
मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्वग्नये ॥

पाँचवाँ सूक्त—मनुष्यों के लिये सुखदाता जो परमात्मा सब प्रकार के धनों को देता है, उसके लिए मधुर भक्ति के वचन, मधुर रसपूर्ण पात्रों के समान, प्रस्तुत किये जावें।

१५८४. अश्वं न गीर्भी रथ्यं सुदानवो मर्मृज्यन्ते देवयवः।
उभे तोके तनये दस्म विश्पते पर्षि राधो मघोनाम् ॥

हे साक्षात् करनेयोग्य, प्रजापालक तथा ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! दिव्य गुणों के चाहने वाले तथा अच्छे भक्तजन वाणियों द्वारा, शरीररूपी रथ के स्वामी तथा भोक्ता जीवात्मा के समान, ब्रह्माण्ड के स्वामी तथा सर्वव्यापक आप का वर्णन किया करते हैं। आप ज्ञानी पुरूषों के पुत्र तथा पौत्रो के लिये भी आराधना योग्य ज्ञान आदि धन दिया करते हैं।

दूसरा खण्ड

१५८५. इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय। त्वामवस्युरा चके ॥

छठा सूक्त— हे वरणीय प्रभो ! मेरी इस पुकार को सुनिये और आज (सदा ही) मुझे सुखी कीजिये । रक्षा चाहता हुआ मैं आपकी प्रार्थना करता हूँ ।

१५८६. कया त्वं न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन् । कया स्तोतृभ्य आ भर ।

सातवाँ सूक्त— हे सुखवर्षक प्रभो ! आप अपनी सुखपूर्ण रक्षा के द्वारा हमें आनन्दित करते हैं । आप उसी सुख से पूर्ण रक्षा से स्तोताओं के लिये आवश्यक पदार्थों से भरपूर कीजिये ।

१५८७. इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे । इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ।।

आठवाँ सूक्त— विद्वानों की रक्षा के लिये, प्रवृत्त हुए अहिंसामय उपासना यज्ञ में, संग्राम में, तथा धन की प्राप्ति के लिये भी हम सभी भक्त परमेश्वर का ही स्मरण करते हैं ।

१५८८. इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत् ।
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे स्वानास इन्दवः ।।

परमेश्वर ने अपने महत्त्व से द्यु और पृथिवी के बीच सर्वत्र अपने बल को फैलाया है, उसी ने सूर्य को प्रकाशित किया है । परमेश्वर में ही सब भुवन नियम से घूम रहे हैं और मुक्त जीवात्मा भी परमेश्वर में मग्न होकर आनन्द-रस का लाभ करते हैं ।

१५८९. विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व तन्वां३ स्वाहिते ।
मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ।।

नवाँ सूक्त— हे विश्व के बनाने वाले परमात्मन् ! ज्ञान से महान् आप स्वयं आधान (उत्पन्न) किये गये इस विस्तृत ब्रह्माण्ड में स्वयं परमाणुओं की सङ्गति तथा पदार्थों का दान करते हैं । साधारण-जन इस विषय में सब ओर से भूल में पड़ जाते हैं, वे भले ही भूल जावें किन्तु इस विषय में ज्ञान-सम्पदक परमेश्वर ही हमारे लिये ज्ञान का उपदेश होवें ।

१५९०. अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि तरति सयुग्वभिः सूरो न सयुग्वभिः ।।
धारा पृष्ठस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः ।
विश्वा यद्रूपा परियास्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः ।।

विद्वान् उपासक, अज्ञान को दूर करनेवाली इस ज्योति से पवित्र होता हुआ, सहायक योग-साधनों के द्वारा, समस्त दोषों को नष्ट कर देता है, जैसे कि सूर्य-किरणों के द्वारा दुष्ट रोग-कीटाणुओं को नष्ट करता है और जैसे वीर नेता सहायकों के द्वारा दुष्टों का नाश करता है, सब के धारण करनेवाले परमात्मा की आनन्द-धारा प्रकाशित हो रही है । प्रकाशमान तथा व्यापक परमात्मा गति करता हुआ सब आकाशस्थ पिण्डों को प्रकाशयुक्त सात महावायुओं द्वारा घेरे हुए है तथा योग की धारणा से पवित्र उपासक सब पदार्थों को सर्पण शील इन्द्रियों में विराजमान गतिशील प्राण-शक्तियों से प्राप्त करता है ।

**१५६१. प्राचीमनु प्रदिशं याति चेकितत्सं रश्मिभिर्यतते दर्शतो रथो दैव्यो दर्शतो रथः ।
अग्मन्नुक्थानि पौंस्येन्द्रं जैत्राय हर्षयन् ।
वज्रश्च यद्भवथो अनपच्युता समत्स्वनपच्युता ।।**

जब जीवात्मा और परमात्मा स्थिरबुद्धि मन्त्री तथा राजा के समान, समाधि में एकत्र स्थिर होते हैं, उस समय ज्ञानी उपासक उत्तम रूप से उपासना-योग्य मार्ग को प्राप्त कर लेता है और उसका सूर्य के समान दर्शनीय रमणशील आत्मा ज्ञान की रश्मियों से मोक्ष के लिये यत्न करता है। उसे मोक्ष की विजय के लिये हर्षित कराते हुए बलशाली वेदमन्त्र और ज्ञानरूपी वज्र प्राप्त होते हैं।

**१५६२. त्वं ह त्यत्पणीनां विदो वसु सं मातृभिर्मर्जयसि स्व आ दम ऋतस्य धीतिभिर्दमे ।
परावतो न साम तद्यत्रा रणन्ति धीतयः ।
त्रिधातुभिररुषीभिर्वयो दधे रोचमानो वयो दधे ।।**

हे उपासक ! तू स्तोताओं के उस जीवन-धन (परमात्मा) को जानता है और सत्यज्ञान को धारण करने वाली ऋतम्भरा प्रज्ञाओं द्वारा मन को दमन करनेवाले अपने आश्रय (परमात्मा) में अपने को शुद्ध करता है। जहाँ ध्यानी रमण करते हैं, वह ब्रह्म दूरस्थित सामगान के समान मनोहर है। योगी उपासक मन, वाणी और शरीर-सम्बन्धी, तथा वायु, अग्नि और जल के सारभूत वात, पित्त और कफसम्बन्धी, तथा तीन प्रकार की धारणा करने वाली इन्द्रियसम्बन्धी दीप्तियों के द्वारा प्रकाशमान होकर चिरस्थायी जीवन और बल को धारण करता है।

तीसरा खण्ड

१५६३. उत नो गोषणि धियमश्वसां वाजसामुत । नृवत्कृणुह्यूतये ।।

११ वाँ सूक्त— हे पोषक प्रभो ! आप हमें इन्द्रियों की प्रेरक, प्राणों की प्रेरक, ज्ञान की प्रेरक और जीवात्मा को श्रेष्ठ रखने वाली बुद्धि को रक्षा के लिये प्रदान कीजिये। ऐसी बुद्धि दीजिये जिससे हम गौ, अश्व, अन्न आदि प्राप्त कर सकें।

१५६४. शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः । विदा कामस्य वेनतः ।।

१२वाँ सूक्त— हे सच्चे बलवाले तथा शरीर को चलाने वाले प्राणों ! तुम्हारा अभ्यास करनेवाले और प्राणायाम के समय स्वेद (पसीना) धारण करने वाले विद्वान्-उपासक की कामना को तुम प्राप्त कराओ।

१५६५. उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये । सुमृडीका भवन्तु नः ।।

१३वाँ सूक्त— जो अमर ईश्वर के पुत्र मनुष्य हैं, जो हमारे पुत्र हैं और जो ज्ञानोपदेशक हैं, वे परमेश्वर की वेदवाणियों को सुनें और हमें सुनावें तथा हमारे लिये सुखदायक हों।

१५९६. प्र वां महि द्यवी अभ्युपस्तुतिं भरामहे । शुची उप प्रशस्तये ।

१४वाँ सूक्त— हे प्राण और अपान ! हम तुम दोनों का महान् गुणवर्णन करते हैं । तुम दोनों उत्तम कीर्ति के योग्य शुद्ध हो ।

१५९७. पुनाने तन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः । ऊह्याथे सनादृतम् ॥

हे प्राण और अपान ! तुम दोनों अपने स्वरूप और बल से एक-दूसरे को गति देते हुए तथा पवित्र करते हुए शोभित हो और सदा से सत्य नियमों को धारण करते हो ।

१५९८. मही मित्रस्य साधथस्तरन्ती पिप्रती ऋतम् । परि यज्ञं नि षेदथुः ॥

हे प्राण और अपान ! सत्य नियमों को वितरण करते हुए और पूर्णतया पालन करते हुए, महान् तुम दोनों मित्र परमेश्वर की साधना करते हो और उपासना यज्ञ का सेवन करते हो ।

१५९९. अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् । वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥

१५वाँ सूक्त— हे प्रभो ! जल के पोत (जहाज) के समान यह तेरा उपासक (मैं) गर्भरूपी समुद्र में प्रविष्ट होकर इस संसार में आता है । आप उससे बचाने की हमारी प्रार्थना को सुनिये ।

१६००. स्तोत्रꣳ राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते । विभूतिरस्तु सूनृता ॥

हे ज्ञान तथा धन के स्वामी, वीर, और वेदवाणी द्वारा संसार के धारक परमेश्वर ! जिस आपकी स्तुति की जाती है, उस आपकी सच्ची और प्यारी वेदवाणी ही हमारी सम्पत्ति होवे ।

१६०१. ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो । समन्येषु ब्रवावहै ॥

हे सैकड़ों प्रज्ञानों से युक्त प्रभो ! इस उपासना में हमारी रक्षा के लिये आप हमारे ऊपर विराजमान रहें, जिससे हम संघर्ष के अवसरों पर आप से उपदेश तथा आदेश लिया करें ।

१६०२. गाव उप वदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा । उभा कर्णा हिरण्यया ॥

१६वाँ सूक्त— हे वाणियो तथा इन्द्रियो ! तुम इस रक्षक शरीर में, रक्षक परमेश्वर के सम्बन्ध में, उपासना के वचन बोलो । यह पृथिवी श्रेष्ठतम कर्म का उत्तम फल देने वाली है । पिता परमेश्वर तथा माता पृथिवी—ये दोनों प्रकाशमय पद (मोक्ष) के प्राप्त कराने में साधन हैं ।

१६०३. अभ्यारमिदद्रयो निषिक्तं पुष्करे मधु । अवटस्य विसर्जने ॥

आदर करने योग्य उपासक, रक्षक देह-बन्धन के छोड़ने के समय, उसके पोषक आत्मा में पूर्णरूप से विद्यमान ब्रह्म के आनन्द को साक्षात् करते तथा सर्वत्र उस आनन्द की वर्षा करते हैं ।

१६०४. सिञ्चन्ति नमसावटमुच्चाचक्रं परिज्मानम् । नीचीनबारमक्षितम् ॥

उपासकजन, निर्बल इन्द्रिय आदि नौ द्वारवाले, अक्षीण, बृद्धता को प्राप्त होनेवाले और उच्च प्राण-चक्रवाले इस शरीर को अन्न द्वारा सबल बनाते है ।

चौथा खण्ड

१६०५. मा भेम मा श्रमिष्मोग्रस्य सख्ये तव ।
महत्ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम् ॥

१७वाँ सूक्त-- हे परमेश्वर ! अति बलवान् आपकी मित्रता में हम किसी से न डरें और न कभी श्रम से दुःखी हों । सुखवर्षक आपका यह सृष्टिरूपी कर्म महान् स्तुतियोग्य है । हम हिंसक, पीडित, असन्तुष्ट तथा कामी मनुष्य को नियम में स्थित तथा विषयों से उपरत हुआ देखें ।

१६०६. सव्यामनु स्फिग्यं वावसे वृषा न दानो अस्य रोषति ।
मध्वा सम्पृक्ताः सारघेण धेनवस्तूयमेहि द्रवा पिब ॥

जब सुखवर्षक परमेश्वर उपासना की सीधी ओर अर्थात् अनुकूल होता है तब दानी वह और उसके दिये हुए पदार्थ इस उपासक की हिंसा नहीं करते । सरवान् रसपूर्ण तथा अमर जीवात्मा से सम्बद्ध और सेवन योग्य भक्तिपूर्ण उपासनायें प्रस्तुत हैं । हे प्रभो आप शीघ्र हृदय में प्रकट होइये और इन्हें शीघ्र स्वीकार कीजिये ।

१६०७. इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥

१८वाँ सूक्त— हे सर्वत्र वास करनेवाले परमेश्वर ! ये आपकी वेद-वाणियाँ और मेरी स्तुतियाँ जगत् में आपकी महिमा को बढ़ाती हैं । अग्नि के समान प्रकाशमान तथा शुद्ध विद्वान् वेदमन्त्रों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं ।

१६०८. अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे ।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥

सहस्रों मन्त्र-द्रष्टाओं द्वारा अपने बल के रूप में स्वीकार किया हुआ यह परमेश्वर भक्त के हृदय में समुद्र के समान उमड़ पड़ता है । इसकी वह महिमा सच्ची है । मैं बुद्धिमानों के राज्य में, यज्ञों (धर्मकार्यों) में, इसके बल की स्तुति करता हूँ ।

१६०९. यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः ।
तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत् सो अज्यते रयिः ॥

१९वाँ सूक्त— यह सब श्रेष्ठ मनुष्य-समूह सेवक के समान जिस परमेश्वर के वेदरूपी कोष का रक्षक है, उस स्वामी, नियन्ता, पापनिवारक दण्ड के धारक, वेदवाणी के पिता परमेश्वर में ही यह सब विद्यमान है । हे प्रभो ! यह ऐश्वर्य आपके लिये ही समर्पित किया जाता है । हे मनुष्य ! परमेश्वर में छिपा हुआ भी वह वेदरूपी धन तेरे लिये अवश्य प्रकट किया जाता है ।

१६१०. तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः ।।
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे स्वानास इन्दवः ।।

स्फूर्ति-युक्त तथा बुद्धिमान् उपासक आनन्दयुक्त तथा तेज के देनेवाले पूजनीय परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं कि हममें ऐश्वर्य और वीर्यवर्धक बल बढ़े तथा ऐश्वर्ययुक्त ज्ञान हमारे लिये प्रेरणा करनेवाले हो।

१६११. गोमन्न इन्दो अश्ववत् सुतः सुदक्ष धनिव । शुचिं च वर्णमधि गोषु धारय ।।

बीसवाँ सूक्त— हे परमेश्वर ! हमारे हृदय में प्रकाशित होकर आप हमारी इन्द्रियों तथा प्राणों पर अधिकार कर, रस का स्रोत बहाइये और हमारी इन्द्रियों तथा वाणियों में अपना पवित्र तथा वरण करने योग्य ज्ञानधारण कराइये।

१६१२. स नो हरीणां पत इन्दो देव प्सरस्तमः । सखेव सख्ये नर्यो रुचे भव ।।

हे जीवात्मा के रक्षक तथा स्वामी, देव-परमेश्वर ! अत्यन्त प्रकाशमान नरों के हितकारी तथा मित्र के लिये मित्र के समान आप हमारे तेज को बढ़ाने के लिये दयालु होइये।

१६१३. सनेमि त्वमस्मदा अदेवं कं चिदत्रिणम् । साह्वाँ इन्दो परि बाधो अप द्वयुम् ।।

हे ऐश्वर्य-शाली प्रभो ! आप हमारे लिये सदा सनातन से वर्तमान हैं। विघ्नों को दूर करनेवाले आप किसी भी अविद्वान् श्रेष्ठगुणरहित, केवल भोगी तथा कपटी मनुष्य को हमसे दूर कीजिये और सुख-दुःख, जन्म-मरण आदि द्वन्द्वों को चाहनेवाले अन्तःकरण को भी दूर कर मोक्ष दीजिये।

१६१४. अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मध्वाभ्यञ्जते ।
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमप्सु गृभ्णते ।।

२१वाँ सूक्त— योगी जन परमात्मा का अच्छे प्रकार विशिष्टता से आत्मा में साक्षात् करते हैं, वे सृष्टिकर्ता प्रभु को हृदय में प्रत्यक्ष करते तथा उसके आनन्द को आत्मा में अनुभव करते हैं। ज्ञान से पवित्र वे उपासकजन परमात्मा के आकर्षण में गतिकरनेवाले, आनन्दवर्षी तथा द्रष्टा जीव को सर्वव्यापक परमात्मा में मग्न कर देते हैं।

१६१५. विपश्चिते पवमानाय गायत मही न धारात्यन्धो अर्षति ।
अहिर्न जूर्णामति सर्पति त्वचमत्यो न क्रीडन्नसरद् वृषा हरिः ।।

हे मनुष्यो ! ज्ञानी तथा पवित्र आत्मा के गुणों का गान करो, शरीर को प्राणधारण करनेवाला वह, तटों को तोड़ने वाली बड़ी जल-धारा के समान, देह के बन्धनों को तोड़कर चला जाता है, पुरानी केंचुली को छोड़कर जानेवाले साँपके समान वह शरीर त्वचा को छोड़कर चला जाता है और एकस्थान से दूसरे स्थान को जानेवाले घोड़े के समान वह गतिशील तथा बलवान् आत्मा खेलता हुआ-सा शरीर को वेग से त्याग देता है।

१६१६. अग्रेगो राजाप्यस्तविष्यते विमानो अह्नां भुवनेष्वर्पितः ।
हरिर्घृतस्नुः सुदृशीको अर्णवो ज्योतीरथः पवते राय ओक्यः ॥

आगे जानेवाला, तेजस्वी, कर्म और प्रज्ञानों में श्रेष्ठ, तथा दिनों का विशेष मान करनेवाला चन्द्रमा के समान अपनी ज्योतियों को बनाने वाला जीवात्मा प्राणों में स्थापित है। वह गतिशील जीवात्मा तेज से देदीप्यमान होकर तथा ज्ञान से नहाकर, मोक्ष का दर्शन करनेवाला, ज्ञानवान् और ज्योतिष्मान् स्वरूप होकर तथा ऐश्वर्य और परमपद (मोक्ष) के योग्य होकर विचरता है।

--०--

आठवाँ प्रपाठक

(१६१७ मन्त्र से १७६४ मन्त्र तक)

सत्रहवाँ अध्याय पहला अर्धप्रपाठक

(१६१७मन्त्र से १६५६ मन्त्र तक)

सूक्तों के अनुसार ऋषि, देवता, छन्द तथा स्वर

ऋषिः— १, ७ शुनःशेप आजीगर्तिः; २ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ३ शंयुर्बार्हस्पत्यः; ४ वसिष्ठः; ५ वामदेवः; ६ रेभसूनु काश्यपौ ८ नृमेधः; ९ ११ गौषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ; १० श्रुतकक्षः; सुकक्षो वाः १२ विरूपः, १३ वत्सः काण्वः; १४ शुनःशेपः ॥

देवता—१, ३, ७, १२ अग्निः, २, ८—११, १३, १४ इन्द्रः; ४ विष्णुः, ५ (१) वायुः, ५ (२—३) इन्द्रवायू; ६ पवमानः सोमः ॥

छन्दः—१, २, ७, ९, १०, १२, १३, १४ (२—३) गायत्री; ३, ८ बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती+२ सतोबृहती) ४ त्रिष्टुप्; ५, ६ अनुष्टुप्; ११ उष्णिक्; १४ (१) एकपदा पङ्क्तिः ॥

स्वरः— १, २, ७, ९, १०, १२ १३, १४ (२—३) षड्जः; ३ (१), ८ (१) मध्यमः; ३ (२), ८ (२) १४ (१) पञ्चमः; ४ धैवतः; ५, ६ गान्धारः; ११ ऋषभः ॥

पहला खण्ड

१६१७. विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः । चनो धाः सहसो यहो ।

पहला सूक्त—ज्ञान तथा योग के बल से प्राप्त करने योग्य, प्रकाशमान परमात्मा ! आप सब नेताओं द्वारा हमें इस वेदवाणी को, इस यज्ञ को और ज्ञान को धारण कराइये।

१६१८. यच्चिद्धि शश्वता तना देवन्देवं यजामहे । त्वे इद्धूयते हविः ॥

हे प्रभो ! यद्यपि सनातन विस्तृत सृष्टि-यज्ञ से हम प्रत्येक देव से अलग-अलग यज्ञ (सङ्गति) करते हैं तथापि वास्तविक हवि (देने योग्य जीवात्मा) आप के लिये ही भेंट की जाती है।

१६१९. प्रियो नो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः । प्रियाः स्वग्नयो वयम् ।।

प्रजाओं का पालक, आनन्ददाय तथा वरण करने योग्य परमात्मा हमारा प्यारा हो तथा ज्ञान-रूपी अग्नि से सम्पन्न होकर हम भी उसके प्यारे हों।

१६२०. इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ।।

दूसरा सूक्त— हे मनुष्यो ! हम आप सब लोगों के लिये, सबसे ऊपर विराजमान परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह अद्वितीय प्रभु हमारा (प्रिय तथा सहायक) हो।

१६२१. स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि । अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ।।

सब पदार्थों को एकसाथ दान देनेवाले श्रेष्ठ प्रभो ! कभी पराजित न होनेवाले आप हमारे गतिशील तथा भोक्ता आत्मा को मुक्त करो।

१६२२. वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा ईशानो अप्रतिष्कुतः ।।

जैसे उत्तम गतिशील वृषभ गोसमूह में पहुँचता है, उसी प्रकार अपने ओज से शक्तिमान् अद्वितीय आप उपासकों को प्राप्त होते हैं।

१६२३. त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय ।
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ।।

तीसरा सूक्त— हे सर्वव्यापक तथा प्रकाशमान परमेश्वर ! पूज्य आप अपनी रक्षा के द्वारा हमें विद्या आदि सब धन प्राप्त कराइये। आप इस समस्त ऐश्वर्य के स्वामी हैं, हमें तथा हमारी सन्तान को प्रतिष्ठा तथा आत्मा की स्थिरता प्राप्त कराइये।

१६२४. पर्षि तोकंतनयं पर्तृभिष्ट्वमदब्धैरप्रयुत्वभिः ।
अग्ने हेडांसि दैव्या युयोधि नोऽदेवानि ह्वरांसि च ।।

हे परमेश्वर ! आप सदा साथ रहनेवाली तथा कार्यतत्पर पालक-शक्तियों के द्वारा हमारे पुत्र तथा पौत्रों को पालन करते हैं। आप हमारे दैविक, भौतिक तथा आत्मिक सङ्कटों को दूर कीजिये।

१६२५. किमित्ते विष्णो परिचक्षि नाम प्र यद्ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि ।
मा वर्पो अस्मदप गूह एतद्यदन्यरूप समिथे बभूथ ।।

चौथा सूक्त— हे सर्वव्यापक परमात्मन् ! जब आप स्वयं कहते हैं कि 'मैं 'शिपिविष्ट' अर्थात् ज्ञानरूपी किरणों में तथा तेजस्वी लोकों में प्रविष्ट हूँ' तो आपका क्या नाम कहा जाये ? वह वर्णन नहीं किया जा सकता। आप उस सौम्य तेजस्वी रूप को हमसे मत छिपाइये, क्योंकि आप दुष्टों के साथ संघर्ष के समय अन्य (उग्र) स्वरूपवाले हो जाते हैं।

१६२६. प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट हव्यमर्यः शंसामि वयुनानि विद्वान् ।
तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान् क्षयन्तमस्य रजसः पराके ॥

हे शिपिविष्ट ! विष्णो ! इन्द्रियों का स्वामी मैं आपके सब कार्यों को जानता हुआ आज आपके स्मरणीय नाम का जप करता हूँ तथा आपके दिये हुए दान की प्रशंसा करता हूँ। तुच्छ तथा निर्बल मैं उपासक इस संसार से परे वर्तमान महान् बलशाली आपकी स्तुति करता हूँ।

१६२७. वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

हे विष्णो ! मैं आपको अपने मुखसे सब कामनाओं का पूरक मानता हूँ। हे तेजोमय ! मेरी भक्ति को स्वीकार कीजिये। मेरी सुन्दर स्तुतिरूप वाणियाँ आपकी महिमा को बढ़ावें। हे विद्वानो ! आप कल्याणकारी साधनों से हमारी सदा रक्षा कीजिये।

दूसरा खण्ड

१७२८. वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु ।
आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥

पाँचवाँ सूक्त— हे गतिशील प्राणवायु ! दिव्य उपासनाओं में, शुद्ध तथा बलशाली मैं तेरे लिये श्रेष्ठ ब्रह्मानन्द-रस को प्राप्त कराता हूँ। प्रेम का पात्र तू मनरूपी वेग से युक्त साधन से आनन्द-रस का सेवन करने के लिये हमें प्राप्त हो।

१६२९. इन्द्रश्च वायवेषां सोमानां पीतिमर्हथः । युवां हि यन्तीन्दवो निम्नमापो न सध्र्यक् ॥

हे प्राण तथा जीवात्मन् ! तुम दोनों ज्ञान तथा आनन्द रसों के सेवन करने के योग्य हो। ऐश्वर्यशाली योगी तुम दोनों के प्रति साधना में उसी प्रकार प्रवृत्त होते हैं जैसे जल नीचे स्थान को एकसाथ जाता है।

१६३०. वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथं शवसस्पती ।
नियुत्वन्ता न ऊतय आ यातं सोमपीतये ॥

हे प्राण तथा जीवात्मन् ! बलवान् तथा बल के रक्षक और मनरूपी घोड़े के साथ तुम दोनों शरीररूपी रथ पर विराजमान होकर हमारी रक्षा के लिये तथा ब्रह्म का आनन्द भोगने के लिये उपासना में लगो।

१६३१. अध क्षपा परिष्कृतो वाजाँ अभि प्र गाहसे ।
यदी विवस्वतो धियो हरिं हिन्वन्ति यातवे ॥

छठा सूक्त— हे जीवात्मन् ! यदि योगी उपासक की बुद्धियाँ मन को (परमात्मा की ओर) जाने के लिये प्रेरित करती हैं तो अज्ञाननाशक चित्शक्ति से सुभूषित तू ज्ञानों के रहस्य तक पहुँच जाता है।

१६३२. तमस्य मर्जयामसि मदो य इन्द्रपातमः ।
यं गाव आसभिर्दधुः पुरा नूनं च सूरयः ॥

इस सोम्य जीवात्मा के उस ज्ञान को हम उपासक शुद्ध करते हैं जो उस ऐश्वर्यशाली आत्मा के द्वारा अच्छे प्रकार से सेवन किया जाता है और जिसको इन्द्रियाँ तथा विद्वान् पहले और अब अर्थात् सदा अपने मुखों से वेदवाणियों द्वारा धारण करते हैं ।

१६३३. तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत । उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम बिभ्रतीः ॥

उस पवित्र जीवात्मा को पुरातन गान-वेदवाणी द्वारा हम वर्णन करते हैं और देवों के नामको धारण करती हुई, उपासनायें भी उसी को समर्थ करती हैं ।

१६३३. अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः । सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥

७वाँ सूक्त— हे प्रभो ! मैं जीवात्मा के समान ही शत्रुओं को निवारण करने की शक्ति रखने वाले ज्ञानसम्पन्न, तथा हिंसारहित उपासनायज्ञों में अच्छे प्रकार प्रकाशमान परमात्मा की नमस्कारों द्वारा वन्दना करता हूँ ।

१६३५. स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः । मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात् ॥

विशाल विश्व में व्यापक, बलद्वारा प्रेरक तथा अच्छे प्रकार से भक्ति करने योग्य वही परमात्मा हमारे लिये सुख का वर्षक होवे ।

१६३६. स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः । पाहि सदमिद्विश्वायुः ॥

हे प्रभो ! सर्वव्यापक तथा पूर्ण आयु देने वाले वह आप दूर और पास में वर्तमान पापी मनुष्य से हमारे शरीर, घर तथा प्रतिष्ठा की रक्षा कीजिये ।

१६३७. त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।
अशस्तिहा जनिता वृत्रतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥

८वाँ सूक्त— हे परमेश्वर ! आप आत्मिक युद्धों में काम-क्रोध आदि सब दुर्गुणों को नष्ट करते हैं। आप नियम को न मानने वालों के नाशक तथा सब के उत्पादक और अज्ञान आदि के दूर करने वाले हैं। आप हिंसक दुष्टों को दूर कीजिये

१६३८. अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा ।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥

हे प्रभो ! जैसे गतिशील बालक के प्रति माता-पिता पीछे-पीछे दौड़ते हैं, वैसे गतिशील आपके बल के पीछे द्यु और पृथिवी तथा प्राण और अपान गति करते हैं। जब आप अज्ञान का नाश कर देते हैं तो मन्युस्वरूप आपके आगे सब काम-क्रोध आदि शत्रु शिथिल पड़ जाते हैं ।

तीसरा खण्ड

१६३९. यज्ञ इन्द्रमवर्धयद् यद्भूमिं व्यवर्तयत्। चक्राण ओपशं दिवि ॥

९वाँ सूक्त— पूजनीय परमेश्वर जीवात्मा की वृद्धि करता है। वह सर्वत्र भूमि में व्यापक है और द्युलोक में भी अपनी महिमा का विस्तार कर रहा है।

१६४०. व्या३न्तरिक्षमतिरन् मदे सोमस्य रोचना। इन्द्रो यदभिनद् बलम् ॥

जब जीवात्मा तामस बल को छिन्न-भिन्न कर देता है तो ईश्वरीय ज्ञान के आनन्द में प्रकाशमान अन्तःकरण को भी शक्तिशाली बना देता है !

१६४१. उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सतीः। अर्वाञ्चं नुनुदे बलम् ॥

उपासक-जीवात्मा हृदय में छिपीहुई वेदवाणियों को ज्ञानी पुरुषों से प्राप्त करता हुआ दूसरों को प्राप्त कराता तथा इन्द्रियों की शक्ति को उन्नत कराता है और तामसबल को नीचा (नष्ट) कर देता है।

१६४२. त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम्। आ च्यावयस्यूतये ॥

१०वाँ सूक्त— हे उपासक ! तू, तुम सबके जीतनेवाले, सब लोकों, वाणियों तथा इन्द्रियों में वर्तमान परमेश्वर को हृदय में प्रत्यक्ष करता है।

१६४३. युध्मं सन्तमनर्वाणं सोमपामनपच्युतम्। नरमवार्यक्रतुम् ॥

(आत्मिक शत्रुओं से) युद्ध में कुशल, सत्यस्वरूप, दूसरे की उपेक्षा न करनेवाले, संसार तथा ज्ञान के रक्षक, अविचलित, नेता और अविनाशी ज्ञान तथा कर्मवाले (परमेश्वर को तू प्रत्यक्ष कर)।

१६४४. शिक्षा ण इन्द्र राय आ पुरु विद्वाँ ऋचीषम। अवा नः पार्ये धने ॥

ऋचाओं द्वारा प्राप्त करने योग्य परमेश्वर ! आप विद्वान् हैं। हमें बहुत से ऐश्वर्य के लिये शिक्षित कीजिये और परम उत्कृष्ट धन मोक्ष में हमारी रक्षा कीजिये।

१६४५. तव त्यदिन्द्रियं बृहत्तव दक्षमुत क्रतुम्। वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यम् ॥

११वाँ सूक्त— हे परमेश्वर ! आपके उस स्वीकरणीय महान् स्वरूप को, आपके बल को, महान् सृष्टिरूपी कर्म को और ज्ञानरूपी वज्र को हमारी बुद्धि साक्षात् करती है।

१६४६. तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः। त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥

हे परमेश्वर ! द्युलोक आपके बल को प्रकट कर रहा है, यह पृथिवी आपके यश को बढ़ा रही है और ये जल तथा पहाड़ आपकी ही स्तुति गा रहे हैं।

१६४७. त्वां विष्णुर्बृहन् क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः। त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम् ॥

हे परमेश्वर ! व्यापक आकाश, स्नेहवान् जल तथा वरणीय अग्नि ये सब महान् आश्रय आप की ही प्रशंसा कर रहे हैं। वायु का बल भी आपके कारण हो हर्षित होता है। शरीर में व्याप्त जीवात्मा और प्राण-अपान् तथा उनका बल आपके अनुकूल रहकर ही हृष्ट-पुष्ट होता है।

चौथा खण्ड

१६४८. नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः अमैरमित्रमर्दय ।।

१२वाँ सूक्त— हे देव परमेश्वर ! नमस्ते। मनुष्य ओज के लिये आपकी स्तुति करते हैं। आप अपने बल से आत्मिक शत्रुओं को नष्ट कीजिये।

१६४९. कुवित्सु नो गविष्टयेऽग्ने संवेषिषो रयिम् । उरुकृदुरु णस्कृधि ।।

हे परमात्मन् ! आप हमारी इन्द्रियों के लाभ के लिये बहुत बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त कराते हैं। हे महान् कार्यसम्पादक प्रभो ! हमें भी महान् कीजिये।

१६५०. मा नो अग्ने महाधने परा वर्ग्भारभृद्यथा । संवर्ग सं रयिं जय ।।

हे प्रभो ! संसार के पोषणरूपी भार को धारण करनेवाले के समान होकर आप हमें संसार-संगाम के बीच में मत छोड़िये तथा मोक्ष-प्राप्ति से दूर न हटाइये प्रत्युत शत्रु-समूह को जिताकर मोक्ष तथा ऐश्वर्य प्राप्त कराइये।

१६५१. समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः । समुद्रायेव सिन्धवः ।।

१३वाँ सूक्त— समुद्र के लिये पहुँचनेवाली नदियों के समान, इस मन्युस्वरूप परमात्मा के लिये प्रेम का आकर्षण रखनेवाली समस्त प्रजायें नम्र होकर नमस्कार करती हैं।

१६५२. वि चिद्वृत्रस्य दोधतः शिरो बिभेद वृष्णिना । वज्रेण शतपर्वणा ।।

परमेश्वर जगत् को कँपानेवाले अज्ञान के शिर (उग्र रूप) को, सैकड़ों पालक शक्तियों से युक्त तथा सुखवर्षक ज्ञानरूपी शस्त्र से भेदन कर देता है।

१६५३. ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्तयत् ।इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ।।

उस समय इस परमेश्वर का वह तेज प्रकाशित होता है जब कि वह शरीर के ऊपर चर्म के समान, द्यु तथा पृथिवी दोनों लोकों में बाहर भी सर्वत्र वर्तमान अनुभव किया जाता है।

१६५४. सुमन्मा वस्वी रन्ती सूनरी ।

१४वाँ सूक्त— संसार का उत्तम नेत्री ईश्वरीय वेदवाणी उत्तम ज्ञानवाली, समस्त धन देनेवाली तथा रमणीय है। शरीर की नेत्री चितिशक्ति प्राणों की स्वामिनी है।

१६५५. सरूप वृषन्ना गहीमौ भद्रौ धुर्यावभि । ताविमा उप सर्पतः ।।

सर्वत्र समानरूप से वर्तमान तथा सुखवर्षक प्रभो ! आप इन भद्र (कल्याणकारी) तथा धुर्य शरीर के धारक जीवात्मा और प्राणों तथा प्राण और अपान में व्याप्त होकर हृदय में प्रकट होईये।

ये दोनों आपके पहुँचने के लिये गति कर रहे हैं। जीवात्मा, गति करनेवाले भद्र तथा धुर्य प्राण अपान के सहयोग से शरीर में आता है।

१६५६. नीव शीर्षाणि मृढ् वं मध्य आपस्य तिष्ठति । शृंगेभिर्दशभिर्दिशन् ॥

जीवात्मा इस प्राप्त हुए शरीर के भीतर दस प्राणों द्वारा ज्ञान तथा कर्म करता हुआ विराजमान है। उपासको ! शिर में रहनेवाले प्राणों को वश में करो।

—:o:—

अठारहवाँ अध्याय दूसरा अर्धप्रपाठक

(१६५७ मन्त्र से १७१० मन्त्र तक)

सूक्तों के अनुसार ऋषि, देवता, छन्द और स्वर

ऋषिः—१ मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्वाङ्गिरसः २ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा; ३ शुनःशेप आजीगर्तिः; ४ युर्बार्हस्पत्यः; ५ मेधातिथिः काण्वः; ६, ९ वसिष्ठः; ७ आयुः काण्वः; ८ अम्बरीषः ऋजिश्वा च; १० विश्वमना वैयश्वः; ११ सोभरिः काण्वः; १२ सप्तर्षयः, १३ कलिः प्रागाथः, १४, १७ विश्वामित्र १५ मेध्यातिथिः काण्वः; १६ निध्रुविः काश्यपः; १८ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; १९ भरद्वाज; ॥

देवता—१.२,४,६,७,९,१०, १३, १५, इन्द्रः; ३, ११, १८, १९ अग्निः; ५ विष्णुः, ८, १२, १६ पवमानः सोमः; १४, १७ इन्द्राग्नी ॥

छन्दः— १—५ १० १६—१९ गायत्री; ६, ७, ९, १२, १३ बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती + २ सतोबृहती); ८ अनुष्टुप्; १० उष्णिक्; ११ काकुभः प्रगाथः (१ ककुबुष्णिक + २ सतोबृहती); १५ बृहती ॥

स्वरः—१ - ५, १४, १६ – १९ षड्जः; ६ (१), ७ (१), ९ (१), १२ (१), १३ (१), १५ मध्यमः; ६ (२), ७ (२), ९ (२), ११ (२), १२ (२), १३ (२) पञ्चमः; ८ गान्धारः १०, ११ (१) ऋषभः ॥

पहला खण्ड

१६५७. पन्यं पन्यमित् सोतार आ धावत मद्याय । सोमं वीराय शूराय ॥

पहला सूक्त— हे उपासको ! तुम आनन्दमय, प्रेरक तथा शूर जीवात्मा के लिये सर्वोत्तम प्रेरक तथा शान्त परमात्मा तक पहुँचाओ।

१६५८. एह हरी ब्रह्मयुजा शग्मा वक्षतः सखायम् । इन्द्रं गीर्भिर्गिर्वणसम् ॥

ब्रह्मके साथ योग करनेवाले तथा शक्तियुक्त प्राण तथा अपान—दोनों इस शरीर में ब्रह्माके सखा जीवात्मा को वेदवाणियों तथा स्तुतियों के द्वारा ब्रह्मतक पहुँचाते हैं।

१६५९. पाता वृत्रहा सुतमा घा गमन्नारे अस्मत् । नि यमते शतमूतिः ॥

उत्पन्न हुए जगत् का रक्षक तथा विघ्न-नाशक परमेश्वर हमारे समीप ही पहुँचा हुआ है। सैंकड़ों शक्तियों तथा रक्षाओं से युक्त वह सबको नियम में रखता है।

१६६०. आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः। न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥

दूसरा सूक्त— हे परमेश्वर! जैसे नदियाँ समुद्र में प्रवेश करती हैं, वैसे ही ऐश्वर्यशाली उपासकजन मुक्त होकर आपमें विचरण करते हैं। आप से बढ़कर कोई नहीं है।

१६६१. विव्यक्थ महिना वृषन्भक्षं सोमस्य जागृवे। य इन्द्र जठरेषु ते ॥

हे सुखवर्षक तथा जागरणशील परमेश्वर! जो उत्पन्न हुआ संसार आपके भीतर, आपके आश्रय में है, उस योग्य संसार को आप अपनी महिमा से व्याप्त कर रहे हैं।

१६६२. अरं त इन्द्र कुक्षये सोमो भवतु वृत्रहन्। अरं धामभ्य इन्दवः ॥

हे विघ्ननाशक परमेश्वर! यह संसार आपके अन्दर रहकर आपकी महत्ता दिखाने के लिये पर्याप्त है, तथा प्रकाशमान लोक भी आपकी धारणाशक्तियों का साक्षात्कार कराने के लिये पर्याप्त हैं।

१६६३. जराबोध तद्विविड्ढि विशे विशे यज्ञियाय। स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥

तीसरा सूक्त— हे स्तुति द्वारा जानने योग्य परमात्मन्! प्रत्येक मनुष्य के हित के लिये आप उस स्थान (हृदय) में प्रवेश कीजिये जहाँ पूज्य तथा रुद्रस्वरूप आपके लिये उत्तम स्तुति की जा रही है।

१६६४. स नो महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः। धिये वाजाय हिन्वतु ॥

महान्, अतुलनीय विश्व में दी हुई गति के द्वारा जानने योग्य तथा अत्यन्त आनन्दित करनेवाला वह परमात्मा बुद्धि तथा ज्ञान और बल पाने के लिये हमें प्रेरित करे।

१६६५. स रेवाँ इव विश्पतिर्दैव्यः केतुः शृणोतु नः। उक्थैरग्निर्बृहद्भानुः ॥

ऐश्वर्यवान् पुरुष के समान प्रजापालक, दिव्यगुणयुक्त, संसार का ज्ञापक, तथा वेदमन्त्रों के कारण बड़ा तेजस्वी परमात्मा हमारी प्रार्थना को सुने।

१६६६. तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने। शं यद् गवे न शाकिने ॥

चौथा सूक्त— हे उपासको! इस जगत् में, ज्ञान प्राप्त कर लेने पर, तुम सब साथ मिलकर सूर्य के समान शक्तिशाली, सबसे पूजित तथा सत्यस्वरुप परमात्मा के लिये उन गुणों का गान करो जो सबके लिये कल्याणकारी हैं।

१६६७. न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः। यत् सीमुप श्रवद्गिरः ॥

जब वह परमात्मा हमारी वाणियों को सुन लेता है तब सर्वत्र वास करनेवाला वह इन्द्रियों तथा प्राणों की शक्ति से युक्तज्ञान और बल के दान को कभी नहीं रोकता।

१६६८. कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत् । शचीभिरप नो वरत् ।।

दुष्टों, दुर्गुणों तथा अज्ञान का नाशक परमात्मा कुत्सित (अल्प) ज्ञानवाले, अपना बहुत-सा (समय, धन आदि) नष्ट करनेवाले, (कई जन्मों में) बहुत से शरीरों का नाश करनेवाले जीवात्मा के, वेदवाणी से शोभित हृदय में, प्रकट होता है और अपनी ज्ञान-प्रेरणाओं से हमारे उस बन्धन को दूर कर देता है।

दूसरा खण्ड

१६६९. इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समूढमस्य पांसुले ।।

पाँचवाँ सूक्त— विष्णु=सर्वव्यापक परमात्मा ने यह संसार बनाया है और पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्यु में व्यापक शक्ति को तीन प्रकार से स्थापित किया है। यह संसार इसके लोकधारक बल में उत्तम रीति से स्थित है। उसने प्रशान्त रेणुओं वाले अन्तरिक्ष में (१) प्रकाशरहित पृथिवी आदि, (२) प्रकाशमय सूर्य आदि, तथा कारणरूप अदृश्य—इन तीनों प्रकार से, जानने योग्य संसार को बनाया है।

१६७०. त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः । अतो धर्माणि धारयन् ।।

व्यापक लोकरक्षक तथा अविनाशी विष्णु (परमात्मा) निरन्तर गति द्वारा इन तीनों लोकों में सब पिण्डों को, सब कर्मों को तथा स्वस्वभावजन्य धर्मों को धारण करता हुआ, उत्पादक, स्थापक और नाशक इन तीन शक्तियों से विश्व को बना और चला रहा है।

१६७१. विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ।।

उस विष्णु के कर्मों (सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय) को देखो जिनको देखकर परमेश्वर का योग्य मित्र—उपासक मनुष्य ज्ञानों को प्राप्त करता, नियमों को पालन करता और धार्मिक कार्यो का अनुष्ठान करता है। वह परमात्मा जीवात्मा का सदा साथ रहने वाला, मित्र है।

१६७२. तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ।।

उस विष्णु के परम पद (मोक्ष) को और परम सूक्ष्म स्वरूप को विद्वज्जन सदा ध्यान में रखते और अनुभव करते हैं जैसे आकाश में फैली हुई दृश्य वस्तुओं को फैलाई हुई आँख देखती है। वह परम सूक्ष्मस्वरूप, द्युलोक में सूर्य के प्रकाश के समान, सर्वत्र व्यापक है।

१६७३. तद्विप्रासो विपन्युवो जागृवांसः समिन्धते । विष्णोर्यत्परमं पदम् ।।

विष्णु का जो परम सूक्ष्म स्वरूप है, उसको मेधावी, विशेष रूप से यथार्थ वर्णन करने वाले तथा सदा सावधान उपासक अपने हृदय में प्रकाशित करते और प्राप्त करते हैं।

१६७४. अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे । पृथिव्या अधि सानवि ।।

क्योंकि विष्णु संसार को उत्पन्न करता और चलाता है, तथा पृथिवी के उच्च से उच्च प्रदेश में

भी व्याप्त है, अतः इसकी समस्त दिव्य प्राकृतिक शक्तियाँ तथा विद्वज्जन इस लोक के उच्च से उच्च भाग में भी, हमारी रक्षा करते हैं और सदा करें।

१६७५. मो षु त्वा वाघतश्च नारे अस्मन्नि रीरमन् ।
आरात्ताद्वा सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥

छठा सूक्त— हे परमेश्वर ! हमारे पास और दूर स्थित विशेष बुद्धिमान् तथा साधारण उपासकजन क्या अच्छे प्रकार से आपकी स्तुति नहीं कर रहे हैं ? आप दूर से दूर और पास से पास वर्तमान होकर भी हमारे आत्मा में प्रकट होइये और यहां प्रकाशित होकर हमारी प्रार्थना को सुनिये।

१६७६. इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा मधौ न मक्ष आसते ।
इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः ॥

वे ब्रह्मयज्ञ तथा वेदोक्त कर्म करनेवाले ये सब उपासक इस जगत् में ज्ञान के प्राप्त हो जाने पर, आपके साथ मोक्ष-अवस्था में स्थित होते हैं, जैसे कि शहद पर मक्खियाँ बैठती हैं। मोक्षरूपी धन चाहनेवाले वे उपासक उस परमेश्वर पर ही अपनी अभिलाषाओं को रख देते हैं जैसे कि धन चाहनेवाले व्यक्ति (व्यापार तथा विजय के निमित्त जाने के लिये) रथ पर पैर रखते हैं।

१६७७. अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।
पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥

७ वाँ सूक्त— उस परमेश्वर की स्तुति की जाती है, अतः पूर्ण तथा तृप्तिकारक और मनन करने योग्य वेदमन्त्र का उसके लिये उच्चारण करो। सत्यज्ञान का वर्णन करनेवाली तथा पूर्ण बृहती ऋचाओं से उसका गुणवर्णन करो, इससे स्तोता की बुद्धियाँ अच्छी बढ़ती हैं।

१६७८. समिन्द्रो रायो बृहतीरधूनुत सं क्षोणी समु सूर्यम् ।
सं शुक्रासः शुचयः सं गवाशिरः सोमा इन्द्रममन्दिषुः ॥

परमेश्वर ने बड़ी-बड़ी सम्पत्तियों, शक्तियों, अनेक पृथिवियों और सूर्य को प्रेरित किया हुआ है। शुद्ध तेजस्वी, ज्ञान तथा वेदवाणी का आश्रय लेनेवाले और इन्द्रियों को दमन करनेवाले सौम्य उपासक उस परमेश्वर को अच्छे प्रकार प्रसन्न करते हैं।

१६७९. इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे । नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे ।

आठवाँ सूक्त— हे सब के प्रेरक परमात्मन् ! आप अज्ञाननाशक, नम्र, इन्द्रियों के नेता, क्रिया-शक्तिसम्पन्न, वीर तथा शरीर में वर्तमान जीवात्मा के लिये हृदय में ध्यान किये जा रहे हैं।

१६८०. तं सखायः पुरूरुचं वयं यूयं च सूरयः । अश्याम वाजगन्ध्यं सनेम वाजपस्त्यम् ॥

हे विद्वान् मित्रो ! तुम और हम सभी अत्यन्त प्रकाशमान, ज्ञान की सुगन्ध से युक्त और बल के आश्रय-स्थान उस परमात्मा को प्राप्त होवें।

१६८१. परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।
यो देवान्विश्वाँ इत् परि मदेन सह गच्छति ॥

उपासकजन उस मनोहर कान्तिमान् तथा पोषक परमात्मा को वरणीय ज्ञान के द्वारा प्राप्त होते हैं । जो सब विद्वानों को आनन्दरस के साथ प्राप्त होता है ।

१६८२. कस्तमिन्द्र त्वा वसवा मर्त्यो दधर्षति ।
श्रद्धा हि ते मघवन् पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति ॥

नवाँ सूक्त— हे व्यापक परमेश्वर ! कौन मनुष्य आपको अपमानित कर सकता है ? हे ज्ञान-धन सम्पन्न प्रभो ! ज्ञानी उपासक श्रद्धा से ही प्रकाशमय मोक्ष में पहुँचकर आपके ज्ञान को प्राप्त करना चाहता है ।

१६८३. मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु ।
तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभिर्विश्वा तरेम दुरिता ॥

हे हरणशील व्यापक शक्तिवाले परमेश्वर ! जो अपने प्यारे धन का भी आपके वेदानुकूल मार्ग में दान कर देते हैं ऐसे ज्ञानी पुरुषों को अज्ञान, दुष्ट और दुर्गुणों के विनाश के लिये प्रेरित कीजिये । आपके प्रणीत वेदज्ञान द्वारा, विद्वानों के सहयोग से, हम सब पापों तथा बूरे कर्मों से तर जावें ।

तीसरा खण्ड

१६८४. एदु मधोर्मदिन्तरं सिञ्चाध्वर्यो अन्धसः । एवा हि वीर स्तवते सदावृधः ॥

दसवाँ सूक्त— हे हिंसारहित उपासक ! तू मधुर उपासना के हर्षप्रद आनन्द-रसका आत्मा में सिञ्चन कर । उस सदा बढ़े हुए वीर-परमेश्वर की ही स्तुति की जाती है ।

१६८५. इन्द्र स्थातर्हरीणां न किष्टे पूर्व्यस्तुतिम् । उदानंश शवसा न भन्दना ॥

हे गतिशील लोकों की स्थापना करने वाले परमेश्वर ! आपकी सनातन वेदोक्त स्तुति को कोई भी न तो बल से और न तेज से ही पा सकता है ।

१६८६. तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः । अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥

ज्ञान की कामनावाले हम उपासकजन ज्ञान के रक्षक स्वामी तथा विनाशरहित श्रेष्ठतम कर्मों से यश तथा महिमा में बड़े उस परमेश्वर को नित्य स्मरण करते हैं ।

१६८७. तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे । देवत्रा हव्यमूहिषे ॥

११वाँ सूक्त— हे मनुष्य ! तू उस सुख तथा मोक्ष के नेता परमेश्वर का गुणगान कर । विद्वान् उस को ही सर्वज्ञ तथा स्वामी स्वीकार करते हैं । वही विद्वानों में ज्ञान तथा प्राकृतिक पदार्थों में शक्ति पहुँचाता है ।

१६८८. विभूतरातिं विप्र चित्रशोचिषमग्निमीडिष्व यन्तुरम् ।
अस्य मेधस्य सोम्यस्य सोभरे प्रेमध्वराय पूर्व्यम् ।।

हे अच्छे प्रकार से ज्ञान धारण करनेवाले बुद्धिमान् ! तू हिंसारहित उपासना के लिये, बड़े दानी, विचित्र प्रकाशवान्, इस ज्ञानयुक्त पवित्र उपासना-यज्ञ के नियामक- तथा सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर की उपासना कर।

१६८९. आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया ।
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दध्रिषे ।।

१२वाँ सूक्त— हे सौम्य उपासक जीवात्मन् ! तू योगाभ्यासों से प्रेरित होकर प्रकृति के आवरणों को पार करता है। और द्युलोक तथा पृथिवी लोक में व्यापक गतिशील परमात्मा भक्तों के हृदय में भी विशेष स्थिति तथा प्रकाश धारण करता है।

१६९०. स मामृजे तिरो अण्वानि मेष्यो मीढ्वान्त्सप्तिर्न वाजयुः ।
अनुमाद्यः पवमानो मनीषिभिः सोमो विप्रेभिर्ऋक्वभिः ।।

वेगवान् अश्व के समान वेगवान् तथा ज्ञान प्राप्त करने वाला उपासक चितिशक्ति के सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्त्वों को प्राप्त करके तथा सुखवर्षक होकर शुद्ध हो जाता है। वह पवित्र सौम्य आत्मा मननशील तथा बुद्धिमान् वेदज्ञों द्वारा आनन्द प्राप्त करने योग्य तथा प्रशंसनीय होता है।

१६९१. वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् । तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ।।

१३वाँ सूक्त – हम (जीवन्मुक्त) ज्ञानरूपी वज्र (शक्ति) के धारक परमात्मा को ही पिछले जन्मों में तथा कल तक इस संसार में सब प्रकार से प्रसन्न करते रहे हैं। हे उपासको ! तुम भी आज वेदानुकूल ब्रह्म-यज्ञ में उसी के लिये सम्पादित भक्ति को धारण कर सुशोभित होओ।

१६९२. वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति ।
सेमं न स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया ।।

आदित्य के समान इस परमेश्वरका वरणीय स्वरूप अज्ञान का नाशक होकर सब भक्तों के आत्माओं में शोभा देता है। सब पापों का निवारक ज्ञानरूपी बल ही आत्मा के शत्रुओं का नाशक है जो सब मार्गों तथा प्रज्ञानों में शोभा देता है। इस परमेश्वर के प्रज्ञानों में हृदय-दुःख-दायक, मार्ग-रोधक चोर भी सीधा हो जाता हैं। हे प्रभो ! ऐसे प्रसिद्ध आप हमारी इस स्तुति को स्वीकार कीजिये और ज्ञानयुक्त बुद्धि से हमारे आत्मा में प्रकट होइये।

१६९३. इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः । तद्वां चेति प्र वीर्यम् ।।

१४वाँ सूक्त— हे इन्द्र (जीवात्मा) तथा अग्नि (परमात्मा) ! आप दोनों ज्ञान के प्रकाशक होकर सभी ज्ञानयज्ञों में शोभित होते हैं। यह बल आप दोनों का ही है।

१६९४. इन्द्राग्नी अपसस्पर्युप प्र यन्ति धीतयः । ऋतस्य पथ्या ३ अनु ।।

हे इन्द्र तथा अग्नि ! ध्यानी-उपासक सत्यज्ञान के मार्ग पर चलते हुए, कर्मों का पार करके उपासना द्वारा आपके समीप पहुँचते हैं।

१६९५. इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च। युवोरप्तूर्यं हितम् ॥

हे इन्द्र और अग्नि ! आपके बल और ज्ञान साथ ही रहते हैं और आप दोनों का कर्मों को प्रेरित करने वाला बल हितकारी है।

१६९६. क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥

१५वाँ सूक्त—इस संसार में, उपासना-यज्ञ में, ज्ञान का सेवन करने वाले उस जीवात्मा के स्वरूप को वस्तुतः कौन जानता है ? कौन जानता है कि वह कितनी आयु धारण कर रहा है ? (वह तो प्रवाह से अनादि है), जो जीवात्मा अन्न द्वारा हर्ष को प्राप्त होता हुआ, अपने ओज से अपने शरीरों को भेदन कर डालता है।

१६९७. दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे।
न किष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा ॥

वह मुक्त दानी जीवात्मा, दान (मद) के जल से युक्त जँगली हाथी के समान, आनन्द में मग्न होकर बहुत से स्थानों पर यथेच्छ घूमता है। हे मुक्त आत्मन् ! तुझे संसार में कोई नहीं रोक सकता, तू अपने ओज से महान् होकर सब जगह जाता और विचरता है।

१६९८. य उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥

जो शक्तिशाली, सच्चा, अविनाशी तथा स्थिर जीवात्मा काम-क्रोध आदि से संघर्ष के लिये शुद्ध तथा सन्नद्ध किया गया है। उस स्तुति करनेवाले आत्मा की पुकार को यदि सर्व-धन-सम्पन्न परमात्मा सुन लेता है, तो वह ऐश्वर्यशाली जीवात्मा उससे पृथक् नहीं रहता, अपितु उसे प्राप्त ही कर लेता है।

चौथा खण्ड

१६९९. पवमाना असृक्षत सोमाः शुक्रास इन्दवः। अभि विश्वानि काव्या ॥

१६वाँ सूक्त—पवित्र, शुद्ध, सौम्य, ऐश्वर्यशाली तथा प्रकाशमान योगी, उपासकजन सब वेद-काव्यों को साक्षात् कर लेते हैं।

१७००. पवमाना दिवस्पर्यन्तरिक्षादसृक्षत। पृथिव्या अधि सानवि ॥

पवित्र उपासक प्रकाशमान लोकों में, अन्तरिक्ष में और पृथिवी के उच्च पर्वत शिखरों में योग कार्य का सम्पादन करते हैं।

१७०१. पवमानास आशवः शुभ्रा असृग्रमिन्दवः। घ्नन्तो विश्वा अप द्विषः ॥

उज्ज्वल वेषधारी, शीघ्र गति वाले, पवित्र तथा ज्ञानी उपासक सब द्वेषों को दूर मार भगाते हुए कार्य सम्पादन करते हैं।

१७०२. तोशा वृत्रहणा हुवे सजित्वानापराजिता। इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥

१७वाँ सूक्त— भीतरी शत्रुओं के बाधक, अज्ञाननाशक, समान जयशील, कभी न हारनेवाले तथा अत्यन्त बलदायक इन्द्र (जीवात्मा) तथा अग्नि (परमात्मा) को मैं स्मरण करता हूँ।

१७०३. प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः। इन्द्राग्नी इष आ वृणे ॥

हे इन्द्र तथा अग्नि! सामगान के ज्ञाता तथा स्तोता वेदज्ञानी आप की उपासना करते हैं। मैं भी ज्ञान पाने के लिये आप को स्मरण करता हूँ।

१७०४. इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम्। साकमेकेन कर्मणा ॥

हे इन्द्र और अग्नि! आप विनाशक भावों से पालित ९० कामनारूपी नगरों को एक ही योग-रूपी कर्म से एक साथ कँपा देते हैं।

१७०५. उप त्वा रण्वसन्दृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत। अग्ने ससृज्महे गिरः ॥

१८वाँ सूक्त— हे साधना-बल से साक्षात्कृत परमात्मन् ज्ञानी मुमुक्ष, हम उपासक रमणीय तथा दर्शनीय आप के समीप पहुँचने के लिये स्तुतियों का उच्चारण करते हैं।

१७०६. उप च्छायामिव घृणेरगन्म शर्म ते वयम्। अग्ने हिरण्यसन्दृशः ॥

हे परमात्मन्! हम, असह्य धूप से छाया में पहुँचने के समान, सुवर्णतुल्य दर्शनीय तथा तेजस्वी आप के सुख को प्राप्त होते हैं।

१७०७. य उग्र इव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वंसगः। अग्ने पुरो रुरोजिथ ॥

हे परमात्मन्! बाणों से मारने वाले उग्र योधा के समान उग्र और तीक्ष्ण सींगों वाले बैल के समान तीक्ष्ण तेज वाले आप इस सत्त्व, रजस्, तमस् इन तीन गुणों वाले प्राकृतिक शरीर को ज्ञानद्वारा मग्न और भस्म कर देते हैं।

१७०८. ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम्। अजस्रं घर्ममीमहे ॥

१९वाँ सूक्त—सत्यज्ञान से युक्त, समस्त मनुष्यों में व्यापक तथा हितकारी तेजस्वी सूर्य आदि लोकों के रक्षक स्वामी, अनादि, नित्य तथा शुद्ध परमात्मा की हम उपासना करते हैं।

१७०९. य इदं प्रतिपप्रथे यज्ञस्य स्वरुत्तिरन्। ऋतूनुत्सृजते वशी ॥

जो सब को वश में करने वाला परमात्मा इस संसार को रचता है और उपासक आत्मा के लिये सुख तथा मोक्ष देता है, वह वसन्त आदि सब ऋतुओं को, प्राणों को और समस्त गतिशील लोकों को उत्तम रूप से बनाता है।

१७१०. अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य। सम्राडेको विराजति ॥

भूत और भविष्यत् (तथा वर्तमान) का मूल उत्पादक तथा आदिकारण परमात्मा प्रिय तथा श्रेष्ठ समस्त लोकों में एकमात्र सम्राट होकर विराजता है।

उन्नीसवाँ अध्याय तीसरा अर्धप्रपाठक

(१७११ मन्त्र से १७६४ मन्त्र तक)

ऋषि—१ विरूप आङ्गिरसः; २, १८ अवत्सारः, ३ विश्वामित्रः, ४ देवातिथिः काण्वः; ५ ८, ९, १६ गोतमो राहूगणः; ६ वामदेवः, ७ प्रस्कण्वः काण्वः, १० वसुश्रुत आत्रेयः, ११ सत्यश्रवा आत्रेयः, १२ अवस्युरात्रेयः, १३ बुधगविष्ठिरावात्रेयौ, १४ कुत्स आङ्गिरसः, १५ अत्रिः, १७ दीर्घतमा औचथ्यः ॥

देवता—१, १०, १३ अग्निः, २, १८ पवमानः सोमः; ३—५ इन्द्रः ६, ८, ११, १४, १६ उषाः; ७, ९, १२, १५, १७ अश्विनौ ॥

छन्दः—१, २, ६, ७, १८ गायत्रीः ३ बृहती; ४, ५ बार्हतः प्रगाथ (१ बृहति+२ सतोबृहती), ८, ९, उष्णिक्: १०—१२ पङ्क्तिः; १३—१५ त्रिष्टुप्; १६, १७ जगती ॥

स्वरः—१, २, ६, ७, १८ षड्जः ३, ४ (१) मध्यमः; ४ (२), ५ (२), १०—१२ पञ्चमः; ८, ९ ऋषभः; १३—१५ धैवतः; १६, १७ निषादः ॥

पहला खण्ड

१७११. अग्निः प्रत्नेन जन्मना शुम्भानस्तन्वां३ स्वाम्। कविर्विप्रेण वावृधे ॥

पहला सूक्त—अग्नि=गतिशील जीवात्मा अपने पुराने जन्म तथा उसमें किये कर्मों के कारण अपने शरीर को शोभित करता हुआ कवि तथा मेधावी होकर, मेधावी तथा ज्ञान-सम्पन्न परमेश्वर के साथ अपनी वृद्धि करता है।

१७१२. ऊर्जो नपातमा हुवेऽग्निं पावकशोचिषम्। अस्मिन् यज्ञे स्वध्वरे ॥

मैं, इस हिंसारहित सुन्दर उपासना में, बलरक्षक तथा पवित्र तेजवाले जीवात्मा (स्वयं) को समर्पित करता हूँ।

१७१३. स नो मित्रमहस्त्वमग्ने शुक्रेण शोचिषा। देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥

मित्र परमात्मा के संग से तेजस्वी हे जीवात्मन् ! तू शुद्ध तेज से, इन्द्रियों के साथ इस शरीर में विराजमान है।

१७१४. उत्ते शुष्मासो अस्थू रक्षो भिन्दन्तो अद्रिवः । नुदस्व याः परिस्पृधः ॥

दूसरा सूक्त— आदरणीय प्रभो ! दुष्टों का विनाश करती हुई आपकी शक्तियाँ सर्वोपरि विराजमान हैं। जो द्वेषी हैं उन्हें आप दूर कीजिये।

१७१५. अया निजघ्निरोजसा रथसङ्गे धने हिते । स्तवा अबिभ्युषा हृदा ॥

हे परमेश्वर ! इस ओज से शत्रुओं का संहार करनेवाला मैं, शरीर के संग होने पर और तृप्तियोग्य अन्न तथा ज्ञान के पालेने पर, निडर हृदय से आपकी स्तुति करता हूँ।

१७१६. अस्य व्रतानि नाधृषे पवमानस्य दूढ्या । रुज यस्त्वा पृतन्यति ॥

इस पवित्र परमात्मा के नियमों को दुष्ट-बुद्धि बाले मनुष्य नष्ट नहीं कर सकते। हे प्रभो ! जो आप के (नियमों) का विरोध करता है उसका आप विनाश कर देते हैं।

१७१७. तं हिन्वन्ति मदच्युतं हरिं नदीषु वाजिनम् । इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥

हम उस आनन्दवर्षक, गतिशील, ज्ञानसम्पन्न हर्षकारक तथा नाड़ियों में बल-सञ्चारक परमेश्वर का जीवात्मा के (लाभ के) लिये प्राप्त करते हैं।

१७१८. आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
मा त्वा के चिन्नि येमुरिन्न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥

तीसरा सूक्त— हे परमेश्वर ! आप मयूर के पखों के समान हर्षप्रद अपनी शक्तियों के साथ, हमें प्राप्त होईये। कपटी जनों के समान कोई भी व्यक्ति आपको बाँध नहीं सकता। धनुर्धारी के समान आप उनको दूर भगा देते हैं।

१७१९. वृत्रखादो बलंरुजः पुरां दर्मो अपामजः ।
स्थाता रथस्य हर्योरभिस्वर इन्द्रो दृढा चिदारुजः ॥

अज्ञाननाशक, तामस बल को भंग करनेवाला, शरीरों का विदारक (मोक्षदाता), कर्मों का प्रेरक, सुन्दर ब्रह्माण्ड का अधिष्ठाता, तथा प्राण-अपान और ज्ञान-कर्मेन्द्रियों का प्रेरक परमात्मा दृष्ट विघ्नों को भी नष्ट कर देता हैं।

१७२०. गम्भीराँ उदधीँरिव क्रतुं पुष्यसि गा इव ।
प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा ह्रदं कुल्या इवाशत ॥

हे परमेश्वर ! आप, जैसे गोपालक गौओं को पुष्ट करता है, वैसे ही गम्भीर समुद्रों के समान, जीवात्मा को (जीवनधाराओं से) पुष्ट करते हैं। जैसे गौएँ प्रेम से भूसे पर और जैसे छोटी नहरें

बड़े जलाशय को स्वभावतः, प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार जीवात्मा आपको प्रेम से स्वभावतः प्राप्त होते हैं।

१७२१. यथा गौरो अपाकृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम् ।
आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब ।।

चौथा सूक्त — हे उपासक ! जैसे प्यासा मृग जलपूर्ण स्थान पर जाता है, वैसे ही तू हम विद्वानों की मित्रता प्राप्त कर बुद्धिमानों के पास शीघ्र पहुँच और उनके साथ ही उत्तम ज्ञान का सेवन कर।

१७२२. मन्दन्तु त्वा मघवन्निन्द्रेन्दवो राधोदेयाय सुन्वते ।
आमुष्या सोममपिबश्चमू सुतं ज्येष्ठं तद्दधिषे सहः ।।

हे ज्ञानवान् जीवात्मन् ! वे विद्वान् तथा उनके अनुभव, साधक जीवात्मा को ज्ञान प्राप्त कराने के लिये, तुझे आनन्दित करें। तू प्राण-अपान से तथा ज्ञान-कर्म से उत्पन्न आनन्द-रस का सेवन करता है और उस महान् सहनशीलता रूप बल को धारण करता है।

१७२३. त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ।।

पाँचवाँ सूक्त— सबसे अधिक बलवान प्रभो ! आप प्रकाशमान होकर उपासक मनुष्य को भी प्रशंसायोग्य बनाते हैं। आपके अतिरिक्त अन्य कोई सुखदाता नहीं है। यह मैं आपके प्रति सत्यवचन कह रहा हूँ।

१७२४. मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसोऽस्मान् कदा चना दभन् ।
विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वसूनि चर्षणिभ्य आ ।।

हे मनुष्यों के हितकारी तथा व्यापक परमेश्वर ! आपके प्रदत्त धन और रक्षायें हमें दुःख न दें। आप सब विद्या आदि धनों को हम मनुष्यों के लिये दीजिये।

दूसरा खण्ड

१७२५. प्रति ष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसुः । दिवो अदर्शि दुहिता ।।

छठा सूक्त — वह, उत्तम मोक्षमार्ग पर ले जाने वाली, ज्ञान-उत्पन्न करने वाली, तथा, स्वयं प्रकट होने वाली प्रतिभा के साथ-साथ अपना प्रकाश प्रकट करती हुई, सूर्य के समान प्रकाशमान योगी उपासक की आनन्द-रस दुहने वाली ज्योतिष्मती प्रज्ञा प्रकट होती हुई प्रतीत होती हैं।

१७२६. अश्वेव चित्रारुषी माता गवामृतावरी । सखाभूदश्विनोरुषाः ।।

विद्युत् के समान विचित्र, तेजस्विनी, ज्ञान-रश्मियों की उत्पादक, सत्यज्ञान को वरण करनेवाली तथा ऋतम्भरा स्वरूप, साधक की अज्ञान-नाशिका विशोका प्रज्ञा प्राण तथा अपान के साथ रहनेवाली है।

१७२७. उत सखास्यश्विनोरुत माता गवामसि । उतोषो वस्व ईशिषे ।।

हे ज्योतिष्मती विशोका नामक प्रज्ञा ! तू प्राण-अपान की सखा है और इन्द्रियों के ज्ञान की प्रमात्री ग्रहण करने वाली है, और आत्मा की शक्ति को धारण करती तथा विद्या आदि धन की स्वामिनी है ।

१७२८. एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः । स्तुषे वामश्विना बृहत् ।।

सातवाँ सूक्त—उपासक के अनुभव में पहले न आई हुई, प्रकाशमान आत्मा की प्यारी, यह पाप को जलाने वाली विशोका प्रज्ञा प्रकट हो रही है । मैं (योगी) प्राण-अपान का महान् गुण-वर्णन करता हूँ ।

१७२९. या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् । धिया देवा वसुविदा ।।

जो प्राण-अपान, काम, क्रोध, रोग आदि के नाशक, शरीर की सब नाड़ियों के सञ्चालक, ज्ञान और कर्मों के मनोबल द्वारा प्रेरक तथा ध्यान-वृत्ति, बुद्धि और कर्मों के द्वारा आत्मा का ज्ञान प्राप्त कराने वाले हैं ।

१७३०. वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि । यद्वां रथो विभिष्पतात् ।।

हे प्राण-अपान ! तुम दोनों का रमण स्थान यह जीवात्मा जब अन्तःकरणों के साथ प्रशंसनीय परमात्मा में गति करता है, तब तुम दोनों के मुख्य गुण वर्णन किये जाते हैं ।

१७३१. उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति । येन तोकं च तनयं च धामहे ।।

आठवाँ सूक्त—हे ज्ञानमय वाणी से युक्त ज्योतिष्मति ! तू हमें उस प्राप्त करने योग्य ज्ञान को प्राप्त करा जिससे हम अपने चित्त तथा शरीर को धारण कर सकें और पुत्र-पौत्रादि की रक्षा कर सकें ।

१७३२. उषो अद्येह गोमत्यश्वावति विभावरि । रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति ।।

हे ज्ञान-रश्मियों से युक्त, श्रेष्ठ मन से युक्त, विशेष कान्तिसम्पन्न, तथा सत्यज्ञान वेदवाणी का दर्शन करने वाली ज्योतिष्मती प्रज्ञा ! तू आज यहाँ हमारे लिये ज्ञान तथा ऐश्वर्य से युक्त आत्मा को प्रकाशित कर ।

१७३३. युङ्क्ष्वा हि वाजिनीवत्यश्वाँ अद्यारुणाँ उषः । अथा नो विश्वा सौभगान्या वह ।।

हे ज्ञानमय वाणी से युक्त चित्तिशक्ति ! तू आज दीप्तिमान् प्राणों को शरीर में नियुक्त कर और हमें सब उत्तम पदार्थों को प्राप्त करा ।

१७३४. अश्विना वर्तिरस्मदा गोमद् दस्रा हिरण्यवत् । अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम् ।।

नवाँ सूक्त—हे रोग-विनाशक प्राण-अपान ! तुम दोनों मानस बल के साथ होकर, आत्मा से युक्त तथा इन्द्रियसम्पन्न हमारे परिवर्ती शरीर को अपने अधीन करके नियम में रक्खो ।

१७३५. एह देवा मयोभुवा दस्रा हिरण्यवर्त्तनी । उषर्बुधा वहन्तु सोमपीतये ।।

प्रातः जागनेंवाले ज्ञानी पुरुष, आनन्द-रस का सेवन करने के लिये इस शरीर में आत्मा के बल पर चेष्टा करनेवाले, दोषनाशक, सुख के उत्पादक तथा दिव्यगुण युक्त प्राण-अपान को वश में करें।

१७३६. यावित्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः । आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम् ।।

हे प्राण-अपान ! जो तुम दोनों इस प्रकार मूर्धा भाग से, प्रशंसायोग्य विवेकख्याति को साधक-जन के लिये उत्पन्न करते हो वे तुम हमें बल प्राप्त कराओ ।

तीसरा खण्ड

१७३७. अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।

अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर ।।

दसवाँ सूक्त— मैं उसी परमात्मा को मानता हूँ जो सर्वव्यापक है और जिसके आश्रय को वेद-वाणियाँ, आत्मायें तथा प्राण प्राप्त करते हैं । हे प्रभो ! स्तोताओं के लिये ज्ञान प्राप्त कराइये ।

१७३८. अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः ।

अग्नीराये स्वाभुवं सु प्रीतो याति वार्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर ।।

परमात्मा निश्चय ही बलयुक्त अन्न को प्रजा के लिये देता है । संसार का द्रष्टा परमेश्वर प्रसन्न होकर स्वाश्रित जगत् को कल्याणार्थ नियमित करता तथा सर्वतोव्याप्त सुन्दर तेज देता है । हे प्रभो ! विद्वानो के लिये वरणीय ज्ञान दीजिये ।

१७३९. सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः ।

समर्वन्तो रघुद्रुवः सं सुजातासः सूरय इषं स्तोतृभ्य आ भर ।।

वही परमात्मा है जो सर्वधन-सम्पन्न कहा जाता है और जिसकी शरण में वेदवाणियाँ, शीघ्रगामी प्राण तथा सुन्दर जन्मवाले ज्ञानमार्गगामी विद्वान्, पहुँचते हैं । हे प्रभो ! पदार्थों का यथार्थ गुणवर्णन करनेवाले जनों के लिये ज्ञान तथा अन्न आदि से भरपूर कीजिये ।

१७४०. महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती ।

यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ।।

११वाँ सुक्त— हे विशोका प्रज्ञा ! तू ज्योतिष्मती होकर आज महान् ऐश्वर्य के लिये हमें जगा । हे आत्मा की ऋतम्भरा प्रज्ञा ! तू सत्यज्ञानयुक्त अविच्छिन्न तथा सुन्दर उत्पन्न आत्मा में हमें यथावत् बोध करा ।

१७४१. या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः ।

सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ।।

हे आत्मा के लिये आनन्द-रस दुहनेवाली तथा सत्याज्ञान धारण करानेवाली ऋतम्भरा ! जैसे तू उत्तम-मार्गगामी तथा शुद्ध रमणीय आत्मा में अज्ञान का नाश किया करती है। वैसे ही तू अविच्छिन्न, सत्यज्ञानमय, उत्तमरूप से प्रादुर्भूत तथा सहनशील मुझमें अज्ञान को दूर कर।

१७४२. सा नो अद्याभरद्वसुर्व्युच्छा दुहितर्दिवः।
यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते।

हे योगी के लिये ज्ञान-रस को दुहनेवाली, बलवती, सच्चे ज्ञानवाली, अविच्छिन्न, उत्तम रूप से उत्पन्न, तथा व्यापक प्यारे शब्दोंवाली ज्योतिष्मती प्रज्ञा ! तू प्राणों तथा आत्मा को ज्ञान से भरपूर करती हुई जैसे वास्तव में अज्ञान को हटाती है, वैसे ही आज हमारे अज्ञान को हटा।

१७४३. प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम्।
स्तोता वामश्विनावृषिः स्तोमेभिर्भूषति प्रति माध्वी मम श्रुतं हवम्॥

१२वाँ सूक्त— हे प्राण-अपान ! तत्त्वदर्शी स्तोता, भोगवर्षक, जीवात्मा का धारण करनेवाले, अत्यन्त प्रिय शरीर में, तुम दोनों को भूषित करना चाहता है। हे ब्रह्मविद्या को जाननेवालो ! मेरे गुणवर्णन को सुनो।

१७४४. अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना।
दस्रा हिरण्यवर्तनी सुषुम्णा सिन्धुवाहसा माध्वी मम श्रुतं हवम्॥

हे प्राण-अपान ! सनातन से वर्तमान, दोषों के शोधक, आत्मा के आश्रित, सुन्दर सुखदाता, सुषुम्ना रूप से वर्तमान, नाड़ियों में प्रेरणा देनेवाले, मधुविद्यायुक्त तथा मनोहर तुम दोनों आओ, मैं सब बाधाओं को पार कर सकूँ। मेरी आज्ञा सुनो।

१७४५. आ नो रत्नानि बिभ्रतावश्विना गच्छतं युवम्।
रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसू माध्वी मम श्रुतं हवम्॥

हे प्राण-अपान ! रमणीय इन्द्रियों को धारण करते हुए तुम दोनों हम को प्राप्त होओ। देह-त्याग काल में रुलाने वाले, तेजयुक्त मार्ग वाले, जीवनयज्ञ का सेवन करने वाले, ज्ञानमयी चितिशक्ति में वसनेवाले तथा मनोहर तुम दोनों मेरे वचन को सुनो।

चौथा खण्ड

१७४६. अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम्।
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सस्रते नाकमच्छ॥

१२वाँ सूक्त— परमेश्वर मनुष्यों में योगसाधन द्वारा, आनेवाले उषाकाल में दूध देनेवाली गौ के समान सदा उदित होता है। उस परमात्मा की विभूतियाँ आनन्दमय मोक्ष-अवस्था तक, बड़े वृक्षों की शाखाओं के समान विस्तृत रहती है।

१७४७. अबोधि होता यजथाय देवानूर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरस्थात् ।
समिद्धस्य रुशदर्दर्शि पाजो महान् देवस्तमसो निरमोचि ।।

सृष्टि की उत्पत्ति तथा प्रलय करनेवाला परमात्मा, दिव्य गुणों की सङ्गति के लिये, उत्तमज्ञान-युक्त तथा प्रकाशमान होता है। वह सबसे उच्च है तथा सर्वत्र स्थित है। उस देदीप्यमान का तेजस्वी बल साक्षात् दिखाई देता है। वही महान् देव अज्ञान तथा मृत्यु से मुक्त करता है।

१७४८. यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्क्ते शुचिभिर्गोभिरग्निः ।
आद्दक्षिणा युज्यते वाजयन्त्युत्तानामूर्ध्वो अधयज्जुहूभिः ।।

जब यह प्रकाशमान परमात्मा चर-अचर जगत् की शक्ति को वश में किये हुए है और शुद्ध वेद वाणियों द्वारा विश्व को प्रकाशित करता है, तब उसकी ज्ञान तथा कर्म की प्रकाशक शक्ति संसार के निर्माण में लगती है और उस उत्कृष्ट शक्ति को सब से उच्च वह प्रभु दान आदान द्वारा वश में रखता है।

१७४९. इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा ।
यथा प्रसूता सवितुः सवायैवा रात्र्युषसे योनिमारैक् ।।

१४वां सूक्त — जब यह श्रेष्ठ, ज्योतियों की ज्योति प्राप्त होती है, तब उसकी व्याप्ति से विचित्र उत्तम ज्ञान उत्पन्न होता है। जैसे उत्पन्न उषा सूर्य के उत्पन्न होने के लिये पूर्वरूप है और रात्रि उषा के लिये पूर्वरूप को जोड़ती है, वैसे ही उषा=ऋतम्भरा परमात्मा के ज्ञान के लिये पूर्वरूप है और रात्रि=सुखदात्री=सुषुम्ना, ऋतम्भरा के उदय के लिये मूलकारण आत्मा से सम्पर्क करा देती हैं।

१७५०. रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगु कृष्णा सदनान्यस्याः ।
समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्णं चरत आमिनाने ।।

विशोका प्रज्ञारूपी उषा दीप्तियुक्त होकर वत्स=बच्चे के समान प्यारे प्राण को साथ लिये हुए प्रकट होती है। और आकर्षण करनेवाली तथा दुःखों को काटनेवाली सुषुम्ना वृत्तिरूपी रात्रि इस विशोकारूपी उषा के लिये उचित स्थान तैय्यार कर देती है। दोनों अमृत तथा अवर्णनीय हैं और समान नामक प्राण द्वारा तथा समान रूप से परस्पर सम्बद्ध हैं। दोनों वरणीय ज्ञान तथा आनन्द को उत्पन्न करती हुईं, प्रकाशस्वरूप आत्मा के साथ रहती है।

१७५१. समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे ।
न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे ।।

स्वयं प्रकट होनेवाली तथा बहिन के समान दोनों —विशोका तथा सुषुम्ना वृत्तियों का अनन्त मार्ग तथा आश्रय, शरीर में समान रूप से वर्तमान जीवात्मा ही है, ये दोनों पृथक-पृथक उसी को

प्राप्त होती हैं। रात्रि और उषा के समान ये दोनों वृत्तियाँ उत्तम रूप से आनन्द को उत्पन्न करनेवाली, तथा सुख और ज्ञान के पृथक् पृथक् अनुभव कराने से विभिन्न रूपवाली होकर, समान रूप से तथा एक ही मन का आश्रय लेकर, एक-दूसरे की बाधक नहीं होतीं और स्थिर भी नहीं रहतीं, प्रत्युत क्रम-क्रम से प्रकट होती हैं।

१७५२. आ भात्यग्नि रुषसामनीकमुद्विप्राणां देवया वाचो अस्थुः ।
अर्वाञ्चा नूनं रथ्येह यातं पीपिवांसमश्विना घर्ममच्छ ॥

१५वाँ सूक्त— जब उषाओं का मुख—सूर्य, और विशोका प्रज्ञाओं का पूर्वरूप, मुखस्वरूप विशेष तेज प्रकाशित होता है तभी बुद्धिमान् उपासकों की परमात्मा-विषयक वेदध्वनियाँ प्रकट होने लगती हैं। हे प्राण-अपान ! शरीर में वर्तमान तथा उसके हितकारी तुम दोनों इस शरीर में निम्न देश में गति करनेवाले होकर भी ऊपर आओ और साक्षात् प्रकट होकर बराबर बढ़ते हुए तेज को अच्छे प्रकार प्राप्त तथा साक्षात् करो।

१७५३. न संस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठान्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह ।
दिवाभिपित्वेऽवसागमिष्ठा प्रत्यवर्तिं दाशुषे शम्भविष्ठा ॥

हे प्रशंसित प्राण-अपान ! पास में ही प्राप्त होने वाले तुम दोनों उत्तम संस्कार किये गये उपासक का विनाश नहीं करते, प्रत्युत प्रकाश के प्राप्तिकाल में अपने रक्षक बल के साथ प्राप्त होते हो और आत्मसमर्पक साधक के लिये, (इस कल्प में) फिर संसार में न लौटने के लिये कल्याणकारी होते हो।

१७५४. उता यातं संगवे प्रातरह्नो मध्यन्दिन उदिता सूर्य्यस्य ।
दिवा नक्तमवसा शन्तमेन नेदानीं पीतिरश्विना ततान ॥

हे प्राण अपान ! तुम दोनों दिन के सायङ्काल अथवा प्रातःकाल अथवा सूर्योदय के पश्चात् दिन के मध्य चाहे दिन और रात भर, अपने शान्तिदायक रक्षण के साथ, हमें प्राप्त होओ (प्राणायाम सदा किया जा सकता है) क्योंकि इस समय तक ब्रह्मानन्द का पान नहीं किया गया है।

पाँचवाँ खण्ड

१७५५. एता उत्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते ।
निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः ॥

१६वाँ सूक्त— ये नई विशोका तथा ज्योतिष्मती प्रज्ञायें अपने ज्ञापक तथा प्रकाशक आत्माको, नीहार अथवा धूम के प्रकाशक के पूर्णरूप से ऋद्धतम=सम्पन्न हो जाने पर, प्रकाशित करती हैं। वे प्रकाशमान तथा प्रकृष्ट ज्ञान कराने वाली ऋतम्भरायें, शास्त्रों के प्रेरक आक्रामकों के समान, इन्द्रिय-वृत्तियों तथा प्रज्ञाओं को प्रेरित करती हैं।

१७५६. उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत ।
अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा रुशन्तं भानुमरुषीरशिश्रयुः ॥

कान्तिमान् रश्मियाँ सहज ही (योगी के) नाना धारण प्रदेशों में प्रकट होती हैं । अपने-अपने विषयों से संयुक्त वे इन्द्रिय—वृत्तियाँ आलोकयुक्त होकर समाधि द्वारा प्रकट होती हैं । ये उषायें=ज्ञानलोक पुराने चित्त के संस्कारों को जागृत कर देते हैं और ये सब प्रज्ञायें देदीप्यमान होकर प्रकाशमान आत्मा का आश्रय किये रहती हैं ।

१७५७. अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना परावतः ।
इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ॥

व्यापक उषाओं के समान, यह नेता का काम करने वाली ज्योतिष्मती विशोका प्रज्ञायें, अपने तेजों से, समाधियोग द्वारा, ब्रह्मानन्द के उत्पादक सर्वस्व दानी तथा योगी आत्मा के लिये सब ज्ञान तथा बल प्राप्त कराती हुई, दूरके पदार्थों का भी ज्ञान करा देती हैं ।

१७५८. अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्यू३षाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा ।
आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद्देवः सविता जगत् पृथक् ॥

१७वाँ सूक्त— जब ज्ञानाग्नि आत्मा में प्रदीप्त होती है तो सूर्यवत् ब्रह्म का प्रकाश उदय होता है और आनन्दित करनेवाली विशारदा ज्योतिष्मती प्रज्ञा अपने तेज से अज्ञान को हटा देती है । हे प्राण-अपान ! तुम दोनों आत्मा तक जाने के लिये शरीर तथा मन को योग में लगाओ, जिससे प्रेरक जीवात्मा जगत् का उत्तम रूप से ज्ञान प्राप्त करे।

१७५९. यद्युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम् ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासुजिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥

हे प्राण-अपान ! जब तुम दोनों सुखवर्षक रमणीय आत्मा को योगयुक्त करते हो तब हमारे बल को तेज से सींचते हो और हमारी इन्द्रिय-वृत्तियों में विशेष संवित् ज्ञान को उत्पन्न करते हो जिससे हम शूरों के लिये प्राप्तव्य ज्ञान, बल तथा धन को प्राप्त करते हैं ।

१७६०. अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः ।
त्रिबन्धुरो मघवा विश्वसौभगः शं न आ वक्षद् द्विपदे चतुष्पदे ॥

प्राण-अपान का तीन चक्रवाला, मधुर ओ३म् है, वाहन=धारण जिसका ऐसा अविनाशी आत्मासे युक्त, तथा अच्छे प्रकार वर्णित शरीर साक्षात् रूप से गति करता है। तीन—आत्मा, मन और इन्द्रियरूपी – सारथियों वाला, विश्व में सौभाग्यशाली हमारा रमणीय शरीर दोपाये मनुष्य आदि तथा चौपाये पशु आदि के लिये कल्याण करे ।

१७६१. प्र ते धारा असश्चतो दिवो न यन्तिवृष्टयः । अच्छा वाजं सहस्रिणम् ॥

१८वाँ सूक्त— हे परमात्मन्! सङ्गरहित आपकी धारणा-पोषण कारी शक्तियाँ, द्युलोक से वर्षाओं के समान, सहस्रों धनों से सम्पन्न ज्ञान तथा अन्न को देती हैं।

१७६२. अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्षति । हरिस्तुञ्जान आयुधा ॥

मनोहर समस्त लोकों को देखता हुआ और अपने बल से विघ्नों का नाश करता हुआ परमात्मा सर्वव्यापक है।

१७६३. स मर्मृजान आयुभिरिभो राजेव सुव्रतः । श्येनो न वंसु षीदति ॥

उपासकों द्वारा हृदय में स्वच्छ रूप में साक्षात् करने योग्य वह अभयरूप, उत्तम कर्मों का सम्पादक परमात्मा निर्भय राजा या गरुड़पक्षी के समान निर्भय होकर, सब लोकों में विराजमान है।

१७६४. स नो विश्वा दिवो वसूतो पृथिव्या अधि । पुनान इन्दवा भर ॥

हे परमात्मन्! वह आप हमें द्युलोक के और पृथिवी पर के समस्त पदार्थों को पवित्र करता हुआ हमारे लिये प्राप्त कराइये।

--o--

नवम प्रपाठक

(१७६५ मन्त्र से १८७५ मन्त्र तक)

बीसवाँ अध्याय पहला अर्धप्रपाठक

(१७६५ मन्त्र से १८१५ मन्त्र तक)

सूक्तों के अनुसार ऋषि, देवता, छन्द और स्वर

ऋषिः—१ नृमेधः, २ नृमेध, वामदेवः; ३ प्रियमेधः; ४ दीर्घतमा औचथ्यः; ५ वामदेवः; ६ प्रस्कण्वः काण्वः; ७ बृहदुक्थो वामदेव्यः; ८ विन्दुः पूतदक्षो वा; ९, १७ जमदग्निर्भार्गवः; १० सुकक्षः; ११—१३ वसिष्ठः; १४ सुदाः पैजवन; १५ मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्वाङ्गिरसः; १६ नीपातिथिः काण्वः; १८ परुच्छेपो दैवोदासिः ॥

देवता—१, १७ पवमानः सोमः; २, ३, ७, १०—१६ इन्द्रः; ४, ५, १८ अग्निः; ६ अग्निरश्विनावुषाश्च, ८ मरुत् ९ सूर्याः ॥

छन्दः—१, ८, १०, १५ गायत्री; २, १७ द्विपदा गायत्री; ३ आनुष्टुभः प्रगाथः (१ अनुष्टुप् + २—३ गायत्री), ४, ११, १३ विराडनुष्टुप्; ५ पदपङ्क्तिः; ६, ९, १२ बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती + २ सतोबृहती) ७ त्रिष्टुप्; १४ शक्वरीः १६ अनुष्टप्; १८ अत्यष्टिः ॥

स्वरः—१, २, ३ (२—३), ८, १०, १५, १७ षड्जः; ३ (१, ४, ११, १३, १६, १८, गान्धारः, ५, ६ (२), ९ (२), १२ (२) पञ्चमः; ६ (१), ९ (१), १२ (१) मध्यमः; ७, १४ धैवतः ॥

पहला खण्ड

१७६५. प्रास्य धारा अक्षरन् वृष्णः सुतस्यौजसः । देवाँ अनु प्रभूषतः ॥

पहला सूक्त— प्रेरक, सुखवर्षक, बलवान्, तथा इन्द्रियों को वश में रखने वाले इस आत्मा के तेज चारों ओर प्रवाहित हो रहे हैं।

१७६६. सप्तिं मृजन्ति वेधसो गृणन्तः कारवो गिरा । ज्योतिर्जज्ञानमुक्थ्यम् ॥

कर्मयोगी तथा मेधावी उपासक स्तुतियोग्य तथा प्रादुर्भूत ज्योति की वाणी द्वारा स्तुति करते हुए, सर्पणशील सात इन्द्रियों से युक्त आत्मा को शुद्ध करते हैं।

१७६७. सुषहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूवसो । वर्धा समुद्रमुक्थ्य ॥

हे वेदप्रतिपाद्य तथा प्रभूत ऐश्वर्यसम्पन्न आत्मन्! पवित्र तेरे लिये वे तेज अच्छे प्रकार सहन योग्य हैं। तू अपने आनन्द के स्रोत को बढ़ा।

१७६८. एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे ॥

दूसरा सूक्त— यह महान् परमात्मा, जो सब ऋतुओं में हितकारी है 'इन्द्र' नाम से प्रसिद्ध है। मैं उसकी स्तुति करता हूँ।

१७६९. त्वामिच्छवसस्पते यन्ति गिरो न संयतः ॥

हे बल के स्वामी परमेश्वर! संयमी की वाणियाँ वेदवाणियों के समान आपको ही प्राप्त होती है।

१७७०. वि स्रुतयो यथा पथा इन्द्र त्वद् यन्तु रातयः ॥

हे परमेश्वर! जैसे बहने के मार्ग से आकर नादियाँ प्राप्त होती हैं, वैसे ही हमको विद्या आदि दान प्राप्त हों।

१७७१. आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्त्तयामसि ।
तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्रं शविष्ठ सत्पतिम् ॥

तीसरा सूक्त— रक्षा के लिये धारण किये गये यान तथा शरीर के समान, हम रक्षा तथा सुख के लिये महान् कार्य करनेवाले, दुष्टों के दबानेवाले, बलवान् तथा सज्जनों के पालक आपको हृदय में धारण करते हैं।

१७७२. तुविशुष्म तुविक्रतो शचीवो विश्वया मते । आ पप्राथ महित्वना ।

हे अनन्त बलशाली, विशाल कर्मवाले तथा शक्ति के स्वामी प्रभो ! आप विश्वव्याप्त महिमा से सर्वत्र व्यापक है।

१७७३. यस्य ते महिना महः परि ज्मायन्तमीयतुः । हस्ता वज्रं हिरण्ययम् ॥

हे प्रभो ! जिस महान् आपकी महिमा से आपकी गतिसाधन दो शक्तियाँ सर्वत्र व्यापक तथा गतिशील प्रभाव का ग्रहण करती हैं, वह आप इन्द्र हैं।

१७७४. आ यः पुरं नार्मिणीमदीदेदत्यः कविर्नभन्यो३ नार्वा । सूरो न रुरुक्वाञ्छतात्मा ॥

चौथा सूक्त— जो गतिशील आत्मा मन के निवासयोग्य शरीर को प्रकाशित करता है वह कवि तथा आकाश में चलने वाले वायु=प्राण के समान और अश्व के समान वेगवान् है। सूर्य के समान कान्तिमान् वह सभी शरीरों में विराजमान है।

१७७५. अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजांसि शुशुचानो अस्थात् ।
होता यजिष्ठो अपां सधस्थे ॥

द्विजन्मा=कर्ता और भोक्तारूप में प्रकाशमान जीवातमा तीनों सत्य, रजस, तमस् को परिशोधित करता हुआ सब लोकों में अनेक योनियों में विराजमान है। ज्ञान को ग्रहण करनेवाला तथा यज्ञकर्ता वह कर्मों के सम्पर्क में विराजमान है।

१७७६. अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या ।
मर्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ॥

द्विजन्मा, तथा दानी जीवात्मा सब वरणीय कार्यों को धारण करता है। जो मनुष्य इस आत्मा के लिये सर्वस्व अर्पण कर देता है वह उत्तम सन्तान तथा उत्तम शरीरवाला होता है।

१७७७. अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् । ऋध्यामा त ओहैः ॥

पाँचवाँ सूक्त— हे परमात्मन् ! हम सदा स्तुतियों के द्वारा विद्युत् के समान प्रकाशमान, रचयिता के समान कल्याणकारी, तथा हृदय में प्रत्यक्ष होनेवाले आपकी उपासना करते हैं।

१७७८. अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः । रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ॥

और हे प्रभो ! आप कल्याणकारी, चतुर साधु उपासक के तथा महान् सत्यज्ञान के धारण करने वाले हैं।

१७७९. एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ् स्वा३र्ण ज्योतिः । अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥

हे परमात्मन् ! आप इन ऋचाओं से हमारे समक्ष सूर्य के समान ज्योतिः रूप में, तथा समस्त तेजों से उत्तम ज्ञानसम्पन्न रूप में हमारे हृदय में प्रकाशित हों।

दूसरा खण्ड

१७८०. अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य ।

आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ।।

छठा सूक्त— हे नित्य तथा सर्वज्ञ परमात्मन् ! आप सर्वस्व त्यागी उपासक के लिये ज्योतिष्मती प्रज्ञा से बोधसम्पन्न इन्द्रियों को उक्त प्रज्ञा से प्राप्त विचित्र ज्ञानरूपी धन प्राप्त कराइये।

१७८१. जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम् ।

सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत् ।।

हे परमात्मन् ! आप हिंसारहित उपासनाओं के नेता, सब से सेवित जगत् के धारण करने वाले तथा सर्व-व्यापक हैं। आप प्राण-अपान और ज्योतिष्मती प्रज्ञा द्वारा हमें उत्तम बल और विशाल ज्ञान धारण कराइये।

१७८२. विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार ।

देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समानः ।।

सातवाँ सूक्त— जगत् के धारक तथा आत्मिक संग्राम में काम-क्रोधादि शत्रुओं के नाशक नित्य परमात्मा की वृद्ध उपासक स्तुति करता है। उस परमात्मा के वेदकाव्य तथा सृष्टि को देखो। उसकी महिमा से जो अज्ञान कल तक वर्तमान था, वह आज नष्ट हो गया।

१७८३. शाक्मना शाको अरुणः सुपर्ण आ यो महः शूरः सनादनीडः ।

यच्चिकेत सत्यमित्तन्न मोघं वसु स्पार्हमुत जेतोत दाता ।।

जो शूर, नित्य, आलम्बनरहित, दीप्तिमान्, उत्तम ज्ञानवान् तथा स्वशक्ति से शक्तिमान् परमात्मा जो कुछ जानता तथा उपदेश देता है, वह सत्य ही है, व्यर्थ नहीं है। वही समस्त अभिलषणीय धनों का विजेता और दाता है।

१७८४. ऐभिर्ददे वृष्ण्या पौंस्यानि येभिरौक्षद्वृत्रहत्याय वज्री ।

ये कर्मणः क्रियमाणस्य मह्न ऋतेकर्ममुदजायन्त देवाः ।।

शक्तिशाली परमात्मा उन विद्वानों के द्वारा सुखवर्षक बलों को देता है जिनसे कि वह विघ्न-नाशार्थ ज्ञान की वर्षा करता है, और जो परमेश्वर के महान् किये जाते हुए सृष्टिसञ्चालन-रूपी कर्म के सत्यज्ञान में रहकर कर्मबन्धनों को पार कर जाते हैं।

१७८५. अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः । उत स्वराजो अश्विना ।।

आठवाँ सूक्त— यह ब्रह्मानन्द रस प्रकट हुआ है। इसको स्वयं प्रकाशित उपासकजन, उनके प्राण तथा इन्द्रियाँ सेवन करती हैं।

१७८६. पिबन्ति मित्रो अर्यमा तना पूतस्य वरुणः । त्रिषधस्थस्य जावतः ।

मित्र, न्यायकारी और दुःख निवारक तीनों प्रकार के उपासक प्राण, अपान, समान तथा इडा, पिङ्गला, सुषुम्ना में विराजमान आनन्द-जनक ब्रह्मानन्द का सेवन करते हैं।

१७८७. उतो न्वस्य जोषमा इन्द्रः सुतस्य गोमतः। प्रातर्होतेव मत्सति॥

और इस ज्ञानयुक्त उत्पादित ब्रह्मानन्द के सेवन के लिये ऐश्वर्यशाली उपासक प्रातःकाल के समय यज्ञ के होता के समान, साक्षात् मग्न हो जाता है।

१७८८. बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि।

महस्ते सतो महिमा पनिष्टम मह्ना देव महाँ असि।

नवाँ सूक्त— हे सबके प्रेरक तथा सूर्यतुल्य प्रकाशमान देव परमात्मन्! आप निश्चय ही महान् हैं। सत्यस्वरूप आपकी महती महिमा है। आप अपनी महिमा से ही महान् हैं।

१७८९. बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि।

मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम्॥

हे प्रेरक देव! आप ज्ञान और यश द्वारा सचमुच ही महान् हैं। आप अपनी महिमा से देवों के प्राण-रक्षक तथा साक्षात् धारक हैं और सर्वव्यापक अविनाशी ज्योतिः स्वरूप हैं।

तीसरा खण्ड

१७९०. उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते। उपनो हरिभिः सुतम्॥

दसवाँ सूक्त— हे आनन्दों के स्वामी! आप हमारे ज्ञानों तथा कर्मों के द्वारा उत्पन्न की गई भक्ति को स्वीकार कीजिये।

१७९१. द्विता यो वृत्रहन्तमो विद इन्द्रः शतक्रतुः। उप नो हरिभिः सुतम्॥

जो विघ्ननाशक और सैकड़ों प्रज्ञानों से युक्त आत्मा है, उसे मैं परमात्मा तथा जीवात्मा— इन दो रूपों में जानता हूँ। वह हमारी इन्द्रियों द्वारा उत्पन्न ज्ञान को स्वीकार करता है।

१७९२. त्वं हि वृत्रहन्नेषां पाता सोमानामसि। उप नो हरिभिः सुतम्॥

हे अज्ञान-विनाशक प्रभो! आप ही इन जगत् के पदार्थों के पालक है। आप हम सबके परिष्कृत आत्मा को ज्ञानों द्वारा प्राप्त होइये।

१७९३. प्र वो महे महेवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम्।

विशः पूर्वीः प्र चर चर्षणिप्राः॥

११वाँ सूक्त— हे मनुष्यो! तुम अपनी महानवृद्धि के उद्देश्य से महान् ज्ञानी परमात्मा के लिये स्तुति करो और अपने विचार उत्तम बनाओ। हे प्रजापालक प्रभो! आप उत्तम आत्माओं में प्रकट होइये।

१७६४. उरुव्यचसे महि ने सुवृक्तिमिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः ।

तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः ॥

विद्वाज्जन सर्वव्यापक महान् परमेश्वर के लिये उत्तम स्तुति तथा वेद का ज्ञान प्राप्त करते हैं। धीर-उपासक उस ईश्वर के नियमों को नहीं तोड़ते ।

१७६५. इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव सत्रा राजानं दधिरे सहध्यै । हर्यश्वाय बर्हया समापीन् ॥

सब वाणियाँ नित्य शक्तिशाली तथा सबके राजा परमेश्वर को ही, दुष्ट-दमन के लिये, धारण (वर्णन) करती हैं। हे मनुष्य ! सर्वव्यापक परमेश्वर के लिये तू सब भाईयों (मनुष्यों) की वृद्धि कर।

१७६६. यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।

स्तोतारमिद्दधिषे रदावसो न पापत्वाय रंसिषम् ॥

१२ वाँ सूक्त— हे धनदाता परमेश्वर ! जितने ऐश्वर्य के आप स्वामी हैं उतने का ही मैं भी होऊँ ! यदि ऐसा हो तो मैं सत्यज्ञान दर्शाने वाले विद्वानों का ही उससे पालन करूँ। पाप कर्मों के लिये उसे न दूँ।

१७६७. शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद् विदे ।

न हि त्वदन्यन्मघवन्न आप्यं वस्यो अस्ति पिता च न ॥

हे धन के स्वामी ! मैं प्रतिदिन कहीं भी मिल जाने वाले परोपकारी (अथिति) के लिये धनों को अवश्य ही दान दूँ । आपके अतिरिक्त कोई दूसरा उत्तम बन्धु तथा पालक पिता नहीं है ।

१७६८. श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेर्बोधा विप्रस्यार्चतो मनीषाम् ।

कृष्वा दुवांस्यन्तमा सचेमा ॥

१३वाँ सूक्त— हे परमेश्वर ! आनन्द-रस के सेवन के इच्छुक, आदरणीय तथा दृढ़ उपासक की पुकार सुनिये। स्तोता बुद्धिमान् के मन की इच्छा को आप जानते ही हैं। सहायक आप हमारी इन शुभकामनाओं को बुद्धिस्थ कीजिये ।

१७६६. न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान् ।

सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि ॥

हे परमेश्वर ! विद्वान् मैं प्राण-हितकारी तथा शत्रुनाशक आपकी वेदवाणियों को और उत्तम स्तुति को कभी नहीं त्यागता । आपके यशस्वी नाम का सदा कीर्तन करता हूँ ।

१८००. भूरि हि ते सवना मानुषेषु भूरि मनीषी हवते त्वामित् ।

मारे अस्मन्मघवं ज्योक्कः ।

हे परमेश्वर ! मनुष्यों में आपके दिये हुए बहुत से दान हैं। मननशील उपासक आपकी ही स्तुति करता है। हे सर्वशक्तिमान् ! आप हम से कभी दूर न हों। हमारे समीपस्थ आप उद्धार में देरी न करें।

चौथा खण्ड

१८०१. प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत । अभीके चिदु लोककृत् सङ्गे समत्सु वृत्रहा ।
अस्माकं बोधि चोदिता नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ।।

१४वाँ सूक्त— इस परमेश्वर के लिए उसके ब्रह्माण्ड-पालक बलका यथार्थ वर्णन करो । अत्यन्त पास में ही वर्तमान वह प्रकाश करता है । प्राप्त हो जाने पर वह इन्द्रियवृत्तियों में अज्ञान के आवरण को नष्ट कर देता है और प्रेरक वह हमें ज्ञान देता है । उसके आगे काम-क्रोध आदि दुष्टों के धनुषों पर चढ़ी हुई भी बुरी प्रत्यञ्चायें (अर्थात् काम आदि स्वयं) नष्ट हो जावें ।

१८०२. त्वंसिन्धूँ रवासृजोऽधराचो अहन्नहिम् । अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यम् ।
तं त्वा परि ष्वजामहे नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ।।

हे परमेश्वर ! आपने नीचे की ओर जानेवाली नादियों को उत्पन्न किया है । आप बादल को गति देने (बरसाने) वाले हैं । और सबके मित्ररूप में जाने जाते हैं । आप जल से जीने वाले विश्व का पोषण करते हैं । ऐसे आपकी हम उपासना करते हैं । आपके विपरीत दुष्टगुण नष्ट हों ।

१८०३. वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः ।
अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति ।
या ते रातिर्ददिर्वसु नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ।।

हे परमेश्वर ! हमारे सब सामना करने वाले, काम-क्रोधादि शत्रु नष्ट हों और बुद्धियाँ अच्छी हों । जो हम उपासकों को नष्ट करना चाहता है उस शत्रु पर आप अपना हननकारी बल प्रयुक्त करते हैं । जो आपकी दान-क्रिया है, वह हमें ज्ञान आदि धन प्राप्त करावे, दुष्टों की धनुष पर चढ़ी प्रत्यञ्चायें नष्ट हो जावें ।

१८०४. रेवाँ इद्रेवत स्तोता स्यात् त्वावतो मघोनः । प्रेदु हरिवः सुतस्य ।।

१५वाँ सूक्त— हे प्राणों के प्राण परमेश्वर ! धनी तथा ज्ञानी पुरुष का स्तोता धनी तथा ज्ञानी हो जाता है, फिर आप जैसे ज्ञानी, धनी और ऐश्वर्यवान् के क्या कहना ! (आपका स्तोता तो अवश्य धनी तथा ज्ञानी होगा ही !

१८०५. उक्थं च न शस्यमानं नागो रयिरा चिकेत । न गायत्रं गीयमानम् ।।

सर्वव्यापक परमात्मा, अज्ञानी के द्वारा की गई स्तुति तथा गाये हुए गायत्र साम को क्या नहीं जानता ? (अवश्य जानता है ।)

१८०६. मा न इन्द्र पीयत्नवे मा शर्धते परा दाः । शिक्षा शचीवः शचीभिः ।

हे शक्तिशाली परमेश्वर ! आप हमें हिंसक और निरस्कार करनेवाले के हाथ में मत छोड़िये, किन्तु अपने ज्ञानों तथा शक्तियों से हमें शिक्षा दीजिये ।

१८०७. एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥

१६वाँ सूक्त— हे परमेश्वर ! आप मनोहर शक्तियों के साथ आत्मा में प्रकट होइये और बुद्धिमान् की स्तुति को सुनिये। हे प्रकाश में वास करनेवाले प्रभो ! आप दिव्य मोक्ष का शासन करनेवाले अपने दिव्यस्वरूप के सुख को प्राप्त कराइये।

१८०८. अत्रा वि नेमिरेषामुरां न धूनुते वृकः। दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥

इन प्राणों को वश में करनेवाला जीवात्मा, भेड़ को कँपानेवाले भेड़िये के समान, चितिशक्ति को कम्पित कर देता है। हे ज्योतिरूप से शरीर में वास करनेवाले आत्मा ! तू प्रकाशमान शासक परमात्मा के सुख को प्राप्त कर।

१८०९. आ त्वा ग्रावा वदन्निह सोमी घोषेण वक्षतु ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥

हे परमेश्वर ! यहाँ उपासना में, आत्मज्ञानी उपदेशक, आपकी स्तुति करता हुआ, वेदज्ञान के साथ ही आपको प्राप्त हो। हे मनुष्य ! तू इस लोक के शासक प्रकाशमान परमात्मा के मोक्षसुख को प्राप्त कर।

१८१०. पवस्व सोम मन्दयन्निन्द्राय मधुमत्तमः ।

१७वाँ सूक्त— हे सौम्य उपासक ! तू अत्यन्त ज्ञानी होकर आनन्दित होता हुआ परमेश्वर के लिये पवित्र हो।

१८११. ते सुतासो विपश्चितः शुक्रा वायुमसृक्षत ।

वे सिद्ध, विद्वान् तथा शुद्ध उपासक परमात्मा को प्राप्त होते हैं।

१८१२. असृग्रं देववीतये वाजयन्तो रथा इव ।

वे उपासक, रथों के समान, वेगयुक्त होकर, ईश्वर की प्राप्ति के लिये जाते हैं।

पाँचवाँ खण्ड

१८१३. अग्नि होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु शुक्रशोचिष आजुह्वानस्य सर्पिषः ॥

१८वाँ सूक्त— मैं उस परमात्मा को सुखदाता धनदाता, आत्मा का प्रेरक, शक्ति का प्रेरक वेदज्ञान का प्रकाशक तथा मेधावी के समान, उत्पन्न पदार्थों का जानने वाला मानता हूं, जो ऊपर आकाश में स्थित अग्नि द्वारा हिंसारहित सृष्टि-यज्ञ का करनेवाला, देवों तक पहुँचनेवाली शक्ति से, दीप्त ज्योतिवाले, प्रसरणशील तथा कान्तियुक्त सूर्य के विशेष प्रताप को प्रेरित कर रहा है।

१८१४. यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां विप्र मन्मभिर्विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः ।
परिज्मानमिव द्यां होतारं चर्षणीनाम् ।
शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये विशः ।।

हे मेधावी तथा शुद्ध स्वरूप परमात्मन् ! हम उपासक पूज्यतम तथा ज्ञानियों में श्रेष्ठ आपको, आपके विशेष प्रकाशक वेदमन्त्रों द्वारा स्मरण करते हैं। सर्वव्यापक, तेजस्वरूप, मनुष्यों के मोक्ष-दाता कान्तिमान् सूर्यादि लोकों को वश में रखनेवाले तथा सुखवर्षक आपको ये सब आपके आश्रित उपासक जीवात्मा प्राप्त होते हैं।

१८१५. स हि पुरू चिदोजसा विरुक्मता दीद्यानो भवति द्रुहन्तरः परशुर्न द्रुहन्तरः ।
वीडु चिद्यस्य समृतौ श्रुवद्वनेव यत्स्थिरम् ।
निष्षहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते ।।

वही परमात्मा विशेष कान्ति युक्त ओज से अत्यधिक प्रकाशित होता हुआ, वृक्ष काटनेवाले परशु के समान, इस विनाशी शरीर बन्धन को काटने वाला है। जो दृढ़ तथा स्थिर संसार-बन्धन है वह भी, जिसके प्राप्त कर लेने पर जल के समान, छितरा जाता है। वह परमात्मा दुष्टों को निःशेष करता हुआ संसार की व्यवस्था करता है और धनुर्धारी के समान, संसार को छोड़ कर भी नहीं जाता और न उसके बन्धन में आता है।

इक्कीसवाँ अध्याय दूसरा अर्धप्रपाठक

(१८१६ मन्त्र से १८४८ मन्त्र तक)

सूक्तों के अनुसार ऋषि, देवता, छन्द तथा स्वर

ऋषिः—१ अग्निः पावकः, २ सोभरिः काण्वः; ३ अरुणो वैतहव्यः; ५, ६ अवत्सारः काश्यपः; ९ गोषूक्तयसूक्तिनौ काण्वायनौ; १० त्रिशिरास्त्वष्टः सिंधुद्वीपो वाम्बरीषः; ११ वातायनः; १३ वेनः ४, ७, ८, १२ (?) ।।

देवता—१—४, ७, ८, १२ अग्निः, ५, ६ विश्वेदेवाः; ९ इन्द्रः; १० आपः; ११ वायुः; १३ वेनः ।।

छन्दः—१ (१—२) विष्टरिपङ्क्तिः, (३—५) सतोबृहती, (६) उपरिष्टाज्ज्योतिस्त्रिष्टुप् २ काकुभः प्रगाथः (१ ककुबुष्णिक्+२ सतोबृहती), ३ जगती, ५, ६, १२, १३ त्रिष्टुप् ४, ७—११ गायत्री ।।

स्वरः—१(१—५), २ (२) पञ्चमः, २ (१) ऋषभः, ३ निषादः, १ (६), ५, ६, १२, १३ धैवतः, ४, ७—११ षड्जः ।।

पहला खण्ड

१८१६. अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो ।
बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यां३ दधासि दाशुषे कवे ।।

पहला सूक्त—हे विशेष प्रकाशरूप धनवाले, सर्वज्ञ परमात्मन् ! आपका मन और ज्ञान महान् है, आपकी सूर्य आदि के रूप में ज्वालायें प्रकाशित हो रही हैं। हे महान् दीप्तिशाली प्रभो ! आप प्रशंसनीय, वेद-प्रतिपादित ज्ञान दीजिये। हे कवि! आप आत्म-समर्पण-कर्ता के लिये धारण करते हैं।

१८१७. पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदिर्यषि भानुना ।
पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे ॥

हे प्रभो ! पवित्रतेजयुक्त, शुद्ध-कान्ति-सम्पन्न तथा अत्यन्त तेजस्वी आप अपने तेज के साथ हृदय में प्रकट होते हैं। जिस प्रकार पुत्र वृद्ध माता-पिता के पास रहता हुआ उनका पालन करता है, वैसे ही आप दोनों लोकों—द्यु तथा पृथिवी में व्यापक होकर उनका पालन करते हैं।

१८१८. ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः ।
त्वे इषः सं दधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥

हे बल के रक्षक, सर्वज्ञ प्रभो! आप उत्तम स्तुतियों तथा यज्ञ के स्थापना से अपना आनन्दमय रूप प्रकट कीजिये। अत्यन्त तेजस्वी, विचित्र रक्षायुक्त, उत्तम जन्मवाले उपासक आपके लिये ही ज्ञान धारण करते हैं।

१८१९. इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य ।
स दर्शतस्य वपुषो वि राजसि पृणक्षि दर्शतं क्रतुम् ॥

हे प्रकाशस्वरूप, अमर परमात्मन् ! आप उत्पन्न किये हुये साधनों द्वारा हमारे ऐश्वर्य को बढ़ाते हुए हमारे धन को बढ़ाइये। आप दर्शनीय सामर्थ्य से सबके ऊपर विराजमान हैं और दर्शनीय यज्ञ को सफल करते हैं।

१८२०. इष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तं राधसो महः ।
रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिं रयिम् ॥

हे प्रभो ! हिंसा-रहित उपासना के प्रेरक, बहुत ज्ञानवान् बड़े आराधनायोग्य ज्ञान के स्वामी तथा श्रेष्ठ पदार्थों के दाता (आपकी स्तुति करता हूँ)। आप महान् सौभाग्ययुक्तज्ञान तथा परस्पर विभागयोग्य ऐश्वर्य को धारण करते तथा दान करते हैं।

१८२१. ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः ।
श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥

हे प्रभो ! उपासक मनुष्य सत्यज्ञानयुक्त, महान् तथा विश्व के द्रष्टा आप को सुख पाने के लिये सदा अपने ध्यान में सामने रखते हैं, और गृहस्थ मनुष्यों के जोड़े भी अति प्रसिद्ध, श्रुति के अनुसार जगत् रचनेवाले तथा दिव्यगुणयुक्त आपको वेदवाणी द्वारा सब कार्यों में ध्यान में सामने रखते हैं।

दूसरा खण्ड

१८२२. प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः । यस्य त्वं सख्यमाविथ ।।

दूसरा सूक्त – हे ज्ञानी जीव ! तू जिस परमात्मा से मित्रता करता है, वह ज्ञानसम्पादक तथा वीरतापूर्ण रक्षाओं से तुझे दुःख से तार देता हैं ।

१८२३. तव द्रप्सो नीलवान् वाश ऋत्विय इन्धानः सिष्णवा द दे ।

त्वं महीनामुषसामसि प्रियः क्षपो वस्तुषु राजसि ।।

हे आनन्दरस से हृदय को सींचनेवाले उपासक ! तेरा द्रवणशील रसरूप, आश्रयदाता, कमनीय रूप, प्राणों में रहने वाला, प्रदीप्त होकर मन से ग्रहण किया जाता है । तू विशाल ज्योतिष्मती प्रज्ञाओं का प्रिय है और दुःखनाशक तत्त्वों में प्रकाशमान रहता है ।

१८२४. तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं तमापो अग्निं जनयन्त मातरः ।

तमित् समानं वनिनश्च वीरुधोऽन्तर्वतीश्च सुवते च विश्वहा ।।

तीसरा सूक्त—ऋतुओं में रसरूप से प्रकट होनेवाले अग्नि को औषधियाँ धारण करती हैं । विद्युत्रूप उसको मूलकारण जल उत्पन्न करते हैं। उसको ही समान रूप से वन के वृक्ष और वनस्पतियाँ सब दिन अपने अन्दर धारण करती हैं और उत्पन्न करती हैं ।

१८२५. अग्निरिन्द्राय पवते दिवि शुक्रो विराजति । महिषीव वि जायते ।।

चौथा सूक्त—परमात्मा आत्मा के लिये हृदय में प्रकट होता है, वही मोक्ष में शुद्धरूप से विराजमान है और वही जीवात्मा के लिये कामधेनु के समान नाना पदार्थ प्रदान करता है ।

१८२६. यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति ।

यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ।।

पाँचवाँ सुक्त—जो मनुष्य जागता (सावधान रहता) है उसी को ऋचायें चाहती है, जो जागा रहता है उसी को सामगान प्राप्त होते हैं। जो सदा सावधान रहता है उसी से सबका प्रेरक परमात्मा कहता है कि मैं तेरी मित्रता में निवास करता हूँ ।

१८२७. अग्निर्जागार तमृचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति ।

अग्निर्जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ।।

छठा सूक्त—परमात्मा सदा जागता है, उसको ऋचायें चाहती हैं तथा साम सदा प्राप्त रहते हैं। उसी से यह सौम्य उपासक कहता है कि 'हे प्रभो ! मैं आप के मित्रभाव में सदा आश्रय प्राप्त करूँ ।

१८२८. नमः सखिभ्यः पूर्वसद्भ्यो नमः साकंनिषेभ्यः । युञ्जे वाचं शतपदीम् ।।

सातवाँ सूक्त—पूर्ण ब्रह्म तथा मोक्ष में विराजमान समान आख्यान वाले उपासकों के लिये

नमस्कार हो, और साथ में विराजमान उपासकों के लिये नमस्कार तथा अन्न प्राप्त हो, मैं सैकड़ों ज्ञानों से पूर्ण वेदवाणी का प्रयोग करता हूँ।

१८२९. युञ्जे वाचं शतपदीं गाये सहस्रवर्तनि । गायत्रं त्रैष्टुभं जगत् ॥

मैं शतपदी वाणी का योग द्वारा मनन करता हूँ। सहस्रों रागों में, सहस्रों शाखाओं वाले सामवेद में, गायत्री, त्रिष्टुप् तथा जगती छन्द के सामों को गाता हूँ।

१८३०. गायत्रं त्रैष्टुभं जगद् विश्वा रूपाणि सम्भृता । देवा ओकांसि चक्रिरे ॥

गायत्री, त्रिष्टुप् और जगती छन्दों से ही नाना रूप बनाये गये हैं विद्वज्जन स्तावक, ईश्वर प्रोक्त तथा ज्ञानराशि वेदों का प्रकाश करते हैं।

१८३१. अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निरिन्द्रो ज्योतिर्ज्योतिरिन्द्रः । सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः ॥

आठवाँ सूक्त—अग्नि, इन्द्र (विद्युत्) तथा सूर्य ये सब ज्योतियाँ हैं और सब ज्योतियाँ इन तीनों रूपों में हैं। ये अग्नि, इन्द्र और सूर्य नाम परमेश्वर के तथा जीवात्मा के भी (प्रकरणानुसार) हैं और वे भी ज्योतिःस्वरूप हैं।

१८३२. पुनरूर्जा नि वर्तस्व पुनरग्न इषायुषा । पुनर्नः पाह्यंहसः ॥

हे परमात्मन् ! आप बार-बार, प्रत्येक जन्म में, बल, ज्ञान, अन्न तथा पूर्ण आयु देते हुए हमारे हृदय में प्रकट हों और हमें पाप, रोग आदि से बचावें।

१८३३. सह रय्या नि वर्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया । विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ॥

हे परमेश्वर ! आप रमणीय ऐश्वर्य के साथ हमें प्राप्त हों और सब से उत्कृष्ट, विश्वव्यापिनी अपनी आनन्दधारा से हमें तृप्त करें।

तीसरा खण्ड

१८३४. यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् । स्तोता मे गोसखा स्यात् ॥

नवाँ सूक्त—हे परमेश्वर ! यदि मैं आपके समान अकेला ही ज्ञान का स्वामी हो जाऊँ तो इन्द्रियों का सखा मेरा मन आपका स्तोता और पदार्थों का गुणवर्णन करने वाला हो जावे।

१८३५. शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे । यदहं गोपतिः स्याम् ॥

जब मैं इन्द्रियों का स्वामी और वेदवाणी का रक्षक हो जाऊँ तभी हे शक्तिशाली प्रभो ! मैं इस मनीषी के लिये शिक्षा दूँ और विद्या आदि का दान करूँ।

१८३६. धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते । गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥

हे परमेश्वर ! आपकी सच्ची वेदवाणी-रूपी गौ-ज्ञान के सम्पादक तथा यज्ञों के कर्त्ता मनुष्य के लिये अच्छी वाणी तथा आत्मिक शक्ति को पुष्ट करती हुई सुख प्रदान करती है।

१८३७. आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥

दसवाँ सूक्त— सर्वव्यापक परमात्मा निश्चय ही सुखदायक है। वह हमें बल के तथा बड़ी रमणीय दृष्टि के लिये समर्थ करे।

१८३८. यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥

हे प्रभो ! जो आपका सब से अधिक कल्याणकारी आनन्द-रस है। वह हमें प्राप्त कराइये। आप उन्नति चाहने वाली माता के समान हैं।

१८३९. तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥

हे सर्वव्यापक परमात्मन् ! आपके उस आनन्द-रस के पाने के लिये हम आपको अच्छे प्रकार से प्राप्त हों जिसके ऐश्वर्य के लिये आप हमें प्रेरित करते हैं और हमें इस संसार में उत्पन्न करते हैं।

१८४०. वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे । प्र न आयूंषि तारिषत् ॥

११वाँ सूक्त— सर्वव्यापक परमात्मन् हमारे हृदय में प्रकट हो और कल्याणकारी, सुखदायक वायु तथा औषधियों को हमें प्राप्त करावे और हमारी आयु को बढ़ाव।

१८४१. उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा । स नो जीवातवे कृधि ॥

हे सर्वव्यापक प्रभो ! आप हमारे पिता, भाई और मित्र हैं, वह आप हमें जीवित रहने के लिये समर्थ कीजिये।

१८४२. यददो वात ते गृहे३ऽमृतं निहितं गुहा । तस्य नो धेहि जीवसे ॥

हे गतिशील परमात्मन् ! जो वह अमृतरूप परमज्ञान आपके शरण में हृदयरूप गुहा में गुप्त रूप से रक्खा है, उसको हमारे जीवन के लिये प्रदान कीजिये।

१८४३. अभि वाजी विश्वरूपो जनित्रं हिरण्ययं बिभ्रदत्कं सुपर्णः ।
सूर्यस्य भानुमृतुथा वसानः परि स्वयं मेधमृज्रो जजान ॥

१२वाँ सूक्त— बलवान्, नानारूपों का धारक, उत्तम ज्ञानवान् जीवात्मा इस संसार में जन्म लेने वाले तेजःसम्पन्न आत्मा (स्वयं) को पुष्ट करता हुआ और प्राणों के बल पर सूर्य के तेज को धारण करता हुआ तथा दुर्गुणों का दाहक होकर स्वयं पवित्र परमात्मा को जान लेता है।

१८४४. अप्सु रेतः शिश्रिये विश्वरूपं तेजः पृथिव्यामधि यत् संबभूव ।
अन्तरिक्षे स्वं महिमानं मिमानः कनिक्रन्ति वृष्णो अश्वस्य रेतः ॥

अनेक रूपधारी तेजःस्वरूप जीवात्मा ने जलों में वीर्यरूप होकर आश्रय लिया और पृथिवी पर उत्पन्न हुआ। अपनी महिमा को अन्तरिक्ष में भी प्रकट करता हुआ वह सुखवर्षक सर्वव्यापक परमात्मा की शक्ति का वर्णन करता है।

१८४५. अयं सहस्रा परि युक्ता वसानः सूर्यस्य भानुं यज्ञो दाधार ।
सहस्रदाः शतदा भूरिदावा धर्ता दिवो भुवनस्य विश्पतिः ॥

यह जीवात्मा हजारों शरीरों को धारण करता हुआ अन्त में सूर्य तथा परमात्मा के तेज को भी

धारण करता है। सहस्रों का दानी, सैकड़ों का दानी, तथा बहुत बार दानी होकर मोक्ष का धारक होकर इस लोक में प्रजाओं का पालक होता है।

१८४६. नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा।

हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥

तेरहवाँ सूक्त—हे जीवात्मन्! तुझे हृदय से चाहते हुए उपासक जब साक्षात् करते हैं तो ज्योतिः स्वरूप, वरुण (परमात्मा) के पास जानेवाले, ज्ञानी, तथा शक्तिधारी तुझको नियन्ता परमात्मा के दुःखरहित आश्रय मोक्ष में जानेवाला पाते हैं।

१८४७. ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थात् प्रत्यङ्चित्रा बिभ्रदस्यायुधानि।

वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्वा३र्ण नाम जनत प्रियाणि ॥

इन्द्रियों को धारण करने वाला जीवात्मा विचित्र साधनाओं को धारण करता हुआ सुखरूप तेजोमय स्वरूप को साक्षात् करने के लिये प्रिय कामनाओं को उत्पन्न करता है, और मोक्षमार्ग में स्थिर होता है।

१८४८. द्रप्सः समुद्रमभि यज्जिगाति पश्यन् गृध्रस्य चक्षसा विधर्मन्।

भानुः शुक्रेण शोचिषा चकानस्तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ॥

वह ज्ञानी आत्मा, समुद्र को जानेवाली नदी के समान, जब आनन्दरूपी समुद्र को प्राप्त होता है और विशेष धारक परमात्मामें स्थित होकर याचक की दृष्टिसे उसपर ध्यान लगाता है, तब वह सूर्य के समान शुद्ध तेज से प्रकाशित होता हुआ, सुख-दुःखरहित तीसरे ही प्रकाशमान मोक्ष में अपने प्यारे मनोरथों को पूरा करता है।

—:०:—

बाईसवाँ अध्याय तीसरा अर्धप्रपाठक

(१८४९ मन्त्र से १८७५ मन्त्र तक)

सूक्तों के अनुसार ऋषि, देवता, छन्द तथा स्वर

ऋषि—१—४ (१—२), ५ (१—२) अप्रतिरथ ऐन्द्रः, ५ (३), ६ (३), ८ (१, ३) पायुर्भारद्वाजः; ७ (१—२) शासो भारद्वाजः, ९ (१) वय ऐन्द्रः; ९ (२—३) गोतमो राहूगणः; ४, ३); ६ (१—२), ७ (३), ८ (२) (?) ॥

देवता—१, २ (२—३), ३, ४, ६ (१—२), ७, ९ (१) इन्द्रः; २ (१) बृहस्पतिः; ५ (१) अप्वा; ५ (२) इन्द्रो मरुतो वा; ५ (३) इषवः; ६ (३), ८ सङ्ग्रामाशिषः; ९ (२—३) विश्वेदेवाः ॥

छन्दः—१—४, ५ (१), ६ (१), ८ (१), ९ (१—२) त्रिष्टुप्; ५ (२—३), ६ (२), ७ (१—२), ८ (२—३) अनुष्टुप्; ६ (३) पङ्क्तिः; ७ (३) विराड् जगती; ९ (३) विराट् स्थाना त्रिष्टुप् ॥

स्वरः—१–४, ५ (१), ६ (१), ८ (१), ६ धैवतः; ५ (२–३) ६ (२), ७ (१—२), ८ (२—३) गान्धारः; ६ (३) पञ्चमः; ७ (३) निषादः ॥

पहला खण्ड

१८४६. आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
सङ्क्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत् साकमिन्द्रः ॥

पहला सूक्त यह ऐश्वर्यशाली जीवात्मा शीघ्रगामी, अतिसूक्ष्म, तीक्ष्ण, वृषभ के समान भयङ्कर, धर्ममेघ स्वरूप इन्द्रियों को गति देने वाला, स्तुति का उच्चारण करने वाला, आलस्यरहित तथा अकेला ही वीर होकर एकसाथ ही सैकड़ों चित्त-वृत्तियों को जीत लेता है ।

१८५०. सङ् क्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥

हे आत्मिक शत्रुओं से युद्ध करने वाले मनुष्यो ! तुम स्तुतिशील, आलस्यरहित, इन्द्रिय-विजेता, विघ्नों से युद्ध करने वाले, लक्ष्य से न हटने वाले, धैर्यवान् ज्ञानधारक, तथा सुखवर्षक जीवात्मा के द्वारा उन काम-क्रोध आदि शत्रुओं को जीतो तथा तिरस्कृत करो ।

१८५१. स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी सं स्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।
सं सृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्यू ३ग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥

वह ऐश्वर्यशाली जीवात्मा कामना से प्रेरित तथा निरन्तर संग रहने वाले प्राणों द्वारा शरीर को वश में करने वाला है, और संघर्ष करने वाला होकर प्राण-समूह द्वारा शरीर का अच्छे प्रकार निर्माता है । काम-क्रोध आदि की संगठित सेना को जीतने वाला वह जीवात्मा ज्ञान-रस का सेवन करके प्राण-अपान रूपी बाहुओं के बल से सम्पन्न होकर 'ओ३म्' रूपी धनुष को तान कर योगद्वारा प्रेरित की गई साधनाओं से शरीर-बन्धन को काट डालता है ।

१८५२. बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्रां अपबाधमानः ।
प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥

दूसरा सूक्त—हे वाणी के रक्षक जीवात्मन् ! तू विघ्ननाशक होकर, शत्रुरूप दुर्गुणों को नष्ट करता हुआ रमणीय मन तथा शरीर-द्वारा उपासना मार्ग में प्रवृत हो, और काम-क्रोध आदि की सेनाओं को नष्ट करता हुआ तथा प्राणायाम-द्वारा विरोधी द्वन्द्वों को जीतता हुआ हमारे शरीरों का रक्षक हो ।

१८५३. बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः ।
अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोवित् ॥

हे जीवात्मन् ! अपने बल को जानने वाला, योग में स्थिर, प्रकृष्ट वीर, सहनशील, ज्ञानवान्, तपस्वी, उग्र, वीर, प्राणों को संग लिये हुए, सत्त्व गुण में प्रतिष्ठित ओजस्वी और जितेन्द्रिय तथा

वेदवाणी को प्राप्त करने वाला तू संसार के जीतने वाले रथ=रमणीय शरीर को धारण कर और मोक्ष मार्ग के विजेता रथ=रमणीय परब्रह्म में स्थित हो।

१८५४. गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा।
इमं सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ॥

एक ही नाम से प्रसिद्ध और साथ-साथ उत्पन्न इन्द्रियो! तुम शरीरबन्धन को तोड़ने वाले, वेदवाणी को प्राप्त करने वाले, ज्ञान रूपी शस्त्र को रखने वाले, ओज के द्वारा काम-क्रोध आदि शत्रुबल का मर्दन करने वाले तथा विजयशील इस आत्मा के अनुकूल रहकर वीरता दिखाओ और अनुकूल रहकर ही सब कार्य करो।

१८५५. अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः।
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्यो३ऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥

तीसरा सूक्त—देहों के भीतर अपने बल से विचरता हुआ, शरीर पर दया न करते हुए तप करने वाला, वीर जीवात्मा सैकड़ों प्रज्ञानों से युक्त होकर, विचलित न होता हुआ, और बुरी वृत्तियों को दबाता हुआ, अद्वितीय होकर आत्मिक संघर्षों में हमारी सात्विक वृत्तियों की रक्षा करे।

१८५६. इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥

जीवात्मा इन प्राणों का नेता है, उसके आगे-आगे वाणी का स्वामी मन, बलशालिनी चित्ति-शक्ति और पूज्य प्रेरक परमात्मा साथ में हैं। दुर्गुणों का विनाश करने वाली, बुरी प्रवृत्तियों पर विजय पाने वाली दिव्य गुणवाली सात्त्विक वृत्तियों के मुख्य स्थान पर प्राण गमन करते हैं।

१८५७. इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम्।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥

जीवात्मा का, सुखवर्षक तथा वरणीय परमात्मा का, प्राणों का, तथा इन्द्रियों का उग्र बल सफल हो। महान् ज्ञानी, देह—बन्धन के नाशक तथा तामस बल के विजेता इन इन दिव्य साधकों का मानो विजयघोष ऊपर उठ रहा है।

१८५८. उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत् सत्वनां मामकानां मनांसि।
उद्वृत्रहन् वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः ॥

चौथा सूक्त—हे परमात्मन्! मेरे साधनों को तथा मेरे सात्त्विक प्राणों को उत्तम बलयुक्त कीजियें। हे अज्ञान-विनाशक प्रभो! इन्द्रियों की सविता शक्ति को बढ़ाइये। विजयशील तथा गति-शील उपासकों के वेद-पाठ और स्तुतियाँ भी उच्च स्वर से हों।

१८५९. अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ उ देवा अवता हवेषु ॥

जीवात्मा, हमारे प्राणों के परस्पर सङ्गत हो जाने पर, रक्षा करे, जो हमारी मानस-वृत्तियाँ हैं वे बलवान् हों। हमारे वीर प्राण अधिक उत्कृष्ट हों तथा विद्वान् जन आत्मिक संघर्षों के समय हमें बचावें।

१८६०. असौ या सेना मरुतः परेषामभ्येति न ओजसा स्पर्धमाना।
तां गूहत तमसापव्रतेन यथैतेषामन्यो अन्यं न जानात् ॥

हे प्राणो! यह जो मोह आदि शत्रुओं की सेना बल से स्पर्धा करती हुई हमारे सम्मुख आ रही है उसको दृढ़ सङ्कल्प तथा शिथिल कर डालने वाले बल से दूर कर दो, जिससे एक अनात्म-भाव दूसरे भाव को न उत्पन्न करे।

१८६१. अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धे नामित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥

पाँचवाँ सूक्त--हे सन्मार्ग से दूर हटने वाली पाप—वृत्ति! इन प्राणों के चेतन सामर्थ्य को प्रलोभित करती हुई तू हमारे अङ्गों को ग्रहण करती है, अतः तू दूर हट जा। तू द्वेषियों के पास जाती है और उनके हृदयों में शोकों द्वारा दाह उत्पन्न करती है, इसलिये ये अन्धकार भरे मोह से घिर जाते हैं।

१८६२. प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु। उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ॥

हे मनुष्यो! आगे बढ़ो और विजय करो। तुम लोगों को परमात्मा सुख और शान्ति दे, तुम्हारी बाहुएं बलवान् हों जिससे तुम किसी के भी वश में न हो।

१८६३. अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते।
गच्छामित्रान् प्र पद्यस्व मामीषां कं च नोच्छिषः ॥

हे अज्ञान के नाश करनेवाली तथा ब्रह्मज्ञान से तीक्ष्ण आत्मशक्ति! तू योग से युक्त होकर शरीर-बन्धन से दूर जा, काम-क्रोध आदि शत्रुओं को पकड़कर उनमे से किसी को भी शेष न रहने दे।

१८६४. कंकाः सुपर्णा अनु यन्त्वेनान् गृध्राणामन्नमसावस्तु सेना।
मैषां मोच्यघहारश्च नेन्द्र वयांस्येनाननुसंयन्तु सर्वान् ॥

छठा सूक्त— उत्तम ज्ञानवाले सुखाभिलाषी मनुष्य इन आत्मिक शत्रुओं के पीछे लग जावें (उन्हें नष्ट किये बिना न छोड़ें। यह दुर्गुणों की सेना गृध्र के समान उत्पतनशील प्राणों का भोजन बन जावे (प्राणायाम से उनका नाश हो)। इन पापों में से एक भी न छूटे और पाप का भागी कोई भी शेष न रहे। गतिशील प्राण इनका पीछा करके सर्वनाश कर दें।

१८६५. अमित्रसेनां मघवन्नस्माञ्छत्रूयतीमभि। उभौ तामिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति ॥

हे अज्ञान नाशक, ज्ञानवान् उपासक! तू स्वयं हमारी और परमात्मा—दोनों की शत्रु बनी हुई उस काम, क्रोध, मोह आदि की सेना को भस्म कर दें।

१८६६. यत्र बाणाः संपतन्ति कुमारा विशिखा इव ।
तत्र नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु ।

जहाँ शिखारहित कुमारों के समान बुरी वासनाओं को नष्ट करने वाले ज्ञानरूपी वाण गिर रहे हों, वहाँ वेद का रक्षक स्वामी अखण्डनीय परमेश्वर शान्ति दे और सदा सुख प्रदान करे।

१८६७. वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ।।

सातवाँ सूक्त–हे विघ्ननाशक आत्मा! तू राक्षस तथा लोभी प्रवृत्तियों का विनाश कर और अज्ञान के आघातों को नष्ट कर। तू हमें दास बनानेवाले आत्मिक शत्रुओं के अभिमान को खण्डित कर।

१८६८. वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः। यो अस्मां अभिदासत्यधरं गमया तमः ।।

हे जीवात्मन् ! तू युद्ध चाहने वाले काम-क्रोध आदि शत्रुओं को नीचा दिखा और नष्ट कर। जो हमारा विनाश करता है ऐसे तमोगुण को नीचे गिरा।

१८६९. इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ युवानावनाधृष्यौ सुप्रतीकावसह्यौ ।
तौ युञ्जीत प्रथमौ योग आगते याभ्यां जितमसुराणां सहो महत् ।

जीवात्मा की बलवान्, स्थिर, कभी न हारने वाली, प्रतिरोध करनेवाली तथा शत्रु के लिये असह्य प्राण अपान रूपी दो बाहें हैं। पहले ही योग आरम्भ करने पर उपासक उन दोनों को योगयुक्त करे जिनसे कि अन्य प्राणों का बड़ा भारी बल वश में किया जाता है।

१८७०. मर्माणि ते वर्मणा च्छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् ।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ।

आठवाँ सूक्त – हे जीवात्मन् ! तेरे कोमल भावों को मैं ज्ञानरूपी कवच से ढकता हूँ। प्रेरक परमात्मा तुझे अमृतशक्ति से और भी सुरक्षित करे। वरुण परमात्मा तेरे लिए अधिक से अधिक वरणीय सुख उत्पन्न करे। तुझको विजयी देखकर विद्वान् जन हर्षित हों।

१८७१. अन्धा अमित्रा भवताशीर्षाणोऽहय इव ।
तेषां वो अग्निनुन्नानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम् ।।

हे साँप के समान काम क्रोध आदि शत्रुओ ! तुम अन्धे और बिना सिरवाले (नष्ट) हो जाओ। उन सभी आत्मिक शत्रुओं में से बड़े से बड़े को भी परमेश्वर नष्ट करे।

१८७२. यो नः स्वोऽरणो यश्च निष्ठ्यो जिघांसति ।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरं शर्म वर्म ममान्तरम् ।।

जो हमारा अपना होकर भी अधर्मी और अप्रिय करनेवाला हो जावे और जो दूर रहकर भी हमें मारना चाहता है, ऐसे सभी आत्मिक शत्रुओं को सभी विद्वान् जन नष्ट करें। परमेश्वर और उसका वेद ज्ञान मेरा भीतरी कवच (रक्षा-साधन) हो। वह सुखकारी परमात्मा ही मेरा सबसे बड़ा रक्षक है।

१८७३. मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था परस्याः ॥
सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून् ताढि वि मृधो नुदस्व ॥

नवाँ सूक्त— हे परमेश्वर ! आप पहाड़ी तथा जंगली सिंह के समान, दुष्ट के लिए भयानक हैं। आप खोजने योग्य हैं, श्रेष्ठों के लिए भयानक नहीं है। आप कहाँ नहीं व्यापक हैं? अर्थात् सर्वव्यापक हैं वेदवाणी में तथा उपासकों की स्तुतियों में आप सर्वत्र वर्णनीय हैं। आप दूर से दूर स्थान तक पर वर्तमान होकर भी तथा 'परा' ब्रह्मविद्या के विशेष रहस्यमय भाग में वर्णित आप उपासकों के हृदय में प्रकट होते हैं। हे परमात्मन् ! आप प्रसरणशील तीक्ष्ण तथा पवित्र ज्ञानरूपी शक्ति को अति तीक्ष्ण करके आत्मिक शत्रुओं का विनाश कीजिये और तामस भावों का दूर हटाइये।

१८७४. भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥

हे विद्वानो ! हे उपासना-यज्ञ के करनेवाले ज्ञानियों ! आपके आशीर्वाद से हम विद्वान् तथा उपासक होकर कल्याणकारी वचनों को ही सुनें और कल्याणकारी वस्तुओं (महात्माओं, ग्रन्थों तथा दृश्यों) को ही देखें। दृढ़ अंगों तथा दृढ़ शरीरों से स्वयं सन्तुष्ट होकर ईश्वर की स्तुति तथा सत्य का वर्णन करते हुए, जितनी ईश्वर की दी हुई पूर्ण आयु है उसे विद्वानों तथा परमेश्वर के हित में लगाकर ही भोगें।

१८७५. स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

महान् ज्ञानी तथा यशस्वी परमेश्वर हमारा कल्याण करे। सर्वज्ञ तथा सब पदार्थों का स्वामी और पुष्टिकारक परमात्मा हमारा कल्याण करे। जिसके नियमों को कोई नहीं तोड़ सकता वह सर्वशक्तिमान् परमेश्वर हमारा कल्याण करे और 'वेदवाणी' का रक्षक तथा स्वामी परम प्रभु परमात्मा हम सब का कल्याण करे। वह परमेश्वर सम्पूर्ण विश्व का कल्याण करे।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

--०--